प्रकाशक :
अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ
जोधपुर

शाखा कार्यालय
नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)
✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

स्थानांग सूत्र

भाग-२

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य
विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ९७ वाँ रत्न

श्री स्थानांग सूत्र

भाग - २ (स्थान ५-१०)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

अनुवादक

पं. श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र"
न्याय व्याकरणतीर्थ, जैन सिद्धांत शास्त्री
(स्वर्गीय पंडित श्री वीरपुत्र जी महाराज)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-305901
(01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145
२. शाखा - अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216
३. महाराष्ट्र शाखा - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. कर्नाटक शाखा - श्री सुधर्म जैन पौषध शाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़ चामराजपेट, **बैंगलोर-१८** ☎ 25928439
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
६. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**
१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** ☎ 327788
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
१२. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775
१४. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : ३०-००

चतुर्थ आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
अप्रेल २००८

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2620776

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जैन धर्म दर्शन व संस्कृति का मूल आधार वीतराग सर्वज्ञ की वाणी है। तीर्थंकर प्रभु अपनी उत्तम साधना के द्वारा जब घाती कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं तब चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। चतुर्विध संघ की स्थापना के पश्चात् वे जगत् के समस्त जीवों के हित के लिए, कल्याण के लिए अर्थ रूप में वाणी की वागरणा करते हैं, जिसे उन्हीं के शिष्य श्रुतकेवली गणधर सूत्र रूप में आबद्ध करते हैं। वही सूत्र रूप वाणी परम्परा से आज तक चली आ रही है। जिस समय इन सूत्रों के लेखन की परम्परा नहीं थी, उस समय इस सूत्र ज्ञान को कंठस्थ कर स्मृति के आधार पर सुरक्षित रखा गया। किन्तु जब स्मृति की दुर्बलता आदि कारणों से धीरे-धीरे आगम ज्ञान विस्मृत/लुप्त होने लगा तो वीर निर्वाण के लगभग ९८० वर्ष पश्चात् आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के नेतृत्व में इन्हें लिपिबद्ध किया गया। आज जिन्हें हम आगम कहते हैं, प्राचीन समय में वे गणिपिटिक कहलाते थे। गणिपिटक में तमाम द्वादशांगी का समावेश हो जाता है। बाद में इन्हें, अंग प्रविष्ट, अंग बाह्य एवं अंग उपाङ्ग मूल, छेद आदि के रूप में वर्गीकृत किया गया। वर्तमान में उपलब्ध आगम वर्गीकृत रूप में हैं।

वर्तमान में हमारे ग्यारह अंग शास्त्र है उसमें स्थानांग सूत्र का तृतीय स्थान है। इसमें एक स्थान से लेकर दस स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित है। इस आगम में वर्णित विषय सूची का अधिकार नंदी सूत्र एवं समवायाङ्ग सूत्र दोनों में है। समवायाङ्ग सूत्र में इसके लिए निम्न पाठ है -

से किं तं ठाणे ? ठाणेणं ससमया ठाविज्जंति, परसमया ठाविज्जंति, ससमयपरसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोगालोगा ठाविज्जंति। ठाणेणं दव्व गुण खेत्त काल पज्जव पयत्थाणं-

"सेला सलिला य समुद्दा, सुरभवण विमाण आगर णईओ।
णिहिओ पुरिसजाया, सरा य गोत्ता य जोइसंचाला॥ १॥"

एक्कविह वत्तव्वयं दुविह वत्तव्वयं जाव दसविह वत्तव्वयं जीवाण, पोग्गलाण य लोगट्ठाई च णं परूवणया आघविज्जंति। ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ संगहणीओ। से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, बावत्तरि पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया, कडा, णिबद्धा, णिकाइया, जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति। से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, णिदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से तं ठाणे॥ ३॥

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन्! स्थानाङ्ग किसे कहते हैं अर्थात् स्थानाङ्ग सूत्र में क्या वर्णन किया गया है? गुरु महाराज उत्तर देते हैं कि स्थानाङ्ग सूत्र में स्वसमय-स्वसिद्धान्त, पर सिद्धान्त, स्वसमयपरसमय की स्थापना की जाती है। जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक की स्थापना की जाती है। जीवादि पदार्थों की स्थापना से द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों की स्थापना की जाती है।

पर्वत, महा नदियाँ, समुद्र, देव, असुरकुमार आदि के भवन विमान, आकर-खान, सामान्य नदियाँ, निधियाँ, पुरुषों के भेद, स्वर, गोत्र, ज्योतिषी देवों का चलना इत्यादि का एक से लेकर दस भेदों तक का वर्णन किया गया है। लोक में स्थित जीव और पुद्गलों की प्ररूपणा की गई है। स्थानाङ्ग सूत्र की परित्ता वाचना हैं, संख्याता अनुयोगद्वार, संख्याता प्रतिपत्तियाँ, संख्याता वेढ नामक छन्द विशेष, संख्याता श्लोक और संख्याता संग्रहणियाँ हैं। अंगों की अपेक्षा यह स्थानाङ्ग सूत्र तीसरा अंग सूत्र है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन २१ उद्देशे, ७२ हजार पद कहे गये हैं। संख्याता अक्षर, अनन्ता गम, अनन्ता पर्याय, परित्ता त्रस, अनन्ता स्थावर हैं।

तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा कहे हुए ये पदार्थ द्रव्य रूप से शाश्वत हैं, पर्याय रूप से कृत हैं, सूत्र रूप में गूंथे हुए होने से निबद्ध हैं, निर्युक्ति, हेतु उदाहरण द्वारा भली प्रकार कहे गये हैं। स्थानाङ्ग सूत्र के ये भाव तीर्थङ्कर भगवान् द्वारा सामान्य और विशेष रूप से कहे गये हैं, नामादि के द्वारा कथन किये गये हैं स्वरूप बतलाया गया है, उपमा आदि के द्वारा दिखलाये गये हैं, हेतु और दृष्टान्त आदि के द्वारा विशेष रूप से दिखलाये गये हैं। उपनय और निगमन के द्वारा एवं सम्पूर्ण नयों के अभिप्राय से बतलाये गये हैं। इस प्रकार स्थानाङ्ग सूत्र को पढ़ने से आत्मा ज्ञाता और विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरणसत्तरि करणसत्तरि आदि की प्ररूपणा से स्थानाङ्ग सूत्र के भाव कहे गये हैं, विशेष रूप से कहे गये हैं एवं दिखलाये गये हैं। स्थानाङ्ग सूत्र का संक्षिप्त विषय बतलाया गया है॥ ३॥

इस आगम पर गहनता से चिंतन करने पर एक बात परिलक्षित होती है कि इसमें किसी भी विषय को प्रधानता न देकर संख्या को प्रधानता दी है। संख्या के आधार पर ही इस आगम का निर्यूहण हुआ है। इसमें एक-एक की संख्या से सम्बन्धित तमाम विषयों के बोलों को प्रथम स्थान में निरूपित किया है। वह चाहे जीव, अजीव, इतिहास, गणित, खगोल, भूगोल, दर्शन, आचार आदि किसी से भी सम्बन्धित क्यों न हो, इसी शैली का अनुसरण शेष दूसरे तीसरे यावत् दशवे स्थान वाले बोलों के लिए किया गया है। यद्यपि प्रस्तुत आगम में किसी भी एक विषय की विस्तृत व्याख्या नहीं है। फिर भी संख्या की दृष्टि से शताधिक विषयों का जिस प्रकार से इसमें संकलन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है उसे देखते हुए यदि इसे जैन दर्शन का कोष कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि संख्या से सम्बन्धित किसी भी विषय को तुरन्त उस स्थान पर देखा जा सकता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि प्रस्तुत आगम में संख्या के आधार पर अनेक विषयों का इसमें निरूपण है। साथ ही चारों अनुयोगों का समावेश भी इसमें है। फलत: इसका अध्ययन करने वाले साधक को सामान्य रूप से शताधिक विषयों की जानकारी हो जाती है। यही कारण है कि जैन आगम साहित्य में जो तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं। उनमें श्रुत स्थविर के लिए **"ठाण-समवायधरे"** विशेषण आया है। यानी जो साधु आयु और दीक्षा से तो स्थविर नहीं है। पर श्रुत स्थविर (स्थानाङ्ग समवायाङ्ग सूत्र का ज्ञाता) है तो वह कारण उपस्थित होने पर कल्प काल से अधिक समय तक एक स्थान पर रुक सकता है। इस विशेषण से स्पष्ट है कि **ठाणं** सूत्र का कितना अधिक महत्व है। इतना ही नहीं व्यवहार सूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग सूत्रों के ज्ञाता को ही आचार्य, उपाध्याय एवं गणावच्छेदक पद देने का विधान है। इस प्रकार प्रस्तुत आगम सामान्य जैन दर्शन की जानकारी के लिए बहुत ही उपयोगी है।

स्थानाङ्ग सूत्र का प्रकाशन पूर्व में कई संस्थाओं से हो चुका है। जिनमें व्याख्या की शैली अलग अलग है। हमारे संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसकी शैली (Pattern) में संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र की शैली का अनुसरण किया गया है। मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और आवश्यकतानुसार विषय को सरल एवं स्पष्ट करने के लिए विवेचन दिया गया है।

सैलाना से जब कार्यालय ब्यावर स्थानान्तरित हुआ उस समय हमें लगभग ४३ वर्ष पुराने समवायाङ्ग सूत्र, सूत्रकृताङ्ग सूत्र, स्थानाङ्ग सूत्र, विपाक सूत्र के अनुवाद की हस्तलिखित कापियों के बंडल मिले, जो समाज के जाने माने विद्वान् पण्डित श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र" न्याय-व्याकरण तीर्थ, जैन सिद्धान्त शास्त्री द्वारा बीकानेर में अन्वयार्थ सहित अनुवादित किए हुए थे। उन कापियों को देखकर मेरे मन में भावना बनी कि क्यों नहीं इन को व्यवस्थित कर इन का प्रकाशन संघ की ओर से किया जाय? इसके लिए मैंने संघ के अध्यक्ष समाजरत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवन्तलालजी एस. शाह से चर्चा की तो उन्होंने इसके लिए सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। फलस्वरूप संघ द्वारा समवायाङ्ग सूत्र एवं सूत्रकृताङ्ग सूत्र का प्रकाशन हो चुका है।

प्रस्तुत स्थानाङ्ग सूत्र का भी मूल आधार ये हस्त लिखित कापियाँ हैं। साथ ही सुत्तागमे तथा अन्य संस्थाओं से प्रकाशित स्थानाङ्ग सूत्र का भी इसमें सहकार लिया गया है। सर्व प्रथम इसकी प्रेस कापी तैयार कर उसे पूज्य वीरपुत्रजी म. सा. को सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्दजी सा. पींचा ने सुनाई। पूज्य श्री ने जहाँ उचित समझा संशोधन बताया। तदनुरूप इसमें संशोधन किया गया। इसके बाद पुनः श्रीमान् पारसमलजी सा. चण्डालिया तथा मेरे द्वारा इसका अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत आगम के प्रकाशन में पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गई है। फिर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम सम्पादन में हमारा विशेष अनुभव न होने से भूलों का रहना स्वाभाविक है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित कर अनुग्रहित करावें।

संघ का आगम प्रकाशन का काम प्रगति पर है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हो वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हो एवं शासन की प्रभावना करते रहे।

प्रस्तुत स्थानाङ्ग सूत्र दो भागों में प्रकाशित हुआ है। दूसरे भाग में शेष पाँचवें बोल से दसवें बोल तक की सामग्री का संकलन किया गया है। स्थानांग सूत्र के दोनों भागों की प्रथम आवृत्ति मार्च २०००, द्वितीय आवृत्ति अगस्त २००१ एवं तृतीय आवृत्ति २००६ में प्रकाशित हुई। अब यह **चतुर्थ संशोधित** आवृत्ति भी **श्रीमान् जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी के अर्थ सहयोग से ही पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है।

कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में वृद्धि के साथ इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया है वह काफी अच्छी किस्म का है। इसके बावजूद भी इसके मूल्य में वृद्धि नहीं की गई है। फिर भी पुस्तक के ३८४ पेज की सामग्री को देखते हुए लागत से इसका **मूल्य अर्द्ध** ही रखा गया है। पाठक बंधु इसका अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)
दिनांक: २५-४-२००८

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, ब्यावर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

पाँचवां स्थान : प्रथम उद्देशक

विषय	पृष्ठ
महाव्रत, अणुव्रत	१-४
वर्ण, रस, काम गुण	४-६
पांच प्रतिमा, स्थावरकाय	६-१०
अवधिदर्शन, केवलज्ञान दर्शन	६-१०
शरीर वर्णन	१०-१२
तीर्थ भेद	१३
उपदिष्ट एवं अनुमत पांच बोल	१४-२०
महानिर्जरा, महापर्यवसान	२०-२१
विसंभोगी करने के बोल	२१-२३
पारञ्चित प्रायश्चित्त	२१=२३
पांच विग्रह और अविग्रह के स्थान	२३-२५
निषद्या पांच	२५
आर्जव स्थान	२५
पांच ज्योतिषी देव	२५-२९
पांच प्रकार के देव, परिचारणा	२५-२९
अग्रमहिषियाँ	२५-२९
अनीक और अनीकाधिपति	२५-२९
देव स्थिति	२५-२९
पांच प्रतिघात	३०-३१
आजीविक के पांच भेद	३०-३१
राज चिह्न	३०-३१
उदीर्ण परीषहोपसर्ग	३१-३४
(1) छद्मस्थ के परीषह सहने के स्थान	
(2) केवली के परीषह सहने के स्थान	

विषय	पृष्ठ
हेतु और अहेतु	३४-३५
केवली के पांच अनुत्तर	३४-३५
पंच कल्याणक	३६-३८

द्वितीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
अपवाद मार्ग कथन	३८-४०
(1) नदी उतरने के पांच कारण	
(2) चातुर्मास के पूर्व काल में विहार	
(3) वर्षावास में विहार	
पांच अनुद्घातिक	४१
अन्तःपुर प्रवेश के कारण	४१
गर्भधारण के कारण	४२-४४
एकत्रवास, शय्या, निषद्या	४४-४६
पांच आस्रव	४६-५३
पांच संवर	४६-५३
दण्ड पांच	४६-५३
पांच क्रियाएँ	४६-५३
परिज्ञा	५४-५६
व्यवहार	५४-५६
जागृत-सुप्त	५७-५८
कर्म बंध एवं निर्जरा	५७-५८
पांच दत्तियाँ	५७-५८
उपघात एवं विशुद्धि	५७-५८
दुर्लभबोधि-सुलभबोधि	५८-५९
प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन	६०-६५
संवर-असंवर	६०-६५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
संयम-असंयम	६०-६५
आचार, आचार प्रकल्प व	६५-६६
आरोपणा के भेद	६५-६६
वक्षस्कार पर्वत	६७-६९
पांच महाद्रह	६७-६९
समय क्षेत्र	६७-६९
अवगाहना	६७-६९
सुप्त से जागृत होने के कारण	६९
अपवाद सूत्र	६९-७०
आचार्य उपाध्याय के अतिशय	७१-७२
गणापक्रमण के कारण	७३-७४
ऋद्धिमान् के भेद	”

तृतीय उद्देशक

विषय	पृष्ठ
अस्तिकाय पांच	७४-७८
पांच गतियाँ	७४-७८
इन्द्रियों के विषय	७८-८०
मुंड पांच	७८-८०
पांच बादर और अचित्तवायु	७८-८०
निर्ग्रन्थ पांच	८०-८३
वस्त्र और रजोहरण	८३-८४
निश्रा स्थान, निधि,शौच	८४-८६
छद्मस्थ और केवली का विषय	८६-८८
महानरकावास, महाविमान	८६-८८
पांच प्रकार के पुरुष	८६-८८
मत्स्य और भिक्षुक	८६-८८
वनीपक पांच	८६-८८
अचेलक	८९-९०
उत्कल (उत्कट)	८९-९०
समितियाँ	८९-९०
जीव के पांच भेद	९०-९३
गति आगति	९०-९३
पांच प्रकार के सर्व जीव	९०-९३
योनि स्थिति	९०-९३
संवत्सर के भेद	९०-९३
जीव के निर्याण मार्ग	९४-९६
पांच प्रकार का छेदन	९४-९६
आनन्तर्य पांच	९४-९६
अनन्तक पांच	९४-९६
ज्ञान के पांच भेद	९६-१०१
ज्ञानावरणीय के ५ भेद	९६-१०१
स्वाध्याय पांच	९६-१०१
प्रत्याख्यान पांच	९६-१०१
पंच प्रतिक्रमण	९६-१०१
वाचना देने और सूत्र सीखने के बोल	१०१-१०२
पांच वर्ण के देव विमान	१०२-१०४
कर्म बंध	१०२-१०४
पांच महानदियाँ	१०२-१०४
कुमारवास में प्रव्रजित तीर्थंकर	१०२-१०४
सभाएँ पांच	१०२-१०४
पांच तारों वाले नक्षत्र	१०२-१०४
पाप कर्म संचित पुद्गल	१०२-१०४

छठा स्थान

विषय	पृष्ठ
गणी के गुण	१०५-१०६
साध्वी अवलम्बन के कारण	१०५-१०६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
छद्मस्थ और केवली का विषय	१०७-११०.
असमर्थता के बोल	१०७-११०
छह जीवनिकाय	१०७-११०
तारों के आकार वाले छह ग्रह	१०७-११०
संसार समापन्नक छह जीव	१०७-११०
गति आगति	१०७-११०
छह प्रकार के सर्व जीव	१०७-११०
तृण वनस्पतिकायिक	१०७-११०
छह स्थान सुलभ नहीं	११०-११२
इन्द्रियों के अर्थ (विषय)	११०-११२
संवर-असंवर	११०-११२
सुख-असुख	११०-११२
प्रायश्चित्त के छह भेद	११०-११२
छह प्रकार के मनुष्य, ऋद्धिमान्	११३-१२२
अवसर्पिणी काल के छह भेद	११३-१२२
उत्सर्पिणी काल के छह भेद	११३-१२२
संहनन	११३-१२२
संस्थान	११३-१२२
अनात्मवान् के लिए छह स्थान	१२३-१२४
आत्मवान् के लिए छह स्थान	१२३-१२४
जाति आर्य के छह भेद	१२३-१२४
कुल आर्य के छह भेद	१२३-१२४
लोकस्थिति	१२३-१२४
दिशाएँ	१२५-१२६
आहार करने के छह कारण	१२५-१२६
आहार त्याग के छह कारण	१२५-१२६
उन्माद, प्रमाद	१२६-१२७
प्रमाद प्रतिलेखना	१२८-१३४
अप्रमाद प्रतिलेखना	१२८-१३४
लेश्याएँ छह	१२८-१३४
अग्रमहिषियाँ आदि	१२८-१३४
अवग्रह मति आदि के छह छह भेद	१३४-१३५
तप भेद	१३५-१३६
विवाद के छह अंग	१३५-१३६
क्षुद्र प्राणी छह	१३७-१३८
गोचरचर्या के छह भेद	१३७-१३८
महानरकावास	१३७-१३८
विमान प्रस्तट	१३८-१४०
नक्षत्र छह	१३८-१४०
तेइन्द्रिय जीवों का संयम असंयम	१४०-१४१
जंबूद्वीप में वर्ष, वर्षधर आदि	१४१-१४४
छह महाद्रह	१४१-१४४
छह महानदियां	१४१-१४४
ऋतुएँ छह	१४१-१४४
क्षय तिथियाँ	१४१-१४४
वृद्धि तिथियाँ	१४१-१४४
अर्थावग्रह छह	१४४-१४५
अवधिज्ञान के भेद	१४४-१४५
छह अवचन	१४४-१४५
कल्प प्रस्तार छह	१४६-१४९
पलि मंथु छह	१४६-१४९
कल्पस्थिति	१४६-१४९
भ० महावीर के छट्ठ भक्त	१४६-१४९
विमान की ऊँचाई, अवगाहना	१४६-१४९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
भोजन का परिणाम	१४९-१५०
विष परिणाम	१४९-१५०
प्रश्न छह	१४९-१५०
विरह वर्णन	१४९-१५०
छह प्रकार का आयुष्य बंध	१५१-१५३
परभव आयुष्य बंध	१५१-१५३
छह भाव	१५१-१५३
प्रतिक्रमण छह	१५३-१५५
छह तारे युक्त नक्षत्र	१५३-१५५
पापकर्म संचित पुद्गल	१५३-१५५

सातवाँ स्थान

विषय	पृष्ठ
गणापक्रमण	१५६-१५७
विभंगज्ञान के भेद	१५७-१६१
योनिसंग्रह	१६१-१६७
गति आगति	१६१-१६७
संग्रह स्थान	१६१-१६७
असंग्रह स्थान	१६१-१६७
सात पिण्डैषणाएँ, पानैषणाएँ	१६१-१६७
अवग्रह प्रतिमाएँ	१६१-१६७
सात पृथ्वियाँ	१६७-१६८
बादर वायुकायिक जीव, सात संस्थान	१६८-७०
सात भय स्थान	१६८-७०
छद्मस्थ और केवली का विषय	१६८-७०
गोत्र सात	१७०-१७२
नय सात	१७०-१७२
सात स्वर	१७२-१७८
कायक्लेश के भेद	१७८-१७९

विषय	पृष्ठ
जंबूद्वीप में क्षेत्र-पर्वत-नदी	१७९-१८१
कुलकर	१८१-१८३
चक्रवर्ती रत्न	१८३-१८४१
दुःषमा लक्षण	१८४-१८५
सुषमा लक्षण	१८४-१८५
संसारी जीव के सात भेद	१८५-१८६
अकाल मृत्यु के ७ कारण, सर्व जीव भेद	१८६
ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती	१८६
मल्लिनाथ के साथ दीक्षित राजा	१८६
दर्शन सात, कर्म प्रकृति वेदन	१८६-८७
छद्मस्थ-केवली का विषय	१८६-८७
विकथाएँ सात	१८७-१८९
आचार्य उपाध्याय के अतिशय	१८७-१८९
संयम-असंयम	१८७-१८९
आरम्भ-अनारंभ के भेद	१८७-१८९
योनि-स्थिति	१९०-१९२
अप्कायिक, नैरयिक जीवों की स्थिति	१९२
अग्रमहिषियाँ और देव स्थिति	१९०-१९२
नंदीश्वर द्वीप	१९०-१९२
सात श्रेणियाँ	१९०-१९२
अनीका-अनीकाधिपति	१९२-१९६
वचन विकल्प	१९६-१९९
विनय के भेद	१९६-१९९
समुद्घात सात	१९९-२०१
प्रवचन निह्नव	२०२-२०३
अनुभाव सात	२०३-२०४
सात नक्षत्र	२०३-२०४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
कूट सात	२०४-२०५
कुलकोटि	२०४-२०५
पापकर्म संचित पुद्गल	२०४-२०५
आठवाँ स्थान	
एकल विहार प्रतिमा	२०६-२०९
योनि संग्रह	२०६-२०९
गति आगति	२०६-२०९
आठ कर्म प्रकृतियाँ, कर्म बंध	२०६-२०९
मायावी और आलोचना	२०९-२१५
संवर-असंवर	२१५-२१७
स्पर्श आठ	२१५-२१७
लोक स्थिति	२१५-२१७
गणि सम्पदा	२१७-२२०
महानिधि	२१७-२२०
आठ समितियाँ	२१७-२२०
आलोचना सुनने और करने वाले के गुण	" "
प्रायश्चित्त	२२०-२२१
मद स्थान आठ	२२०-२२१
अक्रियावादी	२२१-२२४
महानिमित्त	२२१-२२४
वचन विभक्ति	२२१-२२४
छद्मस्थ और केवली का विषय	२२१-२२४
आयुर्वेद के आठ प्रकार	२२१-२२४
अग्रमहिषियाँ	२२४-२२७
महाग्रह	२२४-२२७
तृणवनस्पतिकाय के भेद	२२४-२२७
चउरिन्द्रिय जीवों का संयम-असंयम	२२४-२२७
आठ सूक्ष्म	२२४-२२७
भरत के आठ उत्तराधिकारी	२२४-२२७
आठ गण- आठ गणधर	२२४-२२७
दर्शन भेद	२२७-२२८
उपमा रूप काल	२२७-२२८
भ० महावीर द्वारा दीक्षित आठ राजा	२२७-२२८
आहार के आठ भेद	२२८-२३२
कृष्णराजियाँ आठ	२२८-२३२
मध्यप्रदेश	२२८-२३२
तीर्थंकर महापद्म द्वारा दीक्षित राजा	२३२-२३३
कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ	२३२-२३३
वस्तु और चूलिका वस्तु	२३२-२३३
गतियाँ आठ	२३३
द्वीप-समुद्र का विष्कंभ	२३३
काकिणी रत्न	२३३
जंबू सुदर्शन वृक्ष	२३४-२३५
तिमिस्र गुफा और खण्ड प्रपात गुफा	२३४-२३५
जम्बूद्वीप वर्णन	२३४-२३५
आठ आठ राजधानियाँ	२३४-२३५
धातकीखण्ड द्वीप वर्णन	२३६-२३७
अर्द्धपुष्कवर द्वीप	२३६-२३७
पर्वतों के कूट	२३७-२४१
५६ दिशाकुमारियाँ	२३७-२४१
आठ देवलोक व इन्द्र	२३७-२४१
परियानक विमान	२३७-२४१
भिक्षु प्रतिमा	२४१-२४३
जीव भेद	२४१-२४३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
संयम के आठ प्रकार	२४१-२४३
आठ पृथ्वियाँ ईषत्प्राग्भारा के आठ नाम	" "
प्रमाद नहीं करने योग्य कर्त्तव्य	२४३-२४४
विमान की ऊँचाई	२४४-२४५
वादी सम्पदा	२४४-२४५
केवलि समुद्घात	२४४-२४५
अनुत्तरौपपातिक सम्पदा	२४५-२४७
वाणव्यन्तर और चैत्य वृक्ष	२४५-२४७
सूर्य विमान, नक्षत्र	२४५-२४७
द्वीप समुद्रों के द्वार	२४५-२४७
बंध स्थिति	२४५-२४७
कुल कोटि	२४५-२४७
पाप कर्म संचित पुद्गल	२४५-२४७
पुद्गलों की अनन्तता	२४५-२४७
नववाँ स्थान	
विसंभोग पद	२४८-२५०
ब्रह्मचर्य के अध्ययन	२४८-२५०
ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ	२४८-२५०
ब्रह्मचर्य की अगुप्तियाँ	२४८-२५०
सद्भाव पदार्थ नौ	२५१-२५३
संसारी जीव भेद	२५१-२५३
गति आगति	२५१-२५३
सर्व जीव भेद	२५१-२५३
जीवों की अवगाहना	२५१-२५३
संसार पद	२५१-२५३
रोगोत्पत्ति के स्थान	२५१-२५३
दर्शनावरणीय कर्म भेद	२५४-२५७
नौ नक्षत्र	२५४-२५७
नौ योजन के मत्स्य	२५४-२५७
बलदेवों-वासुदेवों के माता पिता आदि	" "
महानिधियाँ	२५७-२६०
विकृतियाँ (विगय) नौ	२६०-२६२
नौ स्रोत	२६०-२६२
पुण्य भेद	२६०-२६२
पापायतन भेद	२६०-२६२
पापश्रुत प्रसंग	२६०-२६२
नैपुणिक वस्तु	२६२-२६३
भ० महावीर स्वामी के नौ गण	२६२-२६३
नवकोटि भिक्षा	२६२-२६३
देव वर्णन	२६४-२६५
ग्रैवेयक विमान	२६४-२६५
आयु परिणाम	२६४-२६५
भिक्षु प्रतिमा, प्रायश्चित्त	२६५-२६६
नौ कूट	२६६-२६९
पार्श्व प्रभु की ऊँचाई	२६९-२७४
नौ जीव तीर्थंकर गोत्र बांधने वाले	२६९-२७४
भावी तीर्थंकर	२७४-२७५
महापद्म चरित्र	२७५-२८४
नौ नक्षत्र	२८४-२८५
विमानों की ऊँचाई	२८४-२८५
कुलकर की अवगाहना	२८४-२८५
प्रथम तीर्थंकर द्वारा तीर्थ प्रर्वतन	२८४-२८५
अंतर द्वीप	२८४-२८५
महाग्रह शुक्र की नौ वीथियाँ	२८४-२८५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
नो कषाय वेदनीय	२८४-२८५
कुल कोटि	२८४-२८५
पापकर्म संचित पुद्गल	२८४-२८५
पुद्गलों की अनन्तता	२८४-२८५
दसवाँ स्थान	
लोकस्थिति	२८६-२८८
शब्द व इन्द्रियों के विषय	२८८-२८९
अच्छिन्न पुद्गल चलन	२८९-२९२
क्रोधोत्पत्ति के कारण	२८९-२९२
संयम-असंयम	२८९-२९२
संवर-असंवर	२८९-२९२
मद के कारण	२९२-२९७
समाधि-असमाधि	२९२-२९७
प्रव्रज्या के दस भेद	२९२-२९७
श्रमण धर्म	२९२-२९७
वैयावृत्य भेद	२९२-२९७
जीव परिणाम	२९२-२९७
अजीव परिणाम	२९२-२९७
अंतरिक्ष संबंधी अस्वाध्याय	२९७-३००
औदारिक अस्वाध्याय	२९७-३००
पंचेन्द्रिय जीवों का संयम-असंयम	२९७-३००
सूक्ष्म दस	३००-३०२
महानदियाँ दस	३००-३०२
दस राजधानियाँ	३००-३०२
दीक्षित दस राजा	३००-३०२
दस दिशाएँ	३०२-३०६
लवण समुद्र और पाताल कलश	३०२-३०६

विषय	पृष्ठ
दस क्षेत्र और पर्वत	३०२-३०६
द्रव्यानुयोग के दस भेद	३०६-३०७
उत्पात पर्वत	३०७-३०८
अवगाहना	३०८-३१४
दस अनन्तक	३०८-३१४
प्रतिसेवना दस	३०८-३१४
आलोचना और प्रायश्चित्त	३०८-३१४
मिथ्यात्व दस	३१४-३२१
तीर्थंकर और वासुदेव स्थिति	३१४-३२१
दस भवनवासी देव	३१४-३२१
सुख के दस प्रकार	३१४-३२१
उपघात दस	३१४-३२१
दस विशुद्धि	३१४-३२१
संक्लेश असंक्लेश	३२१-३२३
बल के दस भेद	३२१-३२३
सत्य के दस प्रकार	३२३-३२५
मृषा वचन के दस प्रकार	३२३-३२५
मिश्र वचन के भेद	३२३-३२५
दृष्टिवाद के दस नाम	३२५-३२८
शस्त्र दस	३२५-३२८
दोष दस	३२५-३२८
विशेष भेद	३२५-३२८
शुद्ध वचन अनुयोग	३२८-३३५
दान के दस प्रकार	३२८-३३५
गति दस	३२८-३३५
मुण्ड दस	३२८-३३५
संख्यान दस	३२८-३३५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
प्रत्याख्यान दस	३३५-३३७	दस वृक्ष	३५५-३५७
सामाचारी के दस भेद	३३५-३३७	कुलकर दस	३५७-३६०
महावीर के दस महा स्वप्न	३३५-३३७	वक्षस्कार पर्वत	३५७-३६०
रुचि के दस भेद	३४२-३४४	कल्पदस	३५७-३६०
संज्ञाएँ दस	३४२-३४४	भिक्षु प्रतिमा	३६०-३६२
नरक वेदना	३४२-३४४	संसारी जीव भेद	३६०-३६२
छद्मस्थ और केवली का विषय	३४४-३४८	दस दशाएँ	३६०-३६२
दशा-दस	३४४-३४८	तृणवनस्पति काय	३६२-३६४
नैरयिक भेद	३४४-३४८	श्रेणियाँ	३६२-३६४
भद्र कर्म बांधने के स्थान	३५०-३५३	ग्रैवेयक विमान	३६२-३६४
आशंसा प्रयोग	३५०-३५३	तेज से भस्म करने की शक्ति	३६२-३६४
धर्म दस	३५३-३५५	आश्चर्य दस	३६५-३६६
दस स्थविर	३५३-३५५	काण्ड की मोटाई	३६६-३६८
पुत्र दस	३५३-३५५	समुद्र द्रह आदि की गहराई	३६६-३६८
दस अनुत्तर	३५३-३५५	ज्ञानवृद्धि के दस नक्षत्र	३६६-३६८
दस कुरा	३५५-३५७	कुल कोटि	३६६-३६८
दुष्षमा काल के लक्षण	३५५-३५७	पाप कर्म संचित पुद्गल	३६६-३६८
सुषमा काल के लक्षण	३५५-३५७	पुद्गलों की अनंतता	३६६-३६८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्यांय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

---

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्री स्थानाङ्ग सूत्रम्

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

भाग-२

पांचवाँ स्थान

प्रथम उद्देशक

चौथे अध्ययन के वर्णन के पश्चात् अब संख्या क्रम से पांचवें अध्ययन का वर्णन किया जाता है। पांचवें अध्ययन (पांचवें स्थान) के तीन उद्देशक हैं। उसमें से प्रथम उद्देशक इस प्रकार है -

महाव्रत, अणुव्रत

पंच महव्वया पण्णत्ता तंजहा - सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं । पंचाणुव्वया पण्णत्ता तंजहा - थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिमाणे॥ १ ॥

कठिन शब्दार्थ - पंच - पाँच, **महव्वया** - महाव्रत, **वेरमणं** - विरमण-निवृत्त होना, **अणुव्वया**- अणुव्रत, **थूलाओ** - स्थूल, **सदारसंतोसे** - स्वदार संतोष, **इच्छा परिमाणे** - इच्छा परिमाण।

भावार्थ - श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पांच महाव्रत फरमाये हैं यथा - सर्व प्रकार के प्राणातिपात से निवृत्त होना, सब प्रकार के मृषावाद से निवृत्त होना, सब प्रकार के अदत्तादान यानी चोरी से निवृत्त होना, सब प्रकार के मैथुन से निवृत्त होना, सब प्रकार के परिग्रह से निवृत्त होना। पांच अणुव्रत कहे गये हैं यथा - स्थूल यानी मोटे प्राणातिपात से निवृत्त होना, स्थूल मृषावाद से निवृत्त होना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थूल अदत्तादान से निवृत्त होना, स्वदारसंतोष यानी अपनी विवाहित स्त्री में संतोष रख कर एवं मर्यादा कर परस्त्री का त्याग करना, इच्छापरिमाण यानी परिग्रह की मर्यादा करना अर्थात् इच्छाओं को घटाना।

विवेचन - महाव्रत - देशविरति श्रावक की अपेक्षा महान् गुणवान् साधु मुनिराज के सर्वविरति रूप व्रतों को महाव्रत कहते हैं। अथवा - श्रावक के अणुव्रत की अपेक्षा साधु के व्रत बड़े हैं। इसलिये ये महाव्रत कहलाते हैं। महाव्रत पाँच हैं -

१. प्राणातिपात विरमण महाव्रत।

२. मृषावाद विरमण महाव्रत।

३. अदत्तादान विरमण महाव्रत।

४. मैथुन विरमण महाव्रत।

५. परिग्रह विरमण महाव्रत।

१. प्राणातिपात विरमण महाव्रत - प्रमाद पूर्वक सूक्ष्म और बादर, त्रस और स्थावर रूप समस्त जीवों के पांच इन्द्रिय, मन, वचन, काया, श्वासोच्छ्वास और आयु रूप दश प्राणों में से किसी भी प्राण का अतिपात (नाश) करना प्राणातिपात है। सम्यग्ज्ञान एवं श्रद्धापूर्वक जीवन पर्यन्त प्राणातिपात से तीन करण तीन योग से निवृत्त होना प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम महाव्रत है।

२. मृषावाद विरमण महाव्रत - प्रियकारी, पथ्यकारी एवं सत्य वचन को छोड़ कर कषाय, भय, हास्य आदि के वश असत्य, अप्रिय, अहितकारी वचन कहना मृषावाद है। सूक्ष्म, बादर के भेद से असत्य वचन दो प्रकार का है। सद्भाव प्रतिषेध, असद्भावोद्भावन, अर्थान्तर और गर्हा के भेद से असत्य वचन चार प्रकार का भी है।

चोर को चोर कहना, कोढ़ी को कोढ़ी कहना, काणे को काणा कहना आदि अप्रिय वचन हैं। क्या जंगल में तुमने मृग देखा ? शिकारियों के यह पूछने पर मृग देखने वाले पुरुष का उन्हें विधि रूप में उत्तर देना अहित वचन है। उक्त अप्रिय एवं अहित वचन व्यवहार में सत्य होने पर भी पीड़ाकारी होने से एवं प्राणियों की हिंसा जनित पाप के हेतु होने से सावद्य हैं। इसलिये हिंसा युक्त होने से वास्तव में असत्य ही हैं। ऐसे प्रसङ्ग पर मुनि को सर्वथा मौन रहना चाहिए। ऐसे मृषावाद से सर्वथा जीवन पर्यन्त तीन करण तीन योग से निवृत्त होना मृषावाद विरमण रूप द्वितीय महाव्रत है।

३. अदत्तादान विरमण महाव्रत - कहीं पर भी ग्राम, नगर, अरण्य आदि में सचित्त, अचित्त, अल्प, बहु, अणु, स्थूल आदि वस्तु को, उसके स्वामी की बिना आज्ञा लेना अदत्तादान है। यह अदत्तादान स्वामी, जीव, तीर्थ एवं गुरु के भेद से चार प्रकार का होता है -

१. स्वामी से बिना दी हुई तृण, काष्ठ आदि वस्तु लेना स्वामी अदत्तादान है।

२. कोई सचित्त वस्तु स्वामी ने दे दी हो, परन्तु उस वस्तु के अधिष्ठाता जीव की आज्ञा बिना उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेना जीव अदत्तादान है। जैसे माता पिता या संरक्षक द्वारा पुत्रादि शिष्य भिक्षा रूप में दिये जाने पर भी उन्हें उनकी इच्छा बिना दीक्षा लेने के परिणाम न होने पर भी उनकी अनुमति के बिना उन्हें दीक्षा देना जीव अदत्तादान है। इसी प्रकार सचित्त पृथ्वी आदि स्वामी द्वारा दिये जाने पर भी पृथ्वी-शरीर के स्वामी जीव की आज्ञा न होने से उसे उपयोग में लेना जीव अदत्तादान है। इस प्रकार सचित्त वस्तु के भोगने से प्रथम महाव्रत के साथ साथ तृतीय महाव्रत का भी भङ्ग होता है।

३. तीर्थंकर से प्रतिषेध किये हुए आधाकर्मादि आहार ग्रहण करना तीर्थंकर अदत्तादान है।

४. स्वामी द्वारा निर्दोष आहार दिये जाने पर भी गुरु की आज्ञा प्राप्त किये बिना उसे भोगना गुरु अदत्तादान है।

किसी भी क्षेत्र एवं वस्तु विषयक उक्त चारों प्रकार के अदत्तादान से सदा के लिये तीन करण तीन योग से निवृत्त होना अदत्तादान विरमण रूप तीसरा महाव्रत है।

४. मैथुन विरमण महाव्रत - देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी दिव्य एवं औदारिक काम-सेवन का तीन करण तीन योग से त्याग करना मैथुन विरमण रूप चतुर्थ महाव्रत है।

५. परिग्रह विरमण महाव्रत - अल्प, बहु, अणु, स्थूल, सचित्त, अचित्त आदि समस्त द्रव्य विषयक परिग्रह का तीन करण तीन योग से त्याग करना परिग्रह विरमण रूप पञ्चम महाव्रत है। मूर्च्छा, ममत्व होना भाव परिग्रह है और वह त्याज्य है। मूर्च्छाभाव का कारण होने से बाह्य सकल वस्तुएं द्रव्य परिग्रह हैं और वे भी त्याज्य हैं। भाव परिग्रह मुख्य है और द्रव्य परिग्रह गौण। इसलिए यह कहा गया है कि यदि धर्मोपकरण एवं शरीर पर मुनि के मूर्च्छा, ममता भाव जनित राग भाव न हो तो वह उन्हें धारण करता हुआ भी अपरिग्रही ही है।

अणुव्रत पाँच - महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत अर्थात् एक देश त्याग का नियम अणुव्रत है। इसे शीलव्रत भी कहते हैं। अथवा - सर्व विरत साधु की अपेक्षा अणु अर्थात् थोड़े गुण वाले (श्रावक) के व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। श्रावक के स्थूल प्राणातिपात आदि त्याग रूप व्रत अणुव्रत हैं। अणुव्रत पाँच हैं-

१. स्थूल प्राणातिपात का त्याग।

२. स्थूल मृषावाद का त्याग।

३. स्थूल अदत्तादान का त्याग।

४. स्वदार संतोष।

५. इच्छा-परिमाण।

१. स्थूल प्राणातिपात का त्याग - स्वशरीर में पीड़ाकारी, अपराधी तथा सापेक्ष निरपराधी के सिवा शेष द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक हिंसा का दो करण तीन योग से त्याग करना स्थूल प्राणातिपात त्याग रूप प्रथम अणुव्रत है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. स्थूल मृषावाद का त्याग - दुष्ट अध्यवसाय पूर्वक तथा स्थूल वस्तु विषयक बोला जाने वाला असत्य-झूठ, स्थूल मृषावाद है। अविश्वास आदि के कारण स्वरूप इस स्थूल मृषावाद का दो करण तीन योग से त्याग करना स्थूल मृषावाद-त्याग रूप द्वितीय अणुव्रत है।

स्थूल मृषावाद पाँच प्रकार का है -

१. कन्या-वर सम्बन्धी झूठ।

२. गाय, भैंस आदि पशु सम्बन्धी झूठ।

३. भूमि सम्बन्धी झूठ।

४. किसी की धरोहर दबाना या उसके सम्बन्ध में झूठ बोलना।

५. झूठी गवाही देना।

३. स्थूल अदत्तादान का त्याग - क्षेत्रादि में सावधानी से रखी हुई या असावधानी से पड़ी हुई या भूली हुई किसी सचित्त, अचित्त स्थूल वस्तु को, जिसे लेने से चोरी का अपराध लग सकता हो अथवा दुष्ट अध्यवसाय पूर्वक साधारण वस्तु को स्वामी आज्ञा बिना लेना स्थूल अदत्तादान है। खात खनना, गांठ खोल कर चीज निकालना, जेब काटना, दूसरे के ताले को बिना आज्ञा चाबी लगा कर खोलना, मार्ग में चलते हुए को लूटना, स्वामी का पता होते हुए भी किसी पड़ी वस्तु को ले लेना आदि स्थूल अदत्तादान में शामिल है। ऐसे स्थूल अदत्तादान का दो करण तीन योग से त्याग करना स्थूल अदत्तादान त्याग रूप तृतीय अणुव्रत है।

४. स्वदार सन्तोष - स्व-स्त्री अर्थात् अपने साथ ब्याही हुई स्त्री में सन्तोष करना एवं मर्यादा करना। विवाहित पत्नी के सिवाय शेष औदारिक शरीर धारी अर्थात् मनुष्य तिर्यंच के शरीर को धारण करने वाली स्त्रियों के साथ एक करण एक योग से (अर्थात् काय से सेवन नहीं करूंगा इस प्रकार) तथा वैक्रिय शरीरधारी अर्थात् देव शरीरधारी स्त्रियों के साथ दो करण तीन योग से मैथुन सेवन का त्याग करना स्वदार-सन्तोष नामक चतुर्थ अणुव्रत है।

५. इच्छा-परिमाण (परिग्रह परिमाण) - क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, द्विपद, चतुष्पद एवं कुप्य (काँसा, ताँबा, पीतल आदि के पात्र टेबल, कुर्सी मेज तथा अन्य घर का सामान) इन नव प्रकार के परिग्रह की मर्यादा करना एवं मर्यादा उपरान्त परिग्रह का एक करण तीन योग से त्याग करना इच्छा-परिमाण व्रत है। तृष्णा, मूर्छा कम कर सन्तोष रत रहना ही इस व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

वर्ण, रस और कामगुण

पंच वण्णा पण्णत्ता तंजहा - किण्हा, णीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किल्ला । पंच रसा पण्णत्ता तंजहा - तित्ता, कडुया, कसाया, अंबिला, महुरा । पंच कामगुणा पण्णत्ता तंजहा - सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा । पंचहिं ठाणेहिं जीवा सज्जंति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा - सद्देहिं जाव फासेहिं । एवं रज्जंति, मुच्छंति, गिज्झंति, अज्झोववज्जंति । पंचहिं ठाणेहिं जीवा विणिग्घायमावज्जंति तंजहा - सद्देहिं जाव फासेहिं ।

पंच ठाणा अपरिण्णाया जीवाणं अहियाए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - सद्दा जाव फासा । पंच ठाणा सुपरिण्णाया जीवाणं हियाए, सुभाए, खमाए, णिस्सेसाए, आणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - सद्दा जाव फासा । पंच ठाणा अपरिण्णाया जीवाणं दुग्गइ गमणाए भवंति तंजहा - सद्दा जाव फासा । पंच ठाणा परिण्णाया जीवाणं सुग्गइ गमणाए भवंति तंजहा - सद्दा जाव फासा । पंचहिं ठाणेहिं जीवा दोग्गइं गच्छंति तंजहा - पाणाइवाएणं जाव परिग्गहेणं। पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुगइं गच्छंति तंजहा पाणाइवाय वेरमणेणं जाव परिग्गह वेरमणेणं॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - वण्णा - वर्ण, **अंबिला** - आम्ल (खट्टा), **सज्जंति** - आसक्त होते हैं, **रज्जंति**- अनुरक्त होते हैं, **मुच्छंति** - मूर्च्छित होते हैं, **गिज्झंति** - गृद्ध होते हैं, **अज्झोववज्जंति** - एकचित्त हो जाते हैं, **विणिग्घायं** - विनाश को, **आवज्जंति** - प्राप्त होते हैं, **अणिस्सेसाए** - अकल्याण, **अणाणुगामियत्ताए** - अननुगामिता के कारण, **आणुगामियत्ताए** - अनुगामिता के कारण, **दुग्गइगमणाए**- दुर्गति में ले जाने के कारण, **सुग्गइगमणाए** - सुगति में ले जाने के कारण।

भावार्थ - पांच वर्ण कहे गये हैं यथा - कृष्ण यानी काला, नीला, लोहित यानी लाल, हारिद्र यानी पीला, शुक्ल यानी सफेद । पांच रस कहे गये हैं यथा - तिक्त, कटुक, कषैला, आम्ल यानी खट्टा और मधुर । पांच कामगुण कहे गये हैं यथा - शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श । जीव पांच स्थानों में आसक्त होते हैं यथा - शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श । इन्हीं पांच स्थानों में जीव अनुरक्त होते हैं, मूर्च्छित होते हैं, गृद्ध होते हैं और उनमें एक चित्त हो जाते हैं । शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच स्थानों में आसक्त जीव विनाश को प्राप्त होते हैं अथवा संसार परिभ्रमण करते हैं ।

शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच बातों को ज्ञ परिज्ञा से न जानने से और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग न करने से जीवों के लिए अहित, अशुभ, अक्षमा, अकल्याण और अननुगामिता के कारण होते हैं । शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच बातों को ज्ञपरिज्ञा से भली प्रकार जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग करने से जीवों के लिए हित, शुभ, क्षमा, कल्याण और अनुगामिता के कारण होते हैं । शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच बातों को ज्ञपरिज्ञा से न जानना और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग न करना जीवों के लिए दुर्गति में ले जाने के कारण होते हैं । शब्द, रूप, गन्ध, रस और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श इन पांच बातों को ज्ञ परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागना जीवों के लिए सुगति में जाने के कारण होते हैं । प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पांच बातों का सेवन करने से जीव दुर्गति में जाते हैं। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पांच का त्याग करने से जीव सुगति में जाते हैं।

विवेचन - काला, नीला, लाल, पीला, सफेद ये ही पांच मूल वर्ण हैं। इनके सिवाय लोक प्रसिद्ध अन्य वर्ण इन्हीं के संयोग से पैदा होते हैं।

तीखा, कड़ुवा, कषैला, खट्टा, मीठा इनके अतिरिक्त दूसरे रस इन्हीं के संयोग से पैदा होते हैं। इसलिये यहां पांच मूल रस ही गिनाये गये हैं।

शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श ये पांचों क्रमशः पांच इन्द्रियों के विषय हैं। ये पांच काम अर्थात् अभिलाषा उत्पन्न करने वाले गुण हैं। इसलिए कामगुण कहे जाते हैं।

प्रतिमा, स्थावरकाय, अवधिदर्शन केवलज्ञान दर्शन

पंच पडिमाओ पण्णत्ताओ तंजहा - भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वओभद्दा, भद्दुत्तरपडिमा । पंच थावर काया पण्णत्ता तंजहा - इंदे थावरकाए, बंभे थावरकाए, सिप्पे थावरकाए, सुमई थावरकाए, पयावच्चे थावरकाए । पंच थावरकायाहिवई पण्णत्ता तंजहा - इंदे थावरकायाहिवई, बंभे थावरकायाहिवई, सिप्पे थावरकायाहिवई सुमई थावरकायाहिवई, पयावच्चे थावरकायाहिवई ।

पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामे वि तप्पढमयाए खंभाएज्जा, तंजहा- अप्पभूयं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा, कुंथुरासिभूयं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा, महतिमहालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा, देवं वा महड्डियं जाव महेसक्खं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा, पुरेसु वा पोराणाइं, महतिमहालयाइं, महाणिहाणाइं, पहीणसामियाइं, पहीणसेउयाइं, पहीणगुत्तागाराइं, उच्छिण्णसामियाइं, उच्छिण्ण सेउयाइं, उच्छिण्णगुत्तारागाइं, जाइं, इमाइं, गामागरणगर खेडकब्बड दोणमुह पट्टणासमसंबाह सण्णिवेसेसु सिंघाडग तिय चउक्क चच्चरचउम्मुह महापह पहेसु णगरणिद्धमणेसु सुसाणसुण्णागार गिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाण भवण गिहेसु, सण्णिखित्ताइं चिट्ठति ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा, इच्चेहिं पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए खंभाएज्जा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचहिं ठाणेहिं केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा, तंजहा - अप्पभूयं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा, सेसं तहेव जाव भवणगिहेसु सण्णिखित्ताइं चिट्ठंति ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा, सेसं तहेव, इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव णो खंभाएज्जा॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - पडिमाओ - पडिमाएं, **सव्वओभद्दा** - सर्वतोभद्रा, **भद्दुत्तर पडिमा** - भद्रोतरपडिमा, **इंदे थावरकाए** - इन्द्र स्थावरकाय-पृथ्वी, **बंभे थावरकाए** - ब्रह्म स्थावरकाय-पानी, **सिप्पे थावरकाए** - शिल्प स्थावरकाय-अग्नि, **सुमई थावरकाए** - सुमति स्थावरकाय-वायु, **पयावच्चे थावरकाए** - प्रजापति स्थावरकाय-वनस्पति, **थावरकायाहिवई** - स्थावर काया के अधिपति, **समुप्पज्जिउकामे**- उत्पन्न होता हुआ, **तप्पढमयाए** - प्रथम समय में ही, **खंभाएज्जा** - क्षुभित हो जाता है-रुक जाता है, **अप्पभूयं** - थोड़े जीवों से व्याप्त, **कुंथुरासिभूयं** - कुन्थुओं की राशि से भरी हुई, **महड्डियं** - महर्द्धिक, **महेसक्खं** - महान् सुखों वाले को, **पोराणाइं** - प्राचीन, **महाणिहाणाइं** - महान् निधान, **पहीणसामियाइं** - जिनके स्वामी नष्ट हो गये, **पहीणसेउयाइं** - पहचानने के चिह्न नष्ट हो गये, **पहीणगुत्तागाराइं** - गोत्र और घर नष्ट हो गये, **उच्छिण्ण** - सर्वथा नष्ट हो गये, **गामागरणगर खेड कब्बड दोणमुह पट्टणासम संबाह सण्णिवेसेसु** - ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाध और सन्निवेशों में, **सिंघाडग तिय चउक्क चच्चरचउम्मुह महापह पहेसु** - श्रृंगाटक, त्रिकोण, चतुष्कोण, चत्वर, चतुर्मुख और महापथ आदि रास्तों में, **णगरणिद्धमणेसु** - नगर की मोरियों में, **सुसाणसुण्णागार गिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाण भवणगिहेसु** - श्मशान, शून्यघर, पर्वत पर बने घर, पर्वत की गुफा, शांतिगृह, शैल, उपस्थानगृह, भवन और सामान्य घर आदि में।

भावार्थ - पांच पडिमाएं कही गई हैं यथा - भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तर पडिमा। पांच स्थावर काया कही गई हैं यथा - इन्द्र स्थावरकाय-पृथ्वी, ब्रह्म स्थावरकाय-पानी, शिल्प स्थावरकाय-अग्नि, सुमति स्थावरकाय-वायु और प्रजापति स्थावरकाय-वनस्पति। पांच स्थावरकाय के अधिपति कहे गये हैं यथा - पृथ्वीकाय का अधिपति इन्द्र है। अप्काय का अधिपति ब्रह्म है। तेउकाय का अधिपति शिल्प देव है। वायुकाय का अधिपति सुमति देव है। वनस्पतिकाय का अधिपति प्रजापति देव है।

पांच कारणों से अवधिदर्शन उत्पन्न होता हुआ भी प्रथम समय में ही रुक जाता है यथा - १ थोड़े से जीवों से व्याप्त पृथ्वी को देखकर प्रथम समय में ही रुक जाता है । अथवा पहले बहुत पृथ्वी जानता था परन्तु पीछे से थोड़ी पृथ्वी देख कर रुक जाता है । २ अत्यन्त सूक्ष्म कुन्थुओं की राशि से भरी हुई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी को देखकर प्रथम समय में ही रुक जाता है । ३ महान् शरीर वाले सांप को देखकर भय से या आश्चर्य से प्रथम समय में ही रुक जाता है । ४ महर्द्धिक देव यानी देवता की महान् ऋद्धि को यावत् महान् सुखों को देखकर आश्चर्य से प्रथम समय में ही रुक जाता है ।५ प्राचीन काल के बहुत से ऐसे महान् निधान जिनके स्वामी नष्ट हो गये हैं तथा स्वामियों के पुत्र, पौत्रादि भी नष्ट हो गये हैं, जिनको पहचानने के लिये रखे गये चिह्न भी नष्ट हो गये हैं, जिनके स्वामियों के गोत्र और घर भी नष्ट हो गये हैं, जिनके स्वामियों का तथा पुत्र पौत्रादि का सर्वथा विच्छेद हो गया है, जिनके पहचान के चिह्न सर्वथा नष्ट हो गये हैं जिनके स्वामियों के गोत्र और घरों का सर्वथा विनाश हो गया है, ऐसे ये निधान जो कि पुरों में यानी शहरों में ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाध और सन्निवेशों आदि बस्तियों में तथा श्रृङ्गाटक यानी सिंघाड़े के आकार त्रिकोण, त्रिक यानी जहां तीन मार्ग मिलते हैं, चतुष्कोण यानी जहां चार मार्ग मिलते हैं, चत्वर यानी कोट और गलियों के बीच का स्थान, चतुर्मुख यानी चार दरवाजों वाला मन्दिर आदि और महापथ यानी राजमार्ग, इत्यादि रास्तों में तथा नगर की मोरियों में, श्मशान, सूने घर, पर्वत पर बने हुए घर, पर्वत की गुफा, शान्तिगृह यानी जहां राजा लोगों के लिए होमादि किये जाते हैं, शैल यानी पर्वत को खोद कर बनाये हुए घर, उपस्थानगृह यानी ठहरने के स्थान अथवा पत्थर के बने हुए घर, भवन - चौशाल आदि और सामान्य घर, इनमें जो उपरोक्त निधान गड़े हुए हैं उनको देखकर आश्चर्य से अथवा लोभ से प्रथम समय में ही रुक जाता है। इन पांच कारणों से अवधिदर्शन उत्पन्न होता हुआ भी प्रथम समय में ही रुक जाता है। पांच कारणों से केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होते हुए प्रथम समय में रुकते नहीं है यथा - १ अल्पभूत पृथ्वी को देखकर प्रथम समय में ही रुकते नहीं है । शेष सारा अधिकार पहले की तरह कह देना चाहिये यावत् भवनों और घरों में जो निधान गड़े हुए हैं उनको देखकर प्रथम समय में रुकते नहीं है। शेष सारा अधिकार पहले की तरह कह देना चाहिये । इन पांच कारणों से उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान, केवलदर्शन रुकते नहीं हैं ।

विवेचन - पांच पडिमाएं (अभिग्रह विशेष) कही गयी हैं - १. भद्रा २. सुभद्रा ३. महाभद्रा ४. सर्वतोभद्रा और ५. भद्रोत्तर प्रतिमा। भद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा अनुक्रम से दो, चार और दश दिनों में पूर्ण होती है। सुभद्रा प्रतिमा के लिये टीकाकार लिखते हैं कि - '**सुभद्रा त्वदृष्टत्वान्न लिखिता**'- सुभद्रा का वर्णन शास्त्र में कहीं देखने में नहीं आया, इस कारण नहीं लिखा गया है। सर्वतोभद्रा प्रतिमा प्रकारान्तर से दो प्रकार की कही है - १. छोटी (क्षुल्लिका) सर्वतोभद्रा और २. मोटी (महती) सर्वतोभद्रा प्रतिमा। छोटी सर्वतोभद्रा प्रतिमा में प्रथम दिन एक उपवास फिर पारणा, तत्पश्चात् दो उपवास फिर पारणा फिर तीन उपवास फिर पारणा, फिर चार उपवास फिर पारणा, फिर पांच उपवास कर पारणा। फिर दूसरी लाईन में तीन उपवास और पारणा, इस प्रकार स्थापना क्रम से ७५ उपवास और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५ पारणा होते हैं। इसकी स्थापना के उपाय की गाथा इस प्रकार है –

एगाई पंचंते ठविउं मज्झं तु आइमणुपंतिं।

उचियकमेण य सेसे, जाण लहुं सव्वओ भद्दं॥

इसका स्थापना यंत्र इस प्रकार है।

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

क्षुल्लिका सर्वतोभद्रा, तप दिन ७५, पारणे दिन २५

महती सर्वतोभद्रा प्रतिमा चतुर्थ भक्त (उपवास) से सोलह भक्त (सात) पर्यंत १९६ तप दिवस परिमाण होती है जिसमें पारणे के दिन ४९ होते हैं। इसका स्थापना यंत्र व गाथा इस प्रकार है –

एगाई सत्तंते, ठविउं मज्झं च आदिमणुपंतिं।

उचियकमेण य सेसे, जाण महं सव्वओभद्दं॥

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

महती सर्वतोभद्रा प्रतिमा तप दिन १९६, पारणे दिन ४९।

भद्रोत्तरा प्रतिमा दो प्रकार की है – १. छोटी और २. मोटी। उसमें पहली द्वादशभक्त (पांच उपवास) से बीसभक्त (नौ उपवास) पर्यन्त १७५ दिवस परिमाण तप से होती है तथा पारणे के पच्चीस दिन होते हैं। इसकी स्थापना की गाथा इस प्रकार है –

पंचाई य नवंते, ठविउं मज्झं तु आदिमणुपंतिं।

उचियकमेण य सेसे, जाणह भद्दोत्तरं खुड्डुं॥

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोटी भद्रोत्तरा प्रतिमा तो द्वादश भक्त (पांच उपवास) से आरंभ कर चौबीस भक्त (ग्यारह उपवास) पर्यन्त ३९२ दिवस तपस्या से होती है जिसमें पारणे के दिन ४९ होते हैं। इसकी गाथा व स्थापना यंत्र इस प्रकार है -

पंचादिगार संते, ठविउं मज्झं तु आइमणुपंतिं।

उचियकमेण य सेसे, महइं भद्दोत्तरं जाण।।

५	६	७	८	९	१०	११
८	९	१०	११	५	६	७
११	५	६	७	८	९	१०
७	८	९	१०	११	५	६
१०	११	५	६	७	८	९
६	७	८	९	१०	११	५
९	१०	११	५	६	७	८

मोटी भद्रोत्तरा प्रतिमा तप दिन ३९२ पारणा दिन ४९।

पाँच स्थावर काय - पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव स्थावर नाम कर्म का उदय होने से स्थावर कहलाते हैं। उनकी काय अर्थात् राशि को स्थावर काय कहते हैं। स्थावर काय पांच हैं - १. इन्द्र स्थावर काय २. ब्रह्म स्थावर काय ३. शिल्प स्थावर काय ४. सम्मति स्थावर काय ५. प्राजापत्य स्थावर काय।

१. इन्द्र स्थावर काय - पृथ्वी काय का स्वामी इन्द्र हैं। इसलिए इसे इन्द्र स्थावर काय कहते हैं।

२. ब्रह्म स्थावर काय - अप्काय का स्वामी ब्रह्म है। इसलिए इसे ब्रह्म स्थावर काय कहते हैं।

३. शिल्प स्थावर काय - तेजस्काय का स्वामी शिल्प है। इसलिये यह शिल्प स्थावर काय कहलाती है।

४. सम्मति स्थावर काय - वायु का स्वामी सम्मति है। इसलिये यह सम्मति स्थावर काय कहलाती है।

५. प्राजापत्य स्थावर काय - वनस्पति काय का स्वामी प्रजापति है। इसलिये इसे प्राजापत्य स्थावर काय कहते हैं।

शरीर वर्णन

णेरइयाणं सरीरगा पंचवण्णा पंचरसा पण्णत्ता तंजहा - किण्हा णीला लोहिया

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

हालिद्दा सुक्किल्ला। तित्ता कडुया कसाया अंबिला महुरा एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं। पंच सरीरगा पण्णत्ता तंजहा - ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए । ओरालियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ता तंजहा - किण्हे जाव सुक्किल्ले, तित्ते जाव महुरे, एवं जाव कम्मगसरीरे । सव्वे वि णं बायरबोंदिधरा कलेवरा पंचवण्णा पंचरसा दुगंधा अट्ठफासा॥ ४॥

कठिन शब्दार्थ-कम्मगसरीरे-कार्मण शरीर, **बायरबोंदिधरा**-बादर शरीर वाले, **कलेवरा**-कलेवर।

भावार्थ - नैरयिक जीवों के शरीर पांच वर्ण वाले और पांच रस वाले कहे गये हैं यथा - कृष्ण-काला, नीला, लोहित - लाल, हारिद्र - पीला और शुक्ल - सफेद । पांच रस यथा - तिक्त - तीखा कड़वा, कषैला आम्ल - खट्टा और मीठा । पांच शरीर कहे गये हैं यथा - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण । औदारिक शरीर पांच वर्ण वाला और पांच रस वाला कहा गया है यथा- कृष्ण यावत् शुक्ल और तिक्त यावत् मधुर । इसी तरह कार्मण शरीर तक सब पांचों शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाले हैं । सब बादर शरीर वाले कलेवर पांच वर्ण वाले पांच रस वाले दो गंध वाले और आठ स्पर्श वाले होते हैं ।

विवेचन - शरीर - जो उत्पत्ति समय से लेकर प्रतिक्षण जीर्ण-शीर्ण होता रहता है। तथा शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होता है वह शरीर कहलाता है। शरीर के पाँच भेद - १. औदारिक शरीर २. वैक्रिय शरीर ३. आहारक शरीर ४. तैजस शरीर ५. कार्मण शरीर।

१. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। तीर्थंकर, गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्व साधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बना हुआ होता है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अवस्थित रूप से विशाल अर्थात् बड़े परिमाण वाला होने से यह औदारिक शरीर कहा जाता है। वनस्पति काय की अपेक्षा औदारिक शरीर की एक सहस्र (हजार) योजन की अवस्थित अवगाहना है। अन्य सभी शरीरों की अवस्थित अवगाहना इससे कम है। वैक्रिय शरीर की उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा अनवस्थित अवगाहना एक लाख योजन की है। परन्तु भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अवगाहना तो पांच सौ धनुष से ज्यादा नहीं है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाला तथा परिमाण में बड़ा होने से यह औदारिक शरीर कहलाता है।

मांस रुधिर अस्थि आदि से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यंच के होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट प्रकार की क्रियाएं होती हैं वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। जैसे एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटे शरीर से बड़ा शरीर बनाना और बड़े से छोटा बनाना, पृथ्वी और आकाश पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य अदृश्य रूप बनाना आदि। वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक वैक्रिय शरीर २. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर।

१. औपपातिक वैक्रिय शरीर - जन्म से ही जो वैक्रिय शरीर मिलता है वह औपपातिक वैक्रिय शरीर है। देवता और नारकी के नैरिये जन्म से ही वैक्रिय शरीरधारी होते हैं।

२. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर - तप आदि द्वारा प्राप्त लब्धि विशेष से प्राप्त होने वाला वैक्रिय शरीर लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर है। मनुष्य और तिर्यंच में लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

३. आहारक शरीर - प्राणी दया, तीर्थंकर भगवान् की ऋद्धि का दर्शन, नये ज्ञान की प्राप्ति तथा संशय निवारण आदि प्रयोजनों से चौदह पूर्वधारी मुनिराज, अन्य क्षेत्र (महाविदेह क्षेत्र) में विराजमान तीर्थंकर भगवान् के समीप भेजने के लिये, लब्धि विशेष से अतिविशुद्ध स्फटिक के सदृश एक हाथ का जो पुतला निकालते हैं वह आहारक शरीर कहलाता है। उक्त प्रयोजनों के सिद्ध हो जाने पर वे मुनिराज उस शरीर को छोड़ देते हैं।

४. तैजस शरीर - तेजः पुद्गलों से बना हुआ शरीर तैजस शरीर कहलाता है। प्राणियों के शरीर में विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहार का पाचन करता है। तपोविशेष से प्राप्त तैजसलब्धि का कारण भी यही शरीर है।

५. कार्मण शरीर - कर्मों से बना हुआ शरीर कार्मण कहलाता है। अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है अर्थात् मूल कारण है।

पाँचों शरीरों के इस क्रम का कारण यह है कि आगे आगे के शरीर पिछले की अपेक्षा प्रदेश बहुल (अधिक प्रदेश वाले) हैं एवं परिमाण में सूक्ष्मतर हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। इन दोनों शरीरों के साथ ही जीव मरण देश को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान को जाता है। अर्थात् ये दोनों शरीर परभव में जाते हुए जीव के साथ ही रहते हैं मोक्ष में जाते समय ये दोनों शरीर भी छूट जाते हैं।

उपदिष्ट और अनुमत स्थान

पंचहिं ठाणेहिं पुरिमपच्छिमगाणं जिणाणं दुग्गमं भवइ तंजहा - दुआइक्खं, दुविभज्जं, दुपस्सं, दुतितिक्खं, दुरणुचरं । पंचहिं ठाणेहिं मज्झिमगाणं जिणाणं सुगमं भवइ तंजहा - सुआइक्खं, सुविभज्जं, सुपस्सं, सुतितिक्खं, सुरणुचरं । पंच ठाणाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं, णिच्चं कित्तियाइं, णिच्चं बुइयाइं, णिच्चं पसत्थाइं, णिच्चमब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे । पंच ठाणाइं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा -सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे । पंच ठाणाइं समणाणं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - उक्खित्तचरए, णिक्खित्तचरए, अंतचरए, पंतचरए, लूहचरए । पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - अण्णायचरए, अण्णइलायचरए, मोणचरए, संसट्ठकप्पिए, तज्जायसंसट्ठकप्पिए । पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - उवणिहिए, सुद्धेसणिए, संखादत्तिए, दिट्ठलाभिए, पुट्ठलाभिए । पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - आयंबिलिए, णिव्वियए, पुरिमड्ढिए, परिमियपिंडवाइए, भिण्णपिंडवाइए । पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे, लूहाहारे । पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पंतजीवी, लूहजीवी। पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति ठाणाइए, उक्कडुआसणिए, पडिमट्ठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए। पंच ठाणाइं जाव अब्भणुण्णायाइं भवंति तंजहा - दंडायइए, लगंडसाई, आयावए, अवाउडए, अकंडूयए॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - **दुग्गमं** - दुर्गम, **दुआइक्खं**-दुराख्येय-तत्त्व कहा जाना कठिन है, **दुविभज्जं**-दुर्विभज-भेद प्रभेद समझना कठिन है, **दुपस्सं** - जीवाजीव को देखना कठिन है, **दुतितिक्खं** - दुस्तितिक्ष-परीषह उपसर्ग सहना कठिन है, **दुरणुचरं** - दुरनुचर-संयम पालन करना कठिन है, **सुआइक्खं**-तत्त्व कहना सरल है, **सुविभज्जं** - भेद प्रभेद समझना सरल है, **णिच्चं** - नित्य, **वण्णियाइं** - वर्णन किया है, **कित्तियाइं** - कीर्तन किया है, **बुइयाइं**- कथन किया है, **पसत्थाइं** - प्रशस्थ-प्रशंसा की है, **अब्भणुण्णायाइं** - अभ्यनुज्ञात-आचरण करने की आज्ञा दी है, **चियाए**- त्याग, **उक्खित्तचरए** - उत्क्षिप्तचरक, **णिक्खित्तचरए** - निक्षिप्तचरक, **अंतचरए** - अन्तचरक, **पंतचरए**- प्रान्तचरक, **लूहचरए**-रूक्षचरक, **अण्णायचरए** - अज्ञातचरक, **अण्णइलायचरए** - अन्नग्लायक चरक, **मोणचरए** - मौन चरक, **संसट्ठकप्पिए** - संसृष्ट कल्पिक, **उवणिहिए** - औपनिधिक, **सुद्धेसणिए** - शुद्धैषणिक, **संखादत्तिए** - संख्या दत्तिक, **दिट्ठलाभिए** - दृष्टलाभिक, **पुट्ठलाभिए** - पृष्टलाभिक, **आयंबिलिए** - आचाम्लिक, **णिव्वियए** - निर्विकृतिक, **भिण्णपिंडवाइए** - भिन्न पिण्ड पातिक, **अरसाहारे** - अरसाहार, **विरसाहारे** - विरसाहार, **ठाणाइए** - स्थानातिग, **उक्कडुआसणिए** - उत्कटुक आसनिक,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिमट्ठाई - प्रतिमा स्थायी, **वीरासणिए** - वीरासनिक, **णेसज्जिए** - नैषधिक, **दंडाइए** - दण्डायतिक, **लगंडसाई** - लगण्डशायी, **अवाउडए** - अप्रावृतक, **अकंडूयए** - अकण्डूयक

भावार्थ - पांच कारणों से भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के चौबीस तीर्थङ्करों में से प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं को तत्त्व समझाना मुश्किल होता है यथा - प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु वक्रजड़ होते हैं इसलिए उनको तत्त्व समझाया जाना ही कठिन है । तत्त्वों के भेद प्रभेद समझना कठिन है । जीवाजीव को देखना कठिन है। परीषह उपसर्ग को सहन करना कठिन है। संयम का पालन करना कठिन है । पांच कारणों से बीच के बाईस तीर्थङ्करों के शिष्यों को तत्त्व समझाना सरल होता है यथा - वे ऋजुप्राज्ञ होने के कारण उनको तत्त्व समझाना सरल है । भेद प्रभेद समझाना सरल है, जीवाजीवादि को देखना सरल है, परीषह उपसर्गों को सहन करना सरल है और संयम का पालन करना सरल है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए ये पांच स्थानों का सदा वर्णन किया है, सदा नाम द्वारा कीर्तन किया है, सदा स्पष्ट शब्दों में कथन किया है, सदा प्रशंसा की है, सदा आचरण करने की आज्ञा दी है वे पांच बातें ये हैं - क्षमा, मुक्ति यानी निर्लोभता, आर्जव यानी सरलता, मार्दव - मृदुता और लघुता यानी उपकरणों की अपेक्षा हल्का तथा तीन गारव का त्याग करने से हल्का ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच बातों की यावत् आज्ञा दी है यथा-सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य । पांच बातों की भगवान् ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आज्ञा दी है यथा - उत्क्षिप्त चरक, गृहस्थ के अपने प्रयोजन से पकाने के बर्तन से बाहर निकाले हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु उत्क्षिप्त चरक है । निक्षिप्तचरक यानी पकाने के पात्र से बाहर न निकाले हुए अर्थात् उसी में रहे हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु निक्षिप्त चरक है । अन्तचरक यानी घर वालों के भोजन करने के पश्चात् बचे हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु अन्तचरक है। प्रान्तचरक यानी भोजन से अवशिष्ट बासी या तुच्छ आहार की गवेषणा करने वाला साधु प्रान्तचरक है। रूक्षचरक यानी रूखे स्नेह रहित आहार की गवेषणा करने वाला साधु रूक्षचरक कहलाता है । ये पांचों अभिग्रह धारी साधु के भेद हैं । इनमें पहले के दो भाव अभिग्रह हैं और शेष तीन द्रव्य अभिग्रह हैं। पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट यावत् अनुमत हैं यथा - अज्ञातचरक यानी परिचय रहित अज्ञातघरों से आहार की गवेषणा करने वाला साधु । अन्नग्लानक चरक यानी अभिग्रह विशेष से सुबह ही आहार करने वाला साधु अथवा अन्नग्लायक चरक यानी अन्न बिना भूख से ग्लान होकर आहार की गवेषणा करने वाला साधु अथवा अन्य ग्लायक चरक यानी दूसरे ग्लान साधु के लिए आहार की गवेषणा करने वाला साधु । मौनचरक यानी मौन व्रत पूर्वक आहार की गवेषणा करने वाला साधु । संसृष्टकल्पिक यानी खरड़े हुए हाथ या भाजन आदि से दिया जाने वाला आहार ही जिसे कल्पता है । तज्जातसंसृष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल्पिक यानी दिये जाने वाले द्रव्य से ही खरड़े हुए हाथ या भाजन आदि से दिया जाने वाला आहार ही जिसे कल्पता है । ये पांच भेद भी अभिग्रहधारी साधु के हैं । पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट यावत् अनुमत हैं । यथा - औपनिधिक यानी गृहस्थ के पास जो कुछ भी आहारादि रखा हुआ है उसी की गवेषणा करने वाला साधु । शुद्धैषणिक यानी शुद्ध एषणा द्वारा निर्दोष आहार की गवेषणा करने वाला साधु । संख्यादत्तिक यानी दात की संख्या का परिमाण करके आहार पानी लेने वाला साधु । दृष्टलाभिक यानी देखे हुए आहार की ही गवेषणा करने वाला साधु। पृष्टलाभिक यानी 'हे मुनिराज ! क्या मैं आपको आहार दूँ ?' इस प्रकार पूछने वाले दाता से ही आहार की गवेषणा करने वाला साधु।

पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट एवं अनुमत है यथा - आचाम्लिक यानी आयंबिल तप करने वाला साधु । निर्विकृतिक यानी घी आदि विगयों का त्याग करने वाला साधु । पुरिमड्ढ यानी पहले दो पहर तक का पच्चक्खाण करने वाला साधु । परिमित पिण्डपातिक यानी द्रव्य आदि का परिमाण करके परिमित आहार करने वाला साधु । भिन्न पिण्डपातिक यानी पूरी वस्तु न लेकर टुकड़े की हुई वस्तु को ही लेने वाला साधु । पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट एवं अनुमत है यथा - अरसाहार यानी हींग आदि के बघार से रहित नीरस आहार करने वाला साधु । विरसाहार यानी रस रहित पुराने धान्य आदि का आहार करने वाला साधु । अन्ताहार यानी भोजन के बाद अवशिष्ट रही हुई वस्तु का आहार करने वाला साधु । पन्ताहार यानी तुच्छ, हल्का या बासी आहार करने वाला साधु । रूक्षाहार यानी घी तैल आदि से रहित नीरस - रूक्ष आहार करने वाला साधु । पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट एवं अनुमत हैं यथा - अरसजीवी यानी जीवन पर्यन्त अरस आहार करने वाला साधु । विरसजीवी यानी जीवन पर्यन्त विरस आहार करने वाला साधु, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी रूक्षजीवी ।

पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट एवं अनुमत हैं यथा - स्थानातिग यानी कायोत्सर्ग करने वाला साधु । उत्कटुकासनिक यानी उत्कटुक आसन से बैठने वाला साधु । प्रतिमास्थायी यानी एक रात्रिकी आदि पडिमा अङ्गीकार कर कायोत्सर्ग करने वाला साधु । वीरासनिक यानी वीरासन से बैठने वाला साधु । नैषद्यिक यानी निषद्या अर्थात् आसन विशेष से बैठने वाला साधु । पांच स्थान भगवान् द्वारा उपदिष्ट एवं अनुमत है यथा - दण्डायतिक यानी दण्ड की तरह लम्बा होकर अर्थात् पैर फैला कर बैठने वाला साधु । लगण्डशायी यानी बांकी लकड़ी की तरह कुबड़ा होकर मस्तक और कोहनी को जमीन पर लगाते हुए और पीठ से जमीन को स्पर्श न करते हुए सोने वाला साधु । आतापक यानी शीत, ताप आदि को सहन करने रूप आतापना लेने वाला साधु । अप्रावृतक यानी वस्त्र न पहन कर शीतकाल में ठण्ड और गर्मी में धूप को सेवन करने वाला साधु । अकण्डूयक यानी शरीर में खुजली चलने पर भी न खुजलाने वाला साधु अकण्डूयक कहलाता है ।

विवेचन - भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पांच बोल - पाँच बोलों का भगवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने नाम निर्देश पूर्वक स्वरूप और फल बताया है। उन्होंने उनकी प्रशंसा की है और आचरण करने की अनुमति दी है। वे बोल निम्न प्रकार हैं -

१. क्षान्ति २. मुक्ति ३. आर्जव ४. मार्दव ५. लाघव।

१. क्षान्ति - शक्त अथवा अशक्त पुरुष के कठोर भाषणादि को सहन कर लेना तथा क्रोध का सर्वथा त्याग करना क्षान्ति है।

२. मुक्ति - सभी वस्तुओं में तृष्णा का त्याग करना, धर्मोपकरण एवं शरीर में भी ममत्व भाव न रखना, सब प्रकार के लोभ को छोड़ना मुक्ति है।

३. आर्जव - मन, वचन, काया की सरलता रखना और माया का निग्रह करना आर्जव है।

४. मार्दव - विनम्र वृत्ति रखना, अभिमान न करना मार्दव है।

५. लाघव - द्रव्य से अल्प उपकरण रखना एवं भाव से तीन गारव का त्याग करना लाघव है।

भगवान् से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान - १. सत्य २. संयम ३. तप ४. त्याग ५. ब्रह्मचर्य।

१. सत्य - सावद्य अर्थात् असत्य, अप्रिय, अहित वचन का त्याग करना, यथार्थ भाषण करना, मन वचन काया की सरलता रखना सत्य है।

२. संयम - सर्व सावद्य व्यापार से निवृत्त होना संयम है। पाँच आस्रव से निवृत्ति, पाँच इन्द्रिय का निग्रह, चार कषाय पर विजय और तीन दण्ड से विरति। इस प्रकार सतरह भेद वाले संयम का पालन करना संयम है।

३. तप - जिस अनुष्ठान से शरीर के रस, रक्त आदि सात धातु और आठ कर्म तप कर नष्ट हो जाय वह तप है। यह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। दोनों के छह छह भेद हैं।

४. त्याग - कर्मों के ग्रहण कराने वाले बाह्य कारण माता, पिता, धन, धान्यादि तथा आभ्यन्तर कारण राग, द्वेष, कषाय आदि सर्व सम्बन्धों का त्याग करना, त्याग है। साधुओं को वस्त्रादि का दान करना त्याग है। शक्ति होते हुए उद्यत विहारी होना, लाभ होने पर संभोगी साधुओं को आहारादि देना अथवा अशक्त होने पर यथाशक्ति उन्हें गृहस्थों के घर बताना और इसी प्रकार उद्यत विहारी, असंभोगी साधुओं को गोचरी में साथ रहकर श्रावकों के घर दिखाना यह भी त्याग कहलाता है।

नोट - हेम कोष में दान का अपर नाम त्याग है।

५. ब्रह्मचर्यवास - मैथुन का त्याग कर शास्त्र में बताई हुई ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति (वाड़) पूर्वक शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना ब्रह्मचर्य वास है।

भगवान् से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान - १. उत्क्षिप्त चरक २. निक्षिप्त चरक ३. अन्त चरक ४. प्रान्त चरक ५. रूक्ष चरक।

१. उत्क्षिप्त चरक - गृहस्थ के अपने प्रयोजन से पकाने के बर्तन से बाहर निकाले हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु उत्क्षिप्त चरक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. निक्षिप्त चरक – पकाने के पात्र से बाहर न निकाले हुए अर्थात् उसी में रहे हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु निक्षिप्त चरक कहलाता है।

३. अन्त चरक – घर वालों के भोजन करने के पश्चात् बचे हुए आहार की गवेषणा करने वाला साधु अन्त चरक कहलाता है।

४. प्रान्त चरक – भोजन से अवशिष्ट, बासी या तुच्छ आहार की गवेषणा करने वाला साधु प्रान्त चरक कहलाता है।

५. रूक्ष चरक – रूखे, स्नेह रहित आहार की गवेषणा करने वाला साधु रूक्ष चरक कहलाता है।

ये पाँचों अभिग्रह-विशेषधारी साधु के प्रकार हैं। प्रथम दो भाव-अभिग्रह और शेष तीन द्रव्य-अभिग्रह हैं।

भगवान् से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान – १. अज्ञात चरक। २. अन्न इलाय चरक (अन्न ग्लानक चरक, अन्न ग्लायक चरक, अन्य ग्लायक चरक)। ३. मौन चरक। ४. संसृष्ट कल्पिक। ५. तज्जात संसृष्ट कल्पिक।

१. अज्ञात चरक – आगे पीछे के परिचय रहित अज्ञात घरों में आहार की गवेषणा करने वाला अथवा अज्ञात रह कर गृहस्थ को स्वजाति आदि न बतला कर आहार पानी की गवेषणा करने वाला साधु अज्ञात चरक कहलाता है।

२. अन्न इलाय चरक (अन्न ग्लानक चरक, अन्न ग्लायक चरक, अन्य ग्लायक चरक) – अभिग्रह विशेष से सुबह ही आहार करने वाला साधु अन्न ग्लानक चरक कहलाता है।

अन्न के बिना भूख आदि से जो ग्लान हो उसी अवस्था में आहार की गवेषणा करने वाला साधु अन्न ग्लायक चरक कहलाता है।

दूसरे ग्लान साधु के लिये आहार की गवेषणा करने वाला मुनि अन्य ग्लायक चरक कहलाता है।

३. मौन चरक – मौनव्रत पूर्वक आहार की गवेषणा करने वाला साधु मौन चरक कहलाता है।

४. संसृष्ट कल्पिक – संसृष्ट अर्थात् खरड़े हुए हाथ या भाजन आदि से दिया जाने वाला आहार ही जिसे कल्पता है वह संसृष्ट कल्पिक है।

५. तज्जात संसृष्ट कल्पिक – दिये जाने वाले द्रव्य से ही खरड़े हुए हाथ या भाजन आदि से दिया जाने वाला आहार जिसे कल्पता है वह तज्जात संसृष्ट कल्पिक है।

ये पाँचों प्रकार भी अभिग्रह विशेष धारी साधु के ही जानने चाहिये।

भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पांच स्थान – १. औपनिधिक २. शुद्धैषणिक ३. संख्या दत्तिक ४. दृष्ट लाभिक ५. पृष्ट लाभिक।

१. औपनिधिक – गृहस्थ के पास जो कुछ भी आहारादि रखा है उसी की गवेषणा करने वाला साधु औपनिधिक कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. **शुद्धैषणिक** – शुद्ध अर्थात् शंकितादि दोष वर्जित निर्दोष एषणा अथवा संसृष्टादि सात प्रकार की या और किसी एषणा द्वारा आहार की गवेषणा करने वाला साधु शुद्धैषणिक कहा जाता है।

३. **संख्या दत्तिक** – दत्ति (दात) की संख्या का परिमाण करके आहार लेने वाला साधु संख्या दत्तिक कहा जाता है।

(साधु के पात्र में धार टूटे बिना एक बार में जितनी भिक्षा आ जाय वह दत्ति यानि दात कहलाती है।)

४. **दृष्टलाभिक** – देखे हुए आहार की ही गवेषणा करने वाला साधु दृष्ट लाभिक कहलाता है।

५. **पृष्ट लाभिक** – 'हे मुनिराज ! क्या आपको मैं आहार दूँ?' इस प्रकार पूछने वाले दाता से ही आहार की गवेषणा करने वाला साधु पृष्ट लाभिक कहलाता है। ये भी अभिग्रह धारी साधु के पाँच प्रकार हैं।

भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान – १. आचाम्लिक २. निर्विकृतिक ३. पूर्वार्द्धिक ४. परिमित पिण्डपातिक ५. भिन्न पिण्डपातिक।

१. **आचाम्लिक** (आयंबिलिए) – आचाम्ल (आयंबिल) तप करने वाला साधु आचाम्लिक कहलाता है।

२. **निर्विकृतिक** (णिव्वियते) – घी आदि विगय का त्याग करने वाला साधु निर्विकृतिक कहलाता है।

३. **पूर्वार्द्धिक** (पुरिमड्ढी) – पुरिमड्ढ अर्थात् प्रथम दो पहर तक का प्रत्याख्यान करने वाला साधु पूर्वार्द्धिक कहा जाता है।

४. **परिमित पिण्डपातिक** – द्रव्यादि का परिमाण करके परिमित आहार लेने वाला साधु परिमित पिण्डपातिक कहलाता है।

५. **भिन्न पिण्डपातिक** – पूरी वस्तु न लेकर टुकड़े की हुई वस्तु को ही लेने वाला साधु भिन्न पिण्डपातिक कहलाता है।

भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पांच स्थान – १. अरसाहार २. विरसाहार ३. अन्ताहार ४. प्रान्ताहार ५. रूक्षाहार।

१. **अरसाहार** – हींग आदि के बघार से रहित नीरस आहार करने वाला साधु अरसाहार कहलाता है।

२. **विरसाहार** – विगत रस अर्थात् रस रहित पुराने धान्य आदि का आहार करने वाला साधु विरसाहार कहलाता है।

३. **अन्ताहार** – भोजन के बाद अवशिष्ट रही हुई वस्तु का आहार करने वाला साधु अन्ताहार कहलाता है।

४. **प्रान्ताहार** – तुच्छ, हल्का या बासी आहार करने वाला साधु प्रान्ताहार कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. रूक्षाहार – नीरस, घी, तेलादि वर्जित भोजन करने वाला साधु रूक्षाहार कहलाता है।

ये भी पाँच अभिग्रह विशेषधारी साधुओं के प्रकार हैं। इसी प्रकार जीवन पर्यन्त अरस, विरस, अन्त, प्रान्त एवं रूक्ष भोजन से जीवन निर्वाह के अभिग्रह वाले साधु अरसजीवी, विरसजीवी, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी एवं रूक्षजीवी कहलाते हैं।

भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान – १. स्थानातिग २. उत्कटुकासनिक ३. प्रतिमास्थायी ४. वीरासनिक ५. नैषधिक।

१. स्थानातिग – अतिशय रूप से स्थान अर्थात् कायोत्सर्ग करने वाला साधु स्थानातिग कहलाता है।

२. उत्कटुकासनिक – पीढे वगैरह पर कूल्हे (पुत) न लगाते हुए पैरों पर बैठना उत्कटुकासन है। उत्कटुकासन से बैठने के अभिग्रह वाला साधु उत्कटुकासनिक कहा जाता है।

३. प्रतिमास्थायी – एक रात्रिकी आदि प्रतिमा अङ्गीकार कर कायोत्सर्ग विशेष में रहने वाला साधु प्रतिमास्थायी है।

४. वीरासनिक – पैर जमीन पर रख कर सिंहासन पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से सिंहासन निकाल लेने पर जो अवस्था रहती है उस अवस्था से बैठना वीरासन है। यह आसन बहुत दुष्कर है। इसलिये इसका नाम वीरासन रखा गया है। वीरासन से बैठने वाला साधु वीरासनिक कहलाता है।

५. नैषधिक – निषद्या अर्थात् बैठने के विशेष प्रकारों से बैठने वाला साधु नैषधिक कहा जाता है।

निषद्या के पाँच भेद – १. समपादयुता २. गोनिषधिका ३. हस्तिशुण्डिका ४. पर्यङ्का ५. अर्द्ध पर्यङ्का।

१. समपादयुता – जिस में समान रूप से पैर और कूल्हों से पृथ्वी या आसन का स्पर्श करते हुए बैठा जाता है वह समपादयुता निषद्या है।

२. गोनिषधिका – जिस आसन में गाय की तरह बैठा जाता है वह गोनिषधिका है।

३. हस्तिशुण्डिका – जिस आसन में कूल्हों पर बैठ कर एक पैर ऊपर रक्खा जाता है वह हस्तिशुण्डिका निषद्या है।

४. पर्यङ्का – पद्मासन से बैठना पर्यङ्का निषद्या है।

५. अर्द्ध पर्यङ्का – जंघा पर एक पैर रख कर बैठना अर्द्धपर्यङ्का निषद्या है।

पाँच निषद्या में हस्तिशुण्डिका के स्थान पर उत्कटुका भी कहते हैं। उत्कटुका – आसन पर कूल्हा (पुत) न लगाते हुए पैरों पर बैठना उत्कटुका निषद्या है।

भगवान् महावीर से उपदिष्ट एवं अनुमत पाँच स्थान – १. दण्डायतिक २. लगण्डशायी ३. आतापक ४. अप्रावृतक ५. अकण्डूयक।

१. दण्डायतिक – दण्ड की तरह लम्बे होकर अर्थात् पैर फैला कर बैठने वाला दण्डायतिक कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. **लगण्डशायी** - दु:संस्थित या बांकी लकड़ी को लगण्ड कहते हैं। लगण्ड की तरह कुबड़ा होकर मसत्क और कोहनी को जमीन पर लगाते हुए एवं पीठ से जमीन को स्पर्श न करते हुए सोने वाला साधु लगण्ड शायी कहलाता है।

३. **आतापक** - शीत, आतप आदि सहन करने रूप आतापना लेने वाला साधु आतापक कहा जाता है।

४. **अप्रावृतक** - वस्त्र न पहन कर शीत काल में ठण्ड और ग्रीष्म में घाम (गर्मी और धूप) का सेवन करने वाला अप्रावृतक कहा जाता है।

५. **अकण्डूयक** - शरीर में खुजली चलने पर भी न खुजलाने वाला साधु अकण्डूयक कहलाता है।

महानिर्जरा और महापर्यवसान

पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तंजहा - अगिलाए आयरियवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए उवज्झायवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए थेरवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए तवस्सिवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गिलाण वेयावच्चं करेमाणे । पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तंजहा - अगिलाए सेहवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए कुलवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गणवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए संघवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए साहम्मियवेयावच्चं करेमाणे॥ ६॥

कठिन शब्दार्थ - **महाणिज्जरे** - महा निर्जरा वाला, **महापज्जवसाणे** - महा पर्यवसान वाला, **अगिलाए**- अग्लान भाव से-ग्लानि रहित, **वेयावच्चं** - वैयावृत्य, **करेमाणे** - करता हुआ, **सेहवेयावच्चं**- शैक्ष की वैयावृत्य।

भावार्थ - पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है यथा - अग्लान भाव से आचार्य की वेयावच्च (वैयावृत्य) करता हुआ, ग्लानि रहित उपाध्याय की वेयावच्च करता हुआ, अग्लान भाव से स्थविर साधुओं की वेयावच्च करता हुआ, अग्लान भाव से तपस्वी की वेयावच्च करता हुआ और ग्लानि रहित ग्लान यानी बीमार साधु की वेयावच्च करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा वाला होता है और फिर जन्म न होने के कारण महापर्यवसान अर्थात् आत्यन्तिक अन्त वाला होता है । पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा वाला और महापर्यवसान वाला होता है यथा- अग्लान भाव से शैक्ष यानी नवदीक्षित साधु की वेयावच्च करता हुआ, अग्लान भाव से साधुओं के कुल की वेयावच्च करता हुआ, अग्लान भाव से साधुओं के गण की वेयावच्च करता हुआ, अग्लान भाव से संघ की वेयावच्च करता हुआ और अग्लान भाव से साधर्मिक की वेयावच्च करता हुआ साधु महानिर्जरा वाला और महापर्यवसान वाला होता है ।

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

विवेचन - महानिर्जरा और महापर्यवसान के पाँच बोल - १. आचार्य २. उपाध्याय (सूत्रदाता) ३. स्थविर ४. तपस्वी ५. ग्लान साधु की ग्लानि रहित बहुमान पूर्वक वैयावृत्य करता हुआ श्रमण निर्ग्रंथ महा निर्जरा वाला होता है और पुनः जन्म न लेने के कारण महापर्यवसान अर्थात् आत्यन्तिक अन्त वाला होता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

महानिर्जरा और महापर्यवसान के पाँच बोल - १. नवदीक्षित साधु २. कुल ३. गण ४. संघ ५. साधर्मिक की ग्लानि रहित बहुमान पूर्वक वैयावृत्य करने वाला साधु महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

१. थोड़े समय की दीक्षा पर्याय वाले साधु को नव दीक्षित कहते हैं।

२. एक आचार्य की सन्तति को कुल कहते हैं अथवा चान्द्र आदि साधु समुदाय विशेष को कुल कहते हैं।

३. गण - कुल के समुदाय को गण कहते हैं अथवा सापेक्ष तीन कुलों के समुदाय को गण कहते हैं।

४. संघ - गणों के समुदाय को संघ कहते हैं।

५. साधर्मिक - लिङ्ग और प्रवचन की अपेक्षा समान धर्म वाला साधु साधर्मिक कहा जाता है।

विसंभोगिक, पारंचित

पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा - सकिरियठाणं पडिसेवित्ता भवइ, पडिसेवित्ता णो आलोएइ, आलोइत्ता णो पट्ठवेइ, पट्ठवित्ता णो णिव्विसइ, जाइं इमाइं थेराणं ठिइप्पकप्पाइं भवंति ताइं अइयंचिय अइयंचिय पडिसेवेइ से हंद हं पडिसेवामि किं मे थेरा करिस्संति । पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं पारंचियं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा - सकुले वसइ सकुलस्स भेयाए अब्भुट्ठित्ता भवइ, गणे वसइ गणस्स भेयाए अब्भुट्ठित्ता भवइ, हिंसप्पेही, छिद्दप्पेही, अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणाययणाइं पउंजित्ता भवइ॥ ७॥

कठिन शब्दार्थ - साहम्मियं - स्वधर्मी साधु को, **संभोइयं** - साम्भोगिक, **विसंभोइयं** - विसम्भोगिक-संभोग से पृथक्, **ण** - नहीं, **अइक्कमइ** - अतिक्रमण-आज्ञा का उल्लंघन करता है, **सकिरियठाणं** - अनाचरणीय कार्य का, **आलोइए** - आलोचना करता है, **पट्ठवेइ** - लिये गये प्रायश्चित को उतारने के लिये तप आदि का सेवन करता है, **णिव्विसइ** - पूरी तरह से पालन करता है, **अइयंचिय**- उल्लंघन करके, **पारंचिय** - पारञ्चित, **भेयाए** - फूट डालने के लिए, **हिंसप्पेही** - हिंसा करने वाला, **छिद्दप्पेही** - छिद्रों को देखने वाला।

भावार्थ - पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साम्भोगिक स्वधर्मी साधु को विसम्भोगिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् सम्भोग से पृथक् - साधु मंडली से बाहर करता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है यथा - जो अनाचरणीय कार्य का सेवन करता है । जो अनाचरणीय कार्य का सेवन करके उसकी आलोचना नहीं करता है । जो आलोचना करने पर गुरु से दिये हुए प्रायश्चित्त को उतारने के लिये तप आदि का सेवन नहीं करता है । जो गुरु से दिये हुए प्रायश्चित्त का सेवन प्रारम्भ करके भी उसका पूरी तरह से पालन नहीं करता है । स्थविर कल्पी साधुओं की विशुद्ध आहार मासकल्प आदि जो मर्यादाएं हैं उनका बारम्बार उल्लंघन करता है । यदि साथ वाले साधु ऐसा न करने के लिए कहें तो वह उत्तर देता है कि 'मैं तो ऐसा ही करूँगा । गुरु महाराज मेरा क्या कर लेंगे । नाराज होकर भी वे मेरा क्या कर सकते हैं ?' इन पांच प्रकार के साधुओं को विसम्भोगिक करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ साधर्मिक साधुओं को पारञ्चित प्रायश्चित्त देता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है यथा - जो साधु जिस गच्छ में रहता है उसमें फूट डालने के लिए आपस में कलह उत्पन्न करता हो । जो साधु जिस गण में रहता है उसमें फूट डालने के लिए परस्पर कलह उत्पन्न कराने का प्रयत्न करता हो । साधु आदि की हिंसा करना चाहता हो । साधु आदि की हिंसा के लिए उसकी प्रमत्तता आदि छिद्रों को देखता रहता हो । अंगुष्ठ विदया, कुडयम प्रश्न आदि का प्रयोग करता हो अथवा बारबार असंयम के स्थान रूप सावदय कार्य की पूछताछ करता रहता हो । उपरोक्त पांच साधुओं को पारञ्चित प्रायश्चित्त देता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ।

विवेचन - संभोगी साधुओं को अलग करने के पाँच बोल - पाँच बोल वाले स्वधर्मी संभोगी साधु को विसंभोगी अर्थात् संभोग से पृथक् (साधु मंडली) से बाहर करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

१. जो अकृत्य कार्य का सेवन करता है।

२. जो अकृत्य सेवन कर उसकी आलोचना नहीं करता है।

३. जो आलोचना करने पर गुरु से दिये हुए प्रायश्चित्त को उतारने के लिये तप आदि का सेवन नहीं करता है।

४. गुरु से दिये हुए प्रायश्चित्त का सेवन प्रारम्भ करके भी पूरी तरह से उसका पालन नहीं करता है।

५. स्थविर कल्पी साधुओं के आचार में जो विशुद्ध आहार शय्यादि कल्पनीय हैं और मासकल्प आदि की जो मर्यादा है उसका अतिक्रमण करता है। यदि साथ वाले साधु उसे कहें कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये, ऐसा करने से गुरु महाराज तुम्हें गच्छ से बाहर कर देंगे तो उत्तर में वह उन्हें कहता है कि मैं तो ऐसा ही करूँगा। गुरु महाराज मेरा क्या कर लेंगे? नाराज होकर भी वे मेरा क्या कर सकते हैं? आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पारंचित प्रायश्चित्त के पाँच बोल – श्रमण निर्ग्रंथ पाँच बोल वाले साधर्मिक साधुओं को दशवां पारंचित प्रायश्चित्त देता हुआ आचार और आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

पारंचित दशवां प्रायश्चित्त है। इससे बड़ा कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसमें साधु को नियत काल के लिये दोष की शुद्धि पर्यन्त साधुलिङ्ग छोड़ कर गृहस्थ वेष में रहना पड़ता है। अर्थात् गृहस्थ का वेष पहन कर साधु मर्यादा का पालन करता हुआ गुरु महाराज से दिये हुए तप आदि का सेवन करता है। उसके बाद उसको फिर नई दीक्षा दी जाती है।

१. साधु जिस गच्छ में रहता है। उसमें फूट डालने के लिये आपस में कलह उत्पन्न करता हो।

२. साधु जिस गच्छ में रहता है। उसमें भेद पड़ जाय इस आशय से, परस्पर कलह उत्पन्न करने में तत्पर रहता हो।

३. साधु आदि की हिंसा करना चाहता हो।

४. हिंसा के लिये प्रमत्तता आदि छिद्रों को देखता रहता हो।

५. बार बार असंयम के स्थान रूप सावद्य अनुष्ठान की पूछताछ करता रहता हो अथवा अंगुष्ठ, कुड्यम प्रश्न वगैरह का प्रयोग करता हो।

नोट – अंगुष्ठ प्रश्न विद्या विशेष है। जिसके द्वारा अंगूठे में देवता बुलाया जाता है। इसी प्रकार कुड्यम प्रश्न भी विद्या विशेष है। जिसके द्वारा दीवाल में देवता बुलाया जाता है। देवता के कहे अनुसार प्रश्नकर्त्ता को उत्तर दिया जाता है।

विग्रह और अविग्रह के स्थान

आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच वुग्गह ट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा – आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि अहाराइणियाए किइकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेंति ते काले काले णो सम्मं अणुप्पवाइत्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्मं अब्भुट्ठित्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ णो आपुच्छियचारी । आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच अवुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा– आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवइ, एवं अहारायणियाए सम्मं किइकम्मं पउंजित्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारेंति ते काले काले सम्मं अणुप्पवाइत्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्मं अब्भुट्ठित्ता भवइ, आयरियउवज्झाए णं गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवइ णो अणापुच्छियचारी॥ ८॥

कठिन शब्दार्थ - **गणंसि** - गण में, **वुग्गहट्ठाणा** - विग्रह स्थान-कलह पैदा होने के कारण, **अहाराइणिए** - यथारात्निक, **सुयपज्जवजाए** - श्रुतपर्यवजात-सूत्र और उनका अर्थ जानने वाले, **सम्मं**-सम्यक् रूप से, **अणुप्पवाइत्ता** - वाचना देने वाले, **आपुच्छियचारी** - पूछ कर कार्य करने वाला, **अणापुच्छियचारी** - बिना सम्मति के ही कार्य करने वाला, **अवुग्गहट्ठाणा** - अविग्रह स्थान ।

भावार्थ - गच्छ में आचार्य उपाध्याय के पांच विग्रहस्थान यानी कलह पैदा होने के कारण कहे गये हैं यथा - आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में "इस कार्य में प्रवृत्ति करो, इस कार्य को न करो" इस प्रकार प्रवृत्ति निवृत्ति रूप आज्ञा और धारणा की सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति न करा सके। आचार्य, उपाध्याय अपने गच्छ में यथारात्निक (रत्नाधिक) यानी दीक्षा में बड़े साधुओं का यथायोग्य विनय वन्दना आदि न करा सके तथा स्वयं भी रत्नाधिक साधुओं का उचित सन्मान न करे । आचार्य उपाध्याय जो सूत्र और उनका अर्थ जानते हैं उसको यथावसर गच्छ के साधुओं को सम्यग् विधिपूर्वक न पढावें । आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ के ग्लान और नवदीक्षित साधुओं की वेयावच्च की व्यवस्था में सावधान न हों । आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ के साधुओं को पूछे नहीं अर्थात् किसी भी कार्य में उनकी सम्मति लेवे नहीं किन्तु उनकी सम्मति लिए बिना ही अपनी इच्छानुसार कार्य करें एवं अन्य क्षेत्र में विहार करें । इन पांच बातों से गच्छ में अनुशासन नहीं रहता है । इससे गच्छ में साधुओं के बीच कलह उत्पन्न होता है अथवा साधु लोग आचार्य उपाध्याय से कलह करते हैं ।

आचार्य उपाध्याय के गच्छ में पांच अविग्रह स्थान कहे गये हैं यथा - आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में आज्ञा और धारणा की सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करा सके । आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में रत्नाधिक साधुओं की यथायोग्य सम्यक् विनय करा सकें तथा स्वयं भी रत्नाधिक साधुओं का सम्यक् विनय करें । आचार्य उपाध्याय जो सूत्र और अर्थ जानते हैं उसको अपने गच्छ में समय समय पर साधुओं को सम्यक् विधिपूर्वक पढावें । आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में ग्लान और नवदीक्षित साधुओं की वैयावच्च की व्यवस्था में सावधान हों । आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ के साधुओं को पूछ कर एवं उनकी सम्मति लेकर कार्य करते हों, किन्तु बिना सम्मति लिए कार्य न करते हों । इन पांच बातों से गच्छ में सम्यक् व्यवस्था रहती है और कलह नहीं होता है ।

विवेचन - गच्छ में आचार्य, उपाध्याय के पाँच कलह स्थान -

१. आचार्य, उपाध्याय गच्छ में "इस कार्य में प्रवृत्ति करो, इस कार्य को न करो" इस प्रकार प्रवृत्ति निवृत्ति रूप आज्ञा और धारणा की सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति न करा सकें।

२. आचार्य, उपाध्याय गच्छ में साधुओं से रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े) साधुओं की यथायोग्य विनय न करा सकें तथा स्वयं भी रत्नाधिक साधुओं की उचित विनय न करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. आचार्य, उपाध्याय जो सूत्र एवं अर्थ जानते हैं उन्हें यथावसर सम्यग् विधि पूर्वक गच्छ के साधुओं को न पढ़ावें।

४. आचार्य, उपाध्याय गच्छ में जो ग्लान और नवदीक्षित साधु हैं उनके वैयावृत्य की व्यवस्था में सावधान न हों।

५. आचार्य, उपाध्याय गण को बिना पूछे ही दूसरे क्षेत्रों में विचरने लग जाय।

इन पाँच स्थानों से गच्छ में अनुशासन नहीं रहता है। इससे गच्छ में साधुओं के बीच कलह उत्पन्न होता है अथवा साधु लोग आचार्य, उपाध्याय से कलह करते हैं।

इन बोलों से विपरीत पाँच बोलों से गच्छ में सम्यक् व्यवस्था रहती है और कलह नहीं होता। इसलिये वे पाँच बोल अकलह स्थान के हैं।

निषद्या, आर्जव स्थान

पंच णिसिज्जाओ पण्णत्ताओ तंजहा - उक्कुडुया गोदोहिया, समपायपुया, पलियंका, अद्धपलियंका । पंच अज्जव ठाणा पण्णत्ता तंजहा - साहुअज्जवं, साहुमद्दवं, साहुलाघवं, साहुखंति, साहुमुत्ति॥ १ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णिसिज्जाओ** - निषद्या, **समपायपुया** - समपादपुता, **पलियंका** - पर्यङ्का, **अज्जव** - आर्जव, **ठाणा** - स्थान, **साहुअज्जवं** - उत्तम सरलता, **साहुमद्दवं** - उत्तम मृदुता, **साहुलाघवं**- उत्तम लघुता, **साहुखंति** - उत्तम क्षमा, **साहुमुत्ति** - उत्तम त्याग।

भावार्थ - पांच प्रकार की निषद्या कही गई है यथा - उत्कुटुका यानी आसन पर कूल्हा न लगाते हुए पैरों पर बैठना । गोदोहिका यानी गाय को दुहते समय जिस तरह बैठा जाता है उस तरह बैठना । समपादपुता यानी पैर और कूल्हों से पृथ्वी या आसन का स्पर्श करते हुए बैठना । पर्यङ्का यानी पद्मासन से बैठना, अर्द्ध पर्यङ्का यानी जंघा पर एक पैर रख कर बैठना। पांच आर्जवस्थान यानी संवरस्थान कहे गये हैं यथा - उत्तम सरलता, उत्तम मृदुता, उत्तम लघुता, उत्तम क्षमा, उत्तम त्याग ।

ज्योतिषी, देव, परिचारणा,अग्रमहिषियाँ,सेना और सेना के अधिपति

पंचविहा जोइसिया पण्णत्ता तंजहा - चंदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, ताराओ । पंचविहा देवा पण्णत्ता तंजहा - भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवाहिदेवा (देवाइदेवा), भावदेवा । पंचविहा परियारणा पण्णत्ता तंजहा - कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा ।

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा- काली, राई, रयणी, विज्जू, मेहा । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुभा, णिसुभा, रंभा, णिरंभा, मयणा । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा- पायत्ताणीए, पीढाणीए, कुंजराणीए, महिसाणीए, रहाणीए । दुमे पायत्ताणीयाहिवई, सोदामी आसराया पीढाणीयाहिवई, कुंथु हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, लोहियक्खे महिसाणीयाहिवई, किण्णरे रहाणीयाहिवई । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए जाव रहाणीए । महहुमे पायत्ताणीयाहिवई, महासोदामे आसराया पीढाणीयाहिवई, मालंकरो हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, महालोहियक्खे महिसाणीयाहिवई, किंपुरिसे रहाणीयाहिवई । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमार रण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए जाव रहाणीए। भद्दसेणे पायत्ताणीयाहिवई, जसोधरे आसराया पीढाणीयाहिवई, सुदंसणे हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, णीलकंठे महिसाणीयाहिवई, आणंदे रहाणीयाहिवई । भूयाणंदस्स णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए जाव रहाणीए । दक्खे पायत्ताणीयाहिवई, सुग्गीवे आसराया पीढाणीयाहिवई, सुविक्कमे हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, सेयकंठे महिसाणीयाहिवई णंदुत्तरे रहाणीयाहिवई। वेणुदेवस्स णं सुवण्णिंदस्स सुवण्णकुमाररण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए जाव रहाणीए, एवं जहा धरणस्स तहा वेणुदेवस्स वि। वेणुदालियस्स जहा भूयाणंदस्स। जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स । जहा भूयाणंदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स ।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए, पीढाणीए, कुंजराणीए, उसभाणीए, रहाणीए, हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई, वाऊ आसराया पीढाणीयाहिवई, एरावणे हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, दामड्ढी उसभाणीयाहिवई, माढरो रहाणीयाहिवई । *ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणीया, पंच संगामिया अणीयाहिवई* पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणीए, पीढाणीए, कुंजराणीए, उसभाणीए, रहाणीए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लहुपरक्कमे पायत्ताणीयाहिवई, महावाऊ आसराया पीढाणीयाहिवई, पुप्फदंते हत्थिराया कुंजराणीयाहिवई, महादामड्ढी उसभाणीयाहिवई, महामाढरे रहाणीयाहिवई । जहा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स। जहा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुयस्स ।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवीणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ १० ॥

कठिन शब्दार्थ - **जोइसिया** - ज्योतिषी देव, **भवियदव्वदेवा** - भव्यद्रव्यदेव, **णरदेवा** - नरदेव, **धम्मदेवा** - धर्मदेव, **देवाहिदेवा** - देवाधिदेव, (देवाइदेवा-देवातिदेव), **परियारणा** - परिचारणा, **संगामिया**- संग्रामिक, **अणीया** - सेना, **अणीयाहिवई** - सेना के अधिपति, **पायत्ताणीए** - पदाति अनीक-पैदल सेना, **पीढाणीए** - पीढानीक-घुड़सवारों की सेना, **कुंजराणीए** - कुञ्जरानीक-हाथियों की सेना, **महिसाणीए**- महिषानीक-भैंसों की सेना, **रहाणीए** - रथानीक-रथों की सेना,

भावार्थ - पांच प्रकार के ज्योतिषी देव कहे गये हैं यथा - चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा।

पांच प्रकार के देव कहे गये हैं यथा भव्य-द्रव्य देव यानी दूसरे भव में होने वाले वैमानिक आदि देव । नरदेव - चक्रवर्ती, धर्मदेव - चारित्र पालने वाले साधु महात्मा, देवाधिदेव (देवातिदेव)- तीर्थङ्कर और भावदेव यानी देवायु को भोगने वाले वैमानिक आदि देव ।

पांच प्रकार की परिचारणा यानी वेद के उदय का प्रतीकार अर्थात् मैथुन कही गई है यथा - कायपरिचारणा, स्पर्शपरिचारणा, रूपपरिचारणा, शब्दपरिचारणा और मनपरिचारणा । असुरों के इन्द्र असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र की पांच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - काली, राजी, रजनी, विद्युत और मेघा । वैरोचनेन्द्र वैरोचन राजा बलीन्द्र की पांच अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - शुभा, निशुभा, रम्भा, निरम्भा, मदना ।

असुरों के इन्द्र असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदातिअनीक यानी पैदल सेना पीढानीक यानी घुड़सवारों की सेना, कुञ्जरानीक यानी हाथियों की सेना, महिषानीक-भैंसों की सेना, रथानीक यानी रथों की सेना । पांच अधिपति यथा - पदातिसेना का अधिपति द्रुम, पीढानीक का अधिपति अश्वराज सोदामी, हस्ती सेना का अधिपति हस्तिराज कुन्थु, महिष सेना का अधिपति लोहिताक्ष, रथ सेना का अधिपति किन्नर है । वैरोचनेन्द्र वैरोचन राजा बलीन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना यावत् रथों की सेना । पांच अधिपति-पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पीढानीक का अधिपति अश्वराज महासोदाम, हस्ती सेना का अधिपति हस्तीराज माल्यंकर, महिष सेना का अधिपति महालोहिताक्ष, रथसेना का अधिपति किंपुरुष । नागकुमारों के इन्द्र नागकुमारों के राजा धरणेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना यावत् रथसेना । पांच अधिपति-पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन, पीढानीक का अधिपति अश्वराज यशोधर, हस्तीसेना का अधिपति हस्तीराज सुदर्शन, महिष सेना का अधिपति नीलकण्ठ, रथसेना का अधिपति आनन्द है । नागकुमारों के इन्द्र नागकुमारों के राजा भूतानन्द के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना यावत् रथसेना। पांच अधिपति - पदाति सेना का अधिपति दक्ष, पीढानीक का अधिपति अश्वराज सुग्रीव, हस्ती सेना का अधिपति हस्तिराज सुविक्रम, महिष सेना का अधिपति श्वेतकण्ठ, रथ सेना का अधिपति नन्दोत्तर है। सुवर्णेन्द्र सुवर्णकुमारों के राजा वेणुदेव के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना यावत् रथसेना। जैसे धरणेन्द्र की सेना के पांच अधिपति कहे गये हैं वैसे ही वेणुदेव के भी कह देने चाहिए। जैसे भूतानन्द की पांच संग्रामिक सेना और उसके पांच अधिपति कहे गये हैं वैसे ही वेणुदाल के भी जानना चाहिए। जैसे धरणेन्द्र की पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कहे गये हैं वैसे ही घोष तक दक्षिण दिशा के सब इन्द्रों के कह देने चाहिए। जैसे भूतानन्द की पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कहे गये हैं वैसे ही महाघोष तक उत्तर दिशा के सब इन्द्रों के कह देने चाहिए ।

देवों के इन्द्र देवों के राजा शक्रेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना, पीढानीक, हस्तिसेना, वृषभानीक यानी बैलों की सेना और रथ सेना । पांच अधिपति - पैदल सेना का अधिपति हरिणेगमेषी है, पीढानीक का अधिपति अश्वराज वायु है । हस्ति सेना का अधिपति हस्तिराज ऐरावत है । वृषभ सेना का अधिपति दामार्धी है और रथ सेना का अधिपति माढर है. । देवों के इन्द्र देवों के राजा ईशानेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और पांच संग्रामिक सेना के अधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति सेना, पीढानीक, हस्तिसेना, वृषभसेना और रथसेना । पांच अधिपति - पैदल सेना का अधिपति लघुपराक्रम है । पीढानीक का अधिपति अश्वराज महावायु है । हस्तिसेना का अधिपति हस्तिराज पुष्पदंत है । वृषभसेना का अधिपति महादामर्द्धि है और रथसेना का अधिपति महामाढर है । जैसे शक्रेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कहे गये हैं वैसे ही आरण देवलोक तक सब विषम संख्या वाले देवलोकों के यानी तीसरे, पांचवें, सातवें, नववें और ग्यारहवें देवलोक के इन्द्रों के भी पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कह देने चाहिए । जैसे ईशानेन्द्र के पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कहे गये हैं वैसे ही अच्युत देवलोक तक सब सम संख्या वाले देवलोकों के यानी चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें देवलोक के इन्द्रों के भी पांच संग्रामिक सेना और उसके अधिपति कह देने चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के इन्द्र देवों के राजा शक्रेन्द्र की आभ्यन्तर परिषदा के देवों की पांच पल्योपम की स्थिति कही गई है । देवों के इन्द्र देवों के राजा ईशानेन्द्र की आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की पांच पल्योपम की स्थिति कही गई है।

विवेचन – ज्योतिषी देव के पाँच भेद – १. चन्द्र २. सूर्य ३. ग्रह ४. नक्षत्र ५. तारा।

मनुष्य क्षेत्रवर्ती अर्थात् मानुष्योत्तर पर्वत पर्यन्त अढ़ाई द्वीप में रहे हुए ज्योतिषी देव सदा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए चलते रहते हैं। इन्हें चर कहते हैं। मानुष्योत्तर पर्वत के आगे रहने वाले सभी ज्योतिषी देव स्थिर रहते हैं। इन्हें अचर कहते हैं।

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य, छप्पन नक्षत्र, एक सौ छिहत्तर ग्रह और एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारे हैं। लवणोदधि समुद्र में चार, धातकी खण्ड में बारह, कालोदधि में बयालीस और अर्द्धपुष्कर द्वीप में बहत्तर चन्द्र हैं। इन क्षेत्रों में सूर्य की संख्या भी चन्द्र के समान ही है। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य हैं।

एक चन्द्र का परिवार २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में इनसे १३२ गुणे ग्रह नक्षत्र और तारे हैं।

चन्द्र से सूर्य, सूर्य से ग्रह, ग्रह से नक्षत्र और नक्षत्र से तारे शीघ्र गति वाले हैं।

मध्यलोक में मेरु पर्वत के सम भूमिभाग से ७९० योजन से ९०० योजन तक यानी ११० योजन में ज्योतिषी देवों के विमान हैं।

देवों की पाँच परिचारणा – वेद जनित बाधा होने पर उसे शान्त करना परिचारणा कहलाती है। परिचारणा के पाँच भेद हैं –

१. काय परिचारणा २. स्पर्श परिचारणा ३. रूप परिचारणा ४. शब्द परिचारणा ५. मन परिचारणा।

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म, ईशान देवलोक के देवता काय परिचारणा वाले हैं अर्थात् शरीर द्वारा स्त्री पुरुषों की तरह मैथुन सेवन करते हैं और इससे वेद जनित बाधा को शान्त करते हैं। तीसरे सनत्कुमार और चौथे माहेन्द्र देवलोक के देवता स्पर्श परिचारणा वाले हैं अर्थात् देवियों के अङ्गोपाङ्ग का स्पर्श करने से ही उनकी वेद जनित बाधा शान्त हो जाती है। पाँचवें ब्रह्मलोक और छठे लान्तक देवलोक में देवता रूप परिचारणा वाले हैं। वे देवियों के सिर्फ रूप को देख कर ही तृप्त हो जाते हैं। सातवें महाशुक्र और आठवें सहस्रार देवलोक में देवता शब्द परिचारणा वाले हैं। वे देवियों के आभूषण आदि की ध्वनि को सुन कर ही वेद जनित बाधा से निवृत्त हो जाते हैं। शेष चार आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक के देवता मन परिचारणा वाले होते हैं अर्थात् संकल्प मात्र से ही वे तृप्त हो जाते हैं।

ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी देवता परिचारणा रहित होते हैं। उन्हें मोह का उदय कम रहता है। इसलिये वे प्रशम सुख में ही तल्लीन रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काय परिचारणा वाले देवों से स्पर्श परिचारणा वाले देव अनन्त गुण सुख का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार उत्तरोत्तर रूप, शब्द, मन की परिचारणा वाले देव पूर्व पूर्व से अनन्त गुण सुख का अनुभव करते हैं। परिचारणा रहित देवता और भी अनन्त गुण सुख का अनुभव करते हैं।

प्रतिघात, आजीविक, राज चिह्न

पंचविहा पडिहा पण्णत्ता तंजहा - गइपडिहा, ठिइपडिहा, बंधणपडिहा, भोगपडिहा, बल वीरिय पुरिसकार परक्कम पडिहा । पंचविहे आजीविए पण्णत्ते तंजहा- जाइआजीवे, कुलाजीवे, कम्माजीवे, सिप्पाजीवे, लिंगाजीवे । पंच रायककुहा पण्णत्ता तंजहा - खग्गं, छत्तं, उप्फेसं, उवाणहाओ, वालवीयणी ॥ ११ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिहा** - प्रतिघात, **बल वीरिय पुरिसकार परक्कम पडिहा** - बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम का प्रतिघात, **आजीविए** - आजीविक-आजीविका करने वाले, **कम्माजीवे** - कर्म करके आजीविका करने वाले, **सिप्पाजीवे** - शिल्पकार्य करके आजीविका करने वाले, **लिंगाजीवे** - लिंग धारण करके आजीविका करने वाले, **रायककुहा** - राजा के चिह्न, **खग्गं** - खड्ग, **छत्तं** - छत्र, **उप्फेसं** - मुकुट, **उवाणहाओ** - उपानत् (पगरखी) **वालवीयणी** - बालव्यजनी-चामर ।

भावार्थ - पांच प्रकार का प्रतिघात कहा गया है यथा - गति प्रतिघात, स्थिति प्रतिघात, बन्धनप्रतिघात, भोगप्रतिघात और बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम का प्रतिघात । पांच प्रकार के आजीविक यानी आजीविका करने वाले कहे गये हैं यथा - अपनी जाति बतला कर आजीविका करने वाला, अपना कुल बता कर आजीविका करने वाला, खेती आदि कर्म करके आजीविका करने वाला शिल्प यानी तूणना, बुनना आदि कार्य करके आजीविका करने वाला और साधु आदि का लिङ्ग धारण करके आजीविका करने वाला । पांच राजा के चिह्न कहे गये हैं यथा - खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानत् यानी पगरखी और बालव्यजनी यानी चामर ।

विवेचन - प्रतिबन्ध या रुकावट को प्रतिघात कहते हैं। पाँच प्रतिघात इस प्रकार हैं -

१. गति प्रतिघात २. स्थिति प्रतिघात ३. बन्धन प्रतिघात ४. भोग प्रतिघात ५. बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम प्रतिघात।

१. गति प्रतिघात - शुभ देवगति आदि पाने की योग्यता होते हुए भी विरूप (विपरीत) कर्म करने से उसकी प्राप्ति न होना गति प्रतिघात है। जैसे दीक्षा पालने से कण्डरीक को शुभ गति पाना था। लेकिन नरक गति की प्राप्ति हुई और इस प्रकार उसके देवगति का प्रतिघात हो गया।

२. स्थिति प्रतिघात - शुभ स्थिति बान्ध कर अध्यवसाय विशेष से उसका प्रतिघात कर देना अर्थात् लम्बी स्थिति को छोटी स्थिति में परिणत कर देना स्थिति प्रतिघात है।

३. बन्धन प्रतिघात - बन्धन नामकर्म का भेद है। इसके औदारिक बन्धन आदि पाँच भेद हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्त बन्धन की प्राप्ति की योग्यता होने पर भी प्रतिकूल कर्म करके उसकी घात कर देना और अप्रशस्त बन्धन पाना बन्धन प्रतिघात है। बन्धन प्रतिघात से इसके सहचारी प्रशस्त शरीर, अङ्गोपाङ्ग, संहनन, संस्थान आदि का प्रतिघात भी समझ लेना चाहिये।

४. भोग प्रतिघात - प्रशस्त गति, स्थिति, बन्धन आदि का प्रतिघात होने पर उनसे सम्बद्ध भोगों की प्राप्ति में रुकावट होना भोग प्रतिघात है। क्योंकि कारण के न होने पर कार्य कैसे हो सकता है?

५. बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम प्रतिघात - गति, स्थिति आदि के प्रतिघात होने पर भोग की तरह प्रशस्त बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम की प्राप्ति में रुकावट पड़ जाती है। यही बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम प्रतिघात है।

शारीरिक शक्ति को बल कहते हैं। जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। पुरुष कर्त्तव्य या पुरुषाभिमान को पुरुषकार कहते हैं। बल और वीर्य का प्रयोग करना पराक्रम है।

राजा के पांच चिह्न कहे गये हैं। ये चिह्न हर वक्त उसके साथ रहते हैं। परन्तु जब राजा धर्म सभा में जाता है तब सन्त महात्माओं के सम्मान की दृष्टि से वह इन पांच को भी छोड़ देता है जैसा कि कहा है -

छत्र, चमर और मुकुट को, मोजड़ी अरु तलवार।
राजा छोड़े पांच को धर्म सभा मंझार॥

उदीर्ण परीषहोपसर्ग

पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा तंजहा - उदिण्णकम्मे खलु अयं पुरिसे उम्मत्तगभूए, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा, अवहसइ वा णिच्छोडेइ वा, णिब्भंछेइ वा, बंधइ वा, रुंभइ वा, छविच्छेयं करेइ वा, पमारं वा, णेइ वा, उद्दवेइ वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा, आछिंदइ वा, विच्छिंदइ वा, भिंदइ वा, अवहरइ वा । जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा तहेव जाव अवहरइ वा । ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवइ, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा । ममं च णं सम्मं असहमाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणहिया-समाणस्स किं मण्णे कज्जइ ? एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जइ । ममं च णं सम्मं सहमाणस्स जाव अहियासमाणस्स किं मण्णे कज्जइ ? एगंतसो मे णिज्जरा कज्जइ। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव अहियासेज्जा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव अहियासेज्जा तंजहा - खित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा तहेव जाव अवहरइ वा। दित्त चित्ते खलु अयं पुरिसे, तेणं मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा । जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा । ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवइ, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा । ममं च णं सम्मं सहमाणं खममाणं तितिक्खमाणं अहियासमाणं पासित्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गंथा उदिण्णे परीसहोवसग्गे एवं सम्मं सहिस्संति जाव अहियासिस्संति । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव अहियासेज्जा॥ १२॥

कठिन शब्दार्थ - **उदिण्णे** - उदय में आये हुए, **परीसहोवसग्गे** - परीषह उपसर्गों को, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, **सहेज्जा** - सहन करता है, **खमेज्जा** - क्षमा करता है, **तितिक्खेज्जा** - अदीन भाव से सहता है, **अहियासेज्जा** - चलित नहीं होता है, **उम्मत्तगभूए** - उन्मत्त बना हुआ है, **अक्कोसइ** - आक्रोश करता है, **अवहसइ** - हंसता है, **णिच्छोडेइ** - कंकर फैंकता है, **णिब्भंछेइ** - निर्भत्सना करता है, **रुंभइ** - रोकता है, **छविच्छेयं** - चर्मछेदन, **उद्दवेइ** - उद्वेग उपजाता है, **आछिंदइ** - छीनता है, **विछिंदइ** - दूर फेंकता है, **भिंदइ** - फाड़ता है, **अवहरइ** - चुराता है, **जक्खाइट्ठे** - यक्षाविष्ट, **तब्भववेयणिज्जे** - इसी भव में वेदने योग्य, **एगंतसो** - एकान्त रूप से, **खित्तचित्ते** - क्षिप्त चित्त वाला, **दित्तचित्ते** - दृप्त चित्त वाला।

भावार्थ - पांच कारणों से छद्मस्थ पुरुष उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को सम्यक्प्रकार से सहन करता है, क्षमा करता है, अदीनभाव से सहता है और चलित नहीं होता है यथा - सम्भव है यह पुरुष कर्मों के उदय से उन्मत्त बना हुआ है, इसलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है, हंसता है, कंकर फेंकता है, कुवचनों द्वारा निर्भत्स्ना करता है, बांधता है, रोकता है, चर्मछेद करता है, मूर्च्छित करता है अथवा उद्वेग उपजाता है अथवा वस्त्र पात्र कंबल तथा रजोहरण को छीनता है, दूर फेंकता है, फाड़ता है तथा चुराता है । सम्भव है यह पुरुष यक्षाविष्ट है, इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे वस्त्र पात्र आदि को चुराता है । मेरे इसी भव में वेदने योग्य कर्म उदय में आये हैं, इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे वस्त्र पात्रादि चुराता है। मेरे उदय में आये हुए कर्मों को सम्यक् प्रकार से सहन न करते हुए, क्षमा न करते हुए, अदीन भाव से सहन न करते हुए, अविचलित भाव से सहन न करते हुए मुझे क्या होगा ? मेरे एकान्त रूप से पाप कर्म का बन्ध होगा । मेरे उदय में आये हुए कर्मों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हुए यावत् अविचलित भाव से सहन करते हुए मुझे क्या होगा ? मेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकान्त रूप से निर्जरा होगी । इन पांच कारणों से छद्मस्थ पुरुष उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करता है यावत् अविचलित भाव से सहन करता है ।

पांच कारणों से केवली भगवान् उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं । यावत् अविचलित भाव से सहन करते हैं यथा - निश्चय ही यह पुरुष क्षिप्त चित्त वाला यानी पुत्रादि के वियोग के शोक से विक्षिप्त चित्त वाला है, इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे धर्मोपकरणों को चुराता है । निश्चय ही यह पुरुष दृप्तचित्त वाला यानी पुत्र जन्मादि के हर्ष से उन्मत्त चित्त वाला है, इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे धर्मोपकरणों को चुराता है। निश्चय ही यह पुरुष यक्षाविष्ट हैं, इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे धर्मोपकरणों को चुराता है । मेरे इस भव में वेदने योग्य कर्म उदय में आये हैं इसीलिए यह पुरुष मुझे आक्रोश करता है यावत् मेरे धर्मोपकरणों को चुराता है । मेरे उदय में आये हुए कर्मों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हुए क्षमा करते हुए अदीनभाव से सहन करते हुए मुझे देखकर दूसरे बहुत से छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को इसी तरह सम्यक् प्रकार से सहन करेंगे यावत् अविचलित भाव से सहन करेंगे । इन पांच कारणों से केवली भगवान् उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं यावत् अविचलित भाव से सहन करते हैं ।

विवेचन - छद्मस्थ के परीषह उपसर्ग सहने के पाँच स्थान - पाँच बोलों की भावना करता हुआ छद्मस्थ साधु उदय में आये हुए परीषह उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से निर्भय हो कर अदीनता पूर्वक सहे, खमे और परीषह उपसर्गों से विचलित न होवे।

१. मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मों के उदय से यह पुरुष शराब पिये हुए पुरुष की तरह उन्मत्त (पागल) सा बना हुआ है। इसी से यह पुरुष मुझे गाली देता है, मजाक करता है, भर्त्सना करता है, बांधता है, रोकता है, शरीर के अवयव हाथ, पैर आदि का छेदन करता है, मूर्छित करता है, मरणान्त दुःख देता है, मारता है, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद प्रोन्छन आदि को छीनता है। मेरे से वस्त्रादि को जुदा करता है, वस्त्र फाड़ता है एवं पात्र फोड़ता है तथा उपकरणों की चोरी करता है।

२. यह पुरुष देवता से अधिष्ठित है, इस कारण से गाली देता है। यावत् उपकरणों की चोरी करता है।

३. यह पुरुष मिथ्यात्व आदि कर्म के वशीभूत है और मेरे भी इसी भव में भोगे जाने वाले वेदनीय कर्म उदय में है। इसी से यह पुरुष गाली देता है, यावत् उपकरणों की चोरी करता है।

४. यह पुरुष मूर्ख है। पाप का इसे भय नहीं है। इसीलिये यह गाली आदि परीषह दे रहा है। परन्तु यदि मैं इससे दिये गए परीषह उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अदीन भाव से वीर की तरह सहन न करूँ तो मुझे भी पाप के सिवाय और क्या प्राप्त होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. यह पुरुष आक्रोश आदि परीषह उपसर्ग देता हुआ पाप कर्म बांध रहा है। परन्तु यदि मैं समभाव से इससे दिये गए परीषह उपसर्ग सह लूँगा तो मुझे एकान्त निर्जरा होगी।

यहाँ परीषह उपसर्ग से प्रायः आक्रोश और वध रूप दो परीषह तथा मनुष्य सम्बन्धी प्रद्वेषादि जन्य उपसर्ग से तात्पर्य है।

केवली के परीषह सहन करने के पाँच स्थान -

पाँच स्थान से केवली उदय में आये हुए आक्रोश, उपहास आदि उपरोक्त परीषह, उपसर्ग सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं।

१. पुत्र शोक आदि दुःख से इस पुरुष का चित्त खिन्न एवं विक्षिप्त है। इसलिये यह पुरुष गाली देता है। यावत् उपकरणों की चोरी करता है।

२. पुत्र-जन्म आदि हर्ष से यह पुरुष उन्मत्त हो रहा है। इसी से यह पुरुष गाली देता है, यावत् उपकरणों की चोरी करता है।

३. यह पुरुष देवाधिष्ठित है। इसकी आत्मा पराधीन है। इसी से यह पुरुष मुझे गाली देता है, यावत् उपकरणों की चोरी करता है।

४-५. परीषह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार वीरता पूर्वक, अदीनभाव से सहन करते हुए एवं विचलित न होते हुए मुझे देख कर दूसरे बहुत से छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ उदय में आये हुए परीषह उपसर्ग को सम्यक् प्रकार सहेंगे, खमेंगे एवं परिषह उपसर्ग से धर्म से चलित नहीं होंगे। क्योंकि प्रायः सामान्य लोग महापुरुषों का अनुसरण किया करते हैं।

हेतु और अहेतु

पंच हेऊ पण्णत्ता तंजहा - हेउं ण जाणइ, हेउं ण पासइ, हेउं ण बुज्झइ, हेउं ण अभिगच्छइ, हेउं अण्णाणमरणं मरइ । पंच हेऊ पण्णत्ता तंजहा - हेउणा ण जाणइ, हेउणा ण पासइ, हेउणा ण बुज्झइ, हेउणा ण अभिगच्छइ, हेउणा अण्णाणमरणं मरइ। पंच हेऊ पण्णत्ता तंजहा - हेउं जाणइ, हेउं पासइ, हेउं बुज्झइ, हेउं अभिगच्छइ, हेउं छउमत्थ मरणं मरइ । पंच हेऊ पण्णत्ता तंजहा - हेउणा जाणइ जाव हेउणा छउमत्थ- मरणं मरइ । पंच अहेऊ पण्णत्ता तंजहा - अहेउं ण जाणइ जाव अहेउं छउमत्थमरणं मरइ । पंच अहेऊ पण्णत्ता तंजहा - अहेउणा ण जाणइ जाव अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ । पंच अहेऊ पण्णत्ता तंजहा - अहेउं जाणइ जाव अहेउं केवलिमरणं मरइ । पंच अहेऊ पण्णत्ता तंजहा - अहेउणा ण जाणइ जाव अहेउणा केवलिमरणं मरइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांच अनुत्तर

केवलिस्स पंच अणुत्तरा पण्णत्ता तंजहा - अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए॥ १३॥

कठिन शब्दार्थ - हेऊ - हेतु, **बुज्झइ** - जानता है, **अण्णाणमरणं** - अज्ञान मरण, **अभिगच्छइ**- प्राप्त करता है, **छउमत्थमरणं** - छद्मस्थमरण, **अहेउं** - अहेतु को।

भावार्थ - पांच हेतु कहे गये हैं यथा - हेतु को नहीं जानता है । हेतु को नहीं देखता है । हेतु को नहीं श्रद्धता है । हेतु को प्राप्त नहीं करता है । हेतु को यानी हेतु रूप अज्ञान मरण मरता है । पांच हेतु कहे गये हैं यथा - हेतु से नहीं जानता है । हेतु से नहीं देखता है । हेतु से नहीं श्रद्धता है । हेतु से प्राप्त नहीं करता है । हेतु से अज्ञान मरण मरता है । ये दो सूत्र मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से कहे गये हैं । पांच हेतु कहे गये हैं यथा - हेतु को जानता है । हेतु को देखता है । हेतु को श्रद्धता है । हेतु को प्राप्त करता है । हेतु को यानी हेतु रूप छद्मस्थ मरण मरता है । पांच हेतु कहे गये हैं यथा - हेतु से जानता है यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है । ये दो सूत्र सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से कहे गये हैं । पांच अहेतु कहे गये हैं यथा - अहेतु को नहीं जानता है यावत् अहेतु रूप छद्मस्थ मरण मरता है। पांच अहेतु कहे गये हैं यथा - अहेतु से नहीं जानता हैं यावत् अहेतु से छद्मस्थ मरण मरता है। पांच अहेतु कहे गये हैं यथा - अहेतु को जानता है यावत् अहेतु रूप केवलिमरण मरता है। पांच अहेतु कहे गये हैं यथा - अहेतु से नहीं जानता है यावत् अहेतु से केवलिमरण मरता है।

केवली भगवान् के पांच अनुत्तर यानी प्रधान कहे गये हैं यथा - अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर चारित्र, अनुत्तर तप, अनुत्तर वीर्य ।

विवेचन - हेतु और अहेतु विषयक जो आठ सूत्र मूलपाठ में दिये हैं उनके विषय में टीकाकार श्री अभयदेवसूरि ने लिखा है कि "**गमनिका मात्रमेतत्, तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्ति**" मैंने तो इन सूत्रों का सिर्फ शब्दार्थ लिखा है । इनका भावार्थ एवं आशय क्या है ? सो तो बहुश्रुत महात्मा जानते हैं ।

केवली के पाँच अनुत्तर - केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् में पाँच गुण अनुत्तर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होते हैं - १. अनुत्तर ज्ञान २. अनुत्तर दर्शन ३. अनुत्तर चारित्र ४. अनुत्तर तप ५. अनुत्तर वीर्य।

केवली भगवान् के ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने से केवलज्ञान एवं केवलदर्शन रूप अनुत्तर ज्ञान, दर्शन होते हैं। मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय होने से अनुत्तर चारित्र होता है। तप चारित्र का भेद है। इसलिये अनुत्तर चारित्र होने से उनके अनुत्तर तप भी होता है। शैलेशी अवस्था में होने वाला शुक्लध्यान ही केवली के अनुत्तर तप है। वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा क्षय होने से केवली के अनुत्तर वीर्य (आत्म शक्ति) होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्म प्रभ के पंच कल्याणक

पउमप्पहे णं अरहा पंच चित्ते हुत्था तंजहा - चित्ताहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, चित्ताहिं जाए, चित्ताहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाण दंसणे समुप्पण्णे, चित्ताहिं परिणिव्वुए। पुप्फदंते णं अरहा मूले हुत्था तंजहा - मूलेणं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते एवं जाव मूलेणं परिणिव्वुए। एवं चेव एएणं अभिलावेणं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ -

पउमप्पहस्स चित्ता, मूले पुण होइ पुप्फदंतस्स।
पुव्वाइं आसाढा सीयलस्सुत्तर विमलस्स भद्दवया ॥ १॥
रेवइया अणंत जिणो, पूसो धम्मस्स, संतिणो भरणी।
कुंथुस्स कत्तियाओ, अरस्स तह रेवईओ य ॥ २॥
मुणिसुव्वयस्स सवणो अस्सिणी णमिणो, य णेमिणो चित्ता।
पासस्स विसाहाओ, पंच य हत्थुत्तरो वीरो ॥ ३॥

समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे हुत्था तंजहा - हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए, हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए, हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। १४।

॥ इइ पंचमट्ठाणस्स पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ - चुए - च्यवन हुआ था, **चइत्ता** - चव कर, **गब्भं वक्कंते** - गर्भ में आये, **जाए**- जन्म हुआ, **मुंडे** - मुण्डित, **भवित्ता** - होकर, **अगाराओ अणगारियं पव्वइए** - गृहस्थावास छोड़ कर प्रव्रज्या अंगीकार की, **अणंते** - अनन्त, **अणुत्तरे** - अनुत्तर-उत्कृष्ट, **णिव्वाघाए** - निर्व्याघात, **णिरावरणे**- निरावरण-आवरण रहित, **कसिणे** - कृत्स्न, **पडिपुण्णे** - प्रतिपूर्ण, **केवलवरणाणदंसणे** - प्रधान केवलज्ञान और केवल दर्शन, **समुप्पणे** - उत्पन्न हुए, **परिणिव्वुए** - परिनिवृत्त-मोक्ष पधारे।

भावार्थ - छठे तीर्थङ्कर भगवान् पद्मप्रभ स्वामी के पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए थे यथा- चित्रा नक्षत्र में नववें ग्रैवेयक से उनका च्यवन हुआ था वहाँ से चव कर माघ कृष्णा छठ को कोशाम्बी नगरी के श्रीधर राजा की सुषमा महारानी के गर्भ में आये। कार्तिक कृष्णा बारस को चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ। कार्तिक शुक्ल तेरस को चित्रा नक्षत्र में मुण्डित होकर गृहस्थावास छोड़ कर प्रव्रज्या अङ्गीकार की। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र में अनन्त, उत्कृष्ट, निर्व्याघात यानी अप्रतिपाती,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवरण रहित, कृत्स्न यानी सब पदार्थों को विषय करने वाला, प्रतिपूर्ण यानी पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अखण्ड, प्रधान केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुए और मिगसर कृष्णा ग्यारस को चित्रा नक्षत्र में मोक्ष पधारे ।

नववें तीर्थङ्कर भगवान् श्री पुष्पदंत स्वामी अपरनाम श्री सुविधिनाथ स्वामी के पांच कल्याणक मूला नक्षत्र में हुए थे यथा – फाल्गुन कृष्णा नवमी को नववें देवलोक से मूला नक्षत्र में चवे थे, चव कर काकन्दी नगरी के सुग्रीव राजा की रामा महारानी के गर्भ में आये । इसी तरह से मिगसर कृष्णा छठ को मूला नक्षत्र में प्रव्रज्या ग्रहण की । कार्तिक शुक्ला तीज को मूला नक्षत्र में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और भादवा सुदी नवमी को मूला नक्षत्र में मोक्ष पधारे । इसी प्रकार इस अभिलापक के अनुसार इन गाथाओं का अर्थ जानना चाहिए –

छठे तीर्थङ्कर श्री पद्मप्रभ स्वामी के पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए थे । नववें तीर्थङ्कर श्री पुष्पदंत स्वामी अपरनाम श्री सुविधिनाथ स्वामी के पांच कल्याणक मूला नक्षत्र में हुए थे। दसवें तीर्थङ्कर श्री शीतलनाथ स्वामी के पांच कल्याणक पूर्वाषाढा नक्षत्र में हुए थे । तेरहवें तीर्थङ्कर श्री विमलनाथ स्वामी के पांच कल्याणक उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र में हुए थे ।। १ ॥

चौदहवें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथस्वामी के पांच कल्याणक रेवती नक्षत्र में हुए थे। पन्द्रहवें तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथस्वामी के पुष्य नक्षत्र में, सोलहवें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथस्वामी के भरणी नक्षत्र में, सतरहवें तीर्थङ्कर श्री कुन्थुनाथस्वामी के कृतिका नक्षत्र में और अठारहवें तीर्थङ्कर श्री अरनाथस्वामी के पांच कल्याणक रेवती नक्षत्र में हुए थे ।। २ ॥

बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के श्रवण नक्षत्र में, इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमिनाथ स्वामी के अश्विनी नक्षत्र में, बाईसवें तीर्थङ्कर श्री अरिष्टनेमि स्वामी के चित्रा नक्षत्र में और तेईसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ स्वामी के पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए थे । चौवीसवें तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी के पांच बातें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में हुई थी ।। ३ ॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पांच बातें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में हुई थी यथा – उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में दसवें देवलोक से च्यवन हुआ था और चव कर देवानन्दा के गर्भ में आये । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में देवानन्दा की कुक्षि से महारानी त्रिशला के गर्भ में संहरण हुआ । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म हुआ । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में मुण्डित होकर दीक्षा अङ्गीकार की और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में अनन्त, प्रधान केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ये पांच बातें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुई थी । महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक कार्तिक कृष्णा अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में हुआ था ।

नोट – श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पांच बातों के लिये मूल पाठ में "**पंच हत्थुत्तरे,**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हत्थुत्तराहिं' शब्द दिये हैं। जिसकी संस्कृत छाया टीकाकार ने इस प्रकार की है – "**हस्तोपलक्षिता उत्तराः, हस्तो वा उत्तरो यासां ता हस्तोत्तराः ॥**"

अर्थ – जिस नक्षत्र के बाद हस्त नक्षत्र आता है उसको हस्तोत्तरा कहते हैं। अट्ठाईस नक्षत्रों में क्रम से गिनने पर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के बाद "**हस्त नक्षत्र**" आता है। इसलिये यहाँ पर "**हस्तोत्तरा**" शब्द से उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र लिया गया है। किन्तु हस्तोत्तरा नाम का कोई नक्षत्र नहीं है।

पञ्च कल्याणक – तीर्थंकर भगवान् के नियमपूर्वक पांच कल्याणक होते हैं। वे दिन तीनों लोकों में आनन्ददायी तथा जीवों के मोक्ष रूप कल्याण के साधक हैं। पञ्च कल्याणक के अवसर पर देवेन्द्र आदि भक्ति भाव पूर्वक कल्याणकारी उत्सव मनाते हैं। पञ्च कल्याणक ये हैं –

१. गर्भ कल्याणक (च्यवन कल्याणक) २. जन्म कल्याणक ३. दीक्षा (निष्क्रमण) कल्याणक ४. केवलज्ञान कल्याणक ५. निर्वाण कल्याणक।

नोट – गर्भ कल्याणक के अवसर पर देवेन्द्र आदि के उत्सव का वर्णन नहीं पाया जाता है। भगवान् श्री महावीर स्वामी के गर्भापहरण को भी कोई कोई आचार्य कल्याणक मानते हैं। गर्भापहरण कल्याणक की अपेक्षा भगवान् श्री महावीर स्वामी के छह कल्याणक कहलाते हैं।

।। इति पांचवें स्थान का पहला उद्देशक समाप्त ।।

पांचवें स्थान का दूसरा उद्देशक

अपवाद मार्ग कथन

णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा तंजहा – गंगा, जउणा, सरऊ, एरावई, मही । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तंजहा – भयंसि वा, दुब्भिक्खंसि वा, पव्वहेज्ज वा णं कोई उदओघंसि वा, एज्जमाणंसि महया वा, अणारिएसु । णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढम पाउसंसि गामाणुगामं दुइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तंजहा – भयंसि वा, दुब्भिक्खंसि वा, जाव महया वा अणारिएहिं । वासावासं पज्जोसवित्ताणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दुइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ तंजहा – णाणट्ठयाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरियउवज्झायाण वा से वीसुंभेज्जा, आयरिया उवज्झायाण वा बहिया वेयावच्चं करणयाए॥ १५॥

कठिन शब्दार्थ - उद्दिट्ठाओ - सामान्य रूप से कही हुईं, **गणियाओ** - गिनाई हुईं, **वियंजियाओ**- प्रकट की गईं, **महण्णवाओ** - समुद्र के समान महान्, **अंतोमासस्स** - एक महीने में, **दुक्खुत्तो** - दो बार, **तिक्खुत्तो** - तीन बार, **उत्तरित्तए** - उतरना, **संतरित्तए** - बार-बार उतरना, **भयंसि** - भय से, **दुब्भिक्खंसि**- दुर्भिक्ष-दुष्काल में, **एज्जमाणंसि** - बाढ़ आ जाने पर, **पढमपाउसंसि** - प्रथम वर्षाकाल में, **वीसुंभेज्जा** - मरणादि अथवा रोगादि कारण से।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वियों को सामान्य रूप से कही हुई, गिनाई हुई नाम लेकर प्रगट की गई, समुद्र के समान महान् अथवा समुद्र में मिलने वाली गङ्गा, यमुना, सरयू, ऐरावती और मही इन पांच महानदियों को एक महीने में दो बार अथवा तीन बार भुजाओं से तैर कर उतरना अथवा एक बार उतरना और बारबार उतरना नहीं कल्पता है किन्तु पांच कारणों से इन उपरोक्त नदियों को तैर कर पार करना कल्पता है यथा - राजा आदि के भय से, दुर्भिक्ष यानी दुष्काल पड़ जाय तो, कोई पुरुष नदी में गिरा देवे तो, जल का महान् वेग आ जाय तो यानी बाढ़ आ जाय तो अथवा अनार्य म्लेच्छ लोगों का उपद्रव हो जाय तो, इन पांच कारणों से अपवाद मार्ग में उपरोक्त पांच्र महानदियों को तैर कर पार करना कल्पता है। साधु और साध्वी को प्रथम वर्षाकाल में यानी चातुर्मास प्रारम्भ होने से सम्वत्सरी तक अर्थात् भादवा सुदि पांचम तक ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है किन्तु पांच कारणों से कल्पता है यथा - राजा आदि का भय होने पर अथवा दुष्काल पड़ जाने पर अथवा कोई राजा आदि वहाँ से निकाल दे अथवा बाढ़ आ जाय अथवा अनार्य म्लेच्छ आदि का उपद्रव हो जाय तो वहाँ से विहार करना कल्पता है। वर्षाकाल में एक जगह ठहरे हुए साधु और साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है किन्तु पांच कारणों से कल्पता है यथा-ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, अथवा आचार्य उपाध्याय के मरणादि एवं रोगादि कारण से अथवा क्षेत्र से बाहर रहे हुए आचार्य उपाध्याय की वैयावृत्य करने के लिए, इन पांच कारणों से अपवाद मार्ग में चातुर्मास में विहार करना कल्पता है।

विवेचन - पाँच महानदियों को एक मास में दो बार अथवा तीन बार पार करने के पाँच कारण-

उत्सर्ग मार्ग से साधु साध्वियों को पाँच महानदियों (गंगा, यमुना, सरयू, ऐरावती और मही) को एक मास में दो बार अथवा तीन बार उतरना या नौकादि से पार करना नहीं कल्पता है। यहाँ पाँच महानदियाँ गिनाई गई हैं पर शेष भी बड़ी नदियों को पार करना निषिद्ध है।

परन्तु पाँच कारण होने पर महानदियाँ एक मास में दो बार या तीन बार अपवाद रूप में पार की जा सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. राज विरोधी आदि से उपकरणों के चोरे जाने का भय हो।

२. दुर्भिक्ष होने से भिक्षा नहीं मिलती हो।

३. कोई विरोधी गंगा आदि महानदियों में फेंक देवे।

४. गंगा आदि महानदियाँ बाढ़ आने पर उन्मार्ग गामी हो जायँ, जिससे साधु साध्वी बह जाय।

५. जीवन और चारित्र के हरण करने वाले म्लेच्छ, अनार्य आदि से पराभव हो।

चौमासे के प्रारम्भिक पचास दिनों में विहार करने के पाँच कारण -

पाँच कारणों से साधु साध्वियों को प्रथम प्रावृट् अर्थात् चौमासे के पहले पचास दिनों में अपवाद रूप से विहार करना कल्पता है।

१. राज-विरोधी आदि से उपकरणों के चोरे जाने का भय हो।

२. दुर्भिक्ष होने से भिक्षा नहीं मिलती हो।

३. कोई ग्राम से निकाल देवे।

४. पानी की बाढ़ आ जाय।

५. जीवन और चारित्र का नाश करने वाले अनार्य दुष्ट पुरुषों से पराभव हो।

वर्षावास अर्थात् चौमासे के पिछले ७० दिनों में विहार करने के पाँच कारण -

वर्षावास अर्थात् चौमासे के पिछले सत्तर दिनों में नियम पूर्वक रहते हुए साधु, साध्वियों को ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है। पर अपवाद रूप में पाँच कारणों से चौमासे के पिछले ७० दिनों में साधु, साध्वी विहार कर सकते हैं।

१. ज्ञानार्थी होने से साधु, साध्वी विहार कर सकते हैं। जैसे कोई अपूर्व शास्त्रज्ञान किसी आचार्यादि के पास हो और वह संथारा करना चाहता हो। यदि वह शास्त्र ज्ञान उक्त आचार्यादि से ग्रहण न किया गया तो उसका विच्छेद हो जायगा। यह सोच कर उसे ग्रहण करने के लिये साधु साध्वी उक्त काल में भी ग्रामानुग्राम विहार कर सकते हैं।

२. दर्शनार्थी होने से साधु साध्वी विहार कर सकते हैं। जैसे कोई दर्शन की प्रभावना करने वाले शास्त्र ज्ञान की इच्छा से विहार करे।

३. चारित्रार्थी होने से साधु साध्वी विहार कर सकते हैं। जैसे कोई क्षेत्र अनेषणा, स्त्री आदि दोषों से दूषित हो तो चारित्र की रक्षा के लिये साधु साध्वी विहार कर सकते हैं।

४. आचार्य उपाध्याय काल कर जाय तो गच्छ में अन्य आचार्यादि के न होने पर दूसरे गच्छ में जाने के लिये साधु साध्वी विहार कर सकते हैं।

५. वर्षा क्षेत्र में बाहर रहे हुए आचार्य, उपाध्यायादि की वैयावृत्य के लिये आचार्य महाराज भेजे तो साधु विहार कर सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुद्घातिक, अंतःपुर में प्रवेश के कारण

पंच अणुग्घाइया पण्णत्ता तंजहा - हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं पडिसेवेमाणे, राइभोयणं भुंजेमाणे, सागारियपिंडं भुंजेमाणे, रायपिंडं भुंजेमाणे । पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे णाइक्कमइ तंजहा - णगरं सिया सव्वओ समंता गुत्ते गुत्तदुवारे, बहवे समण माहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा तेसिं विण्णवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसिज्जा, पाडिहारियं वा पीढफलगसेज्जा संथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसिज्जा, हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीए रायंतेउरमणुपविसिज्जा, परो वा णं सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाए रायंतेउरमणुपविसेज्जा, बहिया वा णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वओ समंता संपरिक्खिवित्ता णं णिवेसिज्जा इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे जाव णाइक्कमइ॥ १६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुग्घाइया** - अनुद्घातिक, **हत्थकम्मं** - हस्तकर्म, **सागारियपिंडं** - शय्यातर पिण्ड को, **रायपिंडं** - राज पिण्ड को, **रायंतेउरमणुपविसमाणे** - राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ, **गुत्ते** - कोट से घिरा हुआ, **गुत्तदुवारे** - दरवाजे बंद किये हुए, **विण्णवणट्ठयाए** - दशा बतलाने के लिए, **पच्चप्पिणमाणे** - वापिस देने के लिए, **बलसा** - हठात्।

भावार्थ - पांच अनुद्घातिक कहे गये हैं यथा - हस्तकर्म करने वाला, मैथुन सेवन करने वाला, रात्रि भोजन करने वाला, शय्यातर पिण्ड को भोगने वाला और राजपिण्ड भोगने वाला ।

पांच कारणों से राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है यथा - चारों तरफ से नगर कोट से घिरा हुआ हो और उसके दरवाजे बन्द किये हुए हो, उस समय में बहुत से श्रमण माहण यानी मूलगुण उत्तरगुण रूप चारित्र का पालन करने वाले संयती साधु अथवा श्रमण यानी बौद्ध भिक्षु और माहन यानी ब्राह्मण आहार पानी के लिए नगर से बाहर जाने में और वापिस नगर में प्रवेश करने में समर्थ न हों तो उन श्रमण माहनों की दशा को बतलाने के लिए साधु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करे यानी यदि उस समय राजा अन्तःपुर में बैठा हो तो साधु वहाँ भी जा सकता है अथवा राजकाज का काम रानी के हाथ में हो तो उपरोक्त प्रयोजन के लिए साधु रानी के पास अन्तःपुर में जा सकता है । पडिहारी रूप से लाये हुए पीठ, फलग यानी पाट पाटला, शय्या संस्तारक आदि को वापिस देने के लिए साधु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है । सामने आते हुए दुष्ट घोड़े या हाथी के डर से साधु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है । कोई दूसरा पुरुष अकस्मात् बाहु यानी भुजा पकड़ कर हठात् यानी जबर्दस्ती से साधु को राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवे । साधु नगर से बाहर बगीचे में अथवा उदयान में गया हुआ हो और उसी समय राजा का अन्तःपुर भी क्रीड़ा आदि के लिए उसी बगीचे या उदयान में चला जाय और चारों तरफ से घेर कर वहाँ ठहर जाय तो साधु भी वहाँ रह सकता है । इन पांच कारणों से राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ।

विवेचन - अनुद्घात - जिस प्रायश्चित्त में कमी न की जा सके वह अनुद्घात कहलाता है । ऐसा प्रायश्चित्त जिनको दिया जाय वे अनुद्घातिक कहलाते हैं ।

राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करने के पाँच कारण - पाँच कारणों से राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ साधु के आचार या भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है।

१. नगर प्राकार (कोट) से घिरा हुआ हो और दरवाजे बन्द हों। इस कारण बहुत से श्रमण, माहण, आहार पानी के लिये न नगर से बाहर निकल सकते हों और न प्रवेश ही कर सकते हों। उन श्रमण, माहण आदि के प्रयोजन से अन्तःपुर में रहे हुए राजा को या अधिकार प्राप्त रानी को मालूम कराने के लिये मुनि राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकते हैं।

२. पडिहारी (कार्य समाप्त होने पर वापिस करने योग्य) पाट, पाटले, शय्या, संथारे को वापिस देने के लिये मुनि राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करे। क्योंकि जो वस्तु जहाँ से लाई गई है उसे वापिस वहीं सौंपने का साधु का नियम हैं।

पाट, पाटलादि लेने के लिये अन्तःपुर में प्रवेश करने का भी इसी में समावेश होता है। क्योंकि ग्रहण करने पर ही वापिस करना सम्भव है।

३. मतवाले दुष्ट हाथी, घोड़े सामने आ रहे हों उनसे अपनी रक्षा के लिये साधु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है।

४. कोई व्यक्ति अकस्मात् या जबर्दस्ती से भुजा पकड़ कर साधु को राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करा देवे।

५. नगर से बाहर आराम या उद्यान में रहे हुए साधु को राजा का अन्तःपुर (अन्तेउर) वर्ग चारों तरफ से घेर कर बैठ जाय।

गर्भधारण के कारण

पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी वि गब्भं धरेज्जा तंजहा - इत्थी दुव्वियडा दुणिसण्णा सुक्कपोग्गले अहिट्ठिज्जा, सुक्कपोग्गल संसिट्ठे वा से वत्थे अंतो जोणिए अणुपवेसिज्जा, सइं वा सा सुक्कपोग्गले अणुपवेसिज्जा, परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपवेसिज्जा, सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुपवेसिज्जा । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव धरेज्जा । पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं णो धरेज्जा तंजहा - अपत्तजोव्वणा, अइकंतजोव्वणा, जाइवंझा, गेलण्णपुट्ठा, दोमणंसिया । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव णो धरेज्जा । पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि णो गब्भं धरेज्जा तंजहा - णिच्चोउया, अणोउया, वावण्णसोया, वाविद्धसोया, अणंगपडिसेविणी । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं णो धरेज्जा । पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि णो गब्भं धरेज्जा तंजहा - उउम्मि णो णिगामपडिसेविणी यावि भवइ, समागया वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति, उदिण्णे वा से पित्तसोणिए, पुरा वा देवकम्मुणा, पुत्तफले वा णो णिद्दिट्ठे भवइ । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं णो धरेज्जा॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - असंवसमाणी - संवास (संगम) न करती हुई, **धरेज्जा** - धारण कर सकती है, **दुव्वियडा** - वस्त्र रहित होकर, **दुणिसण्णा** - खराब आसन से बैठी हुई, **सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे** - वीर्य के पुद्गलों से भरे हुए, **अंतोजोणिए** - योनि में, **अणुपवेसिज्जा** - प्रवेश करा दे, **आयममाणी** - स्नान करती हुई, **अपत्तजोव्वणा** - अप्राप्त यौवना, **अइकंतजोव्वणा** - अतिक्रान्त यौवना, **णिच्चोउया** - नित्य ऋतुका, **अणोउया** - अनृतुका, **वावण्णसोया** - व्यापन्नस्रोता, **वाविद्धसोया** - व्याविद्ध स्रोता **अणंगपडिसेविणी** - अनंगक्रीडा करने वाली।

भावार्थ - पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास यानी संगम न करती हुई भी गर्भ धारण कर सकती है यथा - यदि कोई स्त्री वस्त्र रहित होकर अथवा फटे वस्त्र पहन कर खराब आसन से बैठी हुई हो और उस स्थान पर वीर्य के पुद्गल पड़े हुए हों उनको योनि द्वारा खींच लेवे तो गर्भ रह सकता है। अथवा वीर्य के पुद्गलों से भरे हुए वस्त्र को स्त्री की योनि में प्रवेश करा देवे और वह उन पुद्गलों को ग्रहण करे तो गर्भ रह सकता है अथवा पुत्र की अभिलाषा से वह स्त्री स्वयं वीर्य के पुद्गलों को अपनी योनि में प्रवेश करा देवे तो गर्भ रह सकता है अथवा दूसरी स्त्री उसकी योनि में वीर्य के पुद्गलों को प्रवेश करा देवे तो गर्भ रह सकता है । अथवा कोई स्त्री तालाब या बावड़ी आदि में ठण्डे जल से स्नान करती हो उस समय उस पानी में पहले स्नान किये हुए पुरुष के वीर्य के पुद्गल पड़े हुए हों वे पुद्गल उस स्त्री की योनि में प्रवेश कर जाय तो गर्भ रह सकता है । इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संगम किये बिना भी गर्भ धारण कर सकती है । स्त्री पुरुष के साथ रहती हुई भी यानी संगम करने पर भी पांच कारणों से गर्भ धारण नहीं कर सकती है यथा - अप्राप्त यौवना यानी यौवन अवस्था को प्राप्त न हुई हो, अतिक्रान्तयौवना यानी जिसकी यौवन अवस्था व्यतीत हो चुकी हो, जाति वन्ध्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यानी जो जन्म से ही बांझ हो, रोग से पीडित हो, शोक आदि मानसिक चिन्ता से युक्त हो, इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ रहती हुई भी गर्भ धारण नहीं कर सकती है ।

पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ रहती हुई भी यानी संगम करने पर भी गर्भ धारण नहीं कर सकती है यथा - नित्यऋतुका यानी सदा ऋतुसम्बन्धी रक्त बहता हो, अनृतुका यानी जिस स्त्री का ऋतुस्राव बन्द हो गया हो, व्यापन्न स्रोता यानी रोगादि के कारण जिसका गर्भाशय नष्ट हो गया हो, व्याविद्धस्रोता यानी जिसका गर्भाशय वात आदि के कारण शक्तिरहित हो और अनंगक्रीड़ा करने वाली अथवा बहुत अधिक कामसेवन करने वाली, वेश्या आदि, इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ रहती हुई भी गर्भ धारण नहीं कर सकती है। पांच कारणों से स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती है यथा - ऋतुकाल में यथेच्छ कामसेवन नहीं करे, अथवा उसकी योनि में आये हुए भी वीर्य के पुद्गल योनि दोष से वापिस योनि से बाहर निकल जावे, अथवा उसकी योनि का रक्त अत्यन्त पित्तों से युक्त होने से निर्बीज हो गया हो, अथवा गर्भधारण करने से पहले देवशक्ति के द्वारा गर्भधारण की शक्ति नष्ट कर दी गई हो अथवा पूर्व जन्म में पुत्रप्राप्ति रूप कर्म उपार्जन न किये हों । इन पांच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ रहती हुई भी यानी संगम करने पर भी गर्भ धारण नहीं कर सकती है ।

विवेचन - इस काल में १२ वर्ष तक की कन्या अप्राप्तयौवना कहलाती है और ५० अथवा ५५ वर्ष की स्त्री अतिक्रान्त यौवना कहलाती है ।

एकत्र स्थान, शय्या निषद्या के पांच बोल

पंचहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीओ य एगयओ ठाणं वा सिज्जं वा णिसीहियं वा चेएमाणे णाइक्कमंति तंजहा - अत्थेगइया णिग्गंथा णिग्गंथीओ य एगं महं अगामियं छिण्णावायं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा तत्थ एगयओ ठाणं वा सिज्जं वा णिसीहियं वा चेएमाणे णाइक्कमंति, अत्थेगइया णिग्गंथा णिग्गंथीओ य गामंसि वा णयरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा वासं उवागया एगइया तत्थ उवस्सयं लभंति एगइया णो लभंति तत्थ एगइओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति । अत्थेगइया णिग्गंथा णिग्गंथीओ य णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवागया तत्थ एगइओ जाव णाइक्कमंति । आमोसगा दीसंति ते इच्छंति णिग्गंथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए तत्थ एगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति । जुवाणा दीसंति ते इच्छंति णिग्गंथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए तत्थ एगयओ ठाणं वा जाव णाइक्कमंति । इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव णाइक्कमंति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ तंजहा - खित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ । एवमेएणं गमएणं दित्तचित्ते, जक्खाइट्ठे, उम्मायपत्ते, णिग्गंथी पव्वावियए समणे णिग्गंथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णाइक्कमइ॥ १८॥

कठिन शब्दार्थ - णिसीहियं - स्वाध्याय, **अगामियं** - गांव रहित, **छिण्णावायं** - छिन्नापात-मुसाफिरों के आगमन से रहित, **दीहमद्धं** - लम्बे मार्ग वाले, **अडविं** - अटवी-जंगल में, **उवस्सयं** - उपाश्रय, **आमोसगा** - चोर, **चीवरपडियाए** - वस्त्र चुराने के अभिप्राय से, **सचेलियाहिं** - वस्त्र सहित।

भावार्थ - साधु और साध्वी पांच कारणों से एक जगह निवास अथवा कायोत्सर्ग, शय्या तथा स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं यथा - कोई साधु और साध्वी एक महान् आसपास गांव रहित, मुसाफिरों के आगमन से रहित लम्बे मार्ग वाले जंगल में चले गये हों वहाँ एक जगह निवास अथवा कायोत्सर्ग, शय्या तथा स्वाध्याय करते हुए साधु साध्वी भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । कोई साधु और साध्वी किसी गांव अथवा नगर अथवा राजधानी में निवासार्थ आये हों, उनमें से किन्हीं को वहाँ उपाश्रय यानी ठहरने के लिए स्थान मिल जाय और किन्हीं को स्थान न मिले तो वैसी परिस्थिति में एक ही जगह निवास अथवा कायोत्सर्ग शय्या और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । कोई साधु और साध्वी नागकुमार देव के मन्दिर में अथवा सुपर्णकुमार देव के मन्दिर में निवासार्थ आये हों वहाँ एक ही जगह कायोत्सर्ग आदि करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । कोई चोर दिखाई दे और वे वस्त्र चुरा लेने के अभिप्राय से साध्वियों को पकड़ना चाहते हों तो उनकी रक्षा करने के लिए एक ही जगह कायोत्सर्ग आदि करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । कोई जवान आदमी दिखाई दे और वे मैथुन सेवन करने के अभिप्राय से साध्वियों को पकड़ना चाहे तो वहाँ उनके शील की रक्षा के लिए एक ही जगह कायोत्सर्ग आदि करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

पांच कारणों से वस्त्र रहित श्रमण निर्ग्रन्थ वस्त्र सहित साध्वियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं यथा - कोई श्रमण निर्ग्रन्थ शोक से पागल चित्त वाला होकर नग्न हो गया हों और उसकी रक्षा करने वाले दूसरे साधु वहाँ मौजूद न हों तो साध्वियाँ उस पागल नग्न साधु की पुत्रवत् रक्षा करे । इस प्रकार वह वस्त्र रहित पागल चित्त वाला साधु उन वस्त्रसहित साध्वियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । इसी तरह दृप्तचित्त वाला यानी अधिक हर्ष के कारण पागल चित्त वाला, यक्षाविष्ट यानी भूतादि के कारण पागल चित्त वाला, उन्माद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त पागल चित्त वाला और किसी कारण से साध्वी ने अपने छोटे पुत्र आदि को दीक्षा दे दी हो, वह बालक होने से नग्न रहता हो, ये सब वस्त्ररहित साधु उनके रक्षक दूसरे साधु न होने से वस्त्रसहित साध्वियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

विवेचन - साधु साध्वी के एकत्र स्थान, शय्या, निषद्या के पाँच बोल - उत्सर्ग रूप में साधु, साध्वी का एक जगह कायोत्सर्ग करना, स्वाध्याय करना, रहना, सोना आदि निषिद्ध है। परन्तु पाँच बोलों से साधु, साध्वी एक जगह कायोत्सर्ग, स्वाध्याय करें तथा एक जगह रहें और शयन करें तो वे भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

१. दुर्भिक्षादि कारणों से कोई साधु, साध्वी एक ऐसी लम्बी अटवी में चले जाय, जहाँ बीच में न ग्राम हो और न लोगों का आना जाना हो। वहाँ उस अटवी में साधु साध्वी एक जगह रह सकते हैं और कायोत्सर्ग आदि कर सकते हैं।

२. कोई साधु साध्वी, किसी ग्राम, नगर या राजधानी में आये हों। वहाँ उनमें से एक को रहने के लिये जगह मिल जाय और दूसरों को न मिले। ऐसी अवस्था में साधु, साध्वी एक जगह रह सकते हैं और कायोत्सर्ग आदि कर सकते हैं।

३. कोई साधु या साध्वी नागकुमार, सुवर्ण कुमार आदि के देहरे मन्दिर में उतरे हों। देहरा सूना हो अथवा वहाँ बहुत से लोग हों और कोई उनके नायक न हो तो साध्वी की रक्षा के लिये दोनों एक स्थान पर रह सकते हैं और कायोत्सर्ग आदि कर सकते हैं।

४. कहीं चोर दिखाई दें और वे वस्त्र छीनने के लिये साध्वी को पकड़ना चाहते हों तो साध्वी की रक्षा के लिये साधु साध्वी एक स्थान पर रह सकते हैं और कायोत्सर्ग, स्वाध्याय आदि कर सकते हैं।

५. कोई दुराचारी पुरुष साध्वी को शील भ्रष्ट करने की इच्छा से पकड़ना चाहे तो ऐसे अवसर पर साध्वी की रक्षा के लिये साधु साध्वी एक स्थान पर रह सकते हैं और स्वाध्यायादि कर सकते हैं।

आस्रव,संवर

पंच आसवदारा पण्णत्ता तंजहा - मिच्छत्तं, अविरई, पमाए, कसाया, जोगा । पंच संवरदारा पण्णत्ता तंजहा - सम्मत्तं, विरई, अपमाओ, अकसाइत्तं, अजोगित्तं ।

दण्ड और क्रिया

पंच दंडा पण्णत्ता तंजहा - अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे, अकम्हादंडे, दिट्ठिविप्परियासियादंडे ।

पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया, मिच्छादंसणवत्तिया ।

मिच्छदिट्ठियाणं णेरइयाणं पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आरंभिया जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादंसणवत्तिया एवं सव्वेसिं णिरंतरं जाव मिच्छदिट्ठियाणं वेमाणियाणं, णवरं विगलिंदिया मिच्छदिट्ठि ण भण्णंति, सेसं तहेव । पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - काइया, अहिगरणिया, पाउसिया,पारितावणिया, पाणाइवाय किरिया । णेरइयाणं पंच एवं चेव णिरंतरं जाव वेमाणियाणं । पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आरंभिया जाव मिच्छादंसणवत्तिया। णेरइयाणं पंच किरिया, णिरंतरं जाव वेमाणियाणं। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - दिट्ठिया, पुट्ठिया, पाडुच्चिया, सांतोवणिवाइया, साहत्थिया । एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं । पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - णेसत्थिया, आणवणिया, वेयारणिया, अणाभोगवत्तिया, अणवकंखवत्तिया, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। पंच किरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पेज्जवत्तिया, दोसवत्तिया, पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, ईरियावहिया । एवं मणुस्साण वि सेसाणं णत्थि ॥ १९ ॥

कठिन शब्दार्थ - आसवदारा - आस्रवद्वार, **मिच्छत्तं** - मिथ्यात्व, **अविरई** - अविरति, **पमाए** - प्रमाद, **कसाया** - कषाय, **जोगा** - योग, **संवरदारा** - संवर द्वार, **सम्मत्तं** - सम्यक्त्व, **विरई** - विरति, **अपमाओ** - अप्रमाद, **अकसाइत्तं** - अकषायीपना, **अयोगित्तं** - अयोगीपना, **अट्ठादंडे** - अर्थदण्ड, **अणट्ठादंडे** - अनर्थदण्ड, **हिंसादण्डे** - हिंसा दण्ड, **अकम्हादंडे** - अकस्मात् दंड, **दिट्ठिविप्परियासियादंडे** - दृष्टि विपर्यास दंड, **किरियाओ** - क्रियाएं, **आरंभिया** - आरम्भिकी, **परिग्गहिया** - पारिग्रहिकी, **मायावत्तिया** - मायाप्रत्ययिकी, **अपच्चक्खाणकिरिया** - अप्रत्याख्यानिकी क्रिया, **मिच्छादंसणवत्तिया** - मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, **काइया** - कायिकी, **अहिगरणिया** - आधिकरणिकी, **पाउसिया** - प्राद्वेषिकी, **पारितावणिया** - पारितापनिकी, **पाणाइवाय किरिया** - प्राणातिपातिकी क्रिया, **दिट्ठिया** - दृष्टिजा, **पुट्ठिया** - पृष्टजा, **पाडुच्चिया** - प्रातीत्यिकी, **सामंतोवणिवाइया** - सामंतोपनिपातिकी, **साहत्थिया** - स्वहस्तिकी, **णेसत्थिया** - नैसृष्टिकी, **आणवत्तिया** - आज्ञापनिकी, **वेयारणिया** - वैदारणिकी, **अणाभोगवत्तिया** - अनाभोग प्रत्यया, **अणवकंखवत्तिया** - अनवकांक्षा प्रत्यया, **पेज्जवत्तिया** - राग प्रत्यया, **दोसवत्तिया** - द्वेष प्रत्यया, **पओगकिरिया** - प्रयोग क्रिया, **समुदाणकिरिया** - सामुदानिकी क्रिया, **ईरियावहिया** - ईर्यापथिकी।

भावार्थ - पांच आस्रवद्वार कहे गये हैं यथा - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग । पांच संवरद्वार कहे गये हैं यथा - सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषायीपना और अयोगीपना । पांच दण्ड कहे गये हैं यथा - अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड, हिंसादण्ड, अकस्माद्दण्ड, दृष्टिविपर्यास दण्ड ।

पांच क्रियाएं कही गई है यथा - आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया और मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी। मिथ्यादृष्टि नैरयिकों में पांच क्रियाएं कही गई हैं यथा - आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी। वैमानिक देवों तक चौवीस ही दण्डकों में सभी मिथ्यादृष्टि जीवों के इसी प्रकार पांच क्रियाएं जान लेनी चाहिए किन्तु विकलेन्द्रिय यानी एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय इन के साथ मिथ्यादृष्टि विशेषण लगाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विकलेन्द्रिय * सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। पांच क्रियाएं कही गई हैं यथा - कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया। नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी चौवीस ही दण्डकों के जीवों में ये उपरोक्त पांचों क्रियाएं पाई जाती हैं। पांच क्रियाएं कही गई हैं यथा - आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी। नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी चौबीस ही दण्डकों के जीवों में ये उपरोक्त पांच क्रियाएं पाई जाती है। पांच क्रियाएं कही गई है यथा - दृष्टिजा, पृष्टिजा या स्पृष्टिजा, प्रातीत्यिकी, सामंतोपनिपातिकी और स्वहस्तिकी। नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डकों के जीवों में ये उपरोक्त क्रियाएं पाई जाती हैं। पांच क्रियाएं कही गई हैं यथा - नैसृष्टिकी, आज्ञापनी, वैदारिणिकी, अनाभोग प्रत्यया, अनवकांक्षा प्रत्यया। नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डकों के जीवों में ये उपरोक्त क्रियाएं पाई जाती हैं। पांच क्रियाएं कही गई हैं यथा-रागप्रत्यया, द्वेषप्रत्यया, प्रयोगक्रिया, सामुदानिकी क्रिया और ईर्यापथिकी। ये उपरोक्त पांचों क्रियाएं मनुष्यों में ही पाई जाती हैं, बाकी तेईस दण्डकों के जीवों में से किसी में भी नहीं पाई जाती हैं।

विवेचन - आस्रव - जिनसे आत्मा में आठ प्रकार के कर्मों का प्रवेश होता है वह आस्रव है।

जीव रूपी तालाब में कर्म रूप पानी का आना आस्रव है। जैसे जल में रही हुई नौका (नाव) में छिद्रों द्वारा जल प्रवेश होता है। इसी प्रकार जीवों की पाँच इन्द्रिय, विषय, कषायादि रूप छिद्रों द्वारा कर्म रूप पानी का प्रवेश होता है। नाव में छिद्रों द्वारा पानी का प्रवेश होना द्रव्य आस्रव है और जीव में विषय कषायादि से कर्मों का प्रवेश होना भावास्रव कहा जाता है।

आस्रव के पाँच भेद - १. मिथ्यात्व २. अविरति ३. प्रमाद ४. कषाय ५. योग।

१. मिथ्यात्व - मोहवश तत्त्वार्थ में श्रद्धा न होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व कहा जाता है। यथा -

अदेवे देवबुद्धि र्या, गुरुधी रगुरौ च या।
अधर्मे धर्म बुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद् विपर्ययात् (मिथ्यात्वं तन्निगद्यते)

अर्थ - जिनमें रागद्वेष पाया जाता है उसे देव अर्थात् ईश्वर मानना, पांच महाव्रतधारी गुरु कहलाता है किन्तु महाव्रत रहित को गुरु मानना तथा दयामय धर्म होता है किन्तु दया रहित को धर्म मानना उसे मिथ्यात्व कहते हैं। विपरीत मान्यता के कारण यह मिथ्यात्व कहलाता है।

---

* यहाँ सामान्य रूप से विकलेन्द्रियों का ग्रहण है। अपर्याप्त अवस्था में विकलेन्द्रिय सम्यग् दृष्टि हो सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अविरति – प्राणातिपात आदि पाप से निवृत्त न होना अविरति है।

३. प्रमाद – शुभ उपयोग के अभाव को या शुभ कार्य में यत्न, उद्यम न करने को प्रमाद कहते हैं। अर्थात् धर्मकार्य को छोड़कर अन्य पापकार्यों में प्रवृत्ति करना प्रमाद कहलाता है।

जिससे जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप मोक्ष मार्ग के प्रति उद्यम करने में शिथिलता करता है वह प्रमाद है।

४. कषाय – जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करते हैं। अर्थात् कर्म मल से मलीन करते हैं वे कषाय हैं।

कष अर्थात् कर्म या संसार की प्राप्ति या वृद्धि जिस से हो वह कषाय है। कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला जीव का क्रोध, मान, माया, लोभ रूप परिणाम कषाय कहलाता है।

५. योग – मन, वचन, काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय इन पाँच इन्द्रियों को वश में न रख कर शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श विषयों में इन्हें स्वतन्त्र रखने से भी पाँच आस्रव होते हैं।

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह ये पाँच भी आस्रव हैं।

संवर – कर्म बन्ध के कारण प्राणातिपात आदि जिससे रोके जाय वह संवर हैं।

जीव रूपी तालाब में आते हुए कर्म रूप पानी का रुक जाना संवर कहलाता है।

जैसे – जल में रही हुई नाव में निरन्तर जल प्रवेश कराने वाले छिद्रों को किसी द्रव्य से रोक देने पर, पानी आना रुक जाता है। उसी प्रकार जीव रूपी नाव में कर्म रूपी जल प्रवेश कराने वाले इन्द्रियादि रूप छिद्रों को सम्यक् प्रकार से संयम, तप आदि के द्वारा रोकने से आत्मा में कर्म का प्रवेश नहीं होता। नाव में पानी का रुक जाना द्रव्य संवर है और आत्मा में कर्मों के आगमन को रोक देना भाव संवर है।

संवर के पाँच भेद हैं – १. सम्यक्त्व २. विरित ३. अप्रमाद ४. अकषाय ५. अयोग (शुभयोग)।

१. श्रोत्रेन्द्रिय संवर २. चक्षुरिन्द्रिय संवर ३. घ्राणेन्द्रिय संवर ४. रसनेन्द्रिय संवर ५. स्पर्शनेन्द्रिय संवर।

१. सम्यक्त्व – सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में विश्वास करना सम्यक्त्व है। यथा –

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।

जिणपण्णत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं।

अर्थ – रागद्वेष के विजेता अरिहन्त (केवलज्ञानी) तो देव अर्थात् ईश्वर हैं। पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति के धारक गुरु होते हैं। वीतराग भगवान् के द्वारा कहा हुआ दयामय धर्म (तत्त्व) है। ऐसे तीन तत्त्वरूप सम्यक्त्व को मैंने ग्रहण किया है।

२. विरति – प्राणातिपात आदि पाप-व्यापार से निवृत्त होना विरति है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. अप्रमाद - मद्य, विषय, कषाय निद्रा, विकथा-इन पाँच प्रमादों का त्याग करना, अप्रमत्त भाव में रहना अप्रमाद है।

४. अकषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ-इन चार कषायों को त्याग कर क्षमा, मार्दव, आर्जव और शौच (निर्लोभता) का सेवन करना अकषाय है।

५. अयोग - मन, वचन, काया के व्यापारों का निरोध करना अयोग है। निश्चय दृष्टि से योग निरोध ही संवर है। किन्तु व्यवहार से शुभ योग भी संवर माना जाता है।

पाँचों इन्द्रियों को उनके विषय शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श की ओर जाने से रोकना, उन्हें अशुभ व्यापार से निवृत्त करके शुभ व्यापार में लगाना, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन इन्द्रियों का संवर है।

१. अहिंसा - किसी जीव की हिंसा न करना, दया करना और मरते हुए प्राणी की रक्षा करना अहिंसा है।

२. अमृषा - झूठ न बोलना, या निरवद्य सत्य वचन बोलना अमृषा है।

३. अचौर्य - चोरी न करना या स्वामी की आज्ञा मांग कर कोई भी चीज लेना अचौर्य है।

४. अमैथुन - मैथुन का त्याग करना अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन करना अमैथुन है।

५. अपरिग्रह - परिग्रह का त्याग करना, ममता मूर्च्छा से रहित होना या सन्तोष का सेवन करना अपरिग्रह है।

दण्ड की व्याख्या और भेद - जिससे आत्मा व अन्य प्राणी दंडित हो अर्थात् उनकी हिंसा हो इस प्रकार की मन, वचन, काया की कलुषित प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं। दण्ड के पाँच भेद - १. अर्थ दण्ड २. अनर्थ दण्ड ३. हिंसा दण्ड ४. अकस्मादण्ड ५. दृष्टि विपर्यास दण्ड।

१. अर्थ दण्ड - स्व, पर या उभय के प्रयोजन के लिये त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करना अर्थ दण्ड है।

२. अनर्थ दण्ड - अनर्थ अर्थात् बिना प्रयोजन के त्रस स्थावर जीवों की हिंसा करना अनर्थ दण्ड हैं।

३. हिंसा दण्ड - इन प्राणियों ने भूतकाल में हिंसा की है। वर्तमान काल में हिंसा करते हैं और भविष्य काल में भी करेंगे यह सोच कर सर्प, बिच्छू, शेर आदि जहरीले तथा हिंसक प्राणियों का और वैरी का वध करना हिंसा दण्ड है।

४. अकस्माद्दण्ड - एक प्राणी के वध के लिए प्रहार करने पर दूसरे प्राणी का अकस्मात्-बिना इरादे के वध हो जाना अकस्मादण्ड है।

५. दृष्टि विपर्यास दण्ड - मित्र को वैरी समझ कर उसका वध कर देना दृष्टिविपर्यास दण्ड है।

क्रिया की व्याख्या और उसके भेद - कर्म बन्ध की कारण चेष्टा को क्रिया कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुष्ट व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं। कर्म बन्ध के कारण रूप कायिकी आदि पाँच पाँच करके पच्चीस क्रियाएं हैं। वे जैनागम में क्रिया शब्द से कही गई हैं। क्रिया के पाँच भेद - १. कायिकी २. आधिकरणिकी ३. प्राद्वेषिकी ४. पारितापनिकी ५. प्राणातिपातिकी क्रिया।

१. कायिकी - काया से होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया कहलाती है।

२. आधिकरणिकी - जिस अनुष्ठान विशेष अथवा बाह्य खड्गादि शस्त्र से आत्मा नरक गति का अधिकारी होता है। वह अधिकरण कहलाता है। उस अधिकरण से होने वाली क्रिया आधिकरणिकी कहलाती है।

३. प्राद्वेषिकी - कर्म बन्ध के कारण रूप जीव के मत्सर भाव अर्थात् ईर्षा रूप अकुशल परिणाम को प्रद्वेष कहते हैं। प्रद्वेष से होने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी कहलाती है।

४. पारितापनिकी - ताड़नादि से दुःख देना अर्थात् पीड़ा पहुँचाना परिताप है। इससे होने वाली क्रिया पारितापनिकी कहलाती है।

५. प्राणातिपातिकी क्रिया - इन्द्रिय आदि दस प्राण हैं। उनके अतिपात अर्थात् विनाश से लगने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया है। दस प्राण ये हैं -

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च।
उच्छ्वास निःश्वास मथान्यदायुः॥
प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ताः।
तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा॥

अर्थ - पांच इन्द्रियाँ, मन बल, वचन बल, काया बल, श्वासोच्छ्वास और आयु से दस प्राण कहे गये हैं। इनको जीव से अलग कर देना प्राणातिपात कहलाता है और इस प्राणातिपात को ही जीव हिंसा कहा गया है।

क्रिया पाँच - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. माया प्रत्यया ४. अप्रत्याख्यानिकी ५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया।

१. आरम्भिकी - छह काया रूप जीव तथा अजीव (जीव रहित शरीर, आटे वगैरह के बनाये हुए जीव की आकृति के पदार्थ या वस्त्रादि) के आरम्भ अर्थात् हिंसा से लगने वाली क्रिया आरम्भिकी क्रिया कहलाती है।

२. पारिग्रहिकी - मूर्च्छा अर्थात् ममता को परिग्रह कहते हैं। जीव और अजीव में मूर्च्छा ममत्व भाव से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी है।

३. माया प्रत्यया - छल कपट को माया कहते हैं। माया द्वारा दूसरों को ठगने के व्यापार से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगने वाली क्रिया मायाप्रत्यया है। जैसे अपने अशुभ भाव छिपा कर शुभ भाव प्रगट करना, झूठे लेख लिखना आदि।

४. अप्रत्याख्यानिकी क्रिया - अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़ा सा भी विरति परिणाम न होने रूप क्रिया अप्रत्याख्यानिकी क्रिया है। अव्रत से जो कर्म बन्ध होता है वह अप्रत्याख्यान क्रिया है।

५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया - मिथ्यादर्शन अर्थात् तत्त्व में अश्रद्धान या विपरीत श्रद्धान से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया है।

क्रिया के पाँच प्रकार - १. दृष्टिजा (दिट्ठिया) २. पृष्टिजा या स्पर्शजा (पुट्ठिया) ३. प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया) ४. सामन्तोपनिपातिकी (सामन्तोवणिया) ५. स्वाहस्तिकी (साहत्थिया)।

१. दृष्टिजा (दिट्ठिया) - अश्व आदि जीव और चित्रकर्म आदि अजीव पदार्थों को देखने के लिये गमन रूप क्रिया दृष्टिजा (दिट्ठिया) क्रिया है।

दर्शन, या देखी हुई वस्तु के निमित्त से लगने वाली क्रिया भी दृष्टिजा क्रिया है।

दर्शन से जो कर्म उदय में आता है वह दृष्टिजा क्रिया है।

२. पृष्टिजा या स्पर्शजा (पुट्ठिया) - राग द्वेष के वश हो कर जीव या अजीव विषयक प्रश्न से या उनके स्पर्श से लगने वाली क्रिया पृष्टिजा या स्पर्शजा क्रिया है।

३. प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया) - जीव और अजीव रूप बाह्य वस्तु के आश्रय से जो राग द्वेष की उत्पत्ति होती है। तज्जनित कर्म बन्ध को प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया) क्रिया कहते हैं।

४. सामन्तोपनिपातिकी (सामन्तोवणिया) - चारों तरफ से आकर इकट्ठे हुए लोग ज्यों ज्यों किसी प्राणी, घोड़े, गोधे (सांड) आदि प्राणियों की और अजीव-रथ आदि की प्रशंसा सुन कर हर्षित होते हैं। हर्षित होते हुए उन पुरुषों को देख कर अश्वादि के स्वामी को जो हर्ष होता है उससे जो क्रिया लगती है वह सामन्तोपनिपातिकी क्रिया है तथा उन सब पुरुषों को एक साथ लगने वाली क्रिया भी सामन्तोपनिपातिकी क्रिया कहलाती है।

५. स्वाहस्तिकी - अपने हाथ में ग्रहण किये हुए जीव या अजीव (जीव की प्रतिकृति) को मारने से अथवा ताडन करने से लगने वाली क्रिया स्वाहस्तिकी (साहत्थिया) क्रिया है।

क्रिया के पाँच भेद - १. नैसृष्टिकी (नेसत्थिया) २. आज्ञापनिका या आनायनी (आणवणिया) ३. वैदारिणी (वेयारणिया) ४. अनाभोग प्रत्यया (अणाभोग वत्तिया) ५. अनवकांक्षा प्रत्यया (अणवकंख वत्तिया)।

१. नैसृष्टिकी (नेसत्थिया) - राजा आदि की आज्ञा से यंत्र (फव्वारे आदि) द्वारा जल छोड़ने से अथवा धनुष से बाण फेंकने से होने वाली क्रिया नैसृष्टिकी क्रिया है।

गुरु आदि को शिष्य या पुत्र देने से अथवा निर्दोष आहार पानी देने से लगने वाली क्रिया नैसृष्टिकी क्रिया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. आज्ञापनिका या आनायनी (आणवणिया) - जीव अथवा अजीव को आज्ञा देने से अथवा दूसरे के द्वारा मंगाने से लगने वाली क्रिया आज्ञापनिका या आनायनी क्रिया है।

३. वैदारिणी (वेयारणिया) - जीव अथवा अजीव को विदारण करने से लगने वाली क्रिया वैदारिणी क्रिया है। जीव अजीव के व्यवहार में व्यापारियों की भाषा में या भाव में असमानता होने पर दुभाषिया या दलाल जो सौदा करा देता है। उससे लगने वाली क्रिया भी वियारणिया क्रिया है। लोगों को ठगने के लिये कोई पुरुष किसी जीव अर्थात् पुरुष आदि की या अजीव रथ आदि की प्रशंसा करता है। इस वञ्चना (ठगाई) से लगने वाली क्रिया भी वियारणिया क्रिया है।

४. अनाभोग प्रत्यया - अनुपयोग से वस्त्रादि को ग्रहण करने तथा बरतन आदि को पूंजने से लगने वाली क्रिया अनाभोग प्रत्यया क्रिया है।

५. अनवकांक्षा प्रत्यया - स्व-पर के शरीर की अपेक्षा न करते हुए स्व-पर को हानि पहुँचाने से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया है। इस लोक और परलोक की परवाह न करते हुए दोनों लोक विरोधी हिंसा, चोरी, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान आदि से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया है।

क्रिया के पाँच भेद - १. प्रेम प्रत्यया (पेज्ज वत्तिया) २. द्वेष प्रत्यया ३. प्रायोगीकी क्रिया ४. सामुदानिकी क्रिया ५. ईर्यापथिकी क्रिया।

१. प्रेम प्रत्यया (पेज्ज वत्तिया) - प्रेम (राग) यानि माया और लोभ के कारण से लगने वाली क्रिया प्रेम प्रत्यया क्रिया है।

दूसरे में प्रेम (राग) उत्पन्न करने वाले वचन कहने से लगने वाली क्रिया प्रेम प्रत्यया क्रिया कहलाती है।

२. द्वेष प्रत्यया - जो स्वयं द्वेष अर्थात् क्रोध और मान करता है और दूसरे में द्वेष आदि उत्पन्न करता है उससे लगने वाली अप्रीतिकारी क्रिया द्वेष प्रत्यया क्रिया है।

३. प्रायोगिकी क्रिया - आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करना, तीर्थंकरों से निन्दित सावद्य अर्थात् पाप जनक वचन बोलना तथा प्रमाद पूर्वक जाना आना, हाथ पैर फैलाना, संकोचना आदि मन, वचन, काया के व्यापारों से लगने वाली क्रिया प्रायोगिकी क्रिया है।

४. सामुदानिकी क्रिया - जिससे समग्र अर्थात् आठ कर्म ग्रहण किये जाते हैं वह सामुदानिकी क्रिया है। सामुदानिकी क्रिया देशोपघात और सर्वोपघात रूप से दो भेद वाली है।

अनेक जीवों को एक साथ जो एक सी क्रिया लगती है। वह सामुदानिकी क्रिया है। जैसे नाटक, सिनेमा आदि के दर्शकों को एक साथ एक ही क्रिया लगती है। इस क्रिया से उपार्जित कर्मों का उदय भी उन जीवों के एक साथ प्रायः एक सा ही होता है। जैसे-भूकम्प वगैरह।

जिससे प्रयोग (मन वचन काया के व्यापार) द्वारा ग्रहण किये हुए एवं समुदाय अवस्था में रहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप में व्यवस्थित किये जाते हैं वह सामुदानिकी क्रिया है। यह क्रिया मिथ्या दृष्टि से लगा कर सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान तक लगती है।

५. ईर्यापथिकी क्रिया - उपशान्त मोह, क्षीण मोह और सयोगी केवली इन तीन गुण स्थानों में रहे हुए अप्रमत्त साधु के केवल योग कारण से जो सातावेदनीय कर्म बंधता है। वह ईर्यापथिकी क्रिया है।

परिज्ञा

पंचविहा परिण्णा पण्णत्ता तंजहा - उवहिपरिण्णा, उवस्सयपरिण्णा, कसायपरिण्णा, जोगपरिण्णा, भत्तपाणपरिण्णा ।

व्यवहार

पंचविहे ववहारे पण्णत्ते तंजहा आगमे, सुए, आणा, धारणा, जीए । जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा, णो से तत्थ आगमे सिया जहा से तत्थ सुए सिया सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा, णो से तत्थ सुए सिया एवं जाव जहा से तत्थ जाए सिया जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा । इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा आगमेणं जाव जीएणं । जहा जहा से तत्थ आगमे जाव जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा । से किमाहु भंते ! आगमबलिया समणा णिग्गंथा । इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सियं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ॥ २०॥

कठिन शब्दार्थ - **परिण्णा** - परिज्ञा, **उवहिपरिण्णा** - उपधि परिज्ञा, **उवस्सयपरिण्णा** - उपाश्रय परिज्ञा, **भत्तपाणपरिण्णा** - भक्तपान परिज्ञा, **ववहारे** - व्यवहार, **जीए** - जीत, **आगमबलिया**- आगम बलिक, **अणिस्सि ओवस्सियं** - सर्वथा पक्षपात रहित होकर, **आणाए** - आज्ञा का, **आराहए** - आराधक ।

भावार्थ - पांच प्रकार की परिज्ञा कही गई है यथा - उपधिपरिज्ञा यानी अशुद्ध वस्त्रादि का त्याग, उपाश्रय परिज्ञा यानी अशुद्ध उपाश्रय का त्याग, कषायपरिज्ञा यानी क्रोधादि कषाय का त्याग, योग परिज्ञा यानी अशुभ योगों का त्याग और भक्तपान परिज्ञा यानी अशुद्ध आहार पानी का त्याग करना।

पांच प्रकार का व्यवहार कहा गया है यथा - आगम व्यवहार-जिससे यथार्थ अर्थ जाना जाय वह आगम कहलाता है ।

१. आगम व्यवहार - केवलज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वधारी, दशपूर्वधारियों के लिए आगम व्यवहार होता है, इसीलिए ये आगम व्यवहारी कहलाते हैं । **२. श्रुत व्यवहार** - आचाराङ्ग आदि सूत्र श्रुत कहलाते हैं । इनके अनुसार प्रवृत्ति करना श्रुत व्यवहार कहलाता है। **३. आज्ञा व्यवहार**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग दूर देश में रहे हुए हों और शरीर क्षीण हो जाने से वे विहार करने में असमर्थ हों । उनमें से किसी एक को प्रायश्चित्त आने पर वह गीतार्थ शिष्य के अभाव में अगीतार्थ शिष्य को आगम की सांकेतिक गूढ भाषा में अपने अतिचार दोष कह कर या लिख कर उसे दूसरे गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उसके द्वारा आलोचना करता है । गूढ भाषा में कही हुई आलोचना सुन कर वे गीतार्थ मुनि उस संदेश लाने वाले के द्वारा ही गूढ भाषा में उस अतिचार का प्रायश्चित्त देते हैं । यह आज्ञा व्यवहार है । **४. धारणा व्यवहार** - किसी गीतार्थ मुनि ने जिस दोष में जो प्रायश्चित्त दिया हो उसकी धारणा से वैसे दोष में उसी प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा व्यवहार है। **५. जीत व्यवहार** - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुष, प्रतिसेवना का और संहनन, धैर्य आदि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत व्यवहार कहलाता है । अथवा - किसी गच्छ में कारण विशेष से सूत्र से अतिरिक्त प्रायश्चित्त की प्रवृत्ति हुई हो और दूसरों ने उसका अनुसरण कर लिया हो तो वह प्रायश्चित्त जीत व्यवहार कहा जाता है । अथवा अनेक गीतार्थ मुनियों ने मिल कर आगम से अविरुद्ध जो मर्यादा बांध दी है वह जीत व्यवहार कहलाता है ।

इन पांच व्यवहारों में से जब आगम हो तो आगम से व्यवहार करना चाहिए। जब आगम व्यवहारी न हों और श्रुतव्यवहारी हों तो श्रुत से व्यवहार करना चाहिए । जब श्रुत व्यवहारी न हो तो आज्ञा व्यवहार से प्रवृत्ति करनी चाहिए। इसी तरह आज्ञा व्यवहार के अभाव में धारणा व्यवहार से प्रवृत्ति करनी चाहिए और जब धारणा व्यवहार न हो किन्तु जीत व्यवहार हो तो जीत व्यवहार से प्रवृत्ति करनी चाहिए। आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इन पांच व्यवहारों से व्यवहार करना चाहिए । इन पांच व्यवहारों में यथाक्रम से पहले पहले के अभाव में आगे आगे के व्यवहार से प्रवृत्ति करनी चाहिए।

शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन् ! आगमबलिक यानी केवलज्ञानी आदि ज्ञानी श्रमण निर्ग्रन्थों ने इन व्यवहारों का क्या फल बतलाया है ? शास्त्रकार उत्तर देते हैं कि इन पांच व्यवहारों में से जिस अवसर में और जिस समय जिस व्यवहार की आवश्यकता हो उस अवसर पर और उस समय उस व्यवहार का सर्वथा पक्षपात रहित होकर सम्यक् प्रकार से व्यवहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है ।

विवेचन - परिज्ञा - वस्तु स्वरूप का ज्ञान करना और ज्ञान पूर्वक उसे छोड़ना परिज्ञा है। परिज्ञा के पाँच भेद हैं-१. उपधि परिज्ञा २. उपाश्रय परिज्ञा ३. कषाय परिज्ञा ४. योग परिज्ञा ५. भक्तपान परिज्ञा।

व्यवहार - मोक्षाभिलाषी आत्माओं की प्रवृत्ति निवृत्ति को एवं तत्कारणक ज्ञान विशेष को व्यवहार कहते हैं।

व्यवहार के पाँच भेद हैं - १. आगम व्यवहार २. श्रुत व्यवहार ३. आज्ञा व्यवहार ४. धारणा व्यवहार ५. जीत व्यवहार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. आगम व्यवहार - केवलज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व और दशपूर्व का ज्ञान आगम कहलाता है। आगम ज्ञान से प्रवर्तित प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार आगम व्यवहार कहलाता है।

२. श्रुत व्यवहार - आचार प्रकल्प आदि ज्ञान श्रुत है। इससे प्रवर्ताया जाने वाला व्यवहार श्रुतव्यवहार कहलाता है। नव, दश, और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुत रूप है परन्तु अतीन्द्रिय अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशय वाला है और इसीलिये वह आगम रूप माना गया है।

३. आज्ञा व्यवहार - दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग दूर देश में रहे हुए हों और शरीर क्षीण हो जाने से वे विहार करने में असमर्थ हों। उन में से किसी एक के प्रायश्चित्त आने पर वह मुनि योग्य गीतार्थ शिष्य के अभाव में मति और धारणा में अकुशल अगीतार्थ शिष्य को आगम की सांकेतिक गूढ़ भाषा में अपने अतिचार दोष कह कर या लिख कर उसे अन्य गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उसके द्वारा आलोचना करता है। गूढ़ भाषा में कही हुई आलोचना सुन कर वे गीतार्थ मुनि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संहनन, धैर्य, बल आदि का विचार कर योग्य गीतार्थ शिष्य को समझा कर भेजते हैं। यदि वैसे शिष्य का भी उनके पास योग न हो तो आलोचना का संदेश लाने वाले के द्वारा ही गूढ़ अर्थ में अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते हैं। यह आज्ञा व्यवहार है।

४. धारणा व्यवहार - किसी गीतार्थ संविग्न मुनि ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा जिस दोष में जो प्रायश्चित्त दिया है। उसकी धारणा से वैसे दोष में उसी प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा व्यवहार है।

वैयावृत्य करने आदि से जो साधु गच्छ का उपकारी हो। वह यदि सम्पूर्ण छेद सूत्र सिखाने योग्य न हो तो उसे गुरु महाराज कृपा पूर्वक उचित प्रायश्चित्त पदों का कथन करते हैं। उक्त साधु का गुरु महाराज से कहे हुए उन प्रायश्चित्त पदों का धारण करना धारणा व्यवहार है।

५. जीत व्यवहार - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुष, प्रतिसेवना का और संहनन धृति आदि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत व्यवहार है। किसी गच्छ में कारण विशेष से सूत्र से अधिक प्रायश्चित्त की प्रवृत्ति हुई हो और दूसरों ने उसका अनुसरण कर लिया हो तो वह प्रायश्चित्त जीत व्यवहार कहा जाता है। अनेक गीतार्थ मुनियों द्वारा आगम से अविरुद्ध जो मर्यादा बांध दी है उससे प्रवर्तित व्यवहार जीत व्यवहार है।

भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ८ में भी इन पांच व्यवहारों का वर्णन किया गया है।

इन पाँच व्यवहारों में यदि व्यवहर्त्ता के पास आगम हो तो उसे आगम से व्यवहार चलाना चाहिए। आगम में भी केवलज्ञान, मन:पर्ययज्ञान आदि छह भेद हैं। इनमें पहले केवल ज्ञान आदि के होते हुए उन्हीं से व्यवहार चलाया जाना चाहिए। पिछले मन:पर्याय ज्ञान आदि से नहीं। आगम के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभाव में श्रुत से, श्रुत के अभाव में आज्ञा से, आज्ञा के अभाव में धारणा से और धारणा के अभाव में जीत व्यवहार से, प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार का प्रयोग होना चाहिए। देश काल के अनुसार ऊपर कहे अनुसार सम्यक् रूपेण पक्षपात रहित व्यवहारों का प्रयोग करता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

जागृत, सुप्त, कर्म बंध व निर्जरा

संजय मणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता तंजहा - सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा । संजय मणुस्साणं जागराणं पंच सुत्ता पण्णत्ता तंजहा - सद्दा जाव फासा । असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता तंजहा - सद्दा जाव फासा । पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आइज्जंति तंजहा - पाणाइवाएणं जाव परिग्गहेणं । पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वमंति तंजहा - पाणाइवायवेरमणेणं जाव परिग्गहवेरमणेणं।

उपघात, विशुद्धि

पंचमासियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स । पंचविहे उवघाए पण्णत्ते तंजहा - उग्गमोवघाए, उप्पायणोवघाए, एसणोवघाए, परिकम्मोवघाए, परिहरणोवघाए । पंचविहा विसोही पण्णत्ता तंजहा - उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणाविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही॥ २१ ॥

कठिन शब्दार्थ - जागरा - जागृत, **सुत्ताणं** - सोते हुए के, **जागराणं** - जागते हुए के, **रयं** - कर्म रूपी रज को, **आइज्जंति** - ग्रहण करते हैं, **वमंति** - वमन करते हैं, **भिक्खुपडिमं** - भिक्षु प्रतिमा को, **पडिवण्णस्स** - अंगीकार करने वाले साधु को, **दत्तीओ** - दत्ति, **उवघाए** - उपघात, **उग्गमोवघाए**- उद्‌गमोपघात, **उप्पायणोवघाए** - उत्पादनोपघात, **एसणोवघाए** - एषणोपघात, **परिकम्मोवघाए** - परिकर्मोपघात, **विसोही** - विशुद्धि, **परिहरणोवघाए** - परिहरणोपघात ।

भावार्थ - सोते हुए संयति मनुष्यों के अर्थात् साधुओं के पांच जागृत कहे गये हैं यथा - शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श । सुप्त अवस्था में ये स्वाभाविक शब्द आदि स्वतन्त्र रूप से प्रवृत्ति करते हैं इसलिए कर्मबन्ध के कारण होते हैं । जागते हुए संयती मनुष्यों के यानी साधुओं के शब्द यावत् स्पर्श ये पांच सुप्त यानी सोते हुए कहे गये हैं क्योंकि जागृत अवस्था में साधु महात्मा सब कार्य यतनापूर्वक करते हैं । इसलिए ये कर्मबन्ध के कारण नहीं होते हैं । असंयती मनुष्य सोते हुए हों अथवा जागते हुए हों उनके शब्द यावत् स्पर्श ये पांच सदा जागृत कहे गये हैं क्योंकि वे सुप्त और जागृत दोनों अवस्थाओं में प्रमादी हैं इसलिए ये पांचों सदा कर्मबन्ध के कारण होते हैं। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और परिग्रह इन पांच कारणों से जीव कर्मरूपी रज को ग्रहण करते हैं यानी कर्म बांधते हैं । प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण और परिग्रह विरमण इन पांच कारणों से जीव कर्मरूपी रज का वमन करते हैं यानी कर्मों की निर्जरा करते हैं।

पांच मास की भिक्षुपडिमा को अङ्गीकार करने वाले साधु को पांच दत्ति आहार की और पांच दत्ति पानी की ग्रहण करना कल्पता है।

पांच प्रकार के उपघात यानी आहार के दोष कहे गये हैं। यथा - उद्‌गमोपघात यानी उद्‌गम के आधाकर्मादि सोलह दोष, उत्पादनोपघात यानी उत्पादना के धात्री आदि सोलह दोष, एषणोपघात यानी एषणा के शंकित आदि दस दोष और परिकर्मोपघात यानी कल्प के उपरान्त वस्त्र पात्र आदि को सीना छेदना आदि, परिहरणोपघात यानी उपाश्रय सम्बन्धी दोष लगाना। पांच प्रकार की विशुद्धि कही गई है । यथा - उद्‌गम विशुद्धि यानी उद्‌गम के दोष न लगाना । उत्पादना विशुद्धि यानी उत्पादना के दोष न लगाना। एषणा विशुद्धि यानी एषणा के शंकित आदि दोष न लगाना, परिकर्म विशुद्धि और परिहरणविशुद्धि।

विवेचन - प्रमाद का सेवन सुप्तदशा है और प्रमाद का त्याग जागृत दशा है। जितने भी प्रमत्त संयत हैं उनकी पांच इन्द्रियां अपने अपने विषय को ग्रहण करने के लिए सदा उद्यत और जागरूक रहती हैं किन्तु जो अप्रमत्त संयत हैं उनके पांच विषय सुप्त रहते हैं। प्रमत्त अवस्था में कर्मों का बंध होता है जबकि अप्रमत्त अवस्था में कर्मों का क्षय होता है। इसीलिये अप्रमत्त संयत सोते हुए भी जागृत हैं। आचारांग सूत्र में कहा है -

"सुत्ता मुणी, अमुणिणो सया जागरंति"

असंयत मनुष्य भले ही जागृत हो या सुप्त फिर भी त्याग भावना एवं विवेक के अभाव में उसके लिये शब्द आदि पांच विषय सदैव जागृत ही रहते हैं अर्थात् इन्द्रिय विषयक कर्मबन्ध होता ही रहता है।

उपघात यानी अशुद्धता। आधाकर्म आदि सोलह प्रकार के उद्‌गम के दोषों से आहार, पानी उपकरण और स्थान की अशुद्धता उद्‌गमोपघात कहलाती है। धात्री आदि सोलह उत्पादना के दोष लगाना उत्पादनोपघात, शंकित आदि दस दोष लगाना एषणोपघात है। कल्प के उपरांत वस्त्र, पात्र आदि को सीना छेदना परिकर्मोपघात है तथा उपाश्रय संबंधी दोष लगाना परिहरणोपघात कहलाता है। उपघात से विपरीत यानी इन दोषों को टालने से पांच प्रकार की विशुद्धि कही है।

दुर्लभबोधि, सुलभबोधि

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोहियत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - अरिहंताणं अवण्णं वयमाणे, अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे, आयरिय उवज्झायाणं अवण्णं वयमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे, विवक्क तव बंभचेराणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवाणं अवण्णं वयमाणे । पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभ बोहियत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - अरिहंताणं वण्णं वयमाणे जाव विवक्क तव बंभचेराणं देवाणं वण्णं वयमाणे॥ २२॥

कठिन शब्दार्थ - दुल्लभबोहियत्ताए - दुर्लभ बोधि होने का, **अवण्णं** - अवर्णवाद, **चाउवण्णस्स संघस्स** - चतुर्विध संघ का, **विवक्क तव बंभचेराणं** - पूर्व भव में तप और ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों का, **सुलभबोहियत्ताए** - सुलभ बोधि होने के, **वण्णं** - वर्णवाद-गुणग्राम ।

भावार्थ - पांच कारणों से जीव दुर्लभ बोधि होने का कर्म करते हैं । यथा - अरिहंत भगवान् का अवर्णवाद बोलने से, अरिहंत भगवान् के फरमाये हुए धर्म का अवर्णवाद बोलने से, आचार्य जी महाराज और उपाध्याय जी महाराज का अवर्णवाद बोलने से, साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने से और जिन्होंने पूर्वभव में तप और ब्रह्मचर्य का पालन करके देवपना प्राप्त किया है उन देवों का अवर्णवाद बोलने से जीव दुर्लभ बोधि होने का कर्म उपार्जन करते हैं । पांच कारणों से जीव सुलभ बोधि होने के कर्म उपार्जन करते हैं। यथा - अरिहंत भगवान् के वर्णवाद बोलने से यानी गुणग्राम करने से यावत् जिन्होंने पूर्वभव में तप और ब्रह्मचर्य का पालन करके देवपना प्राप्त किया है । उन देवों का वर्णवाद बोलने से यानी गुणग्राम करने से जीव सुलभबोधि होने के कर्म उपार्जन करते हैं ।

विवेचन - जिन जीवों को जैनधर्म दुष्प्राप्य हो उन्हें दुर्लभ बोधि कहते हैं और परभव में जिन जीवों को जिन धर्म की प्राप्ति सुलभ हो उन्हें सुलभ बोधि कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में दुर्लभ बोधि एवं सुलभ बोधि होने के पांच पांच कारण बताये हैं जो इस प्रकार हैं -

दुर्लभ बोधि के पाँच कारण - पाँच स्थानों से जीव दुर्लभ बोधि योग्य मोहनीय कर्म बाँधता है।

१. अरिहन्त भगवान् का अवर्णवाद बोलने से।

२. अरिहन्त भगवान् द्वारा प्ररूपित श्रुत चारित्र रूप धर्म का अवर्णवाद बोलने से।

३. आचार्य उपाध्याय का अवर्णवाद बोलने से।

४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद बोलने से।

५. भवान्तर में उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान किये हुए देवों का अवर्णवाद बोलने से।

सुलभ बोधि के पांच बोल -

१. अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करने से।

२. अरिहन्त भगवान् से प्ररूपित श्रुत चारित्र धर्म का गुणानुवाद करने से।

३. आचार्य उपाध्याय के गुणानुवाद करने से।

४. चतुर्विध संघ की श्लाघा एवं वर्णवाद करने से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. भवान्तर में उत्कृष्ट तप और ब्रह्मचर्य का सेवन किये हुए देवों का वर्णवाद, श्लाघा करने से जीव सुलभ बोधि के अनुरूप कर्म बांधते हैं।

प्रतिसंलीन, अप्रतिसंलीन, संवर, असंवर

पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - सोइंदिय पडिसंलीणे, चक्खुइंदियपडिसंलीणे, घाणेंदियपडिसंलीणे, रसेंदियपडिसंलीणे, फासिंदियपडिसंलीणे। पंच अप्पडिसंलीणा पण्णत्ता तंजहा - सोइंदियअप्पडिसंलीणे जाव फासिंदियअप्पडिसंलीणे । पंचविहे संवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदियसंवरे जाव फासिंदियसंवरे । पंचविहे असंवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदियअसंवरे जाव फासिंदियअसंवरे ।

संयम,असंयम

पंचविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - सामाइयसंजमे, छेओवट्ठावणिय संजमे, परिहार विसुद्धियसंजमे, सुहुम संपराय संजमे अहक्खाय चरित्तसंजमे । एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ तंजहा - पुढविकाइय संजमे जाव वणस्सइकाइयसंजमे । एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ तंजहा - पुढविकाइयअसंजमे जाव वणस्सइकाइय असंजमे । पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जइ तंजहा - सोइंदियसंजमे जाव फासिंदिय संजमे । पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ तंजहा - सोइंदिय असंजमे जाव फासिंदिय असंजमे । सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं जीवा असमारभमाणस्स पंच विहे संजमे कज्जइ तंजहा - एगिंदियसंजमे जाव पंचिंदियसंजमे। सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जइ तंजहा - एगिंदियअसंजमे जाव पंचिंदिय असंजमे ।

तृणवनस्पति कायिक

पंचविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा - अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंदबीया, बीयरुहा॥ २३ ॥

कठिन शब्दार्थ - पडिसंलीणा - प्रतिसंलीन, **अप्पडिसंलीणा** - अप्रतिसंलीन, **असंवरे** - असंवर, **छेओवट्ठावणिय संजमे** - छेदोपस्थापनीय संयम, **परिहार विसुद्धियसंजमे** - परिहार विशुद्धिक संयम, **सुहुमसंपरायसंजमे** - सूक्ष्म संपराय संयम, **अहक्खायचरित्तसंजमे** - यथाख्यात चारित्र संयम,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असमारभमाणस्स - आरम्भ न करने वाले जीव के, **अग्गबीया** - अग्रबीज, **मूलबीया** - मूलबीज, **पोरबीया** - पर्वबीज, **खंधबीया** - स्कन्धबीज, **बीयरुहा** - बीज रुह।

भावार्थ - पांच प्रकार के प्रतिसंलीन यानी इन्द्रियों को वश में करने वाले पुरुष कहे गये हैं । यथा - श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीन यानी श्रोत्रेन्द्रिय को वश करने वाला, चक्षुइन्द्रिय प्रतिसंलीन, घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीन, रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीन और स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीन । पांच अप्रतिसंलीन यानी इन्द्रियों को वश में न करने वाले पुरुष कहे गये हैं । यथा - श्रोत्रेन्द्रिय अप्रतिसंलीन यानी श्रोत्रेन्द्रिय को वश में न करने वाला यावत् स्पर्शनेन्द्रिय अप्रतिसंलीन । पांच प्रकार का संवर कहा गया है । यथा - श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संवर । पांच प्रकार का असंवर कहा गया है । यथा - श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय असंवर।

पांच प्रकार का संयम कहा गया है। यथा - सामायिक संयम, छेदोपस्थापनीय संयम, परिहार विशुद्धिक संयम, सूक्ष्मसम्पराय संयम और यथाख्यात चारित्र संयम। एकेन्द्रिय जीवों का आरम्भ न करने वाले यानी उन्हें न मारने वाले पुरुष के पांच प्रकार का संयम होता है। यथा - पृथ्वीकायिक संयम यावत् वनस्पतिकायिक संयम। एकेन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले पुरुष के पांच प्रकार का असंयम होता है। यथा - पृथ्वीकायिक असंयम यावत् वनस्पतिकायिक असंयम। पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ न करने वाले पुरुष के पांच प्रकार का संयम होता है। यथा - श्रोत्रेन्द्रिय संयम यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संयम। पञ्चेन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले पुरुष के पांच प्रकार का असंयम होता है। यथा - श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शनेन्द्रिय असंयम। सब प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों का आरम्भ न करने वाले पुरुष के पांच प्रकार का संयम होता है। यथा - एकेन्द्रिय संयम, बेइन्द्रिय संयम, तेइन्द्रिय संयम चौइन्द्रिय संयम, पञ्चेन्द्रिय संयम। सब प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों का आरम्भ करने वाले पुरुष के पांच प्रकार का असंयम होता है। यथा - एकेन्द्रिय असंयम यावत् पञ्चेन्द्रिय असंयम।

पांच प्रकार की तृण वनस्पति काय कही गई है। यथा - अग्र बीज, मूल बीज, पर्व बीज, स्कन्ध बीज और बीज रुह ।

विवेचन - सूत्रकार ने प्रतिसंलीन और अप्रतिसंलीन इन दो सूत्रों से धर्मी (शुभ भाव और अशुभ भाव वाले) पुरुष का कथन किया है और संवर तथा असंवर इन दो सूत्रों से धर्म-शुभाशुभ भाव का कथन किया है।

संवर - कर्म बन्ध के कारण प्राणातिपात आदि जिससे रोके जाय वह संवर है अथवा जीव रूपी तालाब में आते हुए कर्म रूपी पानी का रुक जाना संवर कहलाता है। जैसे जल में रही हुई नाव में निरन्तर जल प्रवेश कराने वाले छिद्रों को किसी द्रव्य से रोक देने पर पानी आना रुक जाता है। उसी प्रकार जीव रूपी नाव में कर्म रूपी जल प्रवेश कराने वाले इन्द्रियादि रूप छिद्रों को सम्यक् प्रकार से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम, तप आदि के द्वारा रोकने से आत्मा में कर्म का प्रवेश नहीं होता। नाव में पानी का रुक जाना द्रव्य संवर है और आत्मा में कर्मों के आगमन को रोक देना भाव संवर है। यहाँ संवर के पांच भेद कहे गये हैं - १. श्रोत्रेन्द्रिय संवर २. चक्षुरिन्द्रिय संवर ३. घ्राणेन्द्रिय संवर ४. रसनेन्द्रिय संवर ५. स्पर्शनेन्द्रिय संवर। पांचों इन्द्रियों को उनके विषय शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श की ओर जाने से रोकना, उन्हें अशुभ व्यापार से निवृत्त करके शुभ व्यापार में लगाना श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन इन्द्रियों का संवर है। इससे विपरीत पांच प्रकार का असंवर होता है।

संयम - सम्यक् प्रकार सावद्य योग से निवृत्त होना या आस्रव से विरत होना या छह काया की रक्षा करना संयम है। अथवा - चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को संयम (चारित्र) कहते हैं।

अन्य जन्म में ग्रहण किये हुए कर्म संचय को दूर करने के लिये मोक्षाभिलाषी आत्मा का सर्व सावद्य योग से निवृत्त होना संयम कहलाता है। संयम के पांच भेद कहे हैं -

१. सामायिक संयम २. छेदोपस्थापनिक संयम ३. परिहार विशुद्धि संयम ४. सूक्ष्मसम्पराय संयम ५. यथाख्यात संयम।

१. सामायिक संयम - सम अर्थात् राग द्वेष रहित आत्मा के प्रतिक्षण अपूर्व अपूर्व निर्जरा से होने वाली आत्म विशुद्धि का प्राप्त होना सामायिक है।

भवाटवी के भ्रमण से पैदा होने वाले क्लेश को प्रतिक्षण नाश करने वाली, चिन्तामणि, कामधेनु एवं कल्प वृक्ष के सुखों से भी बढ़कर, निरुपम सुख देने वाली ऐसी ज्ञान, दर्शन, चारित्र पर्यायों को प्राप्त कराने वाले, राग द्वेष रहित आत्मा के क्रियानुष्ठान को सामायिक संयम कहते हैं।

सर्व सावद्य व्यापार का त्याग करना एवं निरवद्य व्यापार का सेवन करना सामायिक चारित्र है।

यों तो चारित्र के सभी भेद सावद्य योग विरतिरूप हैं। इसलिये सामान्यतः सामायिक ही हैं। किन्तु चारित्र के दूसरे भेदों के साथ छेद आदि विशेषण होने से नाम और अर्थ से भिन्न भिन्न बताये गये हैं। छेद आदि विशेषणों के न होने से पहले चारित्र का नाम सामान्य रूप से सामायिक ही दिया गया है।

सामायिक के दो भेद-इत्वर कालिक सामायिक और यावत्कथिक सामायिक।

इत्वर कालिक सामायिक - इत्वर काल का अर्थ है अल्प काल अर्थात् भविष्य में दूसरी बार फिर सामायिक व्रत का व्यपदेश होने से जो अल्प काल की सामायिक हो, उसे इत्वर कालिक सामायिक कहते हैं। पहले एवं अन्तिम तीर्थंकर भगवान् के तीर्थ में जब तक शिष्य में महाव्रत का आरोपण नहीं किया जाता तब तक उस शिष्य के इत्वर कालिक सामायिक समझनी चाहिये।

यावत्कथिक सामायिक - यावज्जीवन की सामायिक यावत्कथिक सामायिक कहलाती है। प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकर भगवान् के सिवाय शेष बाईस तीर्थंकर भगवान् एवं महाविदेह क्षेत्र के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरों के साधुओं के यावत्कथिक सामायिक होती है। क्योंकि इन तीर्थंकरों के शिष्यों को दूसरी बार सामायिक व्रत नहीं दिया जाता।

२. छेदोपस्थापनिक संयम - जिस चारित्र में पूर्व पर्याय का छेद एवं महाव्रतों में उपस्थापन-आरोपण होता है उसे छेदोपस्थापनिक संयम कहते हैं।

पूर्व पर्याय का छेद करके जो महाव्रत दिये जाते हैं उसे छेदोपस्थापनिक संयम कहते हैं।

यह चारित्र भरत, ऐरावत क्षेत्र के प्रथम एवं चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में ही होता है शेष तीर्थंकरों के तीर्थ में नहीं होता। छेदोपस्थापनिक संयम के दो भेद हैं -

१. निरतिचार छेदोपस्थापनिक २. सातिचार छेदोपस्थापनिक।

१. निरतिचार छेदोपस्थापनिक - इत्वर सामायिक वाले शिष्य के एवं एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने वाले साधुओं के जो महाव्रतों का आरोपण होता है। वह निरतिचार छेदोपस्थापनिक चारित्र है।

२. सातिचार छेदोपस्थापनिक - मूल गुणों का घात करने वाले साधु के जो महाव्रतों का आरोपण होता है वह सातिचार छेदोपस्थापनिक चारित्र है।

३. परिहार विशुद्धि संयम - जिस चारित्र में परिहार तप विशेष से कर्म निर्जरा रूप शुद्धि होती है। उसे परिहार विशुद्धि संयम कहते हैं।

जिस चारित्र में अनेषणीयादि का परित्याग विशेष रूप से शुद्ध होता है। वह परिहार विसुद्धि संयम है।

स्वयं तीर्थंकर भगवान् के समीप, या तीर्थंकर भगवान् के समीप रह कर पहले जिसने परिहार विशुद्धि चारित्र अंगीकार किया है उसके पास यह चारित्र अंगीकार किया जाता है। वह चारित्र दो पाट तक ही चलता है। नव साधुओं का गण परिहार तप अंगीकार करता है। इन में से चार साधु तप करते हैं जो पारिहारिक कहलाते हैं। और जो चार साधु वैयावृत्य करते हैं वे अनुपारिहारिक कहलाते हैं और एक कल्पस्थित अर्थात् गुरु रूप में रहता है जिसके पास पारिहारिक एवं अनुपारिहारिक साधु आलोचना, वन्दना, प्रत्याख्यान आदि करते हैं। पारिहारिक साधु ग्रीष्म ऋतु में जघन्य एक उपवास, मध्यम बेला (दो उपवास) और उत्कृष्ट तेला (तीन उपवास) तप करते हैं। शिशिर काल (सर्दी) में जघन्य बेला, मध्यम तेला और उत्कृष्ट (चार उपवास) चौला तप करते हैं। वर्षा काल में जघन्य तेला, मध्यम चौला और उत्कृष्ट पचौला तप करते हैं। शेष चार आनुपारिहारिक एवं कल्पस्थित (गुरु रूप) पाँच साधु प्रायः नित्य भोजन करते हैं। ये उपवास आदि नहीं करते। आयंबिल के सिवाय ये और भोजन नहीं करते अर्थात् सदा आयंबिल ही करते हैं। इस प्रकार पारिहारिक साधु छह मास तक तप करते हैं। छह मास तक तप कर लेने के बाद वे अनुपारिहारिक अर्थात् वैयावृत्य करने वाले हो जाते हैं और वैयावृत्य करने वाले (आनुपारिहारिक) साधु पारिहारिक बन जाते हैं अर्थात् तप करने लग जाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। यह क्रम भी छह मास तक पूर्ववत् चलता है। इस प्रकार आठ साधुओं के तप कर लेने पर उनमें से एक गुरु पद पर स्थापित किया जाता है और शेष सात वैयावृत्य करते हैं और गुरु पद पर रहा हुआ साधु तप करना शुरू करता है। यह भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में यह परिहार तप का कल्प पूर्ण होता है। परिहार तप पूर्ण होने पर वे साधु या तो इसी कल्प को पुनः प्रारम्भ करते हैं या जिन कल्प धारण कर लेते हैं या वापिस गच्छ में आ जाते हैं। यह संयम छेदोपस्थापनिक चारित्र वालों के ही होता है दूसरों के नहीं।

निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक के भेद से परिहार विशुद्धि संयम दो प्रकार का है।

तप करने वाले पारिहारिक साधु निर्विशमानक कहलाते हैं। उनका चारित्र निर्विशमानक परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है।

तप करके वैयावृत्य करने वाले अनुपारिहारिक साधु तथा तप करने के बाद गुरु पद पर रहा हुआ साधु निर्विष्टकायिक कहलाता है। इनका चारित्र निर्विष्टकायिक परिहार विशुद्धि चारित्र कहलाता है।

४. सूक्ष्म सम्पराय संयम - सम्पराय का अर्थ कषाय होता है। जिस चारित्र में सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् संज्वलन लोभ का सूक्ष्म अंश रहता है। उसे सूक्ष्म सम्पराय संयम कहते हैं।

विशुद्ध्यमान और संक्लिश्यमान के भेद से सूक्ष्म सम्पराय संयम के दो भेद हैं।

क्षपक श्रेणी एवं उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने से उनका सूक्ष्म सम्पराय चारित्र विशुद्ध्यमान कहलाता है।

उपशम श्रेणी से गिरते हुए साधु के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं इसलिये उनका सूक्ष्मसम्पराय चारित्र संक्लिश्यमान कहलाता है।

५. यथाख्यात चारित्र संयम - सर्वथा कषाय का उदय न होने से अतिचार रहित पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र यथाख्यात चारित्र संयम कहलाता है। अथवा अकषायी साधु का निरतिचार यथार्थ चारित्र यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

छद्मस्थ और केवली के भेद से यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं। अथवा उपशान्त मोह और क्षीण मोह या प्रतिपाती और अप्रतिपाती के भेद से इसके दो भेद हैं।

सयोगी केवली और अयोगी केवली के भेद से केवली यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं।

एकेन्द्रिय जीवों का समारम्भ न करने वाले के पांच प्रकार का संयम होता है - १. पृथ्वीकाय संयम २. अप्काय संयम ३. तेजस्काय संयम ४. वायुकाय संयम ५. वनस्पतिकाय संयम।

असंयम - पाप से निवृत्त न होना असंयम कहलाता है अथवा सावद्य अनुष्ठान सेवन करना असंयम है। एकेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करने वाले के पांच प्रकार का असंयम होता है - १. पृथ्वीकाय असंयम २. अप्काय असंयम ३. तेजस्काय असंयम ४. वायुकाय असंयम ५. वनस्पतिकाय असंयम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय जीवों का समारम्भ न करने वाला पांच इन्द्रियों का व्याघात नहीं करता। इसलिए उसका पांच प्रकार का संयम होता है - १. श्रोत्रेन्द्रिय संयम २. चक्षुरिन्द्रिय संयम ३. घ्राणेन्द्रिय संयम ४. रसनेन्द्रिय संयम ५. स्पर्शनेन्द्रिय संयम। इससे विपरीत पञ्चेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करने वाला पांच इन्द्रियों का व्याघात करता है इसलिये उसे पांच प्रकार का असंयम होता है - श्रोत्रेन्द्रिय असंयम यावत् स्पर्शनेन्द्रिय असंयम।

सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का समारम्भ न करने वाले के पांच प्रकार का संयम होता है - १. एकेन्द्रिय संयम २. द्वीन्द्रिय संयम ३. त्रीन्द्रिय संयम ४. चतुरिन्द्रिय संयम ५. पंचेन्द्रिय संयम। इससे विपरीत सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का समारम्भ करने वाले के पांच प्रकार का असंयम होता है। एकेन्द्रिय असंयम यावत् पंचेन्द्रिय असंयम।

तृण वनस्पतिकाय पांच प्रकार की कही गयी है - **१. अग्र बीज** - जिसका बीज अग्रभाग पर होता है **२. मूल बीज** - जिसका बीज मूल भाग में होता है **३. पर्व बीज** - जिसका बीज पर्व (गांठ) में होता है **४. स्कन्ध बीज** - जिसका बीज स्कन्ध में होता है **५. बीज रुह** - बीज से उत्पन्न होने वाली वनस्पति।

आचार, आचारप्रकल्प, आरोपणा —

पंचविहे आयारे पण्णत्ते तंजहा - णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे । पंचविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते तंजहा - मासिए उग्घाइए, मासिए अणुग्घाइए, चउमासिए उग्घाइए, चउमासिए अणुग्घाइए, आरोवणा । आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता तंजहा - पट्ठविया, ठविया, कसिणा, अकसिणा, हाडहडा॥ २४॥

कठिन शब्दार्थ - आयारे - आचार, **आयारपकप्पे** - आचार प्रकल्प, **मासिए** - मासिक, **उग्घाइए** - उद्घातिक, **अणुग्घाइए** - अनुद्घातिक, **चउमासिए** - चातुर्मासिक, **आरोवणा** - आरोपणा, **पट्ठविया** - प्रस्थापिता, **ठविया** - स्थापिता, **कसिणा** - कृत्स्ना, **अकसिणा** - अकृत्स्ना ।

भावार्थ - पांच प्रकार का आचार कहा गया है । यथा - ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तप आचार और वीर्याचार । पांच प्रकार का आचार प्रकल्प कहा गया है । यथा - मासिक उद्घातिक यानी लघुमासिक, मासिक अनुद्घातिक यानी गुरुमासिक, चातुर्मास उद्घातिक यानी लघु चतुर्मासिक, चातुर्मास अनुद्घातिक यानी गुरुचतुर्मासिक और आरोपणा । पांच प्रकार की आरोपणा कही गई है । यथा - प्रस्थापिता, स्थापिता, कृत्स्ना, अकृत्स्ना और हाडहडा ।

विवेचन - आचार - मोक्ष के लिए किया जाना वाला ज्ञानादि आसेवन रूप अनुष्ठान विशेष आचार कहलाता है। अथवा - गुण वृद्धि के लिए किया जाने वाला आचरण आचार कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा - पूर्व पुरुषों से आचरित ज्ञानादि आसेवन विधि को आचार कहते हैं। आचार के पाँच भेद हैं - १. ज्ञानाचार २. दर्शनाचार ३. चरित्राचार ४. तप आचार ५. वीर्याचार।

१. ज्ञानाचार - सम्यक् तत्त्व का ज्ञान कराने के कारण भूत श्रुतज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है।

२. दर्शनाचार - दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व का निःशंकितादि रूप से शुद्ध आराधना करना दर्शनाचार है।

३. चारित्राचार - ज्ञान एवं श्रद्धापूर्वक सर्व सावद्य योगों का त्याग करना चारित्र है। चारित्र का सेवन करना चारित्राचार है।

४. तप आचार - इच्छा निरोध रूप अनशनादि तप का सेवन करना तप आचार है।

५. वीर्याचार - अपनी शक्ति का गोपन न करते हुए धर्मकार्यों में यथाशक्ति मन, वचन, काया द्वारा प्रवृत्ति करना वीर्याचार है।

आचार प्रकल्प - आचारांग नामक प्रथम अङ्ग के निशीथ नामक अध्ययन को आचार प्रकल्प कहते हैं। निशीथ अध्ययन आचारांग सूत्र की पंचम चूलिका है। इसके बीस उद्देशक हैं। इसमें पांच प्रकार के प्रायश्चित्तों का वर्णन है। इसीलिये इसके पांच प्रकार कहे जाते हैं। वे ये हैं - १. मासिक उद्घातिक २. मासिक अनुद्घातिक ३. चौमासी उद्घातिक ४. चौमासी अनुद्घातिक ५. आरोपणा।

१. मासिक उद्घातिक - उद्घात अर्थात् कम करके जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह उद्घातिक प्रायश्चित्त है। एक मास का उद्घातिक प्रायश्चित्त मासिक उद्घातिक है। इसी को लघु मासिक प्रायश्चित्त भी कहते हैं।

मास के आधे पन्द्रह दिन, और मासिक प्रायश्चित्त के पूर्ववर्ती पच्चीस दिन के आधे १२॥ दिन- इन दोनों को जोड़ने से २७॥ दिन होते हैं। इस प्रकार भाग करके जो एक मास का प्रायश्चित्त दिया जाता है वह मासिक उद्घातिक या लघु मास प्रायश्चित्त कहलाता है।

२. मासिक अनुद्घातिक - जिस प्रायश्चित्त का भाग न हो यानी लघुकरण न हो वह अनुद्घातिक है। अनुद्घातिक प्रायश्चित्त को गुरु प्रायश्चित्त भी कहते हैं। एक मास का गुरु प्रायश्चित्त मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त कहलाता है।

३. चौमासी उद्घातिक - चार मास का लघु प्रायश्चित्त चौमासी उद्घातिक कहा जाता है।

४. चौमासी अनुद्घातिक - चार मास का गुरु प्रायश्चित्त चौमासी अनुद्घातिक कहा जाता है।

दोषों के उपयोग, अनुपयोग तथा आसक्ति पूर्वक सेवन की अपेक्षा तथा दोषों की न्यूनाधिकता से प्रायश्चित्त भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट रूप से दिया जाता है। प्रायश्चित्त रूप में तप भी किया जाता है। दीक्षा का छेद भी होता है। यह सब विस्तार छेद सूत्रों से जानना चाहिये।

५. आरोपणा - एक प्रायश्चित्त के ऊपर दूसरा प्रायश्चित्त चढ़ाना आरोपणा प्रायश्चित्त है। तप प्रायश्चित्त छह मास तक ऊपरा ऊपरी दिया जा सकता है। इसके आगे नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरोपणा के पांच भेद - १. प्रस्थापिता २. स्थापिता ३. कृत्स्ना ४. अकृत्स्ना ५. हाड़हड़ा।

१. प्रस्थापिता - आरोपिता प्रायश्चित्त का जो पालन किया जाता है वह प्रस्थापिता आरोपणा है।

२. स्थापिता - जो प्रायश्चित्त आरोपणा से दिया गया है। उस का वैयावृत्यादि कारणों से उसी समय पालन न कर आगे के लिये स्थापित करना स्थापिता आरोपणा है।

३. कृत्स्ना - दोषों का जो प्रायश्चित्त छह महीने उपरान्त न होने से पूर्ण सेवन कर लिया जाता है और जिस प्रायश्चित्त में कमी नहीं की जाती। वह कृत्स्ना आरोपणा है।

४. अकृत्स्ना - अपराध बाहुल्य से छह मास से अधिक आरोपणा प्रायश्चित्त आने पर ऊपर का जितना भी प्रायश्चित्त है। वह जिसमें कम कर दिया जाता है। वह अकृत्स्ना आरोपणा है।

५. हाड़हड़ा - लघु अथवा गुरु एक, दो, तीन आदि मास का जो भी प्रायश्चित्त आया हो, वह तत्काल ही जिसमें सेवन किया जाता है वह हाड़हड़ा आरोपणा है।

वक्षस्कार पर्वत

जंबूहीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खार पव्वया पण्णत्ता तंजहा - मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे णलिणकूडे, एगसेले । जंबूमंदरस्स पुरओ सीयाए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे सोमणसे । जंबूमंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं पंच वक्खार पव्वया पण्णत्ता तंजहा - विज्जुप्पभे, अंकावई, पम्हावई, आसीविसे, सुहावहे । जंबूमंदरस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खार पव्वया पण्णत्ता तंजहा - चंदपव्वए, सूरपव्वए, णागपव्वए, देवपव्वए, गंधमायणे । जंबू मंदरस्स दाहिणेणं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता तंजहा - णीलवंतदहे, उत्तकुरु दहे, चंदद्दहे, एरावणदहे, मालवंतदहे । सव्वे वि णं वक्खार पव्वया सीयासीओयाओ महाणईओ मंदरं वा पव्वयं तेणं पंचजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचगाउयसयाइं उव्वेहेणं ।

धायइसंडे दीवे पुरच्छिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं पंच वक्खार पव्वया पण्णत्ता तंजहा - मालवंते एवं जहा जंबूहीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वक्खारा दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं । समयक्खेत्ते णं पंच भरहाइं पंच एरवयाइं एवं जहा चउट्ठाणे बिईयउद्देसे तहा एत्थ वि भाणियव्वं जाव पंच मंदरा, पंच मंदर चूलियाओ, णवरं उसुयारा णत्थि । उसभे णं अरहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । भरहे णं राया चाउरंत चक्कवट्टी पंच धणु सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । बाहुबली णं अणगारे एवं चेव । बंभी णामज्जा एवं चेव । एवं सुन्दरी वि॥ २५॥

कठिन शब्दार्थ - वक्खार - वक्षस्कार, **पुरओ** - सामने, **दहा** - द्रह, **उच्चत्तं** - ऊंचाई, **मंदर चूलियाओ** - मेरु पर्वतों की चूलिकाएं, **अज्जा** - आर्या, **कोसलिए** - कौशल देश में उत्पन्न ।

भावार्थ - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में सीता महानदी के उत्तर दिशा में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। यथा - माल्यवान्, चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एक शैल । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के सामने सीता महानदी के दक्षिण दिशा में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। यथा - त्रिकूट, वैश्रमण कूट, अञ्जन, मातंञ्जन और सोमनस। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। यथा - विद्युत्प्रभ, अंकावती, पद्मावती, आशीविष और सुखावह। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर दिशा में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। यथा - चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, नाग पर्वत, देवपर्वत और गन्ध मादन पर्वत। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा में देवकुरु में पांच महाद्रह कहे गये हैं। यथा - नीलवान् द्रह, उत्तरकुरु द्रह, चन्द्र द्रह, ऐरावण द्रह, माल्यवान् द्रह। ये सभी वक्षस्कार पर्वत सीता, सीतोदा महानदी तथा मेरु पर्वत की तरफ पांच सौ योजन ऊंचे हैं और पांच सौ कोस जमीन में ऊंडे हैं। धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में सीता महानदी के उत्तर दिशा में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। यथा - माल्यवान्, चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल। इस प्रकार जैसा जम्बूद्वीप में वक्षस्कार आदि पर्वतों का वर्णन किया गया है। वैसा ही पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध तक वक्षस्कार पर्वत द्रह और पर्वतों की ऊंचाई आदि का वर्णन कर देना चाहिए। समयक्षेत्र यानी अढाई द्वीप में पांच भरत, पांच ऐरवत आदि का वर्णन जैसा चौथे ठाणे के दूसरे उद्देशक में किया गया है। वैसा पांच मेरु पर्वत, पांच मेरु पर्वतों की चूलिकाएं तक सारा वर्णन यहाँ भी कह देना चाहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ इषुकार पर्वतों का कथन नहीं करना चाहिए। कोशल देश में उत्पन्न तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव स्वामी पांच सौ धनुष ऊंचे थे। चारों दिशाओं के राजाओं को वश में करने वाले चक्रवर्ती भरत महाराजा पांच सौ धनुष ऊंचे थे। इसी प्रकार बाहुबली अनगार और ब्राह्मी, सुन्दरी आर्याएं भी पांच सौ धनुष की ऊंची थी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में २० वक्षस्कार पर्वतों का नामोल्लेख किया गया है। माल्यवंत नाम के गजदंत पर्वत की प्रदक्षिणा करने से चार सूत्र में वर्णित २० वक्षस्कार पर्वत समझने चाहिये। यहां देवकुरु क्षेत्र में निषध नाम के वर्षधर पर्वत से उत्तर दिशा में ८३४ योजन तथा एक योजन के सात भाग में से चार भाग ८३४$\frac{४}{७}$ उल्लंघन कर सीतोदा महानदी के पूर्व और पश्चिम किनारे पर विचित्रकूट और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्रकूट नाम के दो पर्वत हैं जो एक हजार योजन के ऊंचे, मूल भाग में एक हजार योजन के लम्बे चौड़े और ऊपर के भाग में ५०० योजन के लम्बे चौड़े प्रासाद से सुंदर और अपने नाम वाले देव के निवासभूत है। उन दो पर्वतों की उत्तर दिशा में पूर्व कथित अंतर वाले, सीतोदा महानदी के मध्य भाग में रहे हुए, दक्षिण और उत्तर में एक हजार योजन के लम्बे, पूर्व पश्चिम पांच सौ योजन के चौड़े दो वेदिका और दो वनखंड से घिरे हुए दस योजन के ऊंडे (गहरे) द्रह हैं। जो विविध मणिमय दस योजन के कमलनाल वाले, अर्द्धयोजन की मोटाई वाले, एक योजन की चौड़ाई वाले आधे योजन के विस्तार वाले तथा एक गाऊ की ऊंचाई वाली कर्णिका से युक्त, निषध नाम के देव के निवास भूत भवन से शोभित मध्य भाग वाले महापद्म कमल है उससे अर्द्ध प्रमाण वाले १०८ पद्म कमलों से और इन कमलों से अन्य सामानिक आदि देवों के निवासभूत पद्म कमलों की एक लाख संख्या से चारों तरफ घिरे हुए महापद्म से जिसका मध्य भाग शोभित है ऐसा निषध नाम का महाद्रह है। इसी प्रकार अन्य द्रहों की वक्तव्यता निषध के समान अपने नाम के अनुसार देवों के निवास और अंतर के अनुसार जानना। विशेषता यह है कि नीलवान् महाद्रह विचित्रकूट और चित्रकूट पर्वत की वक्तव्यता से अपने नाम समान देवों के आवासभूत यमक नाम के दो पर्वतों से अंतर रहित जानना, उसके बाद दक्षिण से शेष चार द्रह जानना। ये सब द्रह १०-१० कांचनक नामक पर्वत से युक्त हैं। ये पर्वत १०० योजन के ऊंचे मूल में १०० योजन चौड़े ऊपर भाग में ५० योजन के चौड़े और अपने समान नाम वाले देवों के आवास से प्रत्येक (द्रहों से) १०-१० योजन के अंतर से पूर्व और पश्चिम दिशा में रहे हुए हैं। ये विचित्र कूटादि पर्वत और द्रह निवासी देवों की असंख्येय योजन प्रमाण वाली दूसरे जम्बूद्वीप के विषय में बारह हजार योजन प्रमाण वाली और उनके नाम वाली नगरियाँ हैं।

जंबूद्वीप संबंधी सभी वक्षस्कार पर्वत प्रसिद्ध सीता और सीतोदा इन दो नदियों के आश्रयी अर्थात् नदी की दिशा में अथवा मेरु पर्वत की ओर उसकी दिशा में वैसे गजदंत जैसे आकार वाले माल्यवंत, सौमनस, विद्युत्प्रभ और गंधमादन पर्वत, मेरु की अपेक्षा उस दिशा में यथोक्त स्वरूप वाला है। इसके आगे कहे सात सूत्र धातकी खंड के और पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध के विषय में जम्बूद्वीप की तरह जानना चाहिये।

समय क्षेत्र - समय-काल विशिष्ट जो क्षेत्र है वह समय क्षेत्र अर्थात् मनुष्य क्षेत्र जिसमें सूर्य की गति से जानने योग्य ऋतु और अयनादि काल युक्तपना है।

जागृत एवं अवलम्बन के कारण

पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा तंजहा - सद्देणं, फासेणं, भोयण परिणामेणं, णिद्दक्खएणं, सुविण दंसणेणं । पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ तंजहा - णिग्गंथिं च अण्णयरे पसुजाइए वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पक्खीजाइए वा ओहाएज्जा तत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा, अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ । णिग्गंथे णिग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ । णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उवुज्झमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ । णिग्गंथे णिग्गंथिं णावं आरुहमाणे वा ओसहमाणे वा णाइक्कमइ। खित्तइत्तं, दित्तइत्तं, जक्खाइट्ठं, उम्मायपत्तं, उवसग्गपत्तं साहिगरणं सपायच्छित्तं जाव भत्तपाणपडियाइक्खियं अट्ठजायं वा णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ॥ २६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **विबुज्झेज्जा** - जागृत होता है, **भोयणपरिणामेणं** - भोजन परिणाम से, **णिद्दक्खएणं** - निद्रा पूरी होने से, **सुविणदंसणेणं** - स्वप्न देखने से, **गिण्हमाणे** - पकड़ता हुआ, **अवलंबमाणे** - सहारा देता हुआ, **पसुजाइए** - पशु जातीय-पशु आदि, **पक्खीजाइए** - पक्षी जातीय-पक्षी गीध आदि, **ओहाएज्जा** - मारे, **दुग्गंसि** - दुर्गम स्थान में, **विसमंसि** - विषम स्थान में, **पक्खलमाणिं** - स्खलित होती हुई, **पवडमाणिं** - गिरती हुई, **सेयंसि** - गीले स्थान में, **पंकंसि** - कीचड़ में, **पणगंसि** - पनक-लीलण फूलण पर, **उक्कसमाणिं** - फिसलती हुई, **उवुज्झमाणिं** - बहती हुई, **आरुहमाणे** - चढाता हुआ, **ओरुहमाणे** - उतारता हुआ, **उवसग्गपत्तं** - उपसर्ग को प्राप्त, **साहिगरणं** - साधिकरण-कषाय युक्त, **भत्तपाणपडियाइक्खियं** - आहार पानी का त्याग की हुई, **अट्ठजायं** - अर्थजात-प्रयोजन युक्त अथवा संयम से विचलित होती हुई।

भावार्थ - पांच कारणों से सोता हुआ प्राणी जागृत होता है । यथा - शब्द सुनने से, स्पर्श लगने से, भोजन परिणाम से यानी भूख लगने से, निद्रा पूरी होने से और स्वप्न देखने से ।

पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ साध्वी को पकड़ता हुआ अथवा सहारा देता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । यथा - कोई पशु मदोन्मत्त बैल आदि अथवा पक्षी- गीध आदि साध्वी को मारे तो उस समय उसकी रक्षा के लिए उसे पकड़ता हुआ अथवा सहारा देता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । दुर्गम स्थान में अथवा विषम स्थान में स्खलित होती हुई अथवा गिरती हुई साध्वी को पकड़ता हुआ अथवा सहारा देता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । गीली जगह में, कीचड़ में, अथवा लीलण फूलण पर फिसलती हुई अथवा जल में बहती हुई साध्वी को पकड़ता हुआ अथवा सहारा देता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । साध्वी को नाव में चढ़ाता हुआ अथवा नाव से उतारता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । विक्षिप्त चित्त वाली, हर्षोन्मत्त चित्त वाली, यक्षाविष्ट, उन्माद को

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

प्राप्त हुई उपसर्ग यानी कष्ट में पड़ी हुई, साधिकरण यानी क्लेश युक्त एवं लड़ाई करके आई हुई, प्रायश्चित्त वाली यावत् आहार पानी का त्याग की हुई अथवा किसी पुरुष के द्वारा संयम से विचलित की जाती हुई साध्वी को पकड़ता हुआ अथवा सहारा देता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ।

विवेचन - पाँच बोलों से साधु साध्वी को ग्रहण करने अथवा सहारा देने के लिये उसका स्पर्श करे तो भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता।

१. कोई मस्त सांड आदि पशु या गीध आदि पक्षी साध्वी को मारते हों तो साधु, साध्वी को बचाने के लिए उसका स्पर्श कर सकता है।

२. दुर्ग से अथवा विषम स्थानों पर फिसलती हुई या गिरती हुई साध्वी को बचाने के लिये साधु उसका स्पर्श कर सकता है।

३. कीचड़ या दलदल में फँसी हुई अथवा पानी में बहती हुई साध्वी को साधु निकाल सकता है।

४. नाव पर चढ़ती हुई या उतरती हुई साध्वी को साधु सहारा दे सकता है।

५. यदि कोई साध्वी राग, भय या अपमान से शून्य चित्त वाली हो, सन्मान से हर्षोन्मत्त हो, यक्षाधिष्टित हो, उन्माद वाली हो, उसके ऊपर उपसर्ग आये हों, यदि वह कलह करके खमाने के लिये आती हो, परन्तु पछतावे और भय के मारे शिथिल हो, प्रायश्चित्त वाली हो, संथारा की हुई हो, दुष्ट पुरुष अथवा चोर आदि द्वारा संयम से डिगाई जाती हो, ऐसी साध्वी की रक्षा के लिये साधु उसका स्पर्श कर सकता है।

निद्रा से जागने के पाँच कारण - १. शब्द २. स्पर्श ३. क्षुधा ४. निद्रा क्षय ५. स्वप्न दर्शन।

इन पाँच कारणों से सोये हुए जीव की निद्रा भङ्ग हो जाती है और वह शीघ्र जग जाता है।

आचार्य उपाध्याय के अतिशय

आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच अइसेसा पण्णत्ता तंजहा - आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सगस्स पाए णिगिज्झिय णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णाइक्कमइ । आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सगस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा णाइक्कमइ । आयरियउवज्झाए इच्छा वेयावडियं करेज्जा इच्छा णो करेज्जा । आयरियउवज्झाए अंतो उवस्सगस्स एगरायं वा दुरायं वा एगागी वसमाणे णाइक्कमइ । आयरियउवज्झाए बाहिं उवस्सगस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णाइक्कमइ॥ २७॥

कठिन शब्दार्थ - **अइसेसा** - अतिशय, **णिगिज्झिय** - निगृह्य-दूसरों पर धूल न उड़े, इस तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करके **पप्फोडेमाणे** - झड़कवाते हुए, **पमज्जेमाणे**, - प्रमार्जना करवाते हुए, **विगिंचमाणे** - त्याग करते हुए-परठते हुए, **विसोहेमाणे** - शोधन-साफ करते हुए, **एगागी** - एकाकी-अकेले ।

भावार्थ - गच्छ में आचार्य उपाध्याय के पांच अतिशेष यानी अतिशय कहे गये हैं यथा - जब आचार्य उपाध्याय बाहर से पधारे तब उपाश्रय के अन्दर अपने पैरों को दूसरों पर धूलि न उड़े इस तरह करके दूसरे साधु से झड़कवाते हुए तथा प्रमार्जना करवाते हुए आचार्य उपाध्याय भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । आचार्य उपाध्याय उपाश्रय के अन्दर ही मलमूत्र को परठते हुए अथवा पैर आदि में लगी हुई अशुचि को साफ करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । आचार्य उपाध्याय की इच्छा हो तो वे वेयावच्च करें, इच्छा न हो तो न करें, ऐसा करते हुए वे भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । ज्ञान ध्यान की सिद्धि के लिए उपाश्रय के अन्दर एक रात अथवा दो रात अकेले रहते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । आचार्य उपाध्याय ज्ञान ध्यानादि की सिद्धि के लिए एक रात अथवा दो रात तक उपाश्रय के बाहर रहते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

विवेचन - गच्छ में वर्तमान आचार्य, उपाध्याय के अन्य साधुओं की अपेक्षा पाँच अतिशय अधिक होते हैं -

१. उत्सर्ग रूप से सभी साधु जब बाहर से आते हैं तो स्थानक में प्रवेश करने के पहिले बाहर ही पैरों को पूंजते हैं और झाटकते हैं। उत्सर्ग से आचार्य, उपाध्याय भी उपाश्रय से बाहर ही खड़े रहते हैं और दूसरे साधु उनके पैरों का प्रमार्जन और प्रस्फोटन करते हैं अर्थात् धूलि दूर करते हैं और पूंजते हैं।

परन्तु इसके लिये बाहर ठहरना पड़े तो दूसरे साधुओं की तरह आचार्य, उपाध्याय बाहर न ठहरते हुए उपाश्रय के अन्दर ही आ जाते हैं और अन्दर ही दूसरे साधुओं से धूलि न उड़े, इस प्रकार प्रमार्जन और प्रस्फोटन कराते हैं; यानी पुंजवाते हैं और धूलि दूर करवाते हैं। ऐसा करते हुए भी वे साधु के आचार का अतिक्रमण नहीं करते।

२. आचार्य, उपाध्याय उपाश्रय में लघुनीत बड़ीनीत परठाते हुए या पैर आदि में लगी हुई अशुचि को हटाते हुए साधु के आचार का अतिक्रमण नहीं करते।

३. आचार्य, उपाध्याय इच्छा हो तो दूसरे साधुओं की वैयावृत्य करते हैं, इच्छा न हो तो नहीं भी करते हैं।

४. आचार्य, उपाध्याय उपाश्रय में एक या दो रात तक अकेले रहते हुए भी साधु के आचार का अतिक्रमण नहीं करते।

५. आचार्य, उपाध्याय उपाश्रय से बाहर एक या दो रात तक अकेले रहते हुए भी साधु के आचार का अतिक्रमण नहीं करते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गणापक्रमण

पंचहिं ठाणेहिं आयरियउवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते तंजहा - आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवइ । आयरियउवज्झाए गणंसि अहारायणियाए किइकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवइ। आयरियउवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाए धारिंति ते काले णो सम्मं अणुपवाइत्ता भवइ । आयरियउवज्झाए गणंसि सगणियाए वा पर गणियाए वा णिग्गंथीए बहिल्लेसे भवइ । मित्ते णाइगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा तेसिं संगहोवग्गहट्टयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते ।

ऋद्धिवन्त

पंचविहा इड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा - अरिहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, भावियप्पाणो अणगारा॥ २८ ॥

।। पंचम ट्ठाणस्स बिईओ उद्देसो समत्तो ।।

कठिन शब्दार्थ - गणावक्कमणे - गणापक्रमण, **गणंसि** - गण में, **आणं** - आज्ञा, **धारणं** - धारणा, **किइकम्मं** - कृतिकर्म-वन्दना, **वेणइयं** - विनय, **अणुपवाइत्ता** - वाचना, **बहिल्लेसे** - बहिंलेश्य-आसक्त, **संगहोवग्गहट्टयाए** - सहायता करने के लिये, **इड्डिमंता** - ऋद्धिवन्त, **भावियप्पाणो**- भावितात्मा ।

भावार्थ - पांच कारणों से आचार्य उपाध्याय का गणापक्रमण कहा गया है अर्थात् पांच कारणों से आचार्य उपाध्याय गच्छ से निकल जाते हैं यथा - गच्छ में साधुओं के दुर्विनीत हो जाने पर आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ में 'इस प्रकार प्रवृत्ति करो, इस प्रकार प्रवृत्ति न करो' इत्यादि प्रवृत्ति निवृत्ति रूप आज्ञा और धारणा को यथायोग्य सम्यग् न प्रवर्त्ता सकें । आचार्य उपाध्याय अपने पद के अभिमान से रत्नाधिक यानी दीक्षा में अपने से बड़े साधुओं का यथायोग्य वन्दना और विनय न करें तथा अपने गच्छ के साधुओं में छोटे साधुओं से बड़े साधुओं को वन्दना तथा उनका विनय न करा सकें । आचार्य उपाध्याय जो सूत्रों के अध्ययन उद्देशक आदि धारण किये हुए हैं उनकी यथासमय अपने गच्छ के साधुओं को वाचना न दें । वाचना न देने में दोनों तरफ की अयोग्यता हो सकती है जैसे कि गच्छ के साधु अविनीत हों अथवा आचार्य उपाध्याय भी सुखासक्त तथा मन्दबुद्धि वाले हो सकते हैं । गच्छ में रहे हुए आचार्य उपाध्याय अपने गच्छ की अथवा दूसरे गच्छ की साध्वी में मोहवश आसक्त हो जायँ । आचार्य उपाध्याय के मित्र अथवा उनकी जाति के लोग उनको गच्छ से निकालें । उन लोगों की बात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को स्वीकार कर वस्त्रादि से उनकी सहायता करने के लिए आचार्य उपाध्याय गच्छ से निकल जाते हैं । इन पांच कारणों से आचार्य उपाध्याय का गणापक्रमण कहा गया है ।

पांच प्रकार के ऋद्धिवन्त मनुष्य कहे गये हैं यथा - अरिहंत यानी तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और भावितात्मा यानी श्रेष्ठ भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित करने वाले अनगार । ये पांच ऋद्धिमान् मनुष्य कहे गये हैं ।

विवेचन - पाँच कारणों से आचार्य, उपाध्याय गच्छ से निकल जाते हैं -

१. गच्छ में साधुओं के दुर्विनीत होने पर आचार्य, उपाध्याय "इस प्रकार प्रवृत्ति करो, इस प्रकार न करो" इत्यादि प्रवृत्ति निवृत्ति रूप, आज्ञा धारणा यथायोग्य न प्रवर्ता सकें।

२. आचार्य, उपाध्याय पद के अभिमान से रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े) साधुओं की यथायोग्य विनय न करें तथा साधुओं में छोटों से बड़े साधुओं की विनय न करा सकें।

३. आचार्य, उपाध्याय जो सूत्रों के अध्ययन, उद्देशक आदि धारण किये हुए हैं उनकी यथावसर गण को वाचना न दें। वाचना न देने में दोनों ओर की अयोग्यता संभव है। गच्छ के साधु अविनीत हो सकते हैं तथा आचार्य, उपाध्याय भी सुखासक्त तथा मन्दबुद्धि हो सकते हैं।

४. गच्छ में रहे हुए आचार्य, उपाध्याय अपने या दूसरे गच्छ की साध्वी में मोहवश आसक्त हो जाय।

५. आचार्य, उपाध्याय के मित्र या ज्ञाति के लोग किसी कारण से उन्हें गच्छ से निकालें। उन लोगों की बात स्वीकार कर उनकी वस्त्रादि से सहायता करने के लिये आचार्य, उपाध्याय गच्छ से निकल जाते हैं।

।। पांचवें स्थान का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

पांचवें स्थान का तीसरा उद्देशक

अस्तिकाय

पंच अत्थिकाया पण्णत्ता तंजहा - धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए । धम्मत्थिकाए अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे, अरूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए, लोगदव्वे, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ गुणओ । दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं, खित्तओ लोगप्पमाणमित्ते, कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवइ, ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कयाइ ण भविस्सइ त्ति, भुविं भवइ भविस्सइ य, धुवे णियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे, गुणओ गमणगुणे य । अधम्मत्थिकाए अवण्णे एवं चेव, णवरं गुणओ ठाणगुणे । आगासत्थिकाए अवण्णे एवं चेव णवरं खित्तओ लोगालोगप्पमाणमित्ते, गुणओ अवगाहणागुणे, सेसं तं चेव। जीवत्थिकाए अवण्णे एवं चेव, णवरं दव्वओ जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, अरूवी जीवे सासए, गुणओ उवओगगुणे, सेसं तं चेव । पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे, अट्ठफासे रूवी अजीवे सासए अवट्ठिए जाव दव्वओ पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खित्तओ लोगप्पमाणमित्ते, कालओ ण कयाइ णासी जाव णिच्चे, भावओ वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते गुणओ गहणगुणे।

पांच गतियाँ

पंच गईओ पण्णत्ताओ तंजहा - णिरयगई, तिरियगई, मणुयगई, देवगई, सिद्धिगई॥ २९॥

कठिन शब्दार्थ - अत्थिकाया - अस्तिकाय, **सासए** - शाश्वत, **अवट्ठिए** - अवस्थित, **लोगदव्वे**- लोक द्रव्य-लोक में रही हुई, **समासओ** - संक्षेप में, **लोगप्पमाणमित्ते** - लोक प्रमाण, **धुवे** - ध्रुव, **णियए**- नियत, **गमणगुणे** - गमन गुण, **ठाणगुणे** - स्थिति गुण, **लोगालोगप्पमाणमित्ते** - लोकालोक प्रमाण, **अवगाहणागुणे** - अवकाश गुण, **उवओगगुणे** - उपयोग गुण, **गहणगुणे** - ग्रहण गुण ।

भावार्थ - पांच अस्तिकाय कही गई हैं यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय । धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक में रही हुई है । वह धर्मास्तिकाय संक्षेप में पांच प्रकार की कही गई है यथा - द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से और गुण से । द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है । क्षेत्र से सारे लोक प्रमाण है । काल से भूतकाल में नहीं थी, वर्तमान काल में नहीं है और भविष्यत्काल में नहीं रहेगी, ऐसा नहीं किन्तु भूतकाल में थी, वर्तमान काल में हैं और भविष्यत्काल में रहेगी । यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है । भाव की अपेक्षा वर्ण नहीं गन्ध नहीं रस नहीं स्पर्श नहीं और गुण की अपेक्षा गमनगुण वाला है । अधर्मास्तिकाय भी धर्मास्तिकाय की तरह वर्णादि से रहित है इतनी विशेषता है कि गुण की अपेक्षा स्थितिगुण वाला है । आकाशास्तिकाय भी इसी तरह वर्णादि रहित है किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षेत्र की अपेक्षा लोकालोक प्रमाण है और गुण की अपेक्षा अवकाश गुण वाला है । बाकी सारा वर्णन धर्मास्तिकाय के समान है । जीवास्तिकाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी इसी तरह वर्णादि से रहित है किन्तु इतनी विशेषता है कि द्रव्य की अपेक्षा जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं। जीव अरूपी और शाश्वत है । गुण की अपेक्षा उपयोग गुण वाला है । शेष सारा वर्णन धर्मास्तिकाय के समान है । पुदगलास्तिकाय पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श सहित है । पुद्‌गलास्तिकाय रूपी अजीव शाश्वत यावत् अवस्थित है। द्रव्य की अपेक्षा अनन्त द्रव्य रूप है। क्षेत्र की अपेक्षा लोकप्रमाण है, काल की अपेक्षा पुद्‌गलास्तिकाय कभी नहीं थी ऐसा नहीं, किन्तु पुद्‌गलास्तिकाय भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत् काल में रहेगी, यावत् नित्य है। भाव की अपेक्षा पांच वर्ण वाली, दो गन्ध वाली, पांच रस वाली और आठ स्पर्श वाली है। गुण की अपेक्षा ग्रहण गुण वाली है। पांच गतियाँ कही गई हैं यथा - नरक गति, तिर्यञ्चगति, मनुष्य गति, देवगति और सिद्धिगति ।

विवेचन - अस्तिकाय - यहाँ 'अस्ति' शब्द का अर्थ प्रदेश है और काय का अर्थ है 'राशि'। प्रदेशों की राशि वाले द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं। अस्तिकाय पांच हैं - १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. जीवास्तिकाय ५. पुद्‌गलास्तिकाय।

१. धर्मास्तिकाय - गति परिणाम वाले जीव और पुद्‌गलों की गति में जो सहायक हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे पानी, मछली की गति में सहायक होता है।

२. अधर्मास्तिकाय - स्थिति परिणाम वाले जीव और पुद्‌गलों की स्थिति में जो सहायक (सहकारी) हो उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे विश्राम चाहने वाले थके हुए पथिक के ठहरने में छायादार वृक्ष सहायक होता है।

३. आकाशास्तिकाय - जो जीवादि द्रव्यों को रहने के लिए अवकाश दे वह आकाशास्तिकाय है।

४. जीवास्तिकाय - जिसमें उपयोग और वीर्य दोनों पाये जाते हैं उसे जीवास्तिकाय कहते हैं।

५. पुद्‌गलास्तिकाय - जिस में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हों और जो इन्द्रियों से ग्राह्य हो तथा विनाश धर्म वाला हो वह पुद्‌गलास्तिकाय है।

अस्तिकाय के पाँच पाँच भेद - प्रत्येक अस्तिकाय के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा से पांच पांच भेद हैं ।

धर्मास्तिकाय के पांच प्रकार -

१. द्रव्य की अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा धर्मास्तिकाय लोक परिमाण अर्थात् सर्व लोकव्यापी है यानी लोकाकाश की तरह असंख्यात प्रदेशी हैं।

३. काल की अपेक्षा धर्मास्तिकाय त्रिकाल स्थायी है। यह भूत काल में रहा है। वर्तमान काल में विद्यमान है और भविष्यत् काल में भी रहेगा। यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय एवं अव्यय है तथा अवस्थित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. भाव की अपेक्षा धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित है। अरूपी है तथा चेतना रहित अर्थात् जड़ हैं।

५. गुण की अपेक्षा गति गुण वाला है अर्थात् गति परिणाम वाले जीव और पुद्गलों की गति में सहकारी होना इसका गुण है।

अधर्मास्तिकाय के पाँच प्रकार – अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा धर्मास्तिकाय जैसा ही है।

गुण की अपेक्षा अधर्मास्तिकाय स्थिति गुण वाला है।

आकाशास्तिकाय के पाँच प्रकार –

आकाशास्तिकाय द्रव्य, काल और भाव की अपेक्षा धर्मास्तिकाय जैसा ही है।

क्षेत्र की अपेक्षा आकाशास्तिकाय लोकालोक व्यापी है और अनन्त प्रदेशी है। लोकाकाश धर्मास्तिकाय की तरह असंख्यात प्रदेशी है।

गुण की अपेक्षा आकाशास्तिकाय अवगाहना गुण वाला है अर्थात् जीव और पुद्गलों को अवकाश देना ही इसका गुण है।

जीवास्तिकाय के पाँच प्रकार –

१. द्रव्य की अपेक्षा जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य रूप है क्योंकि पृथक् पृथक् द्रव्य रूप जीव अनन्त हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा जीवास्तिकाय लोक परिमाण है। एक जीव की अपेक्षा जीव असंख्यात प्रदेशी है और सब जीवों की अपेक्षा अनन्त प्रदेशी है।

३. काल की अपेक्षा जीवास्तिकाय आदि (प्रारम्भ), अन्त रहित है अर्थात् ध्रुव, शाश्वत और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा जीवास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित है। अरूपी तथा चेतना गुण वाला है।

५. गुण की अपेक्षा जीवास्तिकाय उपयोग गुण वाला है।

पुद्गलास्तिकाय के पाँच प्रकार –

१. द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय लोक परिमाण है और अनन्त प्रदेशी है।

३. काल की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय आदि अन्त रहित अर्थात् ध्रुव, शाश्वत और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श सहित है यह रूपी और जड़ है।

५. गुण की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय का ग्रहण गुण है अर्थात् औदारिक शरीर आदि रूप से ग्रहण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया जाना या इन्द्रियों से ग्रहण होना अर्थात् इन्द्रियों का विषय होना या परस्पर एक दूसरे से मिल जाना पुद्‌गलास्तिकाय का गुण है।

गति पाँच - १. नरक गति २. तिर्यंच गति ३. मनुष्य गति ४. देव गति ५. सिद्धि गति।

नोट - गति नाम कर्म के उदय से पहले की चार गतियाँ होती हैं। सिद्धि गति, गति नाम कर्म के उदय से नहीं होती क्योंकि सिद्धों के कर्मों का सर्वथा अभाव है। यहाँ गति शब्द का अर्थ जहाँ जीव जाते हैं ऐसे क्षेत्र विशेष से हैं। चार गतियों की व्याख्या चौथे स्थान में दे दी गई है। चार गतियों से जीव आते भी हैं और जाते भी हैं किन्तु सिद्धि गति में कर्मों का क्षय कर जीव जाते हैं किन्तु वहां से वापस लौट कर नहीं आते। क्योंकि उनके आठों कर्मों का अभाव (क्षय) हो चुका है। जिनके कर्म क्षय नहीं हुए हैं किन्तु विद्यमान हैं उन जीवों का चार गतियों में आना और जाना होता है।

इन्द्रियों के अर्थ और मुंड

पंच इंदियत्था पण्णत्ता तंजहा - सोइंदियत्थे, चक्खुइंदियत्थे, घाणेंदियत्थे, रसणेंदियत्थे, फासिंदियत्थे । अहवा पंच मुंडा पण्णत्ता तंजहा - सोइंदियमुंडे जाव फासिंदियमुंडे । अहवा पंच मुंडा पण्णत्ता तंजहा - कोह मुंडे, माणमुंडे, मायामुंडे, लोभमुंडे, सिरमुंडे ।

पांच बादर और अचित्त वायु

अहोलोए णं पंच बायरा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा । उड्ढलोए णं पंच बायरा पण्णत्ता तंजहा - एवं चेव । तिरियलोए णं पंच बायरा पण्णत्ता तंजहा - एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउइंदिया पंचिंदिया । पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता तंजहा - इंगाले, जाला, मुम्मुरे, अच्ची, अलाए । पंचविहा बायर वाउकाइया पण्णत्ता तंजहा - पाईणवाए, पडीणवाए, दाहिणवाए, उदीणवाए, विदिसवाए । पंचविहा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता तंजहा - अक्कंते, धंते, पीलिए, सरीराणुगए, सम्मुच्छिमे।। ३०॥

कठिन शब्दार्थ - इंदियत्था - इंदियों के अर्थ (विषय), **मुंडा** - मुण्ड, **सिरमुण्डे** - शिर मुण्ड, **ओराला** - उदार (स्थूल), **इंगाले** - अंगारा, **जाला** - ज्वाला, **मुम्मुरे** - मुर्मुर, **अच्ची** - अर्चि, **अलाए**- अलात, **विदिसवाए** - विदिशा की वायु, **अक्कंते** - आक्रान्त, **धंते** - धमन से उठने वाली वायु, **पीलिए**- पीलित-गीले वस्त्र को निचोडने से उठने वाली, **सरीराणुगए** - शरीरानुगत, **सम्मुच्छिमे** - सम्मूर्च्छिम ।

भावार्थ - पांच इन्द्रियों के अर्थ यानी विषय कहे गये हैं यथा - श्रोत्रेन्द्रिय का विषय, चक्षुइन्द्रिय

का विषय, घ्राणेन्द्रिय का विषय, रसनेन्द्रिय का विषय और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय । पांच मुण्ड कहे गये हैं यथा - श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड यानी श्रोत्रेन्द्रिय के विषय को जीतने वाला यावत् स्पर्शनेन्द्रिय मुण्ड यानी स्पर्शनेन्द्रिय को जीतने वाला । अथवा दूसरी तरह पांच मुण्ड कहे गये हैं यथा - क्रोधमुण्ड यानी क्रोध को जीतने वाला, मानमुण्ड यानी मान को जीतने वाला, माया मुण्ड यानी माया को जीतने वाला, लोभमुण्ड - लोभ को जीतने वाला और शिरमुण्ड यानी मस्तक का मुण्डन कराने वाला ।

अधोलोक में पांच बादर कहे गये हैं यथा-पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और उदार यानी स्थूल त्रस प्राणी यानी बेइन्द्रियादि । इसी प्रकार ऊर्ध्व लोक में भी ये ही पांच बादर कहे गये हैं । तिर्यक् लोक में पांच बादर कहे गये हैं यथा - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । पांच प्रकार के बादर तेउकाय कही गई है यथा - अंगारा, ज्वाला, मुर्मुर यानी अग्नि के छोटे कण, अर्चि यानी ऐसी ज्वाला जिसमें लपट उठती हों और अलात - उल्मुक । पांच प्रकार की बादर वायुकाय कही गई है यथा - पूर्व दिशा की वायु, पश्चिम दिशा की वायु, दक्षिण दिशा की वायु, उत्तर दिशा की वायु और विदिशा की वायु । पांच प्रकार की अचित्त वायुकाय कही गई है यथा - आक्रान्त यानी पृथ्वी पर पैर रखने से जो वायु उठती है वह, लोहार की धमण से उठने वाली वायु, गीले वस्त्र को निचोड़ने से उठने वाली वायु, शरीर से पैदा होने वाली वायु और सम्मूर्च्छिम यानी पंखे आदि से पैदा होने वाली वायु । यह अचित्त वायु सचित्त वायु की हिंसा करती है ।

विवेचन - मुण्ड - मुण्डन शब्द का अर्थ अपनयन अर्थात् हटाना, दूर करना है। यह मुण्डन द्रव्य और भाव से दो प्रकार का है। शिर से बालों-केशों को अलग करना द्रव्य मुण्डन है और मन से इन्द्रियों के विषय शब्द, रूप, रस और गन्ध, स्पर्श सम्बन्धी राग द्वेष और कषायों को दूर करना भाव मुण्डन है। इस प्रकार द्रव्य मुण्डन और भाव मुण्डन धर्म से युक्त पुरुष मुण्ड कहा जाता है।

पाँच मुण्ड - १. श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड २. चक्षुरिन्द्रिय मुण्ड ३. घ्राणेन्द्रिय मुण्ड ४. रसनेन्द्रिय मुण्ड ५. स्पर्शनेन्द्रिय मुण्ड।

१. श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड - श्रोत्रेन्द्रिय के विषय रूप मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ शब्दों में राग द्वेष को हटाने वाला पुरुष श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड कहा जाता है।

इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय मुण्ड आदि का स्वरूप भी समझना चाहिये। ये पाँचों भाव मुण्ड हैं।

पाँच प्रकार के मुण्ड - १. क्रोध मुण्ड २. मान मुण्ड ३. माया मुण्ड ४ लोभ मुण्ड ५. शिर मुण्ड।

मन से क्रोध, मान, माया और लोभ को हटाने वाले पुरुष क्रमशः क्रोध मुण्ड, मान मुण्ड, माया मुण्ड और लोभ मुण्ड हैं। शिर से केश अलग करने वाला पुरुष शिर मुण्ड है।

इन पाँचों में शिर मुण्ड द्रव्य मुण्ड है और शेष चार भाव मुण्ड हैं।

पाँच प्रकार की अचित्त वायु - १. आक्रान्त २. ध्मात ३. पीड़ित ४. शरीरानुगत ५. सम्मूर्च्छिम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. आक्रान्त - पैर आदि से जमीन वगैरह के दबने पर जो वायु उठती है वह आक्रान्त वायु है।

२. ध्मात - धमणी आदि के धमने से पैदा हुई वायु ध्मात वायु है।

३. पीड़ित - गीले वस्त्र के निचोड़ने से निकलने वाली वायु पीड़ित वायु है।

४. शरीरानुगत - डकार आदि लेते हुए निकलने वाली वायु शरीरानुगत वायु है।

५. सम्मूर्छिम - पंखे आदि से पैदा होने वाली वायु सम्मूर्छिम वायु है। वह उठती हुई तो अचित है परन्तु उठने के बाद सचित वायु का नाश करती है। इसलिये साधु-साध्वी के लिये ये वर्जित है।

ये पाँचों प्रकार की अचित्त वायु पहले अचेतन होती है और बाद में सचेतन भी हो जाती है।

तेउकाय और वायुकाय भी गति की अपेक्षा त्रस कहे गये हैं किन्तु यहाँ उनका ग्रहण नहीं है। यहां तो बेइन्द्रियादि त्रस लिये गये हैं। इसीलिए सूत्र में 'ओराल' शब्द दिया है जिसका अर्थ यह है - "ओराला: - स्थूला: एकेन्द्रियापेक्षया" एकेन्द्रियों की अपेक्षा स्थूल त्रस प्राणी यानी बेइन्द्रियादि त्रस यहां ग्रहण किये गये हैं।

निर्ग्रन्थ पांच

पंच णियंठा पण्णत्ता तंजहा - पुलाए, बउसे, कुसीले, णियंठे णिग्गंथे, सिणाए। पुलाए पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - णाणपुलाए, दंसणपुलाए, चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए, अहासुहुमपुलाए णामं पंचमे। बउसे पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - आभोग बउसे, अणाभोग बउसे, संवुडबउसे, असंवुडबउसे, अहासुहुमबउसे णामं पंचमे। कुसीले पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - णाणकुसीले, दंसणकुसीले, चरित्तकुसीले, लिंगकुसीले, अहासुहुमकुसीले णामं पंचमे। णियंठे पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमयणियंठे, अपढमसमयणियंठे, चरिमसमयणियंठे, अचरिमसमयणियंठे, अहासुहुमणियंठे। सिणाए पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - अच्छवी, असबले, अकम्मंसे, संसुद्धणाण दंसणधरे अरहा जिणे केवली, अपरिस्सावी॥ ३१॥

भावार्थ - पांच निर्ग्रन्थ कहे गये हैं यथा - पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक। जो साधु लब्धि का प्रयोग करके और ज्ञानादि के अतिचारों का सेवन करके संयम को निस्सार बना देता है वह पुलाक कहलाता है। लब्धि का प्रयोग करने वाला साधु लब्धिपुलाक कहलाता है और ज्ञानादि के अतिचारों का सेवन करने वाला साधु प्रतिसेवी पुलाक कहलाता है। इस प्रकार पुलाक के दो भेद होते हैं। यथा - लब्धिपुलाक और प्रतिसेवापुलाक। पुलाक पांच प्रकार का कहा गया है यथा - ज्ञान पुलाक - ज्ञान के अतिचारों का सेवन करके संयम को निस्सार बनाने वाला साधु। दर्शनपुलाक - समकित के अतिचारों का सेवन करने वाला साधु। चारित्रपुलाक - मूलगुण और उत्तरगुणों में दोष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगा कर चारित्र की विराधना करने वाला साधु । लिङ्ग पुलाक - परिमाण से अधिक वस्त्रादि रखने वाला साधु और पांचवां यथासूक्ष्म पुलाक - कुछ प्रमाद होने से मन से अकल्पनीय ग्रहण करने के विचार वाला साधु । अथवा उपरोक्त चारों भेदों में थोड़ी थोड़ी विराधना करने वाला साधु यथासूक्ष्मपुलाक कहलाता है। बकुश - शरीर और उपकरण की शोभा करने से चारित्र को मलिन करने वाला साधु बकुश कहा जाता है। वह पांच प्रकार का कहा गया है यथा - आभोगबकुश - शरीर और उपकरण की विभूषा करना साधु के लिए निषिद्ध है यह जानते हुए भी शरीर और उपकरण की विभूषा करके चारित्र में दोष लगाने वाला साधु आभोग बकुश कहलाता है। अनाभोगबकुश - अनजान से शरीर और उपकरण की विभूषा करके चारित्र को दूषित करने वाला साधु। संवृत्तबकुश - छिप कर शरीर और उपकरण की विभूषा करने वाला साधु। असंवृत्तबकुश - प्रकट रीति से शरीर और उपकरण की विभूषा करके चारित्र को दूषित करने वाला साधु । अथवा मूलगुण और उत्तरगुणों में दोष लगाने वाला साधु । यथासूक्ष्मबकुश - कुछ प्रमाद करने वाला एवं आंख का मैल आदि दूर करने वाला साधु यथासूक्ष्म बकुश कहलाता है। कुशील - मूलगुणों तथा उत्तरगुणों में दोष लगाने से तथा संज्वलन कषाय के उदय से दूषित चारित्र वाला साधु कुशील कहा जाता है। इसके दो भेद हैं - प्रतिसेवना कुशील और कषायकुशील। चारित्र के प्रति अभिमुख होते हुए भी अजितेन्द्रिय तथा किसी तरह पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना, तप आदि उत्तरगुणों की तथा मूलगुणों की विराधना करने से सर्वज्ञ की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला प्रतिसेवना कुशील हैं। संज्वलन कषाय के उदय से सकषाय चारित्र वाला साधु कषायकुशील कहा जाता है। प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील प्रत्येक के पांच पांच भेद कहे गये हैं यथा - ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लिङ्ग इनमें दोष लगाने वाला साधु क्रमशः प्रतिसेवना की अपेक्षा ज्ञानकुशील, दर्शनकुशील, चारित्रकुशील और लिङ्गकुशील कहा जाता है। पांचवां यथासूक्ष्मकुशील- अपने तप, संयम, ज्ञानादि गुणों की प्रशंसा को सुन कर हर्षित होने वाला साधु प्रतिसेवना की अपेक्षा यथासूक्ष्म कुशील है। कषायकुशील के भी ये ही पांच भेद हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है - ज्ञानकुशील - संज्वलन कषाय के वश विद्यादि ज्ञान का प्रयोग करने वाला साधु। दर्शनकुशील - संज्वलन कषाय के वश दर्शन या दर्शनग्रन्थ का प्रयोग करने वाला साधु। चारित्रकुशील - संज्वलन कषाय के आवेश में किसी को श्राप देने वाला साधु। ※ लिङ्ग कुशील - संज्वलन कषाय के वश अन्य लिङ्ग धारण करने वाला साधु। यथासूक्ष्म कुशील - मन से संज्वलन कषाय करने वाला साधु यथासूक्ष्म कुशील है । अथवा - संज्वलन कषाय सहित होकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लिङ्ग की विराधना करने वाला साधु क्रमशः ज्ञानकुशील, दर्शनकुशील, चारित्रकुशील और लिङ्गकुशील कहलाते हैं और मन से

※ लिंग कुशील के स्थान पर कहीं कहीं तप कुशील भी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलन कषाय करने वाला साधु यथासूक्ष्म कषायकुशील कहलाता है। निर्ग्रन्थ पांच प्रकार का कहा गया है यथा - प्रथम समय निर्ग्रन्थ - अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण निर्ग्रन्थ काल की समय राशि में से प्रथम समय में वर्तमान साधु। अप्रथम समय निर्ग्रन्थ - प्रथम समय के सिवाय शेष समयों में वर्तमान साधु। ये दोनों भेद पूर्वानुपूर्वी की अपेक्षा से है। चरमसमय निर्ग्रन्थ - अन्तिम समय में वर्तमान साधु। अचरम समय निर्ग्रन्थ - अन्तिम समय के सिवाय शेष समयों में वर्तमान साधु । ये दोनों भेद पश्चानुपूर्वी की अपेक्षा से है। यथा-सूक्ष्म निर्ग्रन्थ - प्रथम समय आदि की अपेक्षा बिना सामान्य रूप से सभी समयों में वर्तमान साधु यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ कहलाता है। स्नातक - शुक्लध्यान द्वारा सम्पूर्ण घाती कर्मों के समूह को क्षय करके जो शुद्ध हुए हैं वे स्नातक कहलाते हैं। सयोगी और अयोगी के भेद से स्नातक दो प्रकार के होते हैं। दूसरी तरह से स्नातक पांच प्रकार का कहा गया है यथा - अच्छवि स्नातक - काययोग का निरोध करने से छवि अर्थात् शरीर रहित अथवा पीड़ा नहीं देने वाला होता है। अशबल स्नातक चारित्र को अतिचार रहित शुद्ध पालता है इसलिए वह अशबल होता है। अकर्मांश -घाती कर्मों का क्षय कर डालने से स्नातक अकर्मांश होता है। शुद्ध ज्ञान, दर्शन का धारक, अरिहन्त, जिन यानी रागद्वेष को जीतने वाला और केवली यानी परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन, चारित्र का स्वामी स्नातक संशुद्ध ज्ञान दर्शन धारी अरिहन्त जिन केवली कहलाता है। अपरिश्रावी - सम्पूर्ण काययोग का निरोध कर लेने पर स्नातक निष्क्रिय हो जाता है और कर्म प्रवाह रुक जाता है इसलिए वह अपरिस्रावी होता है ।

विवेचन - निर्ग्रन्थ - ग्रन्थ दो प्रकार का है। आभ्यन्तर और बाह्य। मिथ्यात्व आदि आभ्यन्तर ग्रन्थ है और धर्मोपकरण के सिवाय शेष धन धान्यादि बाह्य ग्रन्थ है। इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ से जो मुक्त है वह निर्ग्रन्थ कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ के पाँच भेद - १. पुलाक २. बकुश ३. कुशील ४. निर्ग्रन्थ ५. स्नातक।

१. पुलाक - दाने से रहित धान्य की भूसी को पुलाक कहते हैं। वह निःसार होती है। तप और श्रुत के प्रभाव से प्राप्त, संघादि के प्रयोजन से बल (सेना) वाहन सहित चक्रवर्ती आदि के मान को मर्दन करने वाली लब्धि के प्रयोग और ज्ञानादि के अतिचारों के सेवन द्वारा संयम को पुलाक की तरह निस्सार करने वाला साधु पुलाक कहा जाता है।

पुलाक के दो भेद होते हैं - १. लब्धि पुलाक २. प्रति सेवा पुलाक।

२. बकुश - बकुश शब्द का अर्थ है शबल अर्थात् चित्र वर्ण। शरीर और उपकरण की शोभा करने से जिसका चारित्र शुद्धि और दोषों से मिला हुआ अतएव अनेक प्रकार का है वह बकुश कहा जाता है।

बकुश के दो भेद हैं - १. शरीर बकुश २. उपकरण बकुश।

शरीर बकुश - विभूषा के लिये हाथ, पैर, मुंह आदि धोने वाला, आँख, कान, नाक आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवयवों से मैल आदि दूर करने वाला, दाँत साफ करने वाला, केश सँवारने वाला, इस प्रकार कायगुप्ति रहित साधु शरीर-बकुश है।

उपकरण बकुश - विभूषा के लिये अकाल में चोलपट्टा आदि धोने वाला, धूपादि देने वाला, पात्र दण्ड आदि को तैलादि लगा कर चमकाने वाला साधु उपकरण बकुश है।

ये दोनों प्रकार के साधु प्रभूत वस्त्र पात्रादि रूप ऋद्धि और यश के कामी होते हैं। ये सातागारव वाले होते हैं और इसलिये रात दिन के कर्त्तव्य अनुष्ठानों में पूरे सावधान नहीं रहते। इनका परिवार भी संयम से पृथक् तैलादि से शरीर की मालिश करने वाला, कैंची से केश काटने वाला होता है। इस प्रकार इनका चारित्र सर्व या देश रूप से दीक्षा पर्याय के छेद योग्य अतिचारों से मलीन रहता है।

३. कुशील - उत्तर गुणों में दोष लगाने से तथा संज्वलन कषाय के उदय से दूषित चारित्र वाला साधु कुशील कहा जाता है। कुशील के दो भेद हैं -

१. प्रतिसेवना कुशील २. कषाय कुशील।

४. निर्ग्रन्थ - ग्रन्थ का अर्थ मोह है। मोह से रहित साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है। उपशान्त मोह और क्षीण मोह के भेद से निर्ग्रन्थ के दो भेद हैं।

५. स्नातक - शुक्लध्यान द्वारा सम्पूर्ण घाती कर्मों के समूह को क्षय करके जो शुद्ध हुए हैं वे स्नातक कहलाते हैं। सयोगी और अयोगी के भेद से स्नातक भी दो प्रकार के होते हैं।

उपरोक्त पांच निर्ग्रन्थों के भेद प्रभेदों का वर्णन भावार्थ से स्पष्ट है। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ६ में भी पांच निर्ग्रन्थों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

वस्त्र और रजोहरण

कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तंजहा - जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए णामं पंचमए। कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तंजहा - उण्णिए, उट्टिए, साणए, पच्चापिच्चियए, मुंजापिच्चिए णामं पंचमए॥ ३२॥

कठिन शब्दार्थ - धारित्तए - धारण करना, **परिहरित्तए** - पहनना, **कप्पइ** - कल्पता है, **जंगिए**- जांगमिक, **भंगिए** - भांगिक-अलसी का बना हुआ, **साणए** - साणक-सन का बना हुआ, **पोत्तिए** - पोतक-कपास का बना हुआ, **तिरीडपट्टए** - तिरीडपट्ट-वृक्ष की छाल का बना हुआ, **रयहरणाइं** - रजोहरण, **उण्णिए** - और्णिक-ऊन का, **उट्टिए** - औष्ट्रिक-ऊंट के रोम से बना, **पच्चापिच्चियए** - बल्वज-नरम घास का बना हुआ, **मुंजापिच्चिए** - कूट कर नरम बनाई हुई मुंज का बना हुआ।

भावार्थ - साधु और साध्वी को पांच प्रकार के वस्त्र ग्रहण करना और पहनना कल्पता है यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाङ्गमिक यानी त्रस जीवों के रोम आदि से बने हुए - कम्बल आदि । भाङ्गिक यानी अलसी का बना हुआ । सानक यानी सण का बना हुआ । पोतक यानी कपास का बना हुआ (क्षौमिक) और तिरीडपट्ट यानी वृक्ष की छाल का बना हुआ कपड़ा । इन पांच प्रकार के वस्त्रों में से उत्सर्ग रूप से तो कपास और ऊन के बने हुए सूती और ऊनी दो प्रकार के अल्प मूल्य वाले वस्त्र ही ग्रहण करना और पहनना कल्पता है।

साधु और साध्वी को पांच प्रकार के रजोहरण ग्रहण करना और उन्हें काम में लेना कल्पता है यथा - और्णिक यानी ऊन का बना हुआ, औष्ट्रिक यानी ऊंट के रोम से बना हुआ, सानक यानी सण नामक घास का बना हुआ, बल्वज यानी नरम घास का बना हुआ और कूट कर नरम बनाई हुई मुंज का बना हुआ। इन पांच प्रकार के रजोहरणों में से उत्सर्ग रूप से सिर्फ एक ऊन का बना हुआ रजोहरण रखना ही कल्पता है ।

विवेचन - निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को अर्थात् साधु साध्वियों को पाँच प्रकार के वस्त्र ग्रहण करना और सेवन करना कल्पता है। वस्त्र के पाँच प्रकार ये हैं - १. जाङ्गमिक २. भाङ्गिक ३. सानक ४. पोतक ५. तिरीडपट्ट।

१. जाङ्गमिक - त्रस जीवों के रोमादि से बने हुए वस्त्र जाङ्गमिक कहलाते हैं। जैसे - कम्बल वगैरह।

२. भाङ्गिक - अलसी का बना हुआ वस्त्र भाङ्गिक कहलाता है।

३. सानक - सन का बना हुआ वस्त्र सानक कहलाता है।

४. पोतक - कपास का बना हुआ वस्त्र पोतक कहलाता है। इसको क्षौमिक वस्त्र भी कहते हैं।

५. तिरीडपट्ट - तिरीड़ वृक्ष की छाल का बना हुआ कपड़ा तिरीड़ पट्ट कहलाता है।

इन पाँच प्रकार के वस्त्रों में से उत्सर्ग रूप से तो कपास और ऊन के बने हुए दो प्रकार के अल्प मूल्य वाले वस्त्र ही साधु साध्वियों के ग्रहण करने योग्य हैं।

निश्रास्थान, निधि, शौच

धम्मं चरमाणस्स पंच णिस्साठाणा पण्णत्ता तंजहा - छक्काए, गणे, राया, गिहवई, सरीरं । पंच णिही पण्णत्ता तंजहा - पुत्तणिही, मित्तणिही, सिप्पणिही, धणणिही, धण्णणिही । सोए पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मंतसोए, बंभसोए॥ ३३॥

कठिन शब्दार्थ - णिस्साठाणा - निश्रा स्थान-आलम्बन उपकारक, छक्काए - छह काया, चरमाणस्स - सेवन करने वाले पुरुष के, गिहवई - गृहपति, णिही - निधि, सोए - शौच-शुद्धि, मंतसोए - मंत्र शौच, बंभसोए - ब्रह्मचर्य शौच ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - श्रुतचारित्र रूप धर्म का सेवन करने वाले पुरुष के पांच निश्रास्थान यानी आलम्बन - उपकारक कहे गये हैं यथा - छहकाया - पृथ्वी आधार रूप है । वह सोने, बैठने, उपकरण रखने परिठवने आदि क्रियाओं में उपकारक है । जल - पीने, वस्त्र पात्रादि धोने आदि उपयोग में आता है । अग्नि से अचित्त बने हुए आहार, गर्म पानी आदि साधु साध्वियों के काम में आते हैं । श्वासोच्छ्वास लेने में वायु का उपयोग होता है । शय्या, आसन, पात्र आदि तथा आहार औषधि द्वारा वनस्पति धर्म का पालन करवाने में उपकारक है । त्रस जीव - शिष्य श्रावक आदि भी धर्मपालन में उपकारक है । इस प्रकार छहों काया धर्म के पालन में सहायक होती है । गण - गुरु के परिवार को गण या गच्छ कहते हैं । विनय करने से गच्छवासी साधु को महानिर्जरा होती है तथा सारणा वारणा आदि से उसे दोषों की प्राप्ति नहीं होती है । गच्छवासी साधु एक दूसरे को धर्मपालन में सहायता करते हैं। राजा - राजा दुष्टों से साधु पुरुषों की रक्षा करता है । इसलिए राजा धर्मपालन में सहायक होता है । गृहपति - शय्यादाता- रहने के लिए स्थान देने से संयमोपकारी होता है । शरीर - धार्मिक क्रिया अनुष्ठानों का पालन शरीर द्वारा ही होता है । इसलिए शरीर धर्मपालन में सहायक होता है ।

पांच निधि कही गई है यथा - पुत्रनिधि, मित्रनिधि, शिल्पनिधि, धननिधि और धान्यनिधि । पांच प्रकार की शौच (शुद्धि) कही गई है यथा - पृथ्वीशौच, जलशौच, अग्निशौच, मन्त्रशौच और ब्रह्मचर्यशौच ।

विवेचन - श्रुत चारित्र रूप धर्म का सेवन करने वाले पुरुष के पांच स्थान आलम्बन रूप हैं अर्थात् उपकारक हैं - १. छह काया २. गण ३. राजा ४. गृहपति ५. शरीर।

१. छह काया - पृथ्वी आधार रूप है। वह सोने, बैठने, उपकरण रखने, परिठवने आदि क्रियाओं में उपकारक है। जल पीने, वस्त्र पात्र धोने आदि उपयोग में आता है। आहार, ओसावन, गर्म पानी आदि में अग्नि काय का उपयोग है। जीवन के लिये वायु की अनिवार्य आवश्यकता है। संथारा, पात्र, दण्ड, वस्त्र, पीढ़ा, पाटिया वगैरह उपकरण तथा आहार औषधि आदि द्वारा वनस्पति धर्म पालन में उपकारक होती है। इसी प्रकार त्रस जीव भी धर्म-पालन में अनेक प्रकार से सहायक होते हैं।

२. गण - गुरु के परिवार को गण या गच्छ कहते हैं। गच्छवासी साधु को विनय से विपुल निर्जरा होती है तथा सारणा, वारणा आदि से उसे दोषों की प्राप्ति नहीं होती। गच्छवासी साधु एक दूसरे को धर्म पालन में सहायता करते हैं।

३. राजा - राजा दुष्टों से साधु पुरुषों की रक्षा करता है। इसलिए राजा धर्म पालन में सहायक होता है।

४. गृहपति (शय्यादाता) - रहने के लिये स्थान देने से संयमोपकारी होता है।

५. शरीर - धार्मिक क्रिया अनुष्ठानों का पालन शरीर द्वारा ही होता है। इसलिए शरीर धर्म पालन में सहायक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सांसारिक निधि के पाँच भेद - विशिष्ट रत्न सुवर्णादि द्रव्य जिसमें रखे जाय ऐसे पात्रादि को निधि कहते हैं। निधि की तरह जो आनन्द और सुख के साधन रूप हों उन्हें भी निधि ही समझना चाहिए। निधि पाँच हैं - १. पुत्र निधि २. मित्र निधि ३. शिल्प निधि ४. धन निधि ५. धान्य निधि।

१. पुत्र निधि - पुत्र स्वभाव से ही माता पिता के आनन्द और सुख का कारण है तथा द्रव्य का उपार्जन करने से निर्वाह का भी हेतु है। अतः वह निधि रूप है।

२. मित्र निधि - मित्र, अर्थ और काम का साधक होने से आनन्द का हेतु है। इसलिये वह भी निधि रूप कहा गया है।

३. शिल्प निधि - शिल्प का अर्थ है चित्रादि ज्ञान। यहाँ शिल्प का आशय सब विद्याओं से हैं। वे पुरुषार्थ चतुष्टय की साधक होने से आनन्द और सुख रूप हैं। इसलिये शिल्प-विद्या निधि कही गई है।

४. धन निधि और **५. धान्य निधि** वास्तविक निधि रूप हैं ही।

निधि के ये पाँचों प्रकार द्रव्य निधि रूप हैं। और कुशल अनुष्ठान का सेवन भाव निधि है।

शौच (शुद्धि) - शौच अर्थात् मलीनता दूर करने रूप शुद्धि के पाँच प्रकार हैं - १. पृथ्वी शौच २. जल शौच ३. तेजः शौच ४. मन्त्र शौच ५. ब्रह्म शौच।

१. पृथ्वी शौच - मिट्टी से घृणित मल और गन्ध का दूर करना पृथ्वी शौच है।

२. जलः शौच - पानी से धोकर मलीनता दूर करना जल शौच है।

३. तेजः शौच - अग्नि एवं अग्नि के विकार स्वरूप भस्म से शुद्धि करना तेजः शौच है।

४. मन्त्र शौच - मन्त्र से होने वाली शुद्धि मन्त्र शौच है।

५. ब्रह्म शौच - ब्रह्मचर्यादि कुशल अनुष्ठान, जो आत्मा के काम कषायादि आभ्यन्तर मल की शुद्धि करते हैं, ब्रह्मशौच कहलाते हैं। सत्य, तप, इन्द्रिय निग्रह एवं सर्व प्राणियों पर दया भाव रूप शौच का भी इसी में समावेश होता है।

इनमें पहले के चार शौच द्रव्य शौच हैं और ब्रह्म शौच भाव शौच है।

छद्मस्थ केवली

पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ ण पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीर पडिबद्धं, परमाणु पोग्गलं । एयाणि चेव उप्पण्ण णाण दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्व भावेणं जाणइ पासइ धम्मत्थिकायं जाव परमाणुपोग्गलं ।

महानरकावास, महाविमान

अहोलोए णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणिरया पण्णत्ता तंजहा - काले,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अप्पइट्ठाणे । उड्ढलोए णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता तंजहा - विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए, सव्वट्ठसिद्धे ।

पांच प्रकार के पुरुष

पंच पुरिसजाया पण्णत्ता तंजहा - हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते, उदयणसत्ते

मत्स्य और भिक्षुक

पंच मच्छा पण्णत्ता तंजहा - अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी, सव्वसोयचारी । एवमेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता तंजहा - अणुसोयचारी जाव सव्वसोयचारी ।

वनीपक

पंच वणीमगा पण्णत्ता तंजहा - अतिहि वणीमगे, किविण वणीमगे, माहण वणीमगे, साण वणीमगे, समण वणीमगे ॥ ३४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **छउमत्थे** - छद्मस्थ, **सव्वभावेणं** - सर्वभाव से, **असरीरपडिबद्धं जीवं** - शरीर रहित जीव, **महति महालया** - सब से बड़े, **उदयणसत्ते** - उदयसत्व, **सव्वसोयचारी** - सर्वस्रोतचारी, **वणीमगा** - वनीपक, **किविण वणीमगे** - कृपण वनीपक, **साण वणीमगे** - श्वा वनीपक।

भावार्थ - अवधिज्ञान आदि से रहित छद्मस्थ पांच बातों को सर्वभाव से यानी अनन्त पर्यायों सहित एवं साक्षात् रूप से न जानता है और न देखता है यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव और परमाणु पुद्गल । धर्मास्तिकाय से लेकर परमाणु पुद्गल तक इन उपरोक्त पांचों को केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली सब पर्यायों सहित साक्षात् रूप से जानते और देखते हैं ।

अधोलोक में पांच प्रधान यानी उत्कृष्ट वेदना वाले और सब से बड़े महानरकावास कहे गये हैं यथा - काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक और अप्रतिष्ठान । ऊर्ध्वलोक में पांच प्रधान और सब से बड़े महाविमान कहे गये हैं यथा - विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध ।

पांच प्रकार के पुरुष कहे गये हैं यथा - ह्रीसत्व यानी लज्जा से परीषह उपसर्गादि में दृढता रखने वाला, ह्री मनःसत्व यानी लज्जा से परीषह उपसर्गादि में मन से दृढ रहने वाला, चलसत्व यानी परीषह उपसर्गादि में चलित हो जाने वाला, स्थिर सत्व यानी दृढ़ रहने वाला और उदयसत्व यानी परीषह उपसर्गादि में जिसकी दृढ़ता बढती जावे ।

पांच प्रकार के मच्छ कहे गये हैं यथा - अनुस्रोतचारी यानी पानी के प्रवाह के अनुकूल चलने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला, प्रतिस्रोतचारी यानी पानी के प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला, अन्तचारी यानी पानी के पसवाड़े चलने वाला, मध्यचारी यानी पानी के बीच में चलने वाला और सर्वस्रोतचारी यानी पानी में सब प्रकार से चलने वाला मच्छ । इसी प्रकार मच्छ की उपमा से भिक्षा लेने वाले भिक्षुक के भी पांच प्रकार कहे गये हैं यथा - अनुस्रोतचारी यानी अभिग्रहविशेष से उपाश्रय के समीप से प्रारम्भ करके क्रम से भिक्षा लेने वाला साधु । प्रतिस्रोतचारी यानी अभिग्रहविशेष से उपाश्रय से बहुत दूर जाकर वापिस लौटते हुए भिक्षा लेने वाला साधु । अन्तचारी यानी क्षेत्र के अन्त में जाकर वहाँ से भिक्षा लेने वाला साधु । मध्यचारी यानी क्षेत्र के बीच बीच के घरों से भिक्षा लेने वाला साधु और सर्वस्रोतचारी यानी सब प्रकार से भिक्षा लेने वाला साधु सर्वस्रोतचारी कहलाता है । ये सब अभिग्रहधारी साधु के भेद हैं ।

वनीपक - दूसरों के आगे अपनी दुर्दशा दिखा कर अनुकूल भाषण कर भिक्षा लेने वाला साधु वनीपक कहलाता है । अथवा दाता द्वारा माने हुए श्रमणादि का अपने को भक्त बतला कर जो भिक्षा मांगता है वह वनीपक कहलाता है । उसके पांच भेद कहे गये हैं यथा - अतिथि वनीपक - भोजन के समय उपस्थित होकर दाता के सामने अतिथिदान की प्रशंसा करके आहारादि चाहने वाला । कृपण वनीपक- जो दाता कृपण, दीन, दुःखी पुरुषों को दान देने में विश्वास रखता है उसके आगे कृपणदान की प्रशंसा करके आहारादि चाहने वाला । ब्राह्मण वनीपक - जो दाता ब्राह्मणों का भक्त है उसके आगे ब्राह्मणदान की प्रशंसा करके आहारादि चाहने वाला । श्वा वनीपक - कुत्ते, कौए आदि को आहारादि देने में पुण्य समझने वाले दाता के आगे इस कार्य की प्रशंसा करके आहारादि चाहने वाला और श्रमण वनीपक - जो दाता श्रमणों का भक्त है उसके आगे श्रमणदान की प्रशंसा करके आहारादि चाहने वाला श्रमण वनीपक कहलाता है ।

विवेचन - पाँच बोल छद्मस्थ साक्षात् नहीं जानता - १. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. शरीर रहित जीव ५. परमाणु पुद्गल।

धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त्त हैं इसलिये अवधिज्ञानी उन्हें नहीं जानता। परन्तु परमाणु पुद्गल मूर्त्त (रूपी) हैं और उसे अवधिज्ञानी जानता है। इसलिये यहाँ छद्मस्थ से अवधि ज्ञान आदि के अतिशय रहित छद्मस्थ ही का आशय है।

पाँच अनुत्तर विमान - १. विजय २. वैजयन्त ३. जयन्त ४. अपराजित ५. सर्वार्थसिद्ध।

ये विमान अनुत्तर अर्थात् सर्वोत्तम होते हैं तथा इन विमानों में रहने वाले देवों के शब्द यावत् स्पर्श सर्व श्रेष्ठ होते हैं। इसलिये ये अनुत्तर विमान कहलाते हैं। एक बेला (दो उपवास) तप से श्रेष्ठ साधु जितने कर्म क्षीण करता है उतने कर्म जिन मुनियों के बाकी रह जाते हैं वे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते हैं। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों के जीव तो सात लव की स्थिति के कम रहने से वहां आकर उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचेलक, उत्कट और समितियाँ

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ तंजहा - अप्पा पडिलेहा, लाघविए पसत्थे, रूवे वेसासिए, तवे अणुण्णाए, विउले इंदियणिग्गहे । पंच उक्कल्ला पण्णत्ता तंजहा - दंडुक्कले रज्जुक्कले तणुक्कले देसुक्कले सव्वुक्कले । पंच समिईओ पण्णत्ताओ तंजहा - इरियासमिई, भासासमिई, एसणासमिई, आयाणभंडमत्त-णिक्खेवणासमिई उच्चारपासवणखेल-सिंघाणजल्लपरिठावणियासमिई।। ३५ ।।

कठिन शब्दार्थ - अचेलए - अचेलक-वस्त्र रहित जिनकल्पी अथवा अल्पमूल्य के परिमाणोपेत वस्त्र रखने वाला, **पसत्थे** - प्रशस्त, **अप्पा** - अल्प, **पडिलेहा** - प्रतिलेखना, **लाघविए** - लाघव-हल्का, **णेसासिए** - विश्वसनीय, **अणुण्णाए** - अनुज्ञा, **इंदियणिग्गहे** - इन्द्रिय निग्रह, **उक्कला** - उत्कट, **दंडुक्कले** - दण्ड उत्कट, **तेणुक्कले** - चोरों की अपेक्षा उत्कट ।

भावार्थ - अचेलक यानी वस्त्ररहित जिन कल्पी अथवा अल्प मूल्य वाले परिमाणोपेत वस्त्र रखने वाला स्थविरकल्पी साधु पांच कारणों से प्रशस्त होता है यथा - प्रतिलेखना अल्प होती है, द्रव्य और भाव दोनों से वह हल्का होता है । निर्ममत्व होने से वह सब के लिए विश्वसनीय होता है । शीतादि परीषहों को सहने से तप होता है और महान् इन्द्रिय निग्रह होता है । पांच उत्कट कहे गये हैं यथा - सेना की अपेक्षा उत्कट, राज्य की अपेक्षा उत्कट, चोरों की अपेक्षा उत्कट और पूर्वोक्त चारों की अपेक्षा उत्कट. । पांच समितियाँ कही गई है यथा - ईर्या समिति - सामने युगपरिमाण (चार हाथ) भूमि को देखते हुए यतना पूर्वक चलना । भाषासमिति - आवश्यकता होने पर भाषा के दोषों को टाल कर सत्य, हित, मित और असंदिग्ध वचन बोलना । एषणा समिति - ग्रहणैषणा, गवेषणैषणा और ग्रासैषणा सम्बन्धी दोषों को टाल कर आहार आदि ग्रहण करना और भोगना । आदान भंडमात्रनिक्षेपणा समिति - आसन, पाट, पाटला, वस्त्र पात्र आदि को रजोहरण से पूंज कर यतना पूर्वक लेना और रखना। उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति - लघुनीत, बड़ीनीत, थूक, कफ, नासिका-मल और मैल आदि को निर्जीव स्थण्डिल में यतना पूर्वक परिठवना उच्चारप्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति है ।

विवेचन - समिति - प्रशस्त एकाग्र परिणाम पूर्वक शास्त्रोक्त विधि अनुसार की जाने वाली सम्यक् प्रवृत्ति समिति कहलाती है । अथवा प्राणातिपात से निवृत होने के लिए यतना पूर्वक मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को समिति कहते हैं।

समिति पांच हैं - १. ईया समिति २. भाषा समिति ३. एषणा समिति ४. आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति ५. उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण जल परिस्थापनिका समिति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. ईर्या समिति - ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के निमित्त आगमोक्त काल में युग परिमाण भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए राजमार्ग आदि में यतना पूर्वक गमनागमन करना ईया समिति है।

२. भाषा समिति - यतना पूर्वक भाषण में प्रवृत्ति करना अर्थात् आवश्यकता होने पर भाषा के दोषों का परिहार करते हुए सत्य, हित, मित और असन्दिध वचन कहना भाषा समिति है।

३. एषणा समिति - गवेषण, ग्रहण और ग्रास सम्बन्धी एषणा के दोषों से अदूषित अतएव विशुद्ध आहार पानी, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि औधिक उपधि और शय्या, पाट पाटलादि औपग्रहिक उपधि का ग्रहण करना एषणा समिति है।

४. आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति - आसन, संस्तारक, पाट, पाटला, वस्त्र, पात्र, दण्डादि उपकरणों को उपयोग पूर्वक देख कर एवं रजोहरणादि से पूंज कर लेना एवं उपयोग पूर्वक देखी और पूजी हुई भूमि पर रखना आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति है।

५. उच्चार प्रस्त्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति - स्थण्डिल के दोषों को वर्जते हुए परिठवने योग्य लघुनीत, बड़ीनीत, थूंक, कफ, नासिका-मल और मैल आदि को निर्जीव स्थण्डिल में उपयोग पूर्वक परिठवना उच्चार प्रस्त्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति है।

जीव के भेद

पंचविहा संसार समावण्णगा पण्णत्ता तंजहा - एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया । एगिंदिया पंच गइया पंच आगइया पण्णत्ता तंजहा - एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदिएहिंतो जाव पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा से चेव णं से एगिंदिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा जाव पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा। बेइंदिया पंचगइया पंच आगइया एवं चेव । एवं जाव पंचिंदिया पंचगइया पंच आगइया पण्णत्ता तंजहा - पंचिंदिया जाव गच्छेज्जा ।

पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - कोहकसाई, माणकसाई, मायाकसाई, लोभकसाई, अकसाई । अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - णेरइया, तिरिया, मणुया, देवा, सिद्धा ।

योनि स्थिति

अह भंते ! कल मसूर तिल मुग्ग मास णिप्फाव कुलत्थ आलिसंदग सईण पलिमंथगाणं एएसिणं धण्णाणं कुट्ठाउत्ताणं जहा सालीणं जाव केवइयं कालं जोणी संचिठइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं, तेण परं जोणी पमिलायइ जाव तेण पर जोणी वोच्छिण्णे पण्णत्ते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंच संवत्सर

पंच संवच्छरा पण्णत्ता तंजहा - णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिंचरसंवच्छरे जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - चंदे चंदे अभिवड्डिए चंदे अभिवड्डिए चेव । पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते तंजहा - णक्खत्ते चंदे उऊ आइच्चे अभिवड्डिए । लक्खण संवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते तंजहा -

समगं णक्खत्ता जोगं जोयंति, समगं उऊ परिणमंति ।
णच्चुण्हं णाइसीओ बहूदओ होइ णक्खत्ते ॥ १ ॥
ससि सगल पुण्णमासी जोएइ विसमचार णक्खत्ते ।
कडुओ बहूदओ तमाहु संवच्छरं चंदं ॥ २ ॥
विसमं पवालिणो परिणमंति अणुऊसु देंति पुप्फफलं ।
वासं ण सम्मं वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥ ३ ॥
पुढविदगाणं उ रसं पुप्फफलाणं उ देइ आइच्चो ।
अप्पेण वि वासेण सम्मं णिप्फजए सस्सं ॥ ४ ॥
आइच्च तेय तविया खण लव दिवसा उऊ परिणमंति ।
पूरिंति रेणुथलयाइं तमाहु अभिवड्डियं जाण ॥ ५ ॥ ३६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **कल मसूर तिल मुग्ग मास णिप्फाव कुलत्थ आलिसंदग सईण पलिमंथगाणं** - गोल चने, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, वाल, कुलत्थ, चौला, तूअर और काले चने, इन सबका **कुट्ठाउत्ताणं** - कोठे में बंद किये हुओं का, **जोणी** - योनि, **संवच्छराइं** - संवत्सर-वर्ष, **पमिलाइ** - म्लान, **वोच्छिण्णे** - विच्छेद, **जुग संवच्छरे** - युग संवत्सर, **पमाण संवच्छरे** - प्रमाण संवत्सर, **लक्खण संवच्छरे** - लक्षण संवत्सर, **सणिंचर संवच्छरे** - शनिश्चर संवत्सर, **अभिवड्डिए** - अभिवर्धित, **उऊ** - ऋतु, **अइसीओ** - अधिक सर्दी, **बहूदओ** - अधिक पानी, **सगल** - सकल-सारी, **विसमचार** - विषमचारी, **कडुओ** - कटुक-सर्दी और गर्मी दोनों अधिक, **पवालिणो** - प्रवाल, पत्र आदि वाले वृक्ष, **विसमं** - असमय में, **अणुऊसु** - बिना ऋतु के, **तेय**- तेज, **तविया** - तप्त हो कर, **रेणुथलयाइं** - धूल से स्थल, **पुरिंति** - भर जाते हैं ।

भावार्थ - संसारी जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। एकेन्द्रिय जीवों की पांच गति और पांच आगति कही गई है। यथा- एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाला एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों से लेकर पञ्चेन्द्रियों तक के जीवों में से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निकल कर उत्पन्न हो सकता है। एकेन्द्रियपने को छोड़ने वाला एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों से लेकर पञ्चेन्द्रियों में उत्पन्न हो सकता है। इसी प्रकार बेइन्द्रिय जीवों में भी पांच गति और पांच आगति होती है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों में भी पांच गति और पांच आगति कही गई है।

सब जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा - क्रोध कषायी, मानकषायी, माया कषायी, लोभकषायी और अकषायी यानी उपशान्त कषायी क्षीण कषायी। अथवा दूसरी तरह से सब जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा - नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध ।

अहो भगवन् ! गोलचने, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, वाल, कुलथ, चौला, तूअर और काले चने यावत् शालि कोठे में बन्द किये हुए इन धानों की योनि कितने काल तक ठहरती है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पांच वर्ष तक इनकी योनि रहती है अर्थात् ये सचित्त रहते हैं। इसके बाद योनि म्लान हो जाती है यावत् विच्छेद हो जाती है अर्थात् ये धान्य अचित्त हो जाते हैं।

पांच संवत्सर कहे गये हैं । यथा - नक्षत्र संवत्सर-चन्द्रमा का अट्ठाईस नक्षत्रों में रहने का काल नक्षत्र मास कहलाता है । बारह नक्षत्र मासों का एक नक्षत्र संवत्सर कहलाता है । युग संवत्सर-चन्द्र आदि पांच संवत्सर का एक युग होता है । युग के एक देश रूप संवत्सर को युग संवत्सर कहते हैं। प्रमाण संवत्सर-चन्द्र आदि संवत्सर ही जब दिनों के परिमाण की प्रधानता से वर्णन किये जाते हैं तो वे ही प्रमाण संवत्सर कहलाते हैं। लक्षण संवत्सर - ये ही उपरोक्त नक्षत्र, चन्द्र, ऋतु, आदित्य और अभिवर्द्धित संवत्सर लक्षण प्रधान होने पर लक्षण संवत्सर कहलाते हैं । शनिश्चर संवत्सर - जितने काल में शनिश्चर एक नक्षत्र को भोगता है । वह शनिश्चर संवत्सर है । नक्षत्र २८ हैं । इसलिए शनिश्चर संवत्सर भी नक्षत्रों के नाम से २८ प्रकार का है । अथवा २८ नक्षत्रों के तीस वर्ष परिमाण भोग काल को शनिश्चर संवत्सर कहते हैं । पांच संवत्सर का एक युग होता है । युग के एक देश रूप संवत्सर को युग संवत्सर कहते हैं । वह युगसंवत्सर पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - चन्द्र युग संवत्सर, चन्द्र युग संवत्सर, अभिवर्द्धित युग संवत्सर, चन्द्र युग संवत्सर और अभिवर्द्धित युग संवत्सर । प्रमाण संवत्सर - चन्द्र आदि संवत्सर ही जब दिनों के परिमाण की प्रधानता से वर्णन किये जाते हैं तो वे ही प्रमाण संवत्सर कहलाते हैं । वह प्रमाण संवत्सर पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - नक्षत्र प्रमाण संवत्सर - नक्षत्र मास २७ $\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है । ऐसे बारह मास अर्थात् ३२७ $\frac{५१}{६७}$ दिनों का एक नक्षत्र प्रमाण संवत्सर होता है । चन्द्रप्रमाण संवत्सर - कृष्ण प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णमासी को समाप्त होने वाला २९ $\frac{३२}{६२}$ दिन का मास चन्द्रमास कहलाता है । बारह चन्द्रमास अर्थात् ३५४ $\frac{१२}{६२}$ दिनों का एक चन्द्रप्रमाण संवत्सर होता है । ऋतु प्रमाण संवत्सर - ६० दिन की एक ऋतु होती है । ऋतु के आधे हिस्से को ऋतुमास कहते हैं । ऋतु मास को ही सावन मास और कर्म मास कहते हैं । ऋतु मास ३०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिन का होता है । बारह ऋतुमास अर्थात् ३६० दिनों का एक ऋतु प्रमाण संवत्सर होता है । आदित्य प्रमाण संवत्सर - आदित्य यानी सूर्य १८३ दिन दक्षिणायन और १८३ दिन उत्तरायण में रहता है । दक्षिणायन और उत्तरायण के ३६६ दिनों का वर्ष आदित्य संवत्सर कहलाता है । अथवा - सूर्य के २८ नक्षत्र एवं बारह राशि के भोग का काल आदित्य संवत्सर कहलाता है । सूर्य ३६६ दिनों में उक्त नक्षत्र और राशियों का भोग करता है । आदित्य मास की औसत ३० १/२ दिन की है । अभिवर्द्धित प्रमाण संवत्सर - तेरह चन्द्रमास का संवत्सर, अभिवर्द्धित संवत्सर कहलाता है । चन्द्रसंवत्सर में एक मास अधिक पड़ने से यह संवत्सर अभिवर्द्धित संवत्सर कहलाता है । अथवा - ३१ १२१/१२४ दिनों का एक अभिवर्द्धित मास होता है । बारह अभिवर्द्धित मास का अर्थात् ३८३ ४४/६२ दिन का एक अभिवर्द्धित प्रमाण संवत्सर होता है । लक्षण संवत्सर - ये ही उपरोक्त नक्षत्र, चन्द्र, ऋतु, आदित्य और अभिवर्द्धित संवत्सर लक्षण प्रधान होने पर लक्षण संवत्सर कहलाते हैं । वह लक्षण संवत्सर पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - उनके लक्षण इस प्रकार हैं ।

जब नक्षत्रों का तिथियों के साथ ठीक योग जुड़ता है अर्थात् कुछ नक्षत्र स्वभाव से ही निश्चित तिथियों में हुआ करते हैं । जैसे - कार्तिक पूर्णमासी में कृतिका और मार्गशीर्ष में मृगशिरा एवं पौषी पूर्णिमा में पुष्य आदि । जब ये नक्षत्र ठीक अपनी तिथियों में हों और ऋतुएं भी ठीक समय पर आरम्भ हुई हों, न तो अधिक गर्मी और न अधिक सर्दी हो और पानी अधिक हो, इन लक्षणों वाला संवत्सर नक्षत्र लक्षण संवत्सर कहलाता है॥ १ ॥

जिस संवत्सर में पूर्णिमा की सारी रात चन्द्रमा से प्रकाशमान रहे और नक्षत्र विषमचारी हों । सर्दी और गर्मी दोनों की अधिकता हो तथा पानी की भी अधिकता हो, इन लक्षणों वाले संवत्सर को चन्द्र लक्षण संवत्सर कहते हैं॥ २ ॥

जिस संवत्सर में वृक्ष असमय में अङ्कुरित हों और बिना ऋतु के फूल फल देवें तथा वर्षा ठीक समय पर न हो, इन लक्षणों वाले संवत्सर को कर्म संवत्सर या ऋतु संवत्सर अथवा सावन संवत्सर कहते हैं॥ ३ ॥

जिस संवत्सर में सूर्य पृथ्वी में माधुर्य और पानी में स्निग्धता आदि और फूल और फलों में उस उस प्रकार का रस देता है और थोड़ी वर्षा होने पर भी खूब धान्य पैदा हो जाता है, इन लक्षणों वाला संवत्सर आदित्य लक्षण संवत्सर कहलाता है॥ ४ ॥

जिस संवत्सर में क्षण, लव, दिवस और ऋतुएं सूर्य के तेज से तप्त होकर व्यतीत होती हैं तथा वायु से उड़ी हुई धूल से स्थल भर जाते हैं, इन लक्षणों वाले संवत्सर को अभिवर्द्धित लक्षण संवत्सर कहते हैं । यह जानो ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है -

"सनिच्छरसंवच्छरे अट्ठाविसविहे पण्णत्ते - अभीई सवणे जाव उत्तरासाढा, जं वा सनिच्छरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमंडलं समाणेइ।"

- शनैश्चर संवत्सर २८ प्रकार का कहा है - अभिजित् श्रवण यावत् उत्तराषाढा अथवा शनैश्चर महाग्रह तीस वर्षों में समस्त नक्षत्र मंडल को पूर्ण करता है अर्थात् एक एक राशि को २॥-२॥ वर्ष भोगता है।

निर्याण मार्ग, छेदन, आनन्तर्य, अनन्त

पंचविहे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते तंजहा - पाएहिं, ऊरूहिं, उरेणं, सिरेणं, सव्वंगेहिं । पाएहिं णिज्जाणमाणे णिरयगामी भवइ, ऊरूहिं णिज्जाणमागे तिरियगामी भवइ, उरेणं णिज्जाणमागे मणुयगामी भवइ, सिरेणं णिज्जाणमाणे देवगामी भवइ, सव्वंगेहिं णिज्जाणमाणे सिद्धि गइ पज्जवसाणे पण्णत्ते । पंचविहे छेयणे पण्णत्ते तंजहा - उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे, बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे, दोधारच्छेयणे । पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते तंजहा - उप्पायणंतरिए, वियणंतरिए, पएसाणंतरिए, समयाणंतरिए सामण्णाणंतरिए । पंचविहे अणंते पण्णत्ते तंजहा - णामाणंतए ठवणाणंतए, दव्वाणंतए, गणणाणंतए पएसाणंतए । अहवा पंचविहे अणंते पण्णत्ते तंजहा - एगओणंतए, दुहओणंतए, देसवित्थाराणंतए, सव्ववित्थाराणंतए, सासयाणंतए। ३७।

कठिन शब्दार्थ - **णिज्जाणमग्गे** - निर्याणमार्ग, **पाएहिं** - दोनों पैरों से, **उरुहिं** - दोनों गोडों से, **उरेणं** - छाती से, **सव्वंगहिं** - सब अङ्गों से, **उप्पाछेयणे** - उत्पात छेदन, **वियच्छेयणे** - व्यय छेदन, **दोधारच्छेयणे** - द्विधाकार छेदन, **आणंतरिए** - आनन्तर्य-अन्तर रहित, **उप्पायणंतरिए** - उत्पातानन्तर्य- उत्पात का अविरह, **वियणंतरिए** - व्ययानन्तर्य, **पएसाणंतरिए** - प्रदेशानन्तर्य, **समयाणंतरिए** - समयानन्तर्य, **सामण्णाणंतरिए** - सामान्यानन्तर्य, **णामाणंतए** - नाम अनन्तक, **ठवणाणंतए** - स्थापना अनन्तक, **दव्वाणंतए** - द्रव्य अनन्तक, **गणणाणंतए** - गणना अनन्तक, **पएसाणंतए** - प्रदेश अनन्तक, **देसवित्थाराणंतए** - देश विस्तार अनन्तक, **सव्ववित्थाराणंतए** - सर्व विस्तार अनन्तक, **सासयाणंतए** - शाश्वत अनन्तक ।

भावार्थ - जीव के पांच निर्याण मार्ग-मरते समय में जीव के निकलने के मार्ग कहे गये हैं । यथा- दोनों पैर, दोनों गोडे, छाती, सिर और सब अङ्ग । दोनों पैरों से निकलने वाला जीव नरक गामी होता है । दोनों गोड़ों से निकलने वाला जीव तिर्यञ्चगति में जाने वाला होता है । छाती से निकलने वाला जीव मनुष्यगति में जाता है । सिर से निकलने वाला जीव देवगति में पैदा होता है और सब अङ्गों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से निकलने वाला जीव सिद्धिगति में जाता है । ऐसा कहा गया है । पांच प्रकार का छेदन यानी आयुष्य का छेदन कहा गया है । यथा - उत्पातछेदन यानी देवगति या नरक गति में उत्पन्न होना, व्ययछेदन यानी मनुष्यादि की पर्यायान्तर से उत्पन्न होना, बन्ध छेदन यानी कर्मबन्धन से जीव का अलग होना, प्रदेश छेदन यानी जीव के प्रदेश भिन्न होना और द्विधाकार छेदन यानी दो टुकड़े होना, तीन टुकड़े होना। पांच प्रकार का आनन्तर्य यानी अन्तरहित पना - अविरह कहा गया है । यथा - उत्पातानन्तर्य यानी उत्पात का अविरह - जैसे नरक गति में जीवों का असंख्यात समय का अविरह है । व्ययान्तर्य - जैसे मनुष्यादि गति में भी जीवों का असंख्यात समय का अविरह है । प्रदेशानन्तर्य - जैसे एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश सी अन्तर नहीं है । समयानन्तर्य - जैसे एक समय का दूसरे समय से अन्तर नहीं है । सामान्यानन्तर्य - उत्पाद व्यय आदि की विवक्षा न करके सामान्य रूप से आनन्तर्य का कथन करना सामान्यान्तर्य है । अथवा श्रामण्यानन्तर्य - बहुत जीवों की अपेक्षा श्रमणपने का अविरह आठ समय का है । पांच प्रकार का अनन्त कहा गया है । यथा - नाम अनन्तक, स्थापना अनन्तक, द्रव्य अनन्तक, गणना अन्तक और प्रदेश अनन्तक । अथवा दूसरी तरह से पांच प्रकार का अनन्त कहा गया है । यथा- एकतः अनन्तक यानी एक तरफ लम्बाई से अनन्त । द्विधा अनन्तक यानी दोनों तरफ लम्बाई चौड़ाई से अनन्त देश विस्तार अनन्तक यानी रुचक प्रदेश की अपेक्षा पूर्व आदि एक दिशा विस्तार का अन्त सर्व विस्तार अनन्तक यानी सर्व आकाश का अनन्त और शाश्वत अनन्तक यानी अनादि अनन्त ।

विवेचन - निर्याण मार्ग - मृत्यु के समय में जीव के शरीर में से निकलने के मार्ग को निर्याण मार्ग कहते हैं जो पांच प्रकार के कहे गये हैं - दोनों पैर, दोनों गोडे, छाती, सिर और सब अंग। इनसे निकलने वाला जीव क्रमशः नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देवगति और सिद्धि गति में जाने वाला होता है। निर्याण तो आयुष्य के छेदन से होता है अतः पांच प्रकार का छेदन कहा गया है।

पाँच अनन्तक - १. नाम अनन्तक २. स्थापना अनन्तक ३. द्रव्य अनन्तक ४. गणना अनन्तक ५. प्रदेश अनन्तक।

१. नाम अनन्तक - सचित्त, अचित्त, आदि वस्तु का 'अनन्तक' इस प्रकार जो नाम दिया जाता है वह नाम अनन्तक है।

२. स्थापना अनन्तक - किसी वस्तु में अनन्तक की स्थापना करना स्थापना अनन्तक है।

३. द्रव्य अनन्तक - गिनती योग्य जीव या पुद्गल द्रव्यों का अनन्तक द्रव्य अनन्तक है।

४. गणना अनन्तक - गणना की अपेक्षा जो अनन्तक संख्या है वह गणना अनन्तक है।

५. प्रदेश अनन्तक - आकाश प्रदेशों की जो अनन्तता है। वह प्रदेश अनन्तक है।

पाँच अनन्तक - १. एकतः अनन्तक २. द्विधा अनन्तक ३. देश विस्तार अनन्तक ४. सर्व विस्तार अनन्तक ५. शाश्वत अनन्तक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. **एकतः अनन्तक** - एक अंश से अर्थात् लम्बाई की अपेक्षा जो अनन्तक है वह एकतः अनन्तक है। जैसे - एक श्रेणी वाला क्षेत्र।

२. **द्विधा अनन्तक** - दो प्रकार से अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई की अपेक्षा जो अनन्तक है। वह द्विधा अनन्तक कहलाता है। जैसे - प्रतर क्षेत्र।

३. **देश विस्तार अनन्तक** - रुचक प्रदेशों की अपेक्षा पूर्व पश्चिम आदि दिशा रूप जो क्षेत्र का एक देश है और उसका जो विस्तार है उसके प्रदेशों की अपेक्षा जो अनन्तता है। वह देश विस्तार अनन्तक है।

४. **सर्व विस्तार अनन्तक** - सारे आकाश क्षेत्र का जो विस्तार है उसके प्रदेशों की अनन्तता सर्व विस्तार अनन्तक है।

५. **शाश्वत अनन्तक** - अनादि अनन्त स्थिति वाले जीवादि द्रव्य शाश्वत अनन्तक कहलाते हैं।

ज्ञान, ज्ञानावरणीय कर्म, स्वाध्याय प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण

पंचविहे णाणे पण्णत्ते तंजहा - आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे, मणपज्जवणाणे, केवलणाणे । पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे जाव केवलणाणावरणिज्जे । पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते तंजहा - वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा । पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते तंजहा - सद्दहणसुद्धे, विणयसुद्धे, अणुभासणासुद्धे, अणुपालणासुद्धे, भावसुद्धे । पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते तंजहा - आसवदारपडिक्कमणे, मिच्छत्तपडिक्कमणे, कसायपडिक्कमणे, जोगपडिक्कमणे, भावपडिक्कमणे॥ ३८॥

कठिन शब्दार्थ - आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे - आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय, **सज्झाए** - स्वाध्याय, **वायणा** - वाचना, **पुच्छणा** - पृच्छना, **परियट्टणा** - परिवर्त्तना, **अणुप्पेहा** - अनुप्रेक्षा, **धम्मकहा** - धर्मकथा, **पच्चक्खाणे** - प्रत्याख्यान, **सद्दहणसुद्धे** - श्रद्धान शुद्ध, **अणुभासणासुद्धे** - अनुभाषण शुद्ध, **पडिक्कमणे** - प्रतिक्रमण, आसवदार **पडिक्कमणे** - आस्रवद्वार प्रतिक्रमण ।

भावार्थ - पांच प्रकार का ज्ञान कहा गया है - यथा - आभिनिबोधिक ज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य देश में रही हुई वस्तु को जानने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान अथवा मतिज्ञान कहलाता है । श्रुतज्ञान - शब्द से सम्बद्ध अर्थ को ग्रहण करने वाला इन्द्रिय मन कारणक ज्ञान श्रुत ज्ञान कहलाता है । अथवा मतिज्ञान के बाद होने वाला और जिसमें शब्द तथा अर्थ की पर्यालोचना हो ऐसा ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है । जैसे घट शब्द को सुनने पर अथवा घड़े को आंख से देखने पर उसके बनाने वाले का, उसके रंग का और इसी प्रकार उस सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों का विचार करना श्रुतज्ञान है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मर्यादा को लिए हुए रूपी द्रव्य का ज्ञान करना अवधिज्ञान कहलाता है । मनःपर्यय ज्ञान - इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मर्यादा को लिए हुए संज्ञी जीवों के मन में रहे हुए भावों को जानना मनःपर्यय ज्ञान कहलाता है । केवलज्ञान - मतिज्ञान आदि की अपेक्षा बिना त्रिकाल एवं त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को एक साथ हस्तामलकवत् जानना केवलज्ञान है । ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय - मति ज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्यय ज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय।

स्वाध्याय - असज्झाय के काल को टाल कर अच्छी तरह से शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है । स्वाध्याय पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - वाचना - शिष्य को सूत्र और अर्थ पढाना, पृच्छना-शास्त्र की वाचना लेकर उसमें संशय होने पर फिर पूछना पृच्छना कहलाती है अथवा पहले सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान में शंका होने पर प्रश्न करना पृच्छना कहलाती है । परिवर्त्तना - पढ़ा हुआ ज्ञान भूल न जाय इसलिए उसे बारबार फेरना परिवर्त्तना कहलाती है । अनुप्रेक्षा - सीखे हुए सूत्रार्थ का मनन करना अनुप्रेक्षा कहलाती है और धर्मकथा - उपरोक्त चारों प्रकार से शास्त्र का अभ्यास करने पर भव्य जीवों को शास्त्रों का व्याख्यान सुनाना धर्मकथा कहलाती है ।

पच्चक्खाण-प्रत्याख्यान पांच प्रकार से शुद्ध होता है । शुद्धि के भेद से प्रत्याख्यान भी पांच प्रकार का कहा गया है । यथा - श्रद्धान शुद्ध - जिनकल्प, स्थविरकल्प एवं श्रावक धर्म विषयक तथा सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, पहला पहर, चौथा पहर एवं चरमकाल में सर्वज्ञ भगवान् ने जो प्रत्याख्यान कहे हैं उन पर श्रद्धा रखना, श्रद्धान शुद्ध प्रत्याख्यान कहलाता है । विनय शुद्ध - प्रत्याख्यान करते समय मन, वचन, काया को एकाग्र रखना तथा वन्दना आदि की पूर्ण विशुद्धि रखना विनय शुद्धि कहलाती है । अनुभाषणशुद्ध-जब गुरु महाराज प्रत्याख्यान करावें उस समय उन्हें वन्दना करके हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़े होना और गुरु महाराज जो अक्षर, पद उच्चारण करें उन्हें धीमे स्वर से वापिस दोहराते हुए उनके पीछे पीछे बोलना तथा जब गुरु महाराज "वोसिरे" कहें तब "वोसिरामि" कहना अनुभाषण शुद्ध कहलाता है । अनुपालन शुद्ध - अटवी, दुष्काल तथा ज्वर आदि एवं कोई महारोग हो जाने पर भी प्रत्याख्यान का भङ्ग न करते हुए उसका पालन करना अनुपालन शुद्ध कहलाता है । भावशुद्ध - राग, द्वेष आदि परिणाम से प्रत्याख्यान को दूषित न करना भाव शुद्ध कहलाता है ।

पांच प्रकार का प्रतिक्रमण कहा गया है । यथा - आस्रव द्वार प्रतिक्रमण - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पांच आस्रव द्वारों से निवृत्त होना और इनका फिर सेवन न करना आस्रवद्वार प्रतिक्रमण कहलाता है । मिथ्यात्व प्रतिक्रमण - उपयोग से या अनुपयोग से अथवा सहसाकार वश आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम में प्राप्त होने पर उससे निवृत्त होना मिथ्यात्व प्रतिक्रमण कहलाता है । कषाय प्रतिक्रमण - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय परिणाम से आत्मा को निवृत्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना कषाय प्रतिक्रमण कहलाता है । योग प्रतिक्रमण - मन, वचन, काया के अशुभ योगों से आत्मा को अलग करना योग प्रतिक्रमण कहलाता है । भाव प्रतिक्रमण - आस्रवद्वार, मिथ्यात्व कषाय और योग में तीन करण, तीन योग से प्रवृत्ति न करना भाव प्रतिक्रमण कहलाता है ।

विवेचन - सूत्रकार ने ज्ञान के पांच भेद कहे हैं। किसी भी वस्तु को जानना ज्ञान कहलाता है। अर्थात् सम्यक् प्रकार से बोध अथवा जिसके द्वारा या जिससे जाना जाए वह ज्ञान कहलाता है। अर्थात् उसके आवरण का क्षय अथवा क्षयोपशम के परिणामयुक्त आत्मा जिससे जानता है वह ज्ञान कहलाता है। वह स्व विषय का ग्रहण रूप होने से अर्थ रूप से तीर्थंकरों द्वारा और सूत्र रूप से गणधरों के द्वारा प्ररूपित है। जैसा कि कहा है -

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ॥ (आवश्यक निर्युक्ति)

- अरिहंत अर्थ को ही कहते हैं सूत्र को नहीं। गणधर सूक्ष्म अर्थ को कहने वाले सूत्र को गूंथते हैं-रचते हैं अथवा नियत गुण वाले सूत्र की रचना करते हैं जिससे शासन के हित के लिये सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

शुद्धि के भेद से प्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा गया है। उपरोक्त पांच के सिवाय 'ज्ञान शुद्ध प्रत्याख्यान' छठा भेद भी कहा गया है। किन्तु ज्ञान शुद्ध का समावेश श्रद्धान शुद्ध में हो जाता है क्योंकि श्रद्धान भी ज्ञान विशेष ही है अथवा यहाँ पांचवा ठाणा होने से पांच का ही कथन किया गया है।

प्रति-क्रमण अर्थात् प्रतिकूल क्रमण (गमन)। शुभयोगों से अशुभ योग में गये हुए आत्मा का वापिस शुभ योग में आना प्रतिक्रमण कहलाता है। जैसा कि कहा है -

स्वस्थानात् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते॥

अर्थ - प्रमादवश आत्मा के निज गुणों को त्याग कर पर-गुणों में गये हुए आत्मा का वापिस आत्म गुणों में लौट आना प्रतिक्रमण कहलाता है।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग के भेद से भी प्रतिक्रमण पांच प्रकार का कहा जाता है। किन्तु वास्तव में ये पांच भेद और उपरोक्त पांच भेद एक ही हैं क्योंकि अविरति और प्रमाद का समावेश आस्रवद्वार में हो जाता है।

१. आभिनिबोधिक ज्ञान - पांच इन्द्रियाँ और मन की सहायता से योग्य स्थान में रहे हुए पदार्थ को जानने वाला ज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान कहलाता है इसका दूसरा नाम मतिज्ञान है।

२. श्रुत ज्ञान - पांच इन्द्रियाँ और मन की सहायता से शब्द से सम्बन्धित अर्थ को जानने वाले, ज्ञान को श्रुत ज्ञान कहते हैं। इसमें शब्द की प्रधानता होती है क्योंकि शब्द भाव श्रुत का कारण होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये कारण में कार्य का उपचार किया गया है अथवा जिसके द्वारा, जिससे, जो सुना जाता है वह श्रुत अर्थात् श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम रूप है अथवा श्रुत के उपयोग रूप परिणाम से अनन्य होने से आत्मा ही सुनती है अतः आत्मा ही श्रुत है। यह निश्चय नय की अपेक्षा से समझना चाहिए। श्रुत रूप ज्ञान, श्रुतज्ञान कहलाता है।

३. अवधिज्ञान - ''अवधीयते इति अधोऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते मर्यादया वा इति अवधिज्ञानम्''

अर्थ - इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी द्रव्य को मर्यादापूर्वक जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। इसका विषय नीचे नीचे विस्तृत होता जाता है यह ज्ञान सीधा आत्मा से सम्बन्ध रखता है। इसलिये इसको पारमार्थिक प्रत्यक्ष ज्ञान भी कहते हैं। अवधि ज्ञानावरण के क्षयोपशम से यह ज्ञान उत्पन्न होता है। देव और नारकी जीवों को यह ज्ञान जन्म से ही होता है। इसलिये इसको भव प्रत्यय कहते हैं। मनुष्य और तिर्यञ्चों को यह आत्मिक गुणों की प्रकर्षता से होता है इसलिये मनुष्य और तिर्यञ्चों का अवधिज्ञान ''लब्धि प्रत्यय'' कहलाता है।

४. मनः पर्यवज्ञान - अढ़ाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मन द्वारा चिन्तित रूपी पदार्थों को जानने वाला ज्ञान मनः पर्यवज्ञान कहलाता है। 'पर्यव' शब्द संस्कृत में ''अव गतौ'' धातु से बना है जिसका अर्थ है मर्यादापूर्वक जानना। इस ज्ञान के दो शब्द और भी हैं वे ये हैं - 'मनः पर्याय' और 'मनपर्यय'। इसमें 'परि' जिसका अर्थ है सर्व प्रकार से। 'आय' और 'अय' ये दोनों शब्द 'अय गतौ' धातु से बने हैं जिनका अर्थ है जानना। पूरा शब्द मनःपर्यव, मनःपर्याय और मनःपर्यव बनता है। जिसका अर्थ है मन में रहे हुए भावों को जानना। यह ज्ञान भी पारमार्थिक प्रत्यक्ष के अंतर्गत है। मनः पर्याय ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है। यह ज्ञान सातवें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयत (अप्रमादी साधु) को ही उत्पन्न होता है और बारहवें गुणस्थान तक रह सकता है।

केवल ज्ञान - केवलज्ञानावरणीय कर्म के समस्त क्षय से उत्पन्न होने वाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान क्षायिक ज्ञान है। इसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान इन चारों ज्ञानों की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती है। बल्कि ये चारों ज्ञान क्षायोपशमिक हैं इसलिये इन चारों ज्ञानों के सर्वथा नष्ट हो जाने पर यह केवलज्ञान उत्पन्न होता है-जैसा कि कहा है -

णट्ठम्मि य छाउमत्थिय णाणे।

अर्थ - छद्मस्थ सम्बन्धी मतिज्ञान आदि चारों ज्ञानों के नष्ट हो जाने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

इसमें किसी ज्ञान की सहायता की अपेक्षा न होने से इसको असहाय कहते हैं। यह ज्ञान अकेला ही रहता है इसलिये इसे ''केवल'' (मात्र एक) कहते हैं। यह सदा शाश्वत रहता है इसलिये यह त्रिकालवर्ती एवं त्रिलोकवर्ती कहलाता है। यह सम्पूर्ण आवरण रूप मल, कलङ्क रहित होने के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसको 'संशुद्ध' कहते हैं। जानने योग्य पदार्थ अनन्त हैं उन सबको यह ज्ञान जानता है इसलिये इसको 'अनन्त' भी कहते हैं। केवलज्ञान के साथ केवलदर्शन अवश्य उत्पन्न होता है। इन दोनों को धारण करने वाले को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी केवली कहते हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि - केवलज्ञान हो जाने पर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान, इन चारों ज्ञानों का केवलज्ञान में अन्तर्भाव (समावेश) हो जाता है किन्तु यह मान्यता आगम सम्मत नहीं है। क्योंकि केवलज्ञान क्षायिक भाव में है और मतिज्ञान आदि चारों ज्ञान क्षायोपशमिक भाव में है। इसलिए क्षायोपशमिक भाव का क्षायिक में समावेश नहीं होता है।

ज्ञानावरणीय कर्म - ज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। जिस प्रकार आँख पर कपड़े की पट्टी लपेटने से वस्तुओं के देखने में रुकावट हो जाती है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का ज्ञान करने में रुकावट पड़ जाती है। परन्तु यह कर्म आत्मा को सर्वथा ज्ञानशून्य अर्थात् जड़ नहीं कर देता। जैसे घने बादलों से सूर्य के ढंक जाने पर भी सूर्य का, दिन रात बताने वाला, प्रकाश तो रहता ही है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान के ढक जाने पर भी जीव में इतना ज्ञानांश तो रहता ही है कि वह जड़ पदार्थ से पृथक् समझा जा सके।

ज्ञानावरणीय कर्म के पांच भेद - १. मति ज्ञानावरणीय २. श्रुत ज्ञानावरणीय ३. अवधि ज्ञानावरणीय ४. मनः पर्यय ज्ञानावरणीय ५. केवल ज्ञानावरणीय।

१. मति ज्ञानावरणीय - मति ज्ञान के एक अपेक्षा से तीन सौ चालीस भेद होते हैं। इन सब ज्ञान के भेदों का आवरण करने वाले कर्मों को मति ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

२. श्रुत ज्ञानावरणीय - चौदह अथवा बीस भेद वाले श्रुतज्ञान का आवरण करने वाले कर्मों को श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

३. अवधि ज्ञानावरणीय - भव प्रत्यय और गुण प्रत्यय तथा अनुगामी, अननुगामी आदि भेद वाले अवधिज्ञान के आवारक कर्मों को अवधि ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

४. मनः पर्यय ज्ञानावरणीय - ऋजुमति और विपुलमति भेद वाले मनः पर्यय ज्ञान का आच्छादन करने वाले कर्म को मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

५. केवल ज्ञानावरणीय - केवल ज्ञान का आवरण करने वाले कर्म को केवल ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

इन पाँच ज्ञानावरणीय कर्मों में केवल ज्ञानावरणीय सर्वघाती है और शेष चार कर्म देशघाती हैं।

स्वाध्याय - शोभन रीति से मर्यादा पूर्वक अस्वाध्याय काल का परिहार करते हुए शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय के पांच भेद - १. वाचना २. पृच्छना ३. परिवर्त्तना ४. अनुप्रेक्षा, ५. धर्मकथा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. वाचना – शिष्य को सूत्र अर्थ का पढ़ाना वाचना है।

२. पृच्छना – वाचना ग्रहण करके संशय होने पर पुनः पूछना पृच्छना है। या पहले सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान में शंका होने पर प्रश्न करना पृच्छना है।

३. परिवर्त्तना – पढ़े हुए भूल न जाँय इसलिये उन्हें फेरना परिवर्त्तना है। परिवर्तना शब्द के स्थान पर कहीं पर "परावर्तना" शब्द भी पाया जाता है।

४. अनुप्रेक्षा – सीखे हुए सूत्र के अर्थ का विस्मरण न हो जाय इसलिये उसका बार बार मनन करना अनुप्रेक्षा है।

५. धर्मकथा – उपरोक्त चारों प्रकार से शास्त्र का अभ्यास करने पर भव्य जीवों को शास्त्रों का व्याख्यान सुनाना धर्म कथा है।

श्रद्धान शुद्ध आदि उपरोक्त पांच के सिवाय ज्ञान शुद्ध प्रत्याख्यान छठा भेद गिना गया है किन्तु ज्ञान शुद्ध का समावेश श्रद्धानशुद्ध में हो जाता है क्योंकि श्रद्धान भी ज्ञान विशेष ही है । ज्ञान शुद्ध का स्वरूप यह है – जिनकल्प आदि में मूलगुण, उत्तर गुण विषयक जो प्रत्याख्यान जिस काल में करना चाहिए उसे जानना ज्ञान शुद्ध है ।

वाचना देने और सूत्र सीखने के बोल

पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा तंजहा - संगहट्ठयाए, उवग्गहणट्ठयाए, णिज्जरणट्ठयाए, सुत्ते वा मे पज्जवयाए भविस्सइ, सुत्तस्स वा अवोच्छित्ति णयट्ठयाए । पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खिज्जा तंजहा - णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामि त्तिकट्टु॥ ३९॥

भावार्थ – पांच कारणों से सूत्र की वाचना देवें यानी गुरु महाराज शिष्य को सूत्र सिखावें यथा – शिष्यों को शास्त्र ज्ञान का ग्रहण हो और उनके श्रुत का संग्रह हो, इस प्रयोजन से शिष्यों को वाचना देवे । उपग्रह के लिए यानी शास्त्र सिखाये हुए शिष्य आहार, पानी, वस्त्र आदि शुद्ध एषणा द्वारा प्राप्त कर सकेंगे और संयम में सहायक हो सकेंगे । निर्जरा के लिए यानी सूत्रों की वाचना देने से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी ऐसा विचार कर वाचना देवे । यह समझ कर वाचना देवे कि वाचना देने से मेरा शास्त्रज्ञान स्पष्ट हो जायगा । और शास्त्र का व्यवच्छेद न हो और शास्त्र की परम्परा चलती रहे इस प्रयोजन से वाचना देवे । पांच कारणों से शिष्य सूत्र सीखे–यथातत्त्वों के ज्ञान के लिए सूत्र सीखे । तत्त्वों पर श्रद्धा करने के लिए सूत्र सीखे । चारित्र के लिए सूत्र सीखे । मिथ्याभिनिवेश छोड़ने के लिए अथवा दूसरे से छुड़वाने के लिए सूत्र सीखे और 'सूत्र सीखने से मैं यथावस्थित द्रव्य और पर्यायों को जान सकूंगा' इस विचार से सूत्र सीखे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सूत्र की वाचना देने के पाँच बोल यानी गुरु महाराज पाँच बोलों से शिष्य को सूत्र सिखावे -

१. शिष्यों को शास्त्र-ज्ञान का ग्रहण हो और इनके श्रुत का संग्रह हो, इस प्रयोजन से शिष्यों को वाचना देवे।

२. उपग्रह के लिये शिष्यों को वाचना देवे। इस प्रकार शास्त्र सिखाये हुए शिष्य आहार, पानी, वस्त्रादि शुद्ध गवेषणा द्वारा प्राप्त कर सकेंगे और संयम में सहायक होंगे।

३. सूत्रों की वाचना देने से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी यह विचार कर वाचना देवे।

४. यह सोच कर वाचना देवे कि वाचना देने से मेरा शास्त्र ज्ञान स्पष्ट हो जायगा।

५. शास्त्र का व्यवच्छेद न हो और शास्त्र की परम्परा चलती रहे इस प्रयोजन से वाचना देवे।

सूत्र सीखने के पाँच स्थान -

१. तत्त्वों के ज्ञान के लिये सूत्र सीखे।

२. तत्त्वों पर श्रद्धा करने के लिये सूत्र सीखे।

३. चारित्र के लिये सूत्र सीखे।

४. मिथ्याभिनिवेश छोड़ने के लिये अथवा दूसरे से छुड़वाने के लिये सूत्र सीखे।

५. सूत्र सीखने से मुझे यथावस्थित द्रव्य एवं पर्यायों का ज्ञान होगा इस विचार से सूत्र सीखे।

देव विमान, कर्म बंध

सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंच वण्णा पण्णत्ता तंजहा - किण्हा जाव सुक्किल्ला। सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। बंभलोयलंतएसु णं देवाणं भवधारणिज्ज सरीरगा उक्कोसेणं पंच रयणी उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। णेरइया णं पंचवण्णे पंचरसे पोग्गले बंधिंसु वा बंधंति वा बंधिस्संति वा तंजहा - किण्हे जाव सुक्किल्ले तित्ते जाव महुरे । एवं जाव वेमाणिया॥ ४०॥

कठिन शब्दार्थ - भवधारणिज्ज सरीरगा - भवधारणीय शरीर की, **पंच रयणी** - पांच हाथ की।

भावार्थ - सौधर्म और ईशान कल्प में यानी पहले और दूसरे देवलोक में विमान पांच वर्ण वाले कहे गये हैं । यथा - काले, नीले, लाल, पीले और सफेद । सौधर्म और ईशान देवलोक में विमान पांच सौ योजन के ऊंचे कहे गये हैं । ब्रह्मलोक और लान्तक यानी पांचवें और छठे देवलोक में देवों की भवधारणीय शरीर की अवगाहना यानी ऊंचाई उत्कृष्ट पांच हाथ की कही गई है । नैरयिकों से लेकर वैमानिक तक चौबीस ही दण्डक के जीवों ने काले, नीले, लाल पीले और सफेद इन पांच वर्णों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा तीखे, कडुवे, कषैले, खट्टे और मीठे इन पांच रसों वाले पुद्गल भूत काल में बांधे हैं और वर्तमान काल में बांधते हैं तथा आगामी काल में बांधेंगे।

पांच महानदियाँ

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे गंगा महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति तंजहा - जउणा, सरऊ, आई, कोसी, मही । जंबूमंदरस्स दाहिणेणं सिंधु महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति तंजहा - सयद्दू विभासा, वित्तथा, एरावई, चंदभागा। जंबूमंदरस्स उत्तरेणं रत्ता महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति तंजहा - किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा । जंबूमंदरस्स उत्तरेणं रत्तावई महाणई पंच महाणईओ समप्पेंति तंजहा - इंदा, इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोया ।

कुमारवास में प्रव्रजित तीर्थंकर

पंच तित्थयरा कुमारवास मज्झे वसित्ता मुंडा जाव पव्वइया तंजहा - वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे ।

पांच सभाएँ, पांच तारों वाले नक्षत्र

चमरचंचाए रायहाणीए पंच सभाओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुहम्मा सभा, उववाय सभा, अभिसेय सभा, अलंकारिय सभा, ववसाय सभा । एगमेगे णं इंदट्ठाणे पंच सभाओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुहम्मा सभा - जाव ववसाय सभा । पंच णक्खत्ता पंच तारा पण्णत्ता तंजहा - धणिट्ठा, रोहिणी, पुणव्वसू, हत्थो, विसाहा ।

पापकर्म-संचित पुद्गल

जीवा णं पंच ट्ठाण णिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तंजहा- एगिंदिय णिव्वत्तिए जाव पंचिंदिय णिव्वत्तिए । एवं चिण, उवचिण, बंध, उदीर, वेय तह णिज्जरा चेव । पंच पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । पंच पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव पंच गुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ॥ ४१ ॥

।। पंचमट्ठाणस्स तईओ उद्देसो समत्तो । पंचमज्झयणं समत्तं ।।

कठिन शब्दार्थ - समप्पेंति - आकर मिलती हैं, **कुमारवास मज्झे** - कुमारवास में, **उववाय सभा** - उपपात सभा, **अभिसेय सभा** - अभिषेक सभा, **अलंकारिय सभा** - अलंकार सभा, **ववसाय सभा** - व्यवसाय सभा, **इंदट्ठाणे** - इन्द्र के स्थान में, **सुहम्मा** - सुधर्मा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा में गंगा महानदी में पांच महानदियाँ आकर मिलती हैं । यथा - यमुना, सरयू, आदी, कौशी और मही । जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत के दक्षिण दिशा में सिन्धु महानदी में पांच महानदियाँ आकर मिलती हैं । यथा - शतद्रू, विभाषा, वितत्था, ऐरावती और चन्द्रभागा । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर दिशा में रक्ता महानदी में पांच महानदियाँ आकर मिलती हैं। यथा - कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला और महातीरा । जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत के उत्तर में दिशा में रक्तावती महानदी में पांच महानदियाँ आकर मिलती हैं । यथा - इन्द्रा, इन्द्रसेना, सुसेना, वारिसेना और महाभोगा । पांच तीर्थङ्कर कुमारवास में रह कर यानी राज्य लक्ष्मी का भोग न करके मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे । यथा - वासुपूज्य स्वामी, मल्लिनाथ स्वामी, अरिष्ट नेमिनाथ स्वामी, पार्श्वनाथ स्वामी और भगवान् महावीर स्वामी ।

चमरचञ्चा राजधानी में पांच सभाएं कही गई हैं । यथा - सुधर्मा सभा, उपपात सभा, अभिषेक सभा, अलङ्कार सभा, व्यवसाय सभा । प्रत्येक इन्द्र के स्थान में पांच सभाएं कही गई हैं । यथा - सुधर्मा सभा यावत् व्यवसाय सभा । पांच नक्षत्र पांच पांच तारों वाले कहे गये हैं । यथा - धनिष्ठा, रोहिणी, पुनर्वसु हस्त और विशाखा ।

सब जीवों ने पांच स्थान निर्वर्तित पुद्गलों को पापकर्म रूप से उपार्जन किये हैं, उपार्जन करते हैं और उपार्जन करेंगे । यथा - एकेन्द्रिय निर्वर्तित यावत् पञ्चेन्द्रिय निर्वर्तित । इसी प्रकार चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा । इनके लिए भूत भविष्यत और वर्तमान तीनों काल सम्बन्धी बात कह देनी चाहिए । पंचप्रदेशावगाढ अर्थात् पांच प्रदेशों को अवगाहित करने वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं । यावत् पांच गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं ।

विवेचन - 'कुमार' शब्द का अर्थ टीका में इस प्रकार किया है -

''कुमाराणां अराजभावेन वासः कुमारवासः''

अर्थात् - जिनका राज्याभिषेक नहीं हुआ है यानी जिन्होंने राज्यलक्ष्मी का भोग नहीं किया है । ऐसी अवस्था में रहना कुमारवास कहलाता है। यहाँ 'कुमार' शब्द का ब्रह्मचारी अर्थ नहीं है । भगवान् मल्लिनाथ और भगवान् नेमिनाथ ये दो तीर्थंकर ही ऐसे थे, जिन्होंने विवाह नहीं किया था । अविवाहित ही दीक्षित हुए थे ।

नोट - वासुपूज्य, मल्लि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर ये पांच तीर्थङ्कर अविवाहित थे ऐसी दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है। हरिभद्रसूरि आदि टीकाकारों की भी ऐसी ही मान्यता है।

।। पांचवें स्थान का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

।। पांच स्थान रूप पांचवां अध्ययन समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छठा स्थान

पांचवें अध्ययन में जीवों की पर्यायों का कथन किया गया है । छठे अध्ययन में भी इसी विषय का वर्णन किया जाता है -

गणी के गुण

छहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ गणं धारित्तए तंजहा - सड्ढी पुरिसजाए, सच्चे पुरिसजाए, मेहावी पुरिसजाए, बहुस्सुए, पुरिसजाए, सत्तिमं, अप्पाहिगरणे ।

अवलंबन के कारण

छहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ तंजहा - खित्तचित्तं, दित्तचित्तं, जक्खाइट्ठं, उम्मायपत्तं, उवसग्गपत्तं, साहिगरणं । छहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीओ य साहम्मियं कालगयं समायरमाणा णाइक्कमंति तंजहा - अंतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा, बाहिहिंतो वा णिब्बाहिं णीणेमाणा, उवेहमाणा वा, उवासमाणा वा, अणुण्णवेमाणा वा, तुसिणीए वा संपव्वयमाणा ॥ ४२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सड्ढी पुरिसजाए** - श्रद्धा सम्पन्न पुरुष, **बहुस्सुए** - बहुश्रुत, **सत्तिमं** - शक्तिमान, **अप्पाहिगरणे** - अल्प धिकरण वाला, **साहिगरणं** - साधिकरण-क्रोध वाला, **साहम्मियं** - साधर्मिक, **समायरमाणा** - आचरण करते हुए, **णीणेमाणा** - निकालते हुए।

भावार्थ - छह गुणों वाला साधु गण को धारण कर सकता है अर्थात् साधु समुदाय को मर्यादा में रख सकता है। वे छह गुण ये हैं-श्रद्धा सम्पन्नता - गण को धारण करने वाला दृढ़ श्रद्धालु अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्पन्न होना चाहिए। श्रद्धालु स्वयं मर्यादा में रहता है और दूसरों को मर्यादा में रख सकता है। सत्यसम्पन्नता - सत्यवादी एवं प्रतिज्ञाशूर मुनि गणपालक होता है। उसके वचन विश्वसनीय और ग्रहण करने योग्य होते हैं। मेधाविपन - मर्यादा को समझने वाला अथवा श्रुतग्रहण की शक्ति वाला एवं दृढ़ धारणा वाला बुद्धिमान् पुरुष मेधावी कहलाता है । मेधावी साधु दूसरे साधुओं से मर्यादा का पालन करा सकता है तथा दूसरे से विशेष श्रुतज्ञान ग्रहण करके शिष्यों को पढ़ा सकता है। बहुश्रुतता - बहुश्रुत साधु अपने गण में ज्ञान की वृद्धि कर सकता है। वह स्वयं शास्त्र सम्मत क्रियाओं का पालन करता है और दूसरे साधुओं से भी पालन करवाता है। शक्तिमत्ता - शरीरादि का सामर्थ्य सम्पन्न होना जिससे आपत्तिकाल में अपनी और गण की रक्षा कर सकता है। अल्पाधिकरणता - अल्पाधिकरण अर्थात् स्वपक्षसम्बन्धी या परपक्षसम्बन्धी लड़ाई झगड़े से रहित साधु शिष्यों की अनुपालना भली प्रकार कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छह कारणों से निर्ग्रन्थ साधु साध्वी को ग्रहण करता हुआ अथवा सहारा देता हुआ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन **नहीं करता है** । यथा - शोक से क्षिप्त चित्त वाली, हर्ष से दृप्त चित्त वाली, यक्षाधिष्ठित, उन्माद प्राप्त, उपसर्ग प्राप्त और क्रोध करके आई हुई। यदि कोई स्वधर्मी साधु साध्वी काल धर्म को प्राप्त हो जाय, तो उसके साथ छह बातों का आचरण करते हुए साधु और साध्वी भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । यथा - उपाश्रय के घर से बाहर निकालते हुए, उपाश्रय से बाहर निकाल कर फिर बहुत दूर बाहर ले जाते हुए बन्धन आदि करते हुए एवं मृत साधु साध्वी के स्वजन आदि उसे अलङ्कृत करते हों तो उनके प्रति उदासीन भाव रखते हुए अथवा रात्रिजागरण करते हुए अथवा उस समय में होने वाले व्यन्तरादि के उपद्रव को शान्त करते हुए, मृतसाधु के स्वजनादि को उसके मरण की सूचना देते हुए और उस मृतसाधु के शरीर को मौनस्थ होकर परिठाने के लिए जाते हुए साधु साध्वी भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं ।

विवेचन - सूत्र का अभिसंबंध इस प्रकार है। पूर्व सूत्र में पांच गुण वाले रूक्ष पुद्गल अनंत कहे हैं। उन भावों को कहने वाले अर्थ से अरिहन्त (तीर्थंकर) और सूत्र रूप से गून्थन करने वाले गणधर है। गुणों से युक्त अनगार में गण धारण करने की योग्यता होती है। ऐसे गुण वाले गणधरों के गुणों को दिखाने के लिये ही यह सूत्र कहा है। गुण विशेष छह स्थानों से संपन्न (युक्त) अनगार-भिक्षु, गच्छ को मर्यादा में स्थापित करने के लिए अथवा पालन करने हेतु योग्य होता है। वे गुण ऊपर भावार्थ में स्पष्ट कर दिये गये हैं। ग्रंथान्तर में गण स्वामी के अन्य गुण इस प्रकार बताये हैं -

सुत्तत्थे णिम्माओ, पियदढधम्मोऽणुवत्तणा कुसलो।
जाइकुल संपन्नो, गंभीरो लद्धिमंतो य॥
संगहुवग्गहणिरओ कयकरणो पवयणाणुरागी य।
एवं विहो उ भणिओ, गणसामी जिणवरिंदेहिं॥

अर्थात् - १. सूत्रार्थ में निष्णात २. प्रियधर्मी ३. दृढधर्मी ४. अनुवर्त्तना में कुशल-उपाय का जानकार ५. जाति संपन्न ६. कुल संपन्न ७. गंभीर ८. लब्धिसंपन्न ९-१०. संग्रह और उपग्रह के विषय में तत्पर अर्थात् उपदेश आदि से संग्रह और वस्त्रादि से उपग्रह (सहाय), अन्य आचार्य वस्त्रादि से उपग्रह कहते हैं ११. कृत क्रिया के अभ्यास वाला १२. प्रवचनानुरागी और 'च' शब्द से स्वभाव से ही परमार्थ में प्रवर्तित, इस प्रकार के गच्छाधिपति तीर्थंकरों ने कहे हैं।

गणधर कृत मर्यादाओं में वर्तता हुआ निर्ग्रंथ जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है। पांचवें स्थानक में पांच कारण बताये हैं। यहां छठे स्थानक में उन्हीं कारणों की विशेष व्याख्या की गयी है। साधु के लिये साध्वी स्पर्श के ये आपवादिक कारण हैं। आगे के सूत्र में बताया है कि साधु या साध्वियाँ ये दोनों छह कारणों से समान धर्म वाले साधु को अथवा किसी साध्वी को कालगत (मृतक) जान कर उसकी उत्थापना आदि विशेष क्रिया करते हुए तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छद्मस्थ और केवलज्ञानी का विषय

छ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ ण पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासं, जीवमसरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं । एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे जाव सव्वभावेणं जाणइ पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं जाव सद्दं ।

छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाणं णत्थि इड्ढि इ वा, जुत्ती इ वा, जसे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारे इ वा, परक्कमे इ वा तंजहा - जीवं वा अजीवं करणयाए, अजीवं वा जीवं करणयाए, एगसमएणं वा दो भासाओ भासित्तए, सयं कडं कम्मं वेएमि वा, मा वा वेएमि, परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा, भिंदित्तए वा, अगणि काएण वा समोदहित्तए, बहिया वा लोगंता गमणयाए ।

छह जीव निकाय, तारे के आकार के ग्रह

छज्जीव णिकाया पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया । छ तारग्गहा पण्णत्ता तंजहा - सुक्के बुहे, बहस्सइ, अंगारए सणिच्चरे, केऊ ।

संसारी जीव, गति आगति, तृण वनस्पतिकाय

छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया जाव तसकाइया। पुढविकाइया छ गइया छ आगइया पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा जाव तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। सो चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा जाव तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा । आउकाइया वि छ गइया छ आगइया एवं चेव जाव तसकाइया ।

छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी, केवलणाणी, अण्णाणी । अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - एगिंदिया जाव पंचिंदिया अणिंदिया । अहवा छव्विहा सव्व जीवा पण्णत्ता तंजहा - ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी । छव्विहा तण वणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा - अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा, सम्मुच्छिमा॥ ४३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **करणयाए** - करने में, **वेएमि** - वेदन करता हूँ, **छिंदित्तए** - छेदन करने में, **भिंदित्तए** - भेदन करने में, **समोदहित्तए** - जलाने में, **लोगंता** - लोक के अन्त में, **कम्मग सरीरी** - कार्मण शरीर वाले।

भावार्थ - छद्मस्थ पुरुष छह बातों को सर्वभाव से यानी सब पर्यायों सहित न जान सकता है और न देख सकता है। यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर रहित जीव, परमाणु पुद्गल और शब्द वर्गणा के पुद्गल इनको छद्मस्थ सर्वभाव से जान नहीं सकता और देख नहीं सकता है। किन्तु केवलज्ञान केवल दर्शन के धारक राग द्वेष को जीतने वाले अरिहन्त भगवान् इन धर्मास्तिकाय से लेकर शब्द वर्गणा के पुद्गल तक उपरोक्त छह ही पदार्थों को सर्वभाव से जान सकते हैं और देख सकते हैं ।

छह बोल करने में किसी भी जीव की ऋद्धि, दयुति, यश, बल, पुरुषकार और पराक्रम नहीं है । यथा - जीव को अजीव बनाने में कोई समर्थ नहीं है । अजीव को जीव करने में कोई समर्थ नहीं है । एक समय में कोई दो भाषा बोलने में समर्थ नहीं है । किये हुए कर्मों का फल अपनी इच्छानुसार भोगने में अथवा न भोगने में कोई स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि जैसे कर्म किये हैं वैसा फल जीव को अवश्य भोगना ही पड़ता है । परमाणु पुद्गल को छेदन भेदन करने में एवं जलाने में कोई समर्थ नहीं है और लोक के बाहर जाने में कोई समर्थ नहीं है ।

छह जीव निकाय कहा गया है । यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक और त्रसकायिक । छह ग्रह ✿ तारा रूप कहे गये हैं । यथा - शुक्र, बुध, बृहस्पति, अंगारक यानी मंगल, शनिश्चर और केतु ।

छह प्रकार के संसार समापन्नक यानी संसारी जीव कहे गये हैं । यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। पृथ्वीकायिक जीव छह गति वाले और छह आगति वाले कहे गये हैं । यथा - पृथ्वीकाया में उत्पन्न होने वाला पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकाया से लेकर त्रसकाया तक छह ही कायों से आकर उत्पन्न हो सकता है । इसी तरह पृथ्वीकाया को छोड़ने वाला पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाया से लेकर त्रसकाया तक छह ही कायों के जीवों में जाकर उत्पन्न हो सकता है। इसी तरह अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक सभी जीवों में उपरोक्त छह ही कायों की गति और छह ही कायों की आगति होती है ।

सब जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । यथा - आभिनिबोधिकज्ञानी-मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी केवलज्ञानी और अज्ञानी । अथवा दूसरी तरह से सब जीव छह प्रकार के

✿ ग्रह नौ कहे गये हैं और लोक में भी नौ ग्रह प्रसिद्ध हैं किन्तु चन्द्रमा, सूर्य और राहु ये तीन ग्रह तारा के आकार वाले नहीं है। इसलिये यहाँ पर इन तीनों को छोड़ कर बाकी छह ग्रह जो तारा के आकार हैं वे लिये गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहे गये हैं । यथा - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय । अथवा दूसरी तरह से सब जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । यथा - औदारिक शरीर वाले, वैक्रिय शरीर वाले, आहारक शरीर वाले, तैजस शरीर वाले, कार्मण शरीर वाले और अशरीरी यानी सिद्ध । तृण वनस्पतिकाय अर्थात् बादर वनस्पतिकाय छह प्रकार की कही गई है । यथा - अग्रबीज - जिस वनस्पतिकाय का अग्रभाग बीज रूप होता है जैसे कोरण्टक आदि । अथवा जिस वनस्पति का बीज अग्रभाग पर होता है जैसे गेहूँ, जौ, धान आदि । मूलबीज-जिस वनस्पति का मूल भाग बीज का काम देता है, जैसे कमल आदि । पर्वबीज - जिस वनस्पति का पर्वभाग यानी गांठ बीज का काम देता है, जैसे ईख आदि । स्कन्धबीज - जिस वनस्पति का स्कन्ध भाग बीज का काम देता है, जैसे शल्लकी आदि। बीजरुह - बीज से उगने वाली वनस्पति जैसे शालि आदि। सम्मूर्च्छिम-जिस वनस्पति का प्रसिद्ध कोई बीज नहीं है और जो वर्षा आदि के समय यों ही उग जाती है, जैसे घास आदि ।

विवेचन - चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय करके जो मनुष्य सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं हुआ है, उसे छद्मस्थ कहते हैं। यहाँ पर छद्मस्थ पद से विशेष अवधि या उत्कृष्ट ज्ञान से रहित व्यक्ति लिया जाता है। ऐसा व्यक्ति नीचे लिखी छह बातों को नहीं देख सकता -१. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. शरीर रहित जीव ५. परमाणु पुद्गल ६. शब्द वर्गणा के पुद्गल।

नोट - परमावधिज्ञानी परमाणु और भाषावर्गणा के पुद्गलों को देख सकता है, इसीलिए यहां छद्मस्थ शब्द से विशेष अवधि या उत्कृष्ट ज्ञान से शून्य व्यक्ति लिया गया है।

जीव निकाय छह - निकाय शब्द का अर्थ है राशि। जीवों की राशि को जीवनिकाय कहते हैं। यही छह काय शब्द से भी प्रसिद्ध हैं। शरीर नाम कर्म के उदय से होने वाली औदारिक और वैक्रिय पुद्गलों की रचना और वृद्धि को काय कहते हैं। काय के भेद से जीव भी छह प्रकार के हैं। जीव निकाय के छह भेद इस प्रकार हैं -

१. **पृथ्वीकाय** - जिन जीवों का शरीर पृथ्वी रूप है वे पृथ्वीकाय कहलाते हैं।

२. **अप्काय** - जिन जीवों का शरीर जल रूप है वे अप्काय कहलाते हैं।

३. **तेजस्काय** - जिन जीवों का शरीर अग्नि रूप है वे तेजस्काय कहलाते हैं।

४. **वायुकाय** - जिन जीवों का शरीर वायु रूप है वे वायुकाय कहलाते हैं।

५. **वनस्पतिकाय** - वनस्पति रूप शरीर को धारण करने वाले जीव वनस्पतिकाय कहलाते हैं।

ये पाँचों ही स्थावर काय कहलाते हैं। इनके केवल स्पर्शन इन्द्रिय होती है। ये शरीर इन जीवों को स्थावर नाम कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं।

६. **त्रसकाय** - त्रस नाम कर्म के उदय से चलने फिरने योग्य शरीर को धारण करने वाले द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रसकाय कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो तारे के आकार वाले ग्रह हैं वे तारक ग्रह कहलाते हैं। लोक में नौ ग्रह प्रसिद्ध है जिसमें चन्द्र, सूर्य और राहु तारे जैसे आकार के नहीं होने से उनका यहां ग्रहण नहीं किया है। शेष छह ग्रह तारा रूप कहे हैं। यथा - शुक्र, बुध, वृहस्पति, मंगल, शनिश्चर और केतु। ये छह ग्रह तारे के जैसे आकार वाले कहे गये हैं। ज्ञानी सूत्र में मिथ्यात्व युक्त ज्ञान वाले को अज्ञानी कहा है जो तीन प्रकार के हैं। मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और अवधि अज्ञानी (विभंग ज्ञानी)। इन्द्रिय सूत्र में अनिन्द्रिय अर्थात् अपर्याप्त, केवली और सिद्ध। जब तक जीव इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी नहीं कर लेता तब तक वह अनिन्द्रिय होता है। केवली में द्रव्येन्द्रिय का सद्‌भाव होने पर भी क्षायोपशमिक भाव रूप इन्द्रियों का अभाव होने से केवली अनिन्द्रिय कहलाते हैं।

दुर्लभ स्थान, इन्द्रिय विषय, सुख-दुःख

छ ट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति तंजहा - माणुस्सए भवे, आयरिए खित्ते जम्मं, सुकुले पच्चायाई, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणया, सुयस्स वा सद्दहणया, सद्दहियस्स वा, पत्तियस्स वा, रोइयस्स वा सम्मं काएणं फासणया। छ इंदियत्था पण्णत्ता तंजहा - सोइंदियत्थे जाव फासिंदियत्थे णोइंदियत्थे। छव्विहे संवरे पण्णत्ते तंजहा-सोइंदिय संवरे जाव फासिंदिय संवरे णोइंदिय संवरे। छव्विहे असंवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय असंवरे जाव फासिंदिय असंवरे णोइंदिय असंवरे। छव्विहे साए पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय साए जाव फासिंदिय साए णोइंदिय साए। छव्विहे असाए पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय असाए जाव फासिंदिय असाए णोइंदिय असाए।

प्रायश्चित्त भेद

छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे॥ ४४॥

कठिन शब्दार्थ - **सुलभाइं** - सुलभ, **आयरिए** - आर्य, **खित्ते** - क्षेत्र में, **जम्मं** - जन्म, **सुकुले**- सुकुल-उत्तम कुल में, **पच्चायाई** - उत्पन्न होना, **सवणया** - सुनना, **सद्दहियस्स** - श्रद्धा किये हुए के, **पत्तियस्स** - प्रतीति किये हुए के, **रोइयस्स** - रुचि किये हुए के, **फासणया** - स्पर्शना-आचरण करना, **णोइंदियत्थे** - नो इन्द्रियार्थ-नोइन्द्रिय यानी मन का विषय, **साए** - साता, **पायच्छित्ते** - प्रायश्चित्त, **आलोयणारिहे** - आलोचनार्ह, **पडिक्कमणारिहे** - प्रतिक्रमणार्ह, **तदुभयारिहे** - तदुभयार्ह, **विवेगारिहे**- विवेकार्ह, **विउस्सग्गारिहे** - व्युत्सगार्ह, **तवारिहे** - तपार्ह ।

भावार्थ - सब जीवों को छह स्थानों की प्राप्ति होना सुलभ नहीं है यथा - मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र यानी साढे पच्चीस आर्य देशों में जन्म, उत्तम कुल में उत्पन्न होना, केवलि प्ररूपित धर्म को सुन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर उस पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करना, केवलि प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करके सम्यक् प्रकार से काया द्वारा उस पर आचरण करना। इन्द्रियों के छह विषय कहे गये हैं यथा – श्रोत्रेन्द्रिय का विषय, चक्षुइन्द्रिय का विषय, घ्राणेन्द्रिय का विषय, रसनेन्द्रिय का विषय, स्पर्शनेन्द्रिय का विषय और नोइन्द्रिय यानी मन का विषय । छह प्रकार का संवर कहा गया है यथा – श्रोत्रेन्द्रिय संवर, चक्षुइन्द्रिय संवर, घ्राणेन्द्रिय संवर, रसनेन्द्रिय संवर, स्पर्शनेन्द्रिय संवर और नोइन्द्रिय यानी मन सम्बन्धी संवर । छह प्रकार का असंवर कहा गया है यथा – श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय असंवर और नोइन्द्रिय यानी मन सम्बन्धी असंवर । छह प्रकार की साता यानी सुख कहा गया है यथा – श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी सुख यावत् स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख और नोइन्द्रिय यानी मन सम्बन्धी सुख । छह प्रकार की असाता यानी दुःख कहा गया है यथा – श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख यावत् स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख और नोइन्द्रिय यानी मन सम्बन्धी दुःख ।

प्रायश्चित्त – प्रमादवश किसी दोष के लग जाने पर उसकी विशुद्धि के लिए आलोचना करना या उसके लिए गुरु के कहे अनुसार तपस्या आदि करना प्रायश्चित्त कहलाता है । वह प्रायश्चित्त छह प्रकार का कहा गया है यथा – आलोचनार्ह – संयम में लगे हुए दोष को गुरु के समक्ष स्पष्ट वचनों से सरलता पूर्वक प्रकट करना आलोचना है। जो प्रायश्चित्त आलोचना मात्र से शुद्ध हो जाय उसे आलोचनार्ह या आलोचना प्रायश्चित्त कहते हैं। प्रतिक्रमणार्ह – जो दोष सिर्फ प्रतिक्रमण से शुद्ध हो जाय, वह प्रतिक्रमणार्ह प्रायश्चित्त है। तदुभयार्ह – जो दोष आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से शुद्ध होता हो वह तदुभयार्ह है। विवेकार्ह – जो दोष आधाकर्मादि अशुद्ध आहार आदि को परिठवने से शुद्ध हो जाय। व्युत्सगार्ह – कायोत्सर्ग यानी शरीर के व्यापार को रोक कर ध्येय वस्तु में उपयोग लगाने से जिस दोष की शुद्धि होती है वह व्युत्सगार्ह प्रायश्चित्त है। तपार्ह – तपस्या करने से जिस दोष की शुद्धि हो वह तपार्ह प्रायश्चित्त कहलाता है ।

विवेचन – दुर्लभ – जो बातें अनन्त काल तक संसार चक्र में भ्रमण करने के बाद कठिनता से प्राप्त हों तथा जिन्हें प्राप्त करके जीव संसार चक्र को काटने का प्रयत्न कर सके उन्हें दुर्लभ कहते हैं। वे छह हैं –

१. मनुष्य जन्म २. आर्य क्षेत्र (साढ़े पच्चीस आर्य देश) ३. धार्मिक कुल में उत्पन्न होना ४. केवली प्ररूपित धर्म का सुनना ५. केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा करना ६. केवली प्ररूपित धर्म का आचरण करना।

इन बोलों में पहले से दूसरा, दूसरे से तीसरा इस प्रकार उत्तरोत्तर अधिकाधिक दुर्लभ हैं। अज्ञान, प्रमाद आदि दोषों का सेवन करने वाले जीव इन्हें प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे जीव एकेन्द्रिय आदि में जन्म लेते हैं, जहां काय स्थिति बहुत लम्बी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छह वस्तुएं सभी जीवों को सुलभ-सरलता से प्राप्त नहीं होती अर्थात् कठिनता से प्राप्त होती है परन्तु अलभ्य नहीं हैं क्योंकि कई जीवों को उनका लाभ होता है। वे इस प्रकार हैं - मनुष्य संबंधी भव सुलभ नहीं है। कहा है - "खद्योत और बिजली की चमक जैसा चंचल यह मनुष्य भव अगाध संसार रूप समुद्र में यदि गुमा दिया है तो पुनः मिलना अति दुर्लभ है।" इसी प्रकार २५॥ देश रूप आर्य क्षेत्र में जन्म होना भी दुर्लभ है। कहा भी है - "मनुष्य भव प्राप्त होने पर भी आर्य भूमि में उत्पन्न होना अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होकर प्राणी धर्माचरण के प्रति जागृत हो सकता है।" ईक्ष्वाकु आदि कुल में प्रत्यायाति (जन्म) सुलभ नहीं है। कहा है - "आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने पर भी सत्कुल की प्राप्ति होना सुलभ नहीं है। सत्कुल में उत्पन्न प्राणी चारित्र को प्राप्त कर सकता है।" केवली प्ररूपित धर्म का सुनना भी दुर्लभ है। कहा है -

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परम दुल्लहा।
सोच्चा णेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सइ॥

- कदाचित् धर्म श्रवण की प्राप्ति हो जाय परंतु उस पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है क्योंकि बहुत से जीव नैयायिक-सम्यक् मार्ग को सुन कर भी भ्रष्ट हो जाते हैं।

सामान्य से श्रद्धा किया हुआ, युक्तियों से प्रतीत (निश्चय) किया हुआ अथवा प्रीतिक-स्व विषय में उत्पन्न प्रीति वाले को अथवा रोचित-की हुई इच्छा वाले धर्म को सम्यग्-अविरत की तरह मनोरथ मात्र से नहीं परंतु यावत् काया से स्पर्श करना दुर्लभ है। कहा है -

धम्मंपि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया।
इह कामगुणेसु मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए॥ ७ ॥

- सर्वज्ञ प्रणीत धर्म पर श्रद्धा करते हुए भी काया से स्पर्शनता-आचरण करना दुर्लभ है क्योंकि इस संसार में शब्दादि विषयों में जीव मूर्च्छित और गृद्ध है। अतः धर्म की सामग्री को प्राप्त कर हे गौतम ! एक समय मात्र का प्रमाद मत करो।

मनुष्य भव आदि की दुर्लभता प्रमाद आदि में आसक्त प्राणियों को ही होती है, सभी को नहीं। अतः मनुष्य भव को लक्ष्य में रख कर कहा है -

एयं पुण एवं खलु अण्णाणपमायदोसओ णेयं। जं दीहा कायठिई, भणिया एगिंदियाईणं।
एसा य असइदोसा-सेवणओ धम्मवज्जचित्ताणं। ता धम्मे जइयव्वं, सम्मं सइ धीरपुरिसेहिं॥

- इस प्रकार मनुष्य जन्म की दुर्लभता निश्चय में जानना। अज्ञान और प्रमाद के दोष से एकेन्द्रिय आदि जीवों की दीर्घ कायस्थिति कही गयी है अर्थात् एकेन्द्रिय आदि में गये हुए प्राणी का असंख्यात अथवा अनंतकाल बीत जाता है। बारम्बार दोष सेवन से धर्म रहित चित्त वाले जीवों की इस प्रकार कायस्थिति होती है। इस कारण धीर पुरुषों को सदैव सम्यक् रूप से धर्म में यत्न करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य भव आदि सुलभ और दुर्लभ, इन्द्रियों के विषयों में संवर और असंवर करने से होते हैं। अतः दोनों से साता और असाता होती है और इन दोनों की शुद्धि प्रायश्चित्त से होती है अतः इन्द्रियों के विषयों के, इन्द्रिय संवर और असंवर के, साता और असाता के और प्रायश्चित्त की प्ररूपणा करने वाले छह सूत्रों की प्ररूपणा की गयी है। जो भावार्थ में दिये गये हैं।

नो इन्द्रिय यानी मन। नो इन्द्रिय का अर्थ-विषय वह नोइन्द्रियार्थ कहलाता है।

मनुष्य भेद, ऋद्धिमान् एवं ऋद्धि रहित

छव्विहा मणुस्सगा पण्णत्ता तंजहा - जंबूदीवगा धायइसंड दीव पुरच्छिमद्धगा, धायइसंड दीव पच्चत्थिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ड पुरच्छिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ड पच्चत्थिमद्धगा, अंतरदीवगा। अहवा छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा - सम्मुच्छिम मणुस्सा, कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अंतरदीवगा, गब्भवक्कंतियमणुस्सा, कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अंतरदीवगा। छव्विहा इड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा - अरिहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विज्जाहरा। छव्विहा अणिड्डिमंता मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा - हेमवंतगा, हेरण्णवंतगा, हरिवंसगा, रम्मगवंसगा, कुरुवासिणो, अंतरदीवगा।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल

छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता तंजहा - सुसमसुसमा, सुसमा, सुसमदुस्समा, दुस्समसुसमा, दुस्समा, दुसमदुस्समा। छव्विहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता तंजहा - दुस्समदुस्समा, दुस्समा, दुस्समसुसमा, सुसमदुस्समा, सुसमा, सुसमसुसमा। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया छच्च धणुसहस्साइं उड्डमुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालित्था। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए एवं चेव। जंबूद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए एवं चेव जाव छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइस्संति। जंबूद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरासु मणुया छ धणुसहस्साइं उड्डं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति। एवं धायइसंडदीव पुरच्छिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ड पच्चत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संहनन, संस्थान

छव्विहे संघयणे पण्णत्ते तंजहा - वइरोसभणाराय संघयणे, उसभणाराय संघयणे, णाराय संघयणे, अद्धणाराय संघयणे, कीलिया संघयणे, छेवट्ठ संघयणे । छव्विहे संठाणे पण्णत्ते तंजहा-समचउरंसे, णग्गोहपरिमंडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुंडे ।८५।

कठिन शब्दार्थ - **अंतरदीवगा** - अंतरद्वीपिक - अन्तर द्वीप में रहने वाले, **इड्ढिमंता** - ऋद्धिमान्, **चारणा** - चारण-आकाशगामिनी विद्या जानने वाले, **विज्जाहरा** - विद्याधर, **अणिड्ढिमंता** - ऋद्धि रहित, **कुरुवासिणो** - देवकुरु उत्तरकुरु में रहने वाले, **ओसप्पिणी** - अवसर्पिणी, **उस्सप्पिणी** - उत्सर्पिणी, **संघयणे** - संहनन, **वइरोसभणाराय संघयणे** - वज्र ऋषभ नाराच संहनन, **उसभणाराय संघयणे** - ऋषभनाराच संहनन, **णाराय संघयणे** - नाराच संहनन, **अद्धणाराय संघयणे** - अर्द्धनाराच संहनन, **कीलिया संघयणे** - कीलिका संहनन, **छेवट्ठ संघयणे** - सेवार्त्तक संहनन, **समचउरंसे** - समचतुरस्त्र, **णग्गोह परिमंडले** - न्यग्रोधपरिमंडल, **साई** - सादि, **खुज्जे** - कुब्ज, **वामणे** - वामन, **हुंडे**- हुण्डक ।

भावार्थ - छह प्रकार के मनुष्य कहे गये हैं यथा - जम्बूद्वीप में रहने वाले, धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में रहने वाले, धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध भाग में रहने वाले, पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में रहने वाले, पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध भाग में रहने वाले और अन्तर द्वीप में रहने वाले । अथवा दूसरी तरह से मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं यथा - कर्मभूमि के सम्मूर्च्छिम मनुष्य, अकर्मभूमि के सम्मूर्च्छिम मनुष्य, अन्तर द्वीप के सम्मूर्च्छिम मनुष्य । कर्मभूमि के गर्भज मनुष्य, अकर्मभूमि के गर्भज मनुष्य, अन्तर द्वीप के गर्भज मनुष्य । छह प्रकार के ऋद्धिमान् मनुष्य कहे गये हैं यथा - अरिहन्त - रागद्वेष रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले अरिहन्त कहलाते हैं । वे अष्ट महाप्रातिहार्यादि ऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं । चक्रवर्ती - चौदह रत्न और छह खण्डों के स्वामी चक्रवर्ती कहलाते हैं । वे सर्वोत्कृष्ट लौकिक समृद्धि सम्पन्न होते हैं । वासुदेव के बड़े भाई बलदेव कहे जाते हैं । वे कई प्रकार की ऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं । वासुदेव - सात रत्न और तीन खण्डों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं । ये भी अनेक प्रकार की ऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं । बलदेव से वासुदेव की ऋद्धि दुगुनी और वासुदेव से चक्रवर्ती की ऋद्धि दुगुनी होती है । चारण - आकाशगामिनी विद्या जानने वाले चारण कहलाते हैं । चारण के दो भेद हैं - जंघाचारण और विद्याचारण । चारित्र और तप विशेष के प्रभाव से जिन्हें आकाश में आने जाने की ऋद्धि प्राप्त हो वे जंघाचारण कहलाते हैं । जिन्हें आकाश में आने जाने की लब्धि विद्या द्वारा प्राप्त हो वे विद्याचारण कहलाते हैं । विद्याधर - वैताढ्य पर्वत पर रहने वाले, प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं को धारण करने वाले विशिष्ट शक्ति सम्पन्न व्यक्ति विद्याधर कहलाते हैं । ये आकाश में उड़ते हैं तथा अनेक चमत्कारिक कार्य करते हैं । छह प्रकार के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋद्धिरहित मनुष्य कहे गये हैं यथा - हेमवय के, हैरण्यवय के, हरिवास के, रम्यक वर्ष के, देवकुरु उत्तरकुरु के और अन्तर द्वीप के रहने वाले ।

अवसर्पिणी काल के छह आरे कहे गये हैं यथा - सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुषमा, दुषमसुषमा, दुषमा, दुषमदुषमा। उत्सर्पिणी काल के छह आरे कहे गये हैं यथा - दुषमदुषमा, दुषमा, दुषमसुषमा, सुषमदुषमा, सुषमा, सुषमसुषमा। इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में गत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नामक छठे आरे में मनुष्यों के शरीर की अवगाहना छह हजार धनुष यानी तीन कोस की थी और उनकी आयु तीन पल्योपम की थी । इसी प्रकार इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी काल के सुषमसुषमा नामक पहले आरे में मनुष्यों के शरीर की अवगाहना तीन कोस की थी और उनकी आयु तीन पल्योपम की थी । इसी प्रकार इस जम्बूद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा आरा में मनुष्यों के शरीर की अवगाहना तीन कोस की होगी और उनकी आयु तीन पल्योपम की होगी । इस जम्बूद्वीप के देवकुरु उत्तरकुरु में मनुष्यों के शरीर की अवगाहना छह हजार धनुष की यानी तीन कोस की होती है और छह अर्द्ध पल्योपम यानी तीन पल्योपम की उनकी आयु होती है । इसी प्रकार धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में, पश्चिमार्द्ध में और पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में ऊपर कहे अनुसार चार चार आलापक कह देने चाहिए ।

छह प्रकार का संहनन - हड्डियों की रचना को संहनन कहते हैं यथा - **१. वज्रऋषभ नाराच संहनन** - वज्र का अर्थ कील है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्टी है और नाराच का अर्थ दोनों ओर से मर्कट बन्ध है । जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्टी की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील हो उसे वज्रऋषभ नाराच संहनन कहते हैं । **२. ऋषभ नाराच संहनन** - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्टी की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील न हो उसे ऋषभ नाराच संहनन कहते हैं। **३. नाराच संहनन** - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट बन्ध द्वारा जुड़ी हुई हड्डियाँ हों परन्तु इनके चारों तरफ वेष्टन पट्टी और वज्र नामक कील न हो उसे नाराच संहनन कहते हैं । **४. अर्द्ध नाराच संहनन** - जिस संहनन में एक तरफ तो मर्कट बन्ध हो और दूसरी तरफ कील हो उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं। **५. कीलिका संहनन** - जिस संहनन में हड्डियाँ सिर्फ कील से जुड़ी हुई हों उसे कीलिका संहनन कहते हैं । **६. सेवार्त्तक संहनन** - जिस संहनन में हड्डियाँ अन्त भाग में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती हैं तथा सदा चिकने पदार्थों के प्रयोग और तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती हैं उसे सेवार्त्तक संहनन कहते हैं ।

छह प्रकार का संस्थान कहा गया है। शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं। यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. समचतुरस्र- सम का अर्थ है समान, चतु: का अर्थ है चार और अस्र का अर्थ है कोण । पालथी मार कर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण समान हों अर्थात् आसन और कपाल का अन्तर, दोनों गोडों का अन्तर, बाएं कन्धे से दाहिने गोडे का अन्तर और दाहिने कन्धे से बाएं गोडे का अन्तर समान हो (ये व्याख्या मनुष्य शरीर के लिये उपयुक्त है) अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयव ठीक प्रमाण वाले हों उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। **२. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान** - वट वृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं । जैसे वटवृक्ष ऊपर के भाग में फैला हुआ और नीचे के भाग में संकुचित होता है उसी प्रकार जिस संस्थान में नाभि के ऊपर का भाग विस्तार वाला और नीचे का भाग हीन अवयव वाला हो उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं । **३. सादि संस्थान** - यहाँ सादि शब्द का अर्थ नाभि से नीचे का भाग है । जिस संस्थान में नाभि से नीचे का भाग पूर्ण एवं पुष्ट हो और ऊपर का भाग हीन हो उसे सादि संस्थान कहते हैं । **४. कुब्ज संस्थान** - जिस शरीर में हाथ पैर सिर गर्दन आदि अवयव ठीक हों परन्तु छाती, पेट, पीठ आदि टेढें हों उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं । **५. वामन संस्थान** - जिस शरीर में पेट पीठ आदि अवयव पूर्ण हों परन्तु हाथ पैर आदि अवयव छोटे हों और जिसकी शरीर की ऊंचाई ५२ अंगुल हो, उसे वामन संस्थान कहते हैं। **६. हुण्डक संस्थान** - जिस शरीर के समस्त अवयव बेढब हों अर्थात् एक भी अवयव सामुद्रिक शास्त्र के प्रमाण के अनुसार न हो वह हुण्डक संस्थान है ।

विवेचन - मनुष्य अढाई द्वीप में ही उत्पन्न होते हैं। उसके मुख्य छह विभाग हैं। यही मनुष्यों की उत्पत्ति के छह क्षेत्र हैं। वे इस प्रकार हैं - १. जम्बूद्वीप २. पूर्व धातकी खण्ड ३. पश्चिम धातकी खण्ड ४. पूर्व पुष्करार्ध ५. पश्चिम पुष्करार्ध ६. अन्तर द्वीप।

मनुष्य के छह प्रकार - मनुष्य के छह क्षेत्र ऊपर बताए गये हैं। इनमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी क्षेत्रों के भेद से छह प्रकार के कहे जाते हैं। अथवा गर्भज मनुष्य के १. कर्मभूमि २. अकर्मभूमि ३. अन्तर द्वीप तथा सम्मूर्च्छिम के ४. कर्मभूमि ५. अकर्मभूमि और ६. अन्तर द्वीप इस प्रकार मनुष्य के छह भेद होते हैं।

अवसर्पिणी काल के छह आरे - जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जायँ, आयु और अवगाहना घटते जायँ तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का ह्रास होता जाय वह अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हीन होते जाते हैं। शुभ भाव घटते जाते हैं और अशुभ भाव बढ़ते जाते हैं। अवसर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है।

अवसर्पिणी काल के छह विभाग हैं, जिन्हें आरे कहते हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सुषम सुषमा २. सुषमा ३. सुषम दुषमा ४. दुषम सुषमा ५. दुषमा ६. दुषम दुषमा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. सुषम सुषमा – यह आरा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इसमें मनुष्यों की अवगाहना तीन कोस की और आयु तीन पल्योपम की होती है। इस आरे में पुत्र पुत्री युगल (जोड़ा) रूप से उत्पन्न होते हैं। बड़े होकर वे ही पति पत्नी बन जाते हैं। युगल रूप से उत्पन्न होने के कारण इस आरे के मनुष्य युगलिया कहलाते हैं। माता पिता की आयु छह मास शेष रहने पर एक युगल उत्पन्न होता है। ४९ दिन तक माता पिता उसकी प्रतिपालना करते हैं। आयु समाप्ति के समय छींक, जंभाई (उबासी) और खाँसी इन में से किसी एक के आने पर दोनों काल कर जाते हैं। वे मर कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं। इस आरे के मनुष्य दस प्रकार के वृक्षों से मनोवाञ्छित सामग्री पाते हैं। तीन दिन के अन्तर से इन्हें आहार की इच्छा होती है। युगलियों के (स्त्री और पुरुष दोनों के) वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान होता है। इनके शरीर में २५६ पसलियाँ होती हैं। युगलिए असि, मसि और कृषि कोई कर्म नहीं करते।

इस आरे में पृथ्वी का स्वाद मिश्री आदि मधुर पदार्थों से भी अधिक स्वादिष्ट होता है। पुष्प और फलों का स्वाद चक्रवर्ती के श्रेष्ठ भोजन से भी बढ़ कर होता है। भूमिभाग अत्यन्त रमणीय होता है और पांच वर्ण वाली विविध मणियों, वृक्षों और पौधों से सुशोभित होता है। सब प्रकार के सुखों से पूर्ण होने के कारण यह आरा सुषमसुषमा कहलाता है।

२. सुषमा – यह आरा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इसमें मनुष्यों की अवगाहना दो कोस की और आयु दो पल्योपम की होती है। पहले आरे के समान इस आरे में भी युगलधर्म रहता है। पहले आरे के युगलियों से इस आरे के युगलियों में इतना ही अन्तर होता है कि इनके शरीर में १२८ पसलियाँ होती हैं। माता पिता बच्चों का ६४ दिन तक पालन पोषण करते हैं। दो दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। यह आरा भी सुखपूर्ण है। शेष सारी बातें स्थूलरूप से पहले आरे जैसी जाननी चाहिएं। अवसर्पिणी काल होने के कारण इस आरे में पहले की अपेक्षा सब बातों में क्रमशः हीनता होती जाती है।

३. सुषम दुषमा – सुषम दुषमा नामक तीसरा आरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इसमें दूसरे आरे की तरह सुख है परन्तु साथ में दुःख भी है। इस आरे के तीन भाग हैं। प्रथम दो भागों में मनुष्यों की अवगाहना एक कोस की और स्थिति एक पल्योपम की होती है। इनमें युगलिए उत्पन्न होते हैं जिनके ६४ पसलियाँ होती हैं। माता पिता ७९ दिन तक बच्चों का पालन पोषण करते हैं। एक दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। पहले दूसरे आरों के युगलियों की तरह ये भी छींक जंभाई तथा खांसी के आने पर काल कर जाते हैं और देवलोक में उत्पन्न होते हैं। शेष विस्तार स्थूल रूप से पहले दूसरे आरों जैसा जानना चाहिए।

सुषम दुषमा आरे के तीसरे भाग में छहों संहनन और छहों संस्थान होते हैं। अवगाहना हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धनुष से कम रह जाती है। आयु जघन्य संख्यात वर्ष और उत्कृष्ट असंख्यात वर्ष की होती है। मृत्यु होने पर जीव स्वकृत कर्मानुसार चारों गतियों में जाते हैं। इस भाग में जीव मोक्ष भी जाते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे आरे के तीसरे भाग की समाप्ति में जब पल्योपम का आठवां भाग शेष रह गया उस समय दस प्रकार के वृक्षों की शक्ति कालदोष से न्यून हो गई। युगलियों में द्वेष और कषाय की मात्रा बढ़ने लगी और वे आपस में विवाद करने लगे। अपने विवादों का निपटारा कराने के लिये उन्होंने सुमति को स्वामी रूप से स्वीकार किया। ये प्रथम कुलकर थे। इनके बाद क्रमशः चौदह कुलकर हुए। पहले पांच कुलकरों के शासन में हकार दंड था। छठे से दसवें कुलकर के शासन में मकार तथा ग्यारहवें से पन्द्रहवें कुलकर के शासन में धिक्कार दंड था। पन्द्रहवें कुलकर ऋषभदेव स्वामी थे। वे चौदहवें कुलकर नाभि के पुत्र थे। माता का नाम मरुदेवी था। ऋषभदेव इस अवसर्पिणी के प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्म चक्रवर्ती थे। इनकी आयु चौरासी लाख पूर्व थी। इन्होंने बीस लाख पूर्व कुमारावस्था में बिताए और त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया। अपने शासन काल में प्रजा हित के लिए इन्होंने लेख, गणित आदि ७२ पुरुष कलाओं और ६४ स्त्री कलाओं का उपदेश दिया। इसी प्रकार १०० शिल्पों और असि, मसि और कृषि रूप तीन कर्मों की भी शिक्षा दी। त्रेसठ लाख पूर्व राज्य का उपभोग कर दीक्षा अंगीकार की। एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ रहे। एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व केवली रहे। चौरासी लाख पूर्व की आयुष्य पूर्ण होने पर निर्वाण प्राप्त किया। भगवान् ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत महाराज इस आरे के प्रथम चक्रवर्ती थे।

४. दुषम सुषमा - यह आरा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इस में मनुष्यों के छहों संहनन और छहों संस्थान होते हैं। अवगाहना बहुत से धनुषों की होती है और आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की होती है। एक पूर्व सत्तर लाख करोड़ वर्ष और छप्पन हजार करोड़ वर्ष (७०५६०००००००००) अर्थात् सात नील पांच खरब और साठ अरब वर्ष का होता है। यहाँ से आयु पूरी करके जीव स्वकृत कर्मानुसार चारों गतियों में जाते हैं और कई जीव सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होकर सकल दुःखों का अन्त कर देते हैं अर्थात् सिद्धि गति को प्राप्त करते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी के इस आरे में तीन वंश उत्पन्न हुए। अरिहन्त वंश, चक्रवर्ती वंश और दशार वंश। इसी आरे में तेईस तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव उत्पन्न हुए। दुःख विशेष और सुख कम होने से यह आरा दुषम सुषमा कहा जाता है।

५. दुषमा - पाँचवां दुषमा आरा इक्कीस हजार वर्ष का है। इस आरे में मनुष्यों के छहों संहनन तथा छहों संस्थान होते हैं। शरीर की अवगाहना ७ हाथ तक की होती है। आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट सौ वर्ष झाझेरी होती है। जीव स्वकृत कर्मानुसार चारों गतियों में जाते हैं। चौथे आरे में उत्पन्न हुआ कोई जीव मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है, जैसे जम्बूस्वामी। वर्तमान पंचम आरे का तीसरा भाग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीत जाने पर अर्थात् पांचवें आरे के अन्तिम दिन में गण (समुदाय जाति) विवाहादि व्यवहार, पाखण्डधर्म, राजधर्म, अग्नि और अग्नि से होने वाली रसोई आदि क्रियाएँ, चारित्र धर्म और गच्छ व्यवहार-इन सभी का विच्छेद हो जायगा। यह आरा दुःख प्रधान है इसलिए इसका नाम दुषमा है।

६. दुषम दुषमा - अवसर्पिणी का दुषमा आरा बीत जाने पर अत्यन्त दुःखों से परिपूर्ण दुषम दुषमा नामक छठा आरा प्रारम्भ होगा। यह काल मनुष्य और पशुओं के दुःखजनित हाहाकार से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारम्भ में धूलिमय भयंकर आंधी चलेगी तथा संवर्तक वायु बहेगी। दिशाएं धूलि से भरी होंगी इसलिए प्रकाश शून्य होंगी। अरस, विरस, क्षार, खात, अग्नि, विद्युत् और विष प्रधान मेघ बरसेंगे। प्रलयकालीन पवन और वर्षा के प्रभाव से विविध वनस्पतियाँ एवं त्रस प्राणी नष्ट हो जायेंगे। पहाड़ और नगर पृथ्वी से मिल जायेंगे। पर्वतों में एक वैताढ्य पर्वत स्थिर रहेगा और नदियों में गंगा और सिंधु नदियाँ रहेगी। काल के अत्यन्त रूक्ष होने से सूर्य खूब तपेगा और चन्द्रमा अति शीत होगा। गंगा और सिंधु नदियों का पाट रथ के चीले जितना अर्थात् पहियों के बीच के अन्तर जितना चौड़ा होगा और उनमें रथ की धुरी प्रमाण गहरा पानी होगा। नदियाँ मच्छ कच्छपादि जलचर जीवों से भरी हुई होंगी। भरत क्षेत्र की भूमि अंगार, भोभर राख तथा तपे हुए तवे के सदृश होगी। ताप में वह अग्नि जैसी होगी तथा धूलि और कीचड़ से भरी होगी। इस कारण प्राणी पृथ्वी पर कष्ट पूर्वक चल फिर सकेंगे। इस आरे के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हाथ की और उत्कृष्ट आयु सोलह और बीस वर्ष की होगी। ये अधिक सन्तान वाले होंगे। इनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान सभी अशुभ होंगे। शरीर सब तरह से बेडौल होगा। अनेक व्याधियाँ घर किये रहेंगी। राग द्वेष और कषाय की मात्रा अधिक होगी। धर्म और श्रद्धा बिलकुल नहीं रहेंगी। वैताढ्य पर्वत में गंगा और सिंधु महानदियों के पूर्व पश्चिम तट पर ७२ बिल हैं वे ही इस काल के मनुष्यों के निवास स्थान होंगे। ये लोग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अपने अपने बिलों से निकलेंगे और गंगा सिंधु महानदी से मच्छ कच्छपादि पकड़ कर रेत में गाड़ देंगे। शाम के समय गाड़े हुए मच्छादि को सुबह निकाल कर खाएंगे और सुबह के गाड़े हुए मच्छादि को शाम को निकाल कर खायेंगे। व्रत, नियम और प्रत्याख्यान से रहित, मांस का आहार करने वाले, संक्लिष्ट परिणाम वाले ये जीव मरकर प्रायः नरक और तिर्यंच योनि में उत्पन्न होंगे।

उत्सर्पिणीके छह आरे - जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जायँ, आयु और अवगाहना बढ़ते जायँ तथा उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम की वृद्धि होती जाय वह उत्सर्पिणी काल है। जीवों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी इस काल में क्रमशः शुभ होते जाते हैं। अशुभतम भाव, अशुभतर, अशुभ, शुभ, शुभतर होते हुए यावत् शुभतम हो जाते हैं। अवसर्पिणी काल में क्रमशः ह्रास होते हुए हीनतम अवस्था आ जाती है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होते हुए क्रमशः उच्चतम अवस्था आ जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवसर्पिणी काल के जो छह आरे हैं वे ही आरे इस काल में व्यत्यय (उल्टे) रूप से होते हैं। इन का स्वरूप भी ठीक उन्हीं जैसा है, किन्तु विपरीत क्रम से। पहला आरा अवसर्पिणी के छठे आरे जैसा है। छठे आरे के अन्त समय में जो हीनतम अवस्था होती है उससे इस आरे का प्रारम्भ होता है और क्रमिक विकास द्वारा बढ़ते-बढ़ते छठे आरे की प्रारम्भिक अवस्था के आने पर यह आरा समाप्त होता है। इसी प्रकार शेष आरों में भी क्रमिक विकास होता है। सभी आरे अन्तिम अवस्था से शुरू होकर क्रमिक विकास से प्रारम्भिक अवस्था को पहुंचते हैं। यह काल भी अवसर्पिणी काल की तरह दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में जो अन्तर है वह नीचे लिखे अनुसार है -

उत्सर्पिणी के छह आरे - दुषम दुषमा, दुषमा, दुषम सुषमा, सुषम दुषमा, सुषमा, सुषम सुषमा।

१. दुषम दुषमा - अवसर्पिणी का छठा आरा आषाढ़ सुदी पूनम को समाप्त होता है और सावण वदी एकम को चन्द्रमा के अभिजित् नक्षत्र में होने पर उत्सर्पिणी का दुषम दुषमा नामक प्रथम आरा प्रारम्भ होता है। यह आरा अवसर्पिणी के छठे आरे जैसा है। इसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि पर्यायों में तथा मनुष्यों की अवगाहना, स्थिति, संहनन और संस्थान आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का है।

२. दुषमा - इस आरे के प्रारम्भ में सात दिन तक भरत क्षेत्र जितने विस्तार वाले पुष्कर संवर्तक मेघ बरसेंगे। सात दिन की इस वर्षा से छठे आरे के अशुभ भाव रूक्षता उष्णता आदि नष्ट हो जायेंगे। इसके बाद सात दिन तक क्षीर मेघ की वर्षा होगी। इससे शुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की उत्पत्ति होगी। क्षीर मेघ के बाद सात दिन तक घृत मेघ बरसेगा। इस वृष्टि से पृथ्वी में स्नेह (चिकनाहट) उत्पन्न हो जायगा। इसके बाद सात दिन तक अमृत मेघ वृष्टि करेगा जिसके प्रभाव से वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि वनस्पतियों के अंकुर फूटेंगे। अमृत मेघ के बाद सात दिन तक रसमेघ बरसेगा। रसमेघ की वृष्टि से वनस्पतियों में पांच प्रकार का रस उत्पन्न हो जायेगा और उनमें पत्र, प्रवाल, अंकुर, पुष्प, फल की वृद्धि होगी।

नोट - क्षीर, घृत, अमृत और रस मेघ पानी ही बरसाते हैं पर इनका पानी क्षीर घृत आदि की तरह गुण करने वाला होता है इसलिए गुण की अपेक्षा क्षीरमेघ आदि नाम दिये गये हैं।

उक्त प्रकार से वृष्टि होने पर जब पृथ्वी सरस हो जायगी तथा वृक्ष लतादि विविध वनस्पतियों से हरी भरी और रमणीय हो जायगी तब वे लोग बिलों से निकलेंगे। वे पृथ्वी को सरस सुन्दर और रमणीय देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। एक दूसरे को बुलावेंगे और खूब खुशियां मनावेंगे। पत्र, पुष्प, फल आदि से शोभित वनस्पतियों से अपना निर्वाह होते देख वे मिल कर यह मर्यादा बांधेंगे कि आज से हम लोग मांसाहार नहीं करेंगे और मांसाहारी प्राणी की छाया तक हमारे लिए परिहार योग्य (त्याज्य) होगी।

इस प्रकार इस आरे में पृथ्वी रमणीय हो जायगी। प्राणी सुखपूर्वक रहने लगेंगे। इस आरे के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों के छहों संहनन और छहों संस्थान होंगे। उनकी अवगाहना बहुत से हाथ की और आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सौ वर्ष झाझेरी होगी। इस आरे के जीव मर कर अपने कर्मों के अनुसार चारों गतियों में उत्पन्न होंगे, परन्तु सिद्ध नहीं होंगे। यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होगा।

३. दुषम सुषमा - यह आरा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होगा। इसका स्वरूप अवसर्पिणी के चौथे आरे के सदृश जानना चाहिए। इस आरे के मनुष्यों के छहों संस्थान और छहों संहनन होंगे। मनुष्यों की अवगाहना बहुत से धनुषों की होगी। आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व तक की होगी। मनुष्य मर कर अपने कर्मानुसार चारों गतियों में जायेंगे और बहुत से सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस आरे में तीन वंश होंगे-तीर्थंकर वंश, चक्रवर्ती वंश और दशार वंश। इस आरे में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव होंगे।

४. सुषम दुषमा - यह आरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होगा और सारी बातें अवसर्पिणी के तीसरे आरे के समान होंगी। इसके भी तीन भाग होंगे किन्तु उनका क्रम उल्टा रहेगा। अवसर्पिणी के तीसरे भाग के समान इस आरे का प्रथम भाग होगा। इस आरे में ऋषभदेव स्वामी के समान चौवीसवें भद्रजिन तीर्थंकर होंगे। शिल्प कलादि तीसरे आरे से चले आएँगे इसलिए उन्हें कला आदि का उपदेश देने की आवश्यकता न होगी। कहीं-कहीं पन्द्रह कुलकर उत्पन्न होने की बात लिखी है। वे लोग क्रमशः धिक्कार, मकार और हकार दण्ड का प्रयोग करेंगे। इस आरे के तीसरे भाग में राजधर्म यावत् चारित्र धर्म का विच्छेद हो जायगा। दूसरे तीसरे त्रिभाग अवसर्पिणी के तीसरे आरे के दूसरे और पहले त्रिभाग के सदृश होंगे।

५-६. सुषमा और **सुषम सुषमा** नामक पांचवें और छठे आरे अवसर्पिणी के द्वितीय और प्रथम आरे के समान होंगे।

विशेषावश्यक भाष्य में सामायिक चारित्र की अपेक्षा काल के चार भेद किए गये हैं। १. उत्सर्पिणी काल २. अवसर्पिणी काल ३. नोउत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल और ४. अकाल। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी पहले बताए जा चुके हैं। महाविदेह क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे आरे सरीखे भाव रहते हैं। इसलिये वहाँ पर कोई आरा नहीं होता है। एवं उन्नति और अवनति नहीं होती है इसलिये सदा एक सरीखा अवस्थित काल रहता है। उस जगह के काल को नोउत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल कहते हैं। अढ़ाई द्वीप से बाहर के द्वीप समुद्रों में जहाँ सूर्य चन्द्र आदि स्थिर रहते हैं और मनुष्यों का निवास नहीं है, उस जगह अकाल है अर्थात् तिथि, पक्ष, मास, वर्ष आदि काल गणना नहीं है।

उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा सावण वदी एकम से प्रारंभ होता है। उस समय पुष्कर संवर्तक मेघ, क्षीर मेघ, घृत मेघ, अमृत मेघ और रस मेघ, ये पांच मेघ निरन्तर सात-सात दिन तक बरसते हैं। जिनके पैतीस दिन (५×७=३५) होते हैं। इसके बाद बादल साफ हो जाते हैं और वे बिलवासी मनुष्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाहर निकल कर पृथ्वी को हरा भरा और वृक्षों को फल फूलों से लदा हुआ देखकर बड़े हर्षित होंगे। मांस खाना उनको भी अच्छा नहीं लगता था किन्तु दूसरा कोई उपाय न होने से परवशता (लाचारी) के कारण उन्हें मांस खाना पड़ता था। अब उन्होंने विचार किया कि जब मीठे फल खाने को मिलते हैं तो मांस क्यों खाया जाय ? ऐसा सोच कर मांस खाना छोड़ देंगे और नियम करेंगे कि जो मांस खायेगा उसे जाति बाहर कर दिया जायेगा और वह अस्पृश समझा जायेगा। मांस छोडने में यह धर्म कार्य है ऐसा जानकर मांस नहीं छोडेंगे किन्तु जब मीठे फल मिलते हैं तो गन्दा और घृणित मांस क्यों खाया जाय ? ऐसा जानकर वे मांस खाना छोड़ देंगे।

इन पांच मेघों की वर्षाद को लेकर कुछ लोग इनका सम्बन्ध संवत्सरी से जोड़ते हैं। उनमें से किन्हीं का कहना तो यह है कि सात मेघों की वर्षा होती है इसलिये ४९ दिन के बाद ५० वें दिन संवत्सरी आ जाती है। किन्तु उनका यह कहना तो सर्वथा आगम विरुद्ध है क्योंकि यहाँ आगम में पांच मेघों की वर्षा का ही वर्णन है। दूसरे पक्ष वालों का कहना है कि मेघ तो पांच ही वरसते हैं किन्तु दो मेघ वरसने के बाद सात दिन उघाड़ रहता है अर्थात् सात दिन वर्षा नहीं होती है। खुला रहता है इसी प्रकार चौथा मेघ बरसने के बाद भी सात दिन खुला रहता है। इस प्रकार सात सप्ताह के बाद अर्थात् ४९ दिन के बाद संवत्सरी आ जाती है किन्तु यह कहना आगमानुकूल नहीं है क्योंकि दो सप्ताह उघाड़ (खुला) रहने का वर्णन न आगम के मूल पाठ में है और न किसी टीका में है। यह सिर्फ अपने मत को पुष्ट करने के लिये कल्पना की गयी है। अतः मान्य नहीं हो सकती। इन मेघों की वर्षा से और संवत्सरी से परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। अवसर्पिणी काल में दूसरे आरे में इन मेघों की वर्षा होती ही नहीं है तथा उत्सर्पिणी काल में मेघों की वर्षा होने पर भी वे बिलवासी मनुष्य तो संवत्सरी में तो समझते ही नहीं है क्योंकि उस समय धर्म की प्रवृत्ति होती ही नहीं है। धर्म की प्रवृत्ति तो तीसरे आरे के अन्त में प्रथम तीर्थङ्कर को केवलज्ञान होने परे होती है। उस समय मेघ तो वरसते ही नहीं है। संवत्सरी पर्व तो तीर्थङ्करों द्वारा प्रचलित होता है बिलवासी मनुष्यों द्वारा नहीं। इसलिये मेघ के वरसना और बिलवासियों के साथ संवत्सरी पर्व को जोड़ना सर्वथा आगम विरुद्ध है।

संवत्सरी के समय का निर्धारण (निर्णय) तो समवायाङ्ग सूत्र के सित्तरहवें समवाय से होता है वह पाठ इस प्रकार है -

"समणे भगवं महावीरे सवीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।"

अर्थ - वर्षा ऋतु का एक महिना और बीस दिन बीत जाने के बाद और सित्तर दिन बाकी रहने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने संवत्सरी पर्व मनाया था।

इस नियम को दोनों तरफ से बान्धा गया है इसलिये दोनों तरफ के नियम का पालन होना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है। इस बात को लक्ष्य में लेकर टीकाकार ने स्पष्ट लिखा है - **'भाद्रपद शुक्ला पञ्चम्याम्'** अर्थात् भादवा सुदि पांचम को संवत्सरी पर्व मनाना आगम सम्मत है।

अनात्मवान् और आत्मवान् के स्थान

छ ठाणा अणत्तवओ अहियाए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - परियाए, परियाले, सुए, तवे, लाभे, पूयासक्कारे । छठाणा अत्तवओ हियाए जाव अणुगामियत्ताए भवंति तंजहा - परियाए, परियाले जाव पूयासक्कारे ।

जाति आर्य, कुल आर्य

छव्विहा जाइआरिया मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा -

अंबट्ठा य कलंदा य, वेदेहा वेदिगाइया ।
हरिया चुंचुणा चेव, छप्पेआ इब्भजाइओ ।।

छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा - उग्गा, भोगा, राइण्णा, इक्खागा, णाया, कोरव्वा ।

लोक स्थिति

छव्विहा लोगट्ठिई पण्णत्ता तंजहा - आगासपइट्ठिए वाए, वायपइट्ठिए उदही, उदहि पइट्ठिया पुढवी, पुढवी पइट्ठिया तसा थावरा पाणा, अजीवा जीव पइट्ठिया, जीवा कम्म पइट्ठिया ॥ ४६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अणत्तवओ** - अनात्मवान्, **अहियाए** - अहितकर, **असुभाए** - अशुभ, **अखमाए** - अशान्तिकारक, **अणीसेसाए** - अकल्याणकारक, **अणाणुगामियत्ताए** - अशुभ बन्ध का कारण, **परियाए** - पर्याय, **परियाले** - परिवार, **पूयासक्कारे** - पूजा सत्कार, **अत्तवओ** - आत्मवान्, **अणुगामियत्ताए** - शुभ बन्ध का कारण, **जाइ आरिया** - जाति आर्य, **कुलारिया** - कुल आर्य, **लोगट्ठिई**- लोक स्थिति, **आगासपइट्ठिए** - आकाश प्रतिष्ठित, **वायपइट्ठिए** - वायु प्रतिष्ठित, **उदहिपइट्ठिया** - उदधि प्रतिष्ठित, **जीवपइट्ठिया** - जीव प्रतिष्ठित, **कम्म पइट्ठिया** - कर्म प्रतिष्ठित ।

भावार्थ - अनात्मवान् अर्थात् जो आत्मा कषायों के वश होकर अपने स्वरूप को भूल जाता है ऐसे सकषाय आत्मा को अनात्मवान् कहा जाता है । ऐसे व्यक्ति को ये छह बोल प्राप्त होने पर वह अभिमान करने लग जाता है । इसलिए ये बातें उसके लिए अहितकर, अशुभ, अशान्तिकारक अकल्याणकारक और अशुभबन्ध का कारण होती है और ये अभिमान का कारण होने से इहलोक और परलोक को बिगाड़ती है वे इस प्रकार हैं - १. पर्याय - दीक्षा पर्याय या उम्र का अधिक होना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. परिवार – शिष्य प्रशिष्य आदि की अधिकता, ३. श्रुत – शास्त्रीय ज्ञान का अधिक होना, ४. तप – तपस्या में अधिक होना, ५. लाभ – आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि की अधिक प्राप्ति, ६. पूजा सत्कार–लोगों द्वारा अधिक आदर सन्मान मिलना । आत्मवान् अर्थात् आत्मार्थी साधु के लिए दीक्षा पर्याय, शिष्य प्रशिष्य आदि का परिवार यावत् पूजा सत्कार ये छह बातें हित के लिए यावत् शुभबन्ध का कारण होती है । छह प्रकार के जाति आर्य यानी विशुद्ध मातृपक्ष वाले मनुष्य कहे गये हैं यथा – अम्बष्ठ, कलिंद, विदेह, वेदिकातिग हरित और चुञ्चुण । ये छहों इभ्य-जाति वाले होते हैं । छह प्रकार के कुल आर्य यानी विशुद्ध पितृपक्ष वाले मनुष्य कहे गये हैं यथा – उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल कौरव कुल ।

छह प्रकार की लोकस्थिति कही गई है यथा – आकाशप्रतिष्ठित वायु है, वायु प्रतिष्ठित उदधि है। उदधि प्रतिष्ठित पृथ्वी हैं । पृथ्वी प्रतिष्ठित त्रस स्थावर प्राणी है । जीवों के आधार पर अजीव हैं और जीव कर्म प्रतिष्ठित हैं ।

विवेचन – अनात्मवान् (सकषाय) के लिए छह स्थान अहितकर होते हैं।

जो आत्मा कषाय रहित होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित नहीं है अर्थात् कषायों के वश होकर अपने स्वरूप को भूल जाता है, ऐसे सकषाय आत्मा को अनात्मवान् कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को नीचे लिखे छह बोल प्राप्त होने पर वह अभिमान करने लगता है। इसलिए ये बातें उसके लिए अहितकर, अशुभ, पाप तथा दुःख का कारण, अशान्ति करने वाली, अकल्याणकर तथा अशुभ बन्ध का कारण होती हैं। मान का कारण होने से इहलोक और परलोक को बिगाड़ती हैं। वे इस प्रकार हैं –

१. पर्याय – दीक्षापर्याय अथवा उम्र का अधिक होना।

२. परिवार – शिष्य, प्रशिष्य आदि की अधिकता।

३. श्रुत – शास्त्रीय ज्ञान का अधिक होना।

४. तप – तपस्या में अधिक होना।

५. लाभ – अशन, पान, वस्त्र, पात्र आदि की अधिक प्राप्ति।

६. पूजा सत्कार – जनता द्वारा अधिक आदर, सन्मान मिलना।

यही छह बातें आत्मार्थी अर्थात् कषाय रहित साधु के लिए शुभ होती हैं। वह इन्हें धर्म का प्रभाव समझ कर तपस्या आदि में अधिकाधिक प्रवृत्त होता है।

जाति – मातृपक्ष को जाति कहते हैं ।

जिस चांदी, सोना, रत्न, हीरा, माणक, मोती आदि धन का ढेर करने पर अम्बाड़ी सहित हाथी उसमें डूब जाय । इतना धन जिसके पास हो वह इभ्य सेठ कहलाता है ।

पितृपक्ष को कुल कहते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिशाएँ

छ दिसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पाईणा, पडीणा, दाहिणा, उईणा, उड्ढा, अहा। छहिं दिसाहिं जीवाणं गई पवत्तइ तंजहा - पाईणाए जाव अहाए । एवमागई, वक्कंती, आहारे, वुड्ढी, णिवुड्ढी, विगुव्वणा, गइपरियाए, समुग्घाए, कालसंजोगे, दंसणाभिगमे, णाणाभिगमे, जीवाभिगमे, अजीवाभिगमे । एवं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाण वि मणुस्साण वि ।

आहार करने के कारण

छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारमाहारमाणे णाइक्कमइ तंजहा -

वेयण वेयावच्चे, ईरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्म चिंताए ।। १ ।।

आहार त्याग के कारण

छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिंदमाणे णाइक्कमइ तंजहा -

आयंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए ।
पाणिदया तव हेउं, सरीर वुच्छेयणट्ठाए ।। २ ।। ४७ ।।

कठिन शब्दार्थ - छ दिसाओ - छह दिशाएं, **उईणा** - उत्तर, **वक्कंती** - व्युत्क्रान्ति-उत्पत्ति, **वुड्ढी** - वृद्धि, **णिवुड्ढी** - निर्वृद्धि, **विगुव्वणा** - विकुर्वणा, **गइपरियाए** - गति पर्याय, **कालसंजोगे** - काल संयोग, **ईरियट्ठाए** - ईर्यार्थ - ईर्यासमिति की शुद्धि के लिए, **पाणवत्तियाए** - प्राण प्रत्ययार्थ - प्राणों की रक्षा के लिये, **धम्मचिंताए** - धर्म चिन्तार्थ, **वोच्छिंदमाणे** - त्याग करता हुआ, **आयंके** - आतंक, **सरीर वुच्छेयणट्ठाए** - शरीर व्यवच्छेदार्थ ।

भावार्थ - छह दिशाएं कही गई हैं यथा - पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व यानी ऊंची दिशा और अधः यानी नीची दिशा । इन्हीं छह दिशाओं में जीव की गति होती है । इसी प्रकार आगति, उत्पत्ति, आहार, वृद्धि, निर्वृद्धि यानी हानि, विकुर्वणा, गतिपर्याय यानी गमन, समुद्घात, कालसंयोग, दर्शनाभिगम यानी सामान्य बोध, ज्ञानाभिगम, जीवाभिगम और अजीवाभिगम । जीवों की ये उपरोक्त १४ बातें छह दिशाओं में होती हैं । इसी तरह एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तक और मनुष्यों में भी ये १४ बातें छहों दिशाओं में होती हैं ।

छह कारणों से आहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है यथा - वेदना यानी क्षुधावेदनीय की शान्ति के लिए, वैयावृत्य - अपने से बड़े एवं आचार्यादि की सेवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए, ईर्यार्थ यानी ईर्यासमिति की शुद्धि के लिए, संयमार्थ यानी संयम की रक्षा के लिए, प्राणप्रत्ययार्थ यानी अपने प्राणों की रक्षा के लिए तथा छठा कारण है धर्म चिन्तार्थ यानी शास्त्र के पठन पाठन आदि धर्म का चिन्तन करने के लिए, इन छह कारणों से साधु साध्वी आहार करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । छह कारणों से आहार का त्याग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है, वे छह कारण ये हैं - आतङ्क - रोग होने पर, उपसर्ग - राजा, स्वजन, देव, तिर्यञ्च, आदि द्वारा उपसर्ग उपस्थित करने पर, ब्रह्मचर्य की गुप्ति यानी ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, प्राणिदयार्थ यानी प्राणी, भूत, जीव, सत्त्वों की रक्षा के लिए, तप हेतु यानी तप करने के लिए और शरीर व्यवच्छेदार्थ यानी अन्तिम समय संथारा करने के लिए इन छह कारणों के उपस्थित होने पर साधु साध्वी आहार का त्याग करते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने छह दिशाओं का नामोल्लेख करते हुए उनमें होने वाले गति आदि चौदह क्रियाओं का वर्णन किया है।

छह कारणों से आहार करता हुआ और छह कारणों से आहार त्याग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है। उपरोक्त वर्णित छह-छह कारण उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २४ में भी दिये गये हैं।

उन्माद, प्रमाद

छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा तंजहा - अरिहंताणं अवण्णं वयमाणे, अरिहंत पण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वयमाणे, आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वयमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वयमाणे, जक्खावेसेण चेव, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं । छव्विहे पमाए पण्णत्ते तंजहा - मज्ज पमाए, णिद्द पमाए, विसय पमाए, कसाय पमाए, जूय पमाए, पडिलेहणा पमाए॥ ४८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उम्मायं** - उन्माद को, **पाउणेज्जा** - प्राप्त करता है, **अवण्णं** - अवर्णवाद, **जक्खावेसेण** - यक्षावेश से, **पमाए** - प्रमाद, **मज्ज पमाए** - मद्य प्रमाद, **णिद्द पमाए** - निद्रा प्रमाद, **जूयपमाए** - द्युत प्रमाद, **पडिलेहणा पमाए** - प्रत्युपेक्षणा प्रमाद ।

भावार्थ - छह कारणों से आत्मा उन्माद को प्राप्त करता है यथा - अरिहंत भगवान् का अवर्णवाद बोलने से, अरिहंत भगवान् के फरमाये हुए धर्म का अवर्णवाद बोलने से, आचार्य उपाध्याय महाराज का अवर्णवाद बोलने से, चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से, अपने शरीर में किसी यक्ष का प्रवेश हो जाने से और मोहनीय कर्म के उदय से जीव उन्माद यानी मिथ्यात्व को प्राप्त होता है । छह प्रकार का प्रमाद कहा गया है यथा - मदय प्रमाद - शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना, निद्रा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाद - नींद लेना, विषय प्रमाद - शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होना, कषाय प्रमाद - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय का सेवन करना, दयूत प्रमाद - जुआ खेलना और प्रत्युपेक्षणा प्रमाद - बाह्य और आभ्यन्तर वस्तु को देखने में आलस्य करना प्रत्युपेक्षणा प्रमाद कहलाता है।

विवेचन - उन्माद - महामिथ्यात्व अथवा हित और अहित के विवेक को भूल जाना उन्माद है। छह कारणों से जीव को उन्माद की प्राप्ति होती है। वे इस प्रकार हैं -

१. अरिहन्त भगवान् २. अरिहन्त प्रणीत श्रुत चारित्र रूप धर्म ३. आचार्य उपाध्याय महाराज ४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद कहता हुआ या उनकी अवज्ञा करता हुआ जीव उन्माद को प्राप्त होता है। ५. निमित्त विशेष से कुपित देव से आक्रान्त हुआ जीव उन्माद को प्राप्त होता है। ६. मोहनीय कर्म के उदय से जीव को उन्माद की प्राप्ति होती है।

प्रमाद - विषय भोगों में आसक्त रहना, शुभ क्रिया में उद्यम तथा शुभ उपयोग का न होना प्रमाद है। इसके छह भेद हैं -

१. मद्य - शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन करना मद्य प्रमाद है। इससे शुभ परिणाम नष्ट होते हैं और अशुभ परिणाम पैदा होते हैं। शराब में जीवों की उत्पत्ति होने से जीव हिंसा का भी महापाप लगता है। लज्जा, लक्ष्मी, बुद्धि, विवेक आदि का नाश तथा जीव हिंसा आदि मद्यपान के दोष प्रत्यक्ष ही दिखाई देते हैं तथा परलोक में यह प्रमाद दुर्गति में ले जाने वाला है।

२. निद्रा - जिसमें चेतना अस्पष्ट भाव को प्राप्त हो ऐसी सोने की क्रिया निद्रा है। अधिक निद्रालु जीव न ज्ञान का उपार्जन कर सकता है और न धन का ही। ज्ञान और धन दोनों के न होने से वह दोनों लोक में दुःख का भागी होता है। निद्रा में संयम न रखने से यह प्रमाद सदा बढ़ता रहता है।

३. विषय - पांच इन्द्रियों के विषय - शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श जनित प्रमाद विषय प्रमाद है। शब्द रूप आदि में आसक्त प्राणी विषावाद को प्राप्त होते हैं। इसलिये शब्दादि विषय कहे जाते हैं।

४. कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय का सेवन करना प्रमाद है।

५. द्यूत प्रमाद - जुआ खेलना द्यूत प्रमाद है। जुए के बुरे परिणाम संसार में प्रसिद्ध हैं। जुआरी का कोई विश्वास नहीं करता है। वह अपना धन, धर्म, इहलोक, परलोक सब कुछ बिगाड़ देता है।

६. प्रत्युपेक्षणा प्रमाद - बाह्य और आभ्यन्तर वस्तु को देखने में आलस्य करना प्रत्युपेक्षणा प्रमाद है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से प्रत्युपेक्षणा चार प्रकार की है।

(क) द्रव्य प्रत्युपेक्षणा - वस्त्र पात्र आदि उपकरण और अशनादि आहार को देखना द्रव्य प्रत्युपेक्षणा है।

(ख) क्षेत्र प्रत्युपेक्षणा - कायोत्सर्ग, सोने, बैठने, स्थण्डिल, मार्ग तथा विहार आदि के स्थान को देखना क्षेत्र प्रत्युपेक्षणा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ग) काल प्रत्युपेक्षणा - उचित अनुष्ठान के लिए काल विशेष का विचार करना काल प्रत्युपेक्षणा है।

(घ) भाव प्रत्युपेक्षणा - मैंने क्या क्या अनुष्ठान किये हैं, मुझे क्या करना बाकी रहा है एवं मैं करने योग्य किस तप का आचरण नहीं कर रहा हूँ, इस प्रकार पिछली रात्रि के समय धर्म जागरणा करना भाव प्रत्युपेक्षणा है।

उक्त भेदों वाली प्रत्युपेक्षणा में शिथिलता करना अथवा तत् सम्बन्धी भगवदाज्ञा का अतिक्रमण करना प्रत्युपेक्षणा प्रमाद है।

प्रतिलेखना,लेश्या

छव्विहा पमाय पडिलेहणा पण्णत्ता तंजहा -

आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तईया ।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी ।। १ ।।

छव्विहा अप्पमाय पडिलेहणा पण्णत्ता तंजहा -

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधिं अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा णवखोडा, पाणिपाण विसोहणी ।। २ ।।

छ लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा, पम्हलेसा, सुक्कलेस्सा । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छ लेस्साओ पण्णत्ताओ तंजहा- कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा । एवं मणुस्स देवाण वि ।

अग्रमहिषियाँ

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिम परिसाए देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । छ दिसिकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - रूवा, रूवंसा, सुरूवा, रूववई, रूवकंता, रूवप्पभा। छ विज्जुकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आला, सक्का, सतेरा, सोयामणी, इंदा, घणविज्जुया । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - आला, सक्का, सतेरा, सोयामणी, इंदा, घणविज्जुया । भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रूवा, रूवंसा, सुरूवा, रूववई, रूवकंता,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूवप्पभा । जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स । जहा भूयाणंदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवं भूयाणंदस्स वि जाव महाघोसस्स॥ ४९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पमाय पडिलेहणा** - प्रमाद प्रतिलेखना, **आरभडा** - आरभटा, **सम्मद्दा** - सम्मर्दा, **पप्फोडणा** - प्रस्फोटना, **विक्खित्ता** - विक्षिप्ता, **वेइया** - वेदिका, **वज्जेयव्वा** - छोड़ देनी चाहिये, **अणच्चावियं** - अनर्तित, **अवलियं** - अवलित, **अणाणुबंधिं** - अननुबन्धी, **छप्पुरिमा** - षट् पुरिम, **णवखोडा** - नवस्फोटका, **पाणिपाण विसोहणी** - प्राणि प्राण विशोधनी ।

भावार्थ - छह प्रकार की प्रमाद प्रतिलेखना कही गई है यथा - १. आरभटा - विपरीत रीति से या उतावल के साथ प्रतिलेखना करना अथवा एक वस्त्र की प्रतिलेखना अधूरी छोड़ कर दूसरे वस्त्र की प्रतिलेखना करने लग जाना आरभटा प्रतिलेखना है । २. सम्मर्दा - वस्त्र के कोने मुड़े हुए ही रहें या सल न निकाले जायं अथवा प्रतिलेखना के उपकरणों पर बैठ कर प्रतिलेखना करना सम्मर्दा प्रतिलेखना है । ३. मोसली - जैसे कूटते समय मूसल ऊपर नीचे और तिर्छे लगता है उसी प्रकार प्रतिलेखना करते समय वस्त्र को ऊपर, नीचे या तिर्छे लगाना मोसली प्रतिलेखना है । ४. प्रस्फोटना - जैसे धूल से भरा हुआ वस्त्र जोर से झड़काया जाता है उसी प्रकार प्रतिलेखना के वस्त्र को अच्छी तरह झड़काना प्रस्फोटना प्रतिलेखना है । ५. विक्षिप्ता - प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों को बिना प्रतिलेखना किये हुए वस्त्रों में मिला देना अथवा प्रतिलेखना करते हुए वस्त्र के पल्ले आदि को ऊपर की ओर फेंकना विक्षिप्ता प्रतिलेखना है और ६. छठी वेदिका - प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे और पसवाड़े हाथ रखना अथवा दोनों घुटनों या एक घुटने को भुजाओं के बीच रखना वेदिका प्रतिलेखना है। यह छह प्रमाद प्रतिलेखना साधु को छोड़ देनी चाहिए ।

छह प्रकार की अप्रमाद प्रतिलेखना कही गई है यथा -

१. अनर्तित - प्रतिलेखना करते समय शरीर और वस्त्रादि को न नचाना । २. अवलित - प्रतिलेखना करते समय वस्त्र कहीं से भी मुड़ा न रह जाना चाहिए । प्रतिलेखना करने वाले को भी शरीर बिना मोड़े सीधे बैठना चाहिए अथवा प्रतिलेखना करते हुए वस्त्र और शरीर को चञ्चल न रखना चाहिए । ३. अननुबन्धी - वस्त्र को जोर से झड़काना न चाहिए । ४. अमोसली - धान्यादि कूटते समय ऊपर, नीचे और तिरछे लगने वाले मूसल की तरह वस्त्र को ऊपर, नीचे या तिर्छे दीवाल आदि से न लगाना चाहिए । ५. षट्पुरिम - नवस्फोटका - प्रतिलेखना में छह पुरिम और नव खोड़ करने चाहिए । वस्त्र के दोनों हिस्सों को तीन तीन बार खंखेरना छह पुरिम है तथा वस्त्र को तीन तीन बार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूंज कर तीन बार शोधना नवखोड़ है । ६. प्राणिप्राण विशोधनी - वस्त्रादि पर चलता हुआ कोई जीव दिखाई दे तो उसको अपने हाथ पर उतार कर उसकी रक्षा करनी चाहिए ।। २ ॥

छह लेश्याएं कही गई हैं यथा - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या । तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों के छह लेश्याएं कही गई हैं यथा - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या। इसी तरह मनुष्य और देवों में भी छह छह लेश्याएं होती हैं । देवों के राजा शक्र देवेन्द्र के पूर्व दिशा के लोकपाल सोम नामक महाराजा के छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ।

देवों के राजा शक्र देवेन्द्र के दक्षिण दिशा के लोकपाल यम महाराजा के छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं । देवों के राजा ईशान देवेन्द्र की मध्यम परिषद् के देवों की छह पल्योपम की स्थिति कही गई है।

छह दिशाकुमारियाँ कही गई हैं यथा- रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकांता, रूपप्रभा । छह विद्युतकुमारियाँ कही गई हैं यथा - आला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता । नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र धरणेन्द्र के छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - आला, शक्रा, शतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा और घन विद्युता । नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र भूतानन्द के छह अग्रमहिषियाँ कही गई है यथा - रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपवती, रूपकांता, और रूपप्रभा । जिस प्रकार धरणेन्द्र के छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं उसी प्रकार दक्षिण दिशा के घोष तक सब इन्द्रों के छह छह अग्रमहिषियाँ जान लेना चाहिए । जिस प्रकार भूतानन्द के छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं उसी प्रकार महाघोष तक सभी उत्तर दिशा के इन्द्रों के छह छह अग्रमहिषियाँ जान लेना चाहिए । नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र धरणेन्द्र के छह हजार सामानिक देव कहे गये हैं । इसी प्रकार भूतानन्द से लेकर महाघोष तक सभी इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव होते हैं ।

विवेचन - शास्त्रोक्त विधि से वस्त्र पात्रादि उपकरणों को उपयोग पूर्वक देखना प्रतिलेखना या पडिलेहणा है। उत्तराध्ययन सूत्र अ० २६ गाथा २४ में भी इसके छह भेद बताये हैं। प्रमाद पूर्वक की जाने वाली प्रतिलेखना प्रमाद प्रतिलेखना है और प्रमाद का त्याग कर उपयोग पूर्वक विधि से प्रतिलेखना करना अप्रमाद प्रतिलेखना है। प्रमाद प्रतिलेखना के छह भेदों एवं अप्रमाद प्रतिलेखना के छह भेदों का वर्णन भावार्थ में कर दिया गया है।

लेश्या - जिससे कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो उसे लेश्या कहते हैं। द्रव्य और भाव के भेद से लेश्या दो प्रकार की है। द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप है। इसके विषय में तीन मत हैं -

(क) कर्म वर्गणा निष्पन्न।

(ख) कर्म निष्यन्द।

(ग) योग परिणाम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहले मत का आशय है कि द्रव्य लेश्या कर्मवर्गणा से बनी हुई है और कर्म रूप होते हुए भी कार्मण शरीर के समान आठ कर्मों से भिन्न है।

दूसरे मत का आशय है कि द्रव्य लेश्या कर्म निष्यन्द अर्थात् कर्म प्रवाह रूप है। चौदहवें गुणस्थान में कर्म होने पर भी उन का प्रवाह (नवीन कर्मों का आना) न होने से वहाँ लेश्या के अभाव की संगति हो जाती है।

तीसरे मत का आशय है कि जब तक योग रहता है तब तक लेश्या रहती है। योग के अभाव में लेश्या भी नहीं होती, जैसे चौदहवें गुणस्थान में। इसलिए लेश्या योग परिणाम रूप है। इस मत के अनुसार लेश्या योगान्तर्गत द्रव्य रूप है अर्थात् मन वचन और काया के अन्तर्गत शुभाशुभ परिणाम के कारण भूत कृष्णादि वर्ण वाले पुद्गल ही द्रव्य लेश्या है। आत्मा में रही हुई कषायों को लेश्या बढ़ाती है। योगान्तर्गत पुद्गलों में कषाय बढ़ाने की शक्ति रहती है, जैसे पित्त के प्रकोप से क्रोध की वृद्धि होती हैं।

योगान्तर्गत पुद्गलों के वर्णों की अपेक्षा द्रव्य लेश्या छह प्रकार की है - १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या ४. तेजो लेश्या ५. पद्म लेश्या ६. शुक्ल लेश्या। इन छहों लेश्याओं के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि का सविस्तार वर्णन उत्तराध्ययन के ३४ वें अध्ययन और पन्नवणा के १७ वें पद में है। पन्नवणा सूत्र में यह भी बताया गया है कि कृष्ण लेश्यादि के द्रव्य जब नील लेश्यादि के साथ मिलते हैं तब वे नील लेश्यादि के स्वभाव तथा वर्णादि में परिणत हो जाते हैं, जैसे दूध में छाछ डालने से वह दूध छाछ रूप में परिणत हो जाता है, एवं वस्त्र को मजीठ में भिगोने से वह मजीठ के वर्ण का हो जाता है। किन्तु लेश्या का यह परिणाम केवल मनुष्य और तिर्यंच की लेश्या के सम्बन्ध में ही है। देवता और नारकी में द्रव्य लेश्या अवस्थित होती है इसलिए वहाँ अन्य लेश्या द्रव्यों का सम्बन्ध होने पर भी अवस्थित लेश्या सम्बध्यमान लेश्या के रूप में परिणत नहीं होती। वे अपने स्वरूप को रखती हुई सम्बध्यमान लेश्या द्रव्यों की छाया मात्र धारण करती हैं, जैसे वैडूर्य मणि में लाल धागा पिरोने पर वह अपने नील वर्ण को रखते हुए धागे की लाल छाया को धारण करती है।

भाव लेश्या - योगान्तर्गत कृष्णादि द्रव्य यानी द्रव्यलेश्या के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष भावलेश्या है। इसके दो भेद हैं - विशुद्ध भावलेश्या और अविशुद्ध भाव लेश्या।

विशुद्ध भावलेश्या - अकलुष द्रव्यलेश्या के सम्बन्ध होने पर कषाय के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाला आत्मा का शुभ परिणाम विशुद्ध भावलेश्या है।

अविशुद्ध भावलेश्या - कलुषित द्रव्य लेश्या के सम्बन्ध होने पर राग द्वेष विषयक आत्मा के अशुभ परिणाम अविशुद्ध भाव लेश्या हैं।

यही विशुद्ध एवं अविशुद्ध भावलेश्या कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल के भेद से छह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार की हैं। आदिम तीन अविशुद्ध भाव लेश्या है और अंतिम तीन अर्थात् चौथी, पाँचवी और छठी विशुद्ध भाव लेश्या हैं।

छहों लेश्याओं का स्वरूप इस प्रकार है -

१. **कृष्ण लेश्या** - काजल के समान काले वर्ण के कृष्ण लेश्या-द्रव्य के सम्बन्ध से आत्मा में ऐसा परिणाम होता है कि जिससे आत्मा पांच आस्रवों में प्रवृत्ति करने वाला तीन गुप्ति से अगुप्त, छह काया की विरति से रहित तीव्र आरंभ की प्रवृत्ति सहित, क्षुद्र स्वभाव वाला, गुण दोष का विचार किये बिना ही कार्य करने वाला ऐहिक और पारलौकिक बुरे परिणामों से न डरने वाला अतएव कठोर और क्रूर परिणामधारी तथा अजितेन्द्रिय हो जाता है। यही परिणाम कृष्ण लेश्या है।

२. **नील लेश्या** - अशोक वृक्ष के समान नीले रंग के नील लेश्या के पुद्गलों का संयोग होने पर आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है कि जिससे आत्मा ईर्षा और अमर्ष वाला, तप और सम्यग् ज्ञान से शून्य, माया, निर्लज्जता, गृद्धि, प्रद्वेष, शठता, रसलोलुपता आदि दोषों का आश्रय, साता का गवेषक, आरंभ से अनिवृत्त, तुच्छ और साहसिक हो जाता है। यही परिणाम नील लेश्या है।

३. **कापोत लेश्या** - कबूतर के समान रक्त कृष्ण वर्ण वाले द्रव्य कापोत लेश्या के पुद्गलों के संयोग से आत्मा में इस प्रकार का परिणाम उत्पन्न होता है। कि वह विचारने, बोलने और कार्य करने में वक्र बन जाता है, अपने दोषों को ढकता है और सर्वत्र दोषों का आश्रय लेता है। वह नास्तिक बन जाता है और अनार्य की तरह प्रवृत्ति करता है। द्वेष पूर्ण तथा अत्यन्त कठोर वचन बोलता है। चोरी करने लगता है। दूसरे की उन्नति को नहीं सह सकता। यह परिणाम कापोत लेश्या है।

४. **तेजो लेश्या** - तोते की चोंच के समान रक्त वर्ण के द्रव्य तेजो लेश्या के पुद्गलों का सम्बन्ध होने पर आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है कि वह अभिमान का त्याग कर मन, वचन और शरीर से नम्र वृत्ति वाला हो जाता है। चपलता शठता और कौतूहल का त्याग करता है। गुरुजनों का उचित विनय करता है। पांचों इन्द्रियों पर विजय पाता है एवं योग (स्वाध्यायादि व्यापार) तथा उपधान तप में निरत रहता है। धर्म कार्यों में रुचि रखता है एवं लिये हुए व्रत प्रत्याख्यान को दृढ़ता के साथ निभाता है। पाप से भय खाता है और मुक्ति की अभिलाषा करता है। इस प्रकार का परिणाम तेजोलेश्या है।

५. **पद्म लेश्या** - हल्दी के समान पीले रंग के द्रव्य पद्म लेश्या के पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में ऐसा परिणाम होता है कि वह क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय को मन्द कर देता है। उसका चित्त शान्त रहता है एवं अपने को अशुभ प्रवृत्ति से रोक लेता है। योग एवं उपधान तप में लीन रहता है। वह मितभाषी सौम्य एवं जितेन्द्रिय बन जाता है। यही परिणाम पद्म लेश्या है।

६. **शुक्ल लेश्या** - शंख के समान श्वेत वर्ण के द्रव्य शुक्ल लेश्या के पुद्गलों का संयोग होने पर आत्मा में ऐसा परिणाम होता है कि वह आर्त्त ध्यान और रौद्र ध्यान का त्याग कर धर्म ध्यान एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुक्ल ध्यान का अभ्यास करता है। वह प्रशान्त चित्त और आत्मा का दमन करने वाला होता है एवं पांच समिति तीन गुप्ति का आराधक होता है। अल्प राग वाला अथवा वीतराग हो जाता हैं। उसकी आकृति सौम्य एवं इन्द्रियाँ संयत होती हैं। यह परिणाम शक्ल लेश्या है।

छह लेश्याओं का स्वरूप समझाने के लिये शास्त्रकारों ने दो दृष्टान्त दिये हैं। वे नीचे लिखे अनुसार हैं -

छह पुरुषों ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलों से लदा था। शाखाएं नीचे की ओर झुक रही थी। उसे देख कर उन्हें फल खाने की इच्छा हुई। सोचने लगे, किस प्रकार इसके फल खाये जायं ? एक ने कहा —"वृक्ष पर चढ़ने में तो गिरने का खतरा है इसलिये इसे जड़ से काट कर गिरा दे और सुख से बैठ कर फल खावें" यह सुन कर दूसरे न कहा - "वृक्ष को जड़ से काट कर गिराने से क्या लाभ ? केवल बड़ी-बड़ी डालियाँ ही क्यों न काट ली जायँ" इस पर तीसरा बोला-"बड़ी-बड़ी डालियाँ न काट कर छोटी-छोटी डालियाँ ही क्यों न काट ली जायं ? क्योंकि फल तो छोटी डालियों में ही लगे हुए हैं।" चौथे को यह बात पसन्द न आई, उसने कहा - "नहीं, केवल फलों के गुच्छे ही तोड़े जायँ। हमें तो फलों से ही प्रयोजन है।" पांचवे ने कहा - "गुच्छे भी तोड़ने की जरूरत नहीं है, केवल पके हुए फल ही नीचे गिरा दिये जायँ।" यह सुन कर छठे ने कहा - "जमीन पर काफी फल गिरे हुए हैं, उन्हें ही खा लिये जायं। अपना मतलब तो इन्हीं से सिद्ध हो जायेगा।"

दूसरा दृष्टान्त इस प्रकार है। छह क्रूर कर्मी डाकू किसी ग्राम में डाका डालने के लिए रवाना हुए। रास्ते में वे विचार करने लगे। उनमें से एक ने कहा "जो मनुष्य या पशु दिखाई दें सभी मार दिये जायँ।" यह सुन कर दूसरे ने कहा "पशुओं ने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा है। हमारा तो मनुष्यों के साथ विरोध है इसलिये उन्हीं का वध करना चाहिये।" तीसरे ने कहा - नहीं, स्त्री हत्या महा पाप है। इसलिये क्रूर परिणाम वाले पुरुषों को ही मारना चाहिये।" यह सुन कर चौथा बोला - "यह ठीक नहीं। शस्त्र रहित पुरुषों पर वार करना बेकार है। इसलिये हम लोग तो सशस्त्र पुरुषों को ही मारेंगे।" पांचवे चोर ने कहा - "सशस्त्र पुरुष भी यदि डर के मारे भागते हों तो उन्हें नहीं मारना चाहिए। जो शस्त्र लेकर लड़ने आवें उन्हें ही मारा जाय।" अन्त में छठे ने कहा - "हम लोग चोर हैं। हमें तो धन की जरूरत है। इसलिये जैसे धन मिले वही उपाय करना चाहिए। एक तो हम लोगों का धन चोरें और दूसरे उन्हें मारें भी, यह ठीक नहीं है। यों ही चोरी पाप है। इस पर हत्या का महापाप क्यों किया जाय।

दोनों दृष्यन्तों के पुरुषों में पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे इस प्रकार आगे आगे के पुरुषों के परिणाम क्रमशः अधिकाधिक शुभ हैं। इन परिणामों में उत्तरोत्तर संक्लेश की कमी एवं मृदुता की अधिकता है। छहों में पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण लेश्या यावत् छठे परिणाम को शुक्ल लेश्या समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छहों लेश्याओं में कृष्ण, नील और कापोत पाप का कारण होने से अधर्म लेश्या हैं। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। अन्तिम तीन तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या धर्म लेश्या हैं। इन से जीव सुगति में उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या को लिए हुए जीव चवता है उसी लेश्या को लेकर परभव में उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम एवं चरम समय में जीव परभव में नहीं जाता किन्तु अन्तर्मुहूर्त्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर ही परभव के लिये जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहूर्त्त बाकी रहता है। इसलिये परभव में भी जीव उसी लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है।

अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा मति

छव्विहा उग्गहमई पण्णत्ता तंजहा - खिप्पमोगिण्हइ, बहुमोगिण्हइ, बहुविहमोगिण्हइ, धुवमोगिण्हइ, अणिस्सियमोगिण्हइ, असंदिद्धमोगिण्हइ । छव्विहा ईहामई पण्णत्ता तंजहा - खिप्पमीहइ, बहुमीहइ, जाव असंदिद्धमीहइ । छव्विहा अवायमई पण्णत्ता तंजहा - खिप्पमवेइ जाव असंदिद्धमवेइ । छव्विहा धारणा पण्णत्ता तंजहा - बहुं धारेइ, बहुविहं धारेइ, पोराणं धारेइ, दुद्धरं धारेइ, अणिस्सियं धारेइ, असंदिद्धं धारेइ॥ ५०॥

कठिन शब्दार्थ - **उग्गहमई** - अवग्रह मति, **खिप्पं** - क्षिप्र-अर्थात् शीघ्र, **बहुं** - बहुत से, **बहुविहं**- बहुत प्रकार के, **असंदिद्धं** - असंदिग्ध रूप से, **पोराणं** - पुराने समय की, **अणिस्सियं** - अनिश्रित।

भावार्थ - छह प्रकार की अवग्रह मति कही गई है यथा - शीघ्रता से अर्थ को ग्रहण करे, बहुत से भिन्न भिन्न अर्थों को ग्रहण करे, बहुत प्रकार के अर्थों को ग्रहण करे, निश्चित रूप से सदा अर्थों को ग्रहण करे, चिह्न के अनुमान से अर्थ को ग्रहण करे। असंदिग्ध अर्थ को ग्रहण करे। ईहा मति यानी अवग्रह से जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से जानने वाली बुद्धि, छह प्रकार की कही गई है यथा - शीघ्रता से ईहा ज्ञान करे यावत् असंदिग्ध रूप से ईहा ज्ञान करे। अवाय मति यानी ईहा द्वारा जाने हुए पदार्थ का पूर्ण निर्णय करने वाली बुद्धि छह प्रकार की कही गई है यथा - शीघ्र निर्णय करे यावत् असंदिग्ध रूप से निर्णय करे। धारणा यानी अवाय द्वारा निर्णय किये हुए पदार्थ की बहुत लम्बे समय तक स्मृति रखना धारणा कहलाती है। यह धारणा छह प्रकार की कही गई है यथा-बहुत धारण करे, बहुत प्रकार के पदार्थों को धारण करे, बहुत पुराने समय की बात को धारण करे, विचित्र प्रकार के एवं गहन अर्थों को धारण करे, अनिश्रित यानी बिना अनुमान आदि के धारण करे और असंदिग्ध रूप से धारण करे ।

विवेचन - मति - आभिनिबोधिक रूप चार प्रकार की है - १. अवग्रह २. ईहा ३. अपाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(अवाय) और ४. धारणा। प्रथम सामान्यतः अर्थ को ग्रहण करना अवग्रह है और तद्रूप मति अवग्रह मति कहलाती है। इसके छह भेद बतलाये गये हैं। अवग्रह से जाने हुए पदार्थ को विशेष रूप से जानने वाली बुद्धि ईहा मति कहलाती है यह छह प्रकार की कही है। ईहा द्वारा जाने हुए पदार्थ का पूर्ण निर्णय करने वाली बुद्धि अवाय मति कहलाती है। अवाय द्वारा निर्णय किये हुए पदार्थ की बहुत लम्बे समय तक स्मृति रखना धारणा कहलाती है। इनके छह भेदों का वर्णन भावार्थ में दे दिया गया है।

तप भेद

छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते तंजहा - अणसणं, ओमोयरिया, भिक्खायरिया, रसपरिच्चाए, कायकिलेसो, पडिसंलीणया । छव्विहे अब्भंतरिए तवे पण्णत्ते तंजहा - पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं, तहेव सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो । छव्विहे विवाए पण्णत्ते तंजहा - ओसक्कइत्ता, उस्सक्कइत्ता, अणुलोमइत्ता, पडिलोमइत्ता, भइत्ता, भेलइत्ता॥ ५१ ॥

कठिन शब्दार्थ - बाहिरए - बाह्य, **अणसणं** - अनशन, **ओमोयरिया** - अवमोदरिका, **भिक्खायरिया** - भिक्षाचर्या, **रसपरिच्चाए** - रस-परित्याग, **कायकिलेसो** - कायाक्लेश, **पडिसंलीणया**- प्रतिसंलीनता, **अब्भंतरिए** - आभ्यंतर, **वेयावच्चं** - वैयावृत्य, **सज्झाओ** - स्वाध्याय, **झाणं** - ध्यान, **विउस्सग्गो** - व्युत्सर्ग, **विवाए** - विवाद, **ओसक्कइत्ता** - पीछे हट कर-विलम्ब करके, **उस्सक्कइत्ता**- उत्सुक होकर, **अणुलोमइत्ता** - अनुकूल करके, **पडिलोमइत्ता** - प्रतिकूल करके, **भइत्ता** - सेवा करके, **भेलइत्ता** - मिश्रण करके।

भावार्थ - तप - शरीर और कर्मों को तपाना तप है। जैसे अग्नि में तपा हुआ सोना निर्मल होकर शुद्ध हो जाता है वैसे ही तप रूपी अग्नि से तपा हुआ आत्मा कर्ममल से रहित होकर शुद्ध स्वरूप हो जाता है। तप दो प्रकार का है - बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाह्य शरीर से सम्बन्ध रखने वाले तप को बाह्य तप कहते हैं । बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है यथा - १. अनशन - आहार का त्याग करना यानी उपवास, बेला, तेला आदि करना अनशन तप है। २. अवमोदरिका यानी ऊनोदरी - जिसका जितना आहार है उससे कम आहार करना तथा आवश्यक उपकरणों से कम उपकरण रखना ऊनोदरी तप है। ३. भिक्षाचर्या - विविध अभिग्रह लेकर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना भिक्षाचर्या तप है। ४. रसपरित्याग - विकार जनक दूध, दही, घी आदि विगयों का तथा गरिष्ठ आहार का त्याग करना रसपरित्याग है। ५. कायाक्लेश - शास्त्र सम्मत रीति से शरीर को क्लेश पहुँचाना कायाक्लेश तप है। उग्र आसन, वीरासन आदि आसनों का सेवन करना, लोच करना, शरीर की शोभा सुश्रूषा का त्याग करना आदि कायाक्लेश के अनेक प्रकार हैं। ६. प्रतिसंलीनता - इन्द्रिय, कषाय और योगों का गोपन करना तथा स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित एकान्त स्थान में रहना प्रतिसंलीनता तप है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभ्यन्तर तप – जिस तप का सम्बन्ध आत्मा के भावों से हो उसे आभ्यन्तर तप कहते हैं। वह आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा गया है यथा – १. प्रायश्चित्त – जिससे मूलगुण और उत्तरगुण विषयक अतिचारों से मलिन आत्मा शुद्ध हो उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। अथवा प्रायः का अर्थ है पाप और चित्त का अर्थ है शुद्धि। जिस अनुष्ठान से पाप की शुद्धि हो उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। २. विनय– आठ कर्मों को आत्मा से अलग करने में हेतु रूप क्रिया विशेष को विनय कहते हैं। अथवा सम्माननीय गुरुजनों के आने पर खड़ा होना, हाथ जोड़ना, उन्हें आसन देना, उनकी सेवा शुश्रूषा करना आदि विनय कहलाता है। ३. वैयावृत्य धर्म साधन के लिए गुरु, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित आदि को विधिपूर्वक आहारादि लाकर देना वैयावृत्य कहलाता है। ४. स्वाध्याय – अस्वाध्याय काल टाल कर मर्यादापूर्वक शास्त्रों को पढ़ना, पढाना आदि स्वाध्याय है। ५. ध्यान – आर्त्त ध्यान और रौद्र ध्यान को छोड़ कर धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान करना ध्यान तप कहलाता है। ६. व्युत्सर्ग – ममता का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है।

विवाद–तत्त्व निर्णय या जीतने की इच्छा से वादी और प्रतिवादी का आपस में शङ्का समाधान करना विवाद कहलाता है । इसके छह भेद हैं यथा – १. अवसर के अनुसार पीछे हट कर अर्थात् विलम्ब करके विवाद करना । २. उत्सुक होकर विवाद करना । ३. मध्यस्थ को अपने अनुकूल बना कर अथवा प्रतिवादी के मत को अपना मत मान कर उसी को पूर्वपक्ष करते हुए विवाद करना । ४. समर्थ होने पर सभापति और प्रतिवादी दोनों के प्रतिकूल होने पर भी विवाद करना । ५. सभापति को प्रसन्न करके एवं अपने अनुकूल बना कर विवाद करना । ६. किसी उपाय से निर्णायकों को प्रतिपक्षी का द्वेषी बना कर अथवा उन्हें स्वपक्षग्राही बना कर विवाद करना ।

विवेचन – अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस परित्याग, कायाक्लेश, प्रतिसंलीनता, ये छह प्रकार के तप मुक्ति प्राप्ति के बाह्य अंग हैं। ये बाह्य द्रव्यादि की अपेक्षा रखते हैं, प्रायः बाह्य शरीर को ही तपाते हैं अर्थात् इनका शरीर पर अधिक असर पड़ता है। इन तपों का करने वाला भी लोक में तपस्वी रूप से प्रसिद्ध हो जाता है। अन्यतीर्थिक भी स्वाभिप्रायानुसार इनका सेवन करते हैं। इत्यादि कारणों से ये तप बाह्य तप कहे जाते हैं। जिस तप का सम्बन्ध आत्मा के भावों से हो उसे आभ्यंतर तप कहते हैं। इसके छह भेद हैं – १. प्रायश्चित्त २. विनय ३. वैयावृत्य ४. स्वाध्याय ५. ध्यान और ६. व्युत्सर्ग। आभ्यंतर तप मोक्ष प्राप्ति में अंतरंग कारण है। अन्तर्दृष्टि आत्मा ही इसका सेवन करता है और वही इन्हें तप रूप से जानता है। इनका असर बाह्य शरीर पर नहीं पड़ता किन्तु आभ्यन्तर राग द्वेष कषाय आदि पर पड़ता है। लोग इसे देख नहीं सकते। इन्हीं कारणों से उपरोक्त छह प्रकार की क्रियाएं आभ्यन्तर तप कही जाती है।

तप के भेदों का विशेष वर्णन उववाई सूत्र (तप अधिकार) तथा उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३० एवं भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ७ से जान लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षुद्र प्राणी

छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता तंजहा - बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, सम्मुच्छिमपंचिंदिय तिरिक्खजोणिया, तेउकाइया, वाउकाइया ।

गोचर चर्या

छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता तंजहा - पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतंगवीहिया, संबुक्कवट्टा, गंतुं पच्चागया ।

महानरकावास

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंता महाणिरया पण्णत्ता तंजहा - लोले, लोलुए, उदड्डे, णिदड्डे, जरए, पज्जरए। चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंता महाणिरया पण्णत्ता तंजहा - आरे, वारे, मारे, रोरे, रोरुए, खाडखडे॥ ५२॥

कठिन शब्दार्थ - खुड्डा - क्षुद्र, **गोयरचरिया** - गोचरचर्या-गोचरी, **पेडा** - पेटा, **अद्धपेडा** - अर्द्ध पेटा, **गोमुत्तिया** - गोमूत्रिका, **पतंगवीहिया** - पतंगवीथिका, **संबुक्क-वट्टा** - शम्बूकावर्त्ता, **गंतुंपच्चागया** - गत प्रत्यागता, **अवक्कंता** - अपक्रान्त, **महाणिरया** - महानरक।

भावार्थ - क्षुद्र प्राणी यानी अधम प्राणी छह प्रकार के कहे गये हैं यथा - बेइन्द्रिय - स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियों वाले जीव । तेइन्द्रिय - स्पर्शन, रसना और घ्राण तीन इन्द्रियों वाले जीव । चौइन्द्रिय-स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु, चार इन्द्रियों वाले जीव । सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च - पांचों इन्द्रियों वाले बिना मन के असंज्ञी तिर्यञ्च । तेउकायिक - अग्नि के जीव, वायुकायिक - हवा के जीव । बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, अग्नि और वायु ये तो अनन्तर भव यानी इस काय से निकल कर अगले भव में भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में देव आकर उत्पन्न नहीं होते हैं । इसलिए इन छहों को क्षुद्र प्राणी कहते हैं।

गोचरी - जैसे गाय सभी प्रकार के तृणों को सामान्य रूप से चरती है उसी प्रकार साधु उत्तम, मध्यम तथा नीचे कुलों में राग द्वेष रहित होकर विचरते हैं । शरीर को धर्मसाधन का अंग समझ कर उसका पालन करने के लिए आहार आदि लेते हैं । गाय की तरह उत्तम मध्यम आदि का भेद न होने से मुनियों की भिक्षावृत्ति भी गोचरी कहलाती है । अभिग्रह विशेष से इसके छह भेद हैं यथा - १. पेटा - जिस गोचरी में साधु ग्राम आदि को पेटी (सन्दूक) की तरह चार कोणों में बांट कर बीच के घरों को छोड़ता हुआ चारों दिशाओं में समश्रेणी से गोचरी करता है वह पेटा गोचरी कहलाती है। २. अर्द्धपेटा- उपरोक्त प्रकार से क्षेत्र को बांट कर केवल दो दिशाओं के घरों से भिक्षा लेना अर्द्ध पेटा गोचरी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. गोमूत्रिका - जैसे गाड़ी में जुता हुआ बैल चलता हुआ मूतता (पेशाब करता हुवा) जाता है उसका मूत्र आडा टेडा पड़ता है इसी प्रकार भिक्षा के क्षेत्र की कल्पना करके जो गोचरी की जाय उसे गोमूत्रिका गोचरी कहते हैं। इसमें साधु आमने सामने के घरों में पहले बांई पंक्ति में फिर दाहिनी पंक्ति में गोचरी करता है । इस क्रम से दोनों पंक्तियों के घरों से भिक्षा लेना गोमूत्रिका गोचरी है । ४. पतंगवीथिका - पतंगिये की गति के समान अनियमित रूप से गोचरी करना पतंथवीथिका गोचरी है। ५. शम्बूकावर्त्ता - शंख के आवर्त्त की तरह गोल गति वाली गोचरी शम्बूकावर्त्ता गोचरी है । ६. गतप्रत्यागता - साधु एक पंक्ति के घरों में गोचरी करता हुआ अन्त तक जाता है और लौटते समय दूसरी पंक्ति के घरों से गोचरी लेता है उसे गतप्रत्यागता गोचरी कहते हैं।

जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक के अपक्रान्त यानी बहुत खराब छ महानरक कहे गये हैं यथा - लोल, लोलुक, उद्दिष्ट, निर्दिष्ट, जरक, प्रजरक । चौथी पंकप्रभा नारकी के अपक्रान्त - महाखराब छ महानरक कहे गये हैं यथा - आर, वार, मार, रोर, रोरुक, और खाडखड ।

विवेचन - त्रस होने पर भी जो प्राणी अगले भव में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते या जिनमें देव उत्पन्न नहीं होते, उन्हें क्षुद्र प्राणी कहते हैं। इनके छह भेद हैं - १. बेइन्द्रिय २. तेइन्द्रिय ३. चउरेन्द्रिय ४. सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय ५. तेउकाय ६. वायुकाय। उत्तराध्ययन सूत्र में तेऊकाय और वायुकाय के जीवों को गति त्रस कहा हैं।

पृथ्वीकाय, अप्काय और चौथी पंकप्रभा नरक से निकलकर उत्पन्न हुए मनुष्य एक समय में चार और वनस्पति से निकल कर उत्पन्न हुए मनुष्य छह सिद्ध हो सकते हैं। विकलेन्द्रिय में से उत्पन्न होकर विरति को प्राप्त कर सकते हैं परन्तु सिद्ध नहीं हो सकते तथा गति त्रस-तेउकाय वायुकाय के जीव अननंतर भव में भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तथा इन छह स्थानों में देवों की उत्पत्ति नहीं होने से ये क्षुद्र कहे गये हैं।

गो यानी गाय चर अर्थात् चरना गोचर अर्थात् गाय की तरह चर्या-फिरना गोचरचर्या कहलाती है तात्पर्य यह है कि जैसे गाय ऊंच नीच आदि सभी प्रकार के तृणों को सामान्य रूप से चरती है उसी प्रकार साधु ऊंचे, नीचे मध्यम कुलों में धर्म के साधनभूत शरीर के परिपालन हेतु भिक्षा के लिये चरना-फिरना गोचरचर्या है। अभिग्रह विशेष से गोचरचर्या के छह भेद किये हैं जिनका भावार्थ में विवेचन किया गया है।

विमान प्रस्तट

बंभलोए णं कप्पे छ विमाणपत्थडा पण्णत्ता तंजहा - अरए, विरए, णीरए, णिम्मले, वितिमिरे, विसुद्धे । चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो छ णक्खत्ता पुव्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भागा समखेत्ता तीसइ मुहुत्ता पण्णत्ता तंजहा - पुव्वाभद्दवया, कत्तिया, महा, पुव्वाफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा । चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढक्खेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता तंजहा - सयभिसया, भरणी, अद्दा, अस्सेसा, साई, जेट्ठा । चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो छ णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढक्खेत्ता पणयाली समुहुत्ता पण्णत्ता तंजहा - रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी, विसाहा, उत्तरासाढा, उत्तराभद्दवया ॥ ५३ ॥

कठिन शब्दार्थ - विमाणपत्थडा - विमान प्रस्तट (पाथडे), **पुव्वं भागा** - पूर्व भाग में, **णत्तंभागा**-समयोगी, **अवड्ढखेत्ता** - अर्द्ध क्षेत्र वाले ।

भावार्थ - ब्रह्मलोक नामक छठे देवलोक के छह विमान पाथड़े कहे गये हैं यथा - अरत, विरत नीरत, निर्मल, वितिमिर और विशुद्ध। ज्योतिषी देवों के राजा ज्योतिषी देवों के इन्द्र चन्द्रमा के पूर्वभाग में तीस मुहूर्त्त के समक्षेत्र वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं यथा - पूर्वभाद्रपदा, कृतिका, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, मूला और पूर्वाषाढा । ज्योतिषी देवों के राजा ज्योतिषी देवों के इन्द्र चन्द्रमा के समयोगी अर्द्ध क्षेत्र वाले पन्द्रह मुहूर्त्त वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं यथा - शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा । ज्योतिषी देवों के राजा ज्योतिषियों के इन्द्र चन्द्रमा के उभयभाग अर्थात् पूर्व पश्चिम भाग में डेढ क्षेत्र वाले और पैंतालीस मुहू[?] के छह नक्षत्र कहे गये हैं यथा - रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा ।

विवेचन - वैमानिक देवों के कुल ६२ विमान प्रस्तट (पाथडे) कहे गये हैं। जैसा कि कहा है -

तेरस बारस छ पंच चेव चत्तारि चउसु कप्पेसु।
गेवेज्जेसु तिय तिय एगो य अणुत्तरेसु भवे॥

- पहले दूसरे देवलोक में १३, तीसरे चौथे देवलोक में १२, पांचवें देवलोक में ६, छठे में ५, सातवें देवलोक में ४, आठवें देवलोक में चार, नौवे-दसवें देवलोक में ४, ग्यारहवें बारहवें देवलोक में ४ विमान प्रस्तट है। ग्रैवेयक की तीन त्रिक में तीन-तीन इस प्रकार नौ और पांच अनुत्तर विमानों में एक विमान प्रस्तट हैं। इस प्रकार कुल ६२ विमान प्रस्तट हैं। प्रस्तुत सूत्र में पांचवें देवलोक के छह विमान पाथडों के नाम बताये गये हैं।

सात नरकों में ४९ प्रस्तट (पाथडे) हैं। जैसा कि कहा है -

तेरसिक्कारस नव सत्त पंच तिण्णेव होंति एक्को य।
पत्थड संखा एसा सत्तसु वि कमेण पुढवीसु॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

- रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर सातवीं तमतमा पृथ्वी पर्यन्त पाथडों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है - तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और एक। प्रत्येक नरक में दो तरह के नरकावास हैं - आवलिका प्रविष्ट और पुष्पावकीर्ण। प्रस्तुत सूत्र में जिस जिस नरक में छह-छह अपक्रान्त महानरकावास हैं उन्हीं का उल्लेख किया है। ये सभी आवलिका प्रविष्ट हैं। इन अपक्रान्त नरकावासों में एकान्त अधर्मी जीव ही उत्पन्न होते हैं।

तेइन्द्रिय जीवों का संयम, असंयम

अभिचंदे णं कुलकरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था । भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्व सयसहस्साइं महाराया हुत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स छ सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं संपया होत्था । वासुपूज्जे ण अरहा छहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे जाव पव्वइए । चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे होत्था । तेइंदियाणं जीवाणं असमारभमाणस्स छव्विहे संजमे कज्जइ तंजहा - घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, घाणामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, जिब्भामएणं दुक्खेणं अंसजोइत्ता भवइ, फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, फासामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ । तेइंदियाणं जीवाणं समारभमाणस्स छव्विहे असंजमे कज्जइ तंजहा- घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवित्ता भवइ, घाणमएणं दुक्खेणं संजोइत्ता भवइ, जाव फासमएणं दुक्खेणं संजोइत्ता भवइ॥ ५४॥

कठिन शब्दार्थ - **पुरिसादाणीयस्स** - पुरुषों में आदरणीय-पुरुषों में सर्वोत्तम, **सदेवमणुयासुराए**- देव, मनुष्य और असुरों की, **अपराजियाणं** - अपराजित-न जीते जा सकने वाले, **असमारभमाणस्स** - आरम्भ यानी हिंसा न करने वाले पुरुष का, **सोक्खाओ** - सुख से, **अववरोवित्ता** - वंचित नहीं होता है, **दुक्खेणं** - दुःख से।

भावार्थ - इस अवसर्पिणी काल के चौथे कुलकर अभिचन्द्र के शरीर की ऊंचाई छह सौ धनुष की थी। चतुरन्त यानी सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का स्वामी प्रथम चक्रवर्ती भरत राजा ने छह लाख पूर्व तक राज्य किया था। पुरुषों में आदरणीय यानी पुरुषों में सर्वोत्तम तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के देव, मनुष्य और असुरों की सभा में न जीते जा सकने वाले छह सौ वादी थे। बारहवें तीर्थङ्कर श्री वासुपूज्य स्वामी छह सौ पुरुषों के साथ मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे। आठवें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी छह महीने तक छद्मस्थ रहे थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेइन्द्रिय जीवों का आरम्भ यानी हिंसा न करने वाले पुरुष को छह प्रकार का संयम होता है यथा-वह तेइन्द्रिय जीव को घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है और उसे घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करवाता है। वह जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है और उसे जिह्वेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करवाता है। वह स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है और उसे स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करवाता है। तेइन्द्रिय जीवों का आरम्भ यानी हिंसा करने वाले पुरुष को छह प्रकार का असंयम होता है यथा - वह तेइन्द्रिय जीव को घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है और उसे घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करवाता है। यावत् उसे स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करवाता है ।

विवेचन - इस भरत क्षेत्र के तीन तरफ समुद्र है और चौथी तरफ हिमवान् पर्वत है । इन चारों तरफ से घिरी हुई समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का जो स्वामी हो वह चातुरन्त कहलाता है । ऐसा जो चक्रवर्ती हो वह चातुरन्त चक्रवर्ती कहलाता है ।

जंबूद्वीप वर्णन

जंबूद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - हेमवए, हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा । जंबूद्दीवे दीवे छव्वासा पण्णत्ता तंजहा - भरहे, एरवए, हेमवए, हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे । जंबूद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रूप्पी, सिहरी । जंबूमंदर दाहिणेणं छ कूडा पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंतकूडे, वेसमणकूडे, महाहिमवंतकूडे, वेरुलियकूडे, णिसढकूडे, रुयगकूडे । जंबूमंदर उत्तरेणं छ कूडा पण्णत्ता तंजहा - णीलवंतकूडे, उवदंसणकूडे, रुप्पिकूडे, मणिकंचणकूडे, सिहरिकूडे, तिगिच्छकूडे । जंबूद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता तंजहा - पउमद्दहे, महापउमद्दहे, तिगिच्छद्दहे, केसरिद्दहे, महापुंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे । तत्थ णं छ देवयाओ महड्डियाओ जाव पलिओवम ठिइयाओ परिवसंति तंजहा - सिरी, हिरी, धिई, कित्ती, बुद्धी, लच्छी । जंबूमंदर दाहिणेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - गंगा, सिंधू, रोहिया, रोहितंसा, हरी, हरिकंता । जंबूमंदर उत्तरेणं छ महाणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - णरकंता, णारीकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवई । जंबूमंदर पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उभयकूले छ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - गाहावई, दहावई, पंकवई, तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला । जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उभयकूले छ अंतरणईओ पण्णत्ताओ तंजहा - खीराओ, सीहसोआ, अंतोवाहिणी, उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी । धायईसंडदीवपुरच्छिमद्धेणं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा - हेमवए, एवं जहा जंबूद्दीवे दीवे तहा णई जाव अंतरणईओ जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे भाणियव्वं ।

ऋतुएँ, क्षयतिथियाँ वृद्धितिथियाँ

छ उऊ पण्णत्ताओ तंजहा - पाउसे, वरिसारत्ते, सरए, हेमंते, वसंते, गिम्हे । छ ओमरत्ता पण्णत्ता तंजहा- तईए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पण्णरसमे पव्वे, एगुणवीसइमे पव्वे, तेवीसइमे पव्वे । छ अइरत्ता पण्णत्ता तंजहा - चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, दुवालसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसइमे पव्वे, चउवीसइमे पव्वे ॥ ५५ ॥

कठिन शब्दार्थ - अकम्मभूमीओ - अकर्मभूमियाँ, **वासहरपव्वया** - वर्षधर पर्वत, **कूडा** - कूट, **महद्दहा** - महाद्रह, **महड्ढियाओ** - महान् ऋद्धि वाली, **अंतरणईओ** - अन्तर्नदियाँ, **उऊ** - ऋतुएं, **पाउसे** - प्रावृट्, **वरिसारत्ते** - वर्षा, **सरए** - शरद, **हेमंते** - हेमन्त, **वसंते** - वसन्त, **गिम्हे** - ग्रीष्म, **ओमरत्ता** - अवम रात्रि-घटती तिथि, **पव्वे** - पर्व, **अइरत्ता** - अतित रात्रि-बढ़ती तिथि।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में छह अकर्मभूमियाँ कही गई है यथा - हेमवय, हिरण्णवय, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु । इस जम्बूद्वीप में छह क्षेत्र कहे गये हैं यथा - भरत, एरवत, हेमवय, हिरण्णवय, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष । इस जम्बूद्वीप में छह वर्षधर पर्वत कहे गये हैं यथा - चुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी और शिखरी । इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा में छह कूट कहे गये हैं यथा - चुल्लहिमवान् कूट, वैश्रमणकूट, महाहिमवान् कूट, वेरुलियकूट, निषधकूट और रुचककूट । इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर दिशा में छह कूट कहे गये हैं यथा - नीलवंतकूट, उपदर्शनकूट, रुक्मीकूट, मणिकंचनकूट, शिखरी कूट, तिगिच्छकूट । इस जम्बूद्वीप में छह महाद्रह कहे गये हैं यथा - पद्मद्रह, महापद्मद्रह, तिगिच्छद्रह, केशरीद्रह, महापुण्डरीकद्रह, पुण्डरीकद्रह । वहाँ महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली छह देवियाँ रहती हैं यथा - श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी। इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्जत के दक्षिण दिशा में छह महानदियाँ कही गई हैं यथा - गंगा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा, हरी और हरिकान्ता । इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर दिशा में छह महानदियाँ कही गई हैं यथा - नरकान्ता, नारीकान्ता, सुवर्णकूला, रुप्यकूला, रक्ता, रक्तवती । इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में सीता महानदी के दोनों तटों पर छह अन्तर्नदियाँ कही गई हैं यथा - गाहावती, द्रहवती, पङ्कवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला । इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दोनों तटों पर छह अन्तर्नदियाँ कही गई हैं यथा - क्षीरोदा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिंहस्रोता, अन्तर्वाहिनी, उर्मिमालिनी, फेनमालिनी और गम्भीरमालिनी । जैसा जम्बूद्वीप का अधिकार कहा है वैसा ही सारा अधिकार धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध यावत् अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में अकर्मभूमियाँ, नदियाँ, अन्तर्नदियाँ आदि सब कह देना चाहिए।

छह ऋतुएं कही गई हैं यथा - १. प्रावृट् - आषाढ और श्रावण मास । २. वर्षा - भाद्रपद और आश्विन । ३. शरद् - कार्तिक और मिगसर। ४. हेमन्त - पौष और माघ । ५. वसन्त - फाल्गुन और चैत्र । ६. ग्रीष्म - वैशाख और ज्येष्ठ । छह अवमरात्रि यानी न्यून तिथि वाले पक्ष कहे गये हैं अर्थात् चन्द्रमास की अपेक्षा छह पखवाड़ों में एक एक तिथि घटती है यथा - तृतीय पर्व यानी लौकिक ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा तीसरा पक्ष अर्थात् आषाढ मास का कृष्ण पक्ष, भाद्रपद का कृष्ण पक्ष, कार्तिक मास का कृष्ण पक्ष, पौष का कृष्ण पक्ष, फाल्गुन का कृष्ण पक्ष और वैशाख का कृष्ण पक्ष । छह अतिरात्रि यानी अधिक तिथि वाले पक्ष कहे गये हैं यानी सूर्य मास की अपेक्षा छह पखवाड़ों में एक एक तिथि बढ़ती है यथा - चौथा पर्व यानी लौकिक ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा चौथा पक्ष अर्थात् आषाढ मास का शुक्ल पक्ष, भाद्रपद का शुक्ल पक्ष, कार्तिक का शुक्ल पक्ष, पौष का शुक्ल पक्ष, फाल्गुन का शुक्ल पक्ष और वैशाख का शुक्ल पक्ष ।

विवेचन - अकर्म भूमि - जहां असि, मसि और कृषि किसी प्रकार का कर्म करके आजीविका नहीं करते हैं, ऐसे क्षेत्रों को अकर्म भूमियां कहते हैं। जम्बूद्वीप में छह अकर्म भूमियां हैं - १. हैमवत् २. हैरण्यवत् ३. हरिवर्ष ४. रम्यकवर्ष ५. देवकुरु ६. उत्तरकुरु। जंबूद्वीप में सात वर्ष-क्षेत्र है। परंतु यहां छठा स्थानक का कथन होने से छह कहे हैं। अथवा वर्षधर पर्वतों के संबंध से छह क्षेत्र कहे हैं। वर्ष अर्थात् क्षेत्र को धारण करने वाला यानी मर्यादा करने वाला वर्षधर पर्वत कहलाता है।

ऋतु - दो मास का काल विशेष ऋतु कहलाता है। ऋतुएं छह होती है - १. आषाढ और श्रावण मास में प्रावट् ऋतु होती है २. भाद्रपद और आश्विन मास में वर्षा ३. कार्तिक और मार्गशीर्ष में शरद् ४. पौष और माघ में हेमन्त ५. फाल्गुन और चैत्र में वसन्त ६. वैशाख और ज्येष्ठ में ग्रीष्म। यह आगमानुसार ऋतुएं कही गयी हैं।

ऋतुओं के लिए लोक व्यवहार इस प्रकार हैं -

१. वसन्त - चैत्र और वैशाख ।

२. ग्रीष्म - ज्येष्ठ और आषाढ ।

३. वर्षा - श्रावण और भाद्रपद ।

४. शरद् - आश्विन और कार्तिक ।

५. शीत - मिगसर और पौष ।

६. हेमन्त - माघ और फाल्गुन ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्यूनतिथि वाले पर्व छह -

अमावस्या या पूर्णिमा को पर्व कहते हैं। इनसे युक्त पक्ष भी पर्व कहा जाता है। चन्द्र मास की अपेक्षा छह पक्षों में एक एक तिथि घटती है। वे इस प्रकार हैं -

१. आषाढ़ का कृष्णपक्ष २. भाद्रपद का कृष्णपक्ष ३. कार्तिक का कृष्णपक्ष ४. पौष का कृष्णपक्ष ५. फाल्गुन का कृष्णपक्ष ६. वैशाख का कृष्णपक्ष।

अधिक तिथि वाले पर्व छह -

सूर्यमास की अपेक्षा छह पक्षों में एक एक तिथि बढ़ती है। वे इस प्रकार हैं - १. आषाढ़ का शुक्लपक्ष २. भाद्रपद का शुक्लपक्ष ३. कार्तिक का शुक्लपक्ष ४. पौष का शुक्लपक्ष ५. फाल्गुन का शुक्लपक्ष ६. वैशाख का शुक्लपक्ष।

अर्थावग्रह, अवधिज्ञान के भेद

आभिणिबोहिय णाणस्स णं छव्विहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदियत्थोग्गहे जाव णोइंदियत्थोग्गहे । छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते तंजहा - आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हीयमाणए, पडिवाई, अपडिवाई ।

कुत्सित वचन

णो कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं इमाइं छ अवयणाइं वइत्तए तंजहा - अलियवयणे, हीलियवयणे, खिंसियवयणे, फरुसवयणे, गारत्थियवयणे, विउसमियं वा पुणो उदीरित्तए ॥ ५६ ॥

कठिन शब्दार्थ - अत्थोग्गहे - अर्थावग्रह, **अवयणाइं** - कुत्सित वचन, **वइत्तए** - बोलना, **अलीयवयणे** - अलीक वचन, **हीलियवयणे** - हीलित वचन, **खिंसियवयणे** - खिंसित वचन, **फरुसवयणे** - परुष वचन, **गारत्थियवयणे** - गृहस्थ वचन, **विउसमियं** - व्युपशमित।

भावार्थ - आभिनिबोधिक ज्ञान यानी मतिज्ञान का अर्थावग्रह छह प्रकार का है । यथा - श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षु इन्द्रिय अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय अर्थात् मन सम्बन्धी अर्थावग्रह । अवधिज्ञान छह प्रकार का कहा गया है । यथा - १. आनुगामिक - जो अवधिज्ञान नेत्र की तरह ज्ञानी का अनुगमन करता है अर्थात् उत्पत्ति स्थान को छोड़ कर ज्ञानी के देशान्तर जाने पर भी साथ रहता है वह आनुगामिक अवधिज्ञान है । २. अनानुगामिक - जो अवधिज्ञान स्थिर प्रदीप की तरह ज्ञानी का अनुसरण नहीं करता अर्थात् उत्पत्ति स्थान को छोड़ कर ज्ञानी के दूसरी जगह चले जाने पर नहीं रहता वह अनानुगामिक अवधिज्ञान है। ३. वर्धमान - जैसे अग्नि की ज्वाला ईंधन पाने पर अधिकाधिक बढ़ती जाती है, उसी प्रकार जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञान शुभ अध्यवसाय होने पर अपनी पूर्वावस्था में उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है। ४. हीयमान - जैसे अग्नि की ज्वाला ईंधन न पाने से क्रमशः घटती जाती है, उसी प्रकार जो अवधिज्ञान संक्लेशवश परिणामों की विशुद्धि के घटने से उत्पत्ति समय की अपेक्षा क्रमशः घटता जाता है वह हीयमान अवधिज्ञान है। ५. प्रतिपाती - जो अवधि ज्ञान उत्कृष्ट सर्वलोक परिमाण विषय करके चला जाता है वह प्रतिपाती अवधिज्ञान है। ६. अप्रतिपाती - जो अवधिज्ञान केवलज्ञान होने से पहले नष्ट नहीं होता है वह अप्रति-पाती अवधिज्ञान है। जिस अवधिज्ञानी को सम्पूर्ण लोक के आगे एक भी प्रदेश जानने की शक्ति हो जाती है उसका अवधिज्ञान अप्रतिपाती समझना चाहिए। यह बात सामर्थ्य यानी शक्ति की अपेक्षा कही गई है। वास्तव में अलोकाकाश रूपी द्रव्यों से शून्य है इसलिए वहाँ अवधिज्ञानी कुछ नहीं देख सकता है। ये छहों भेद मनुष्यों में होने वाले क्षायोपशमिक अवधिज्ञान के हैं। तिर्यंच में भी छह प्रकार का अवधिज्ञान हो सकता है।

साधु साध्वियों को ये छह कुत्सित वचन बोलना नहीं कल्पता हैं। यथा - अलीक वचन - झूठा वचन कहना । हीलित वचन - ईर्ष्या पूर्वक दूसरे को नीचा दिखाने वाले अवहिलना के वचन कहना । खिंसित वचन - दीक्षा से पहले की जाति या कर्म आदि को बार बार कह कर चिढ़ाना । परुष वचन - कठोर वचेना कहना । गृहस्थ वचन-गृहस्थों की तरह किसी को पिता, चाचा, मामा आदि कहना । व्युपशमित यानी शान्त हुए कलह को उभारने वाले वचन कहना। उपरोक्त प्रकार के वचन साधु साध्वियों को बोलने नहीं कल्पते हैं ।

विवेचन - अर्थावग्रह - इन्द्रियों द्वारा अपने अपने विषयों का अस्पष्ट ज्ञान अवग्रह कहलाता है। इसके दो भेद हैं - व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह। जिस प्रकार दीपक के द्वारा घटपटादि पदार्थ प्रकट किये जाते हैं उसी प्रकार जिसके द्वारा पदार्थ व्यक्त अर्थात् प्रकट हों ऐसे विषयों के इन्द्रियज्ञान योग्य स्थान में होने रूप सम्बन्ध को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। अथवा दर्शन द्वारा पदार्थ का सामान्य प्रतिभास होने पर विशेष जानने के लिए इन्द्रिय और पदार्थों का योग्य देश में मिलना व्यञ्जनावग्रह है।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि अर्थ अर्थात् विषयों को सामान्य रूप से जानना अर्थावग्रह है। इसके छह भेद हैं - १. श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह २. चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह ३. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह ४. रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह ५. स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह ६. नोइन्द्रिय (मन) अर्थावग्रह।

रूपादि विशेष की अपेक्षा किए बिना केवल सामान्य अर्थ को ग्रहण करने वाला अर्थावग्रह पाँच इन्द्रिय और मन से होता है इसलिए इसके उपरोक्त छह भेद हो जाते हैं।

अर्थावग्रह के समान ईहा, अवाय और धारणा भी ऊपर लिखे अनुसार पाँच इन्द्रिय और मन द्वारा होते हैं। इसलिए इनके भी छह छह भेद जानने चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भव या क्षयोपशम से प्राप्त लब्धि के कारण रूपी द्रव्यों को विषय करने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिज्ञान के छह भेद हैं। जिनका वर्णन भावार्थ में किया गया है।

बुरे वचनों को अप्रशस्त वचन कहते हैं। वे साधु साध्वियों को बोलना नहीं कल्पते हैं। इनके उपरोक्तानुसार छह भेद कहे हैं।

कल्प प्रस्तार, कल्पपलिमंथू

छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवायस्स वायं वयमाणे, मुसावायस्स वायं वयमाणे, अदिण्णादाणस्स वायं वयमाणे, अविरइवायं वयमाणे, अपुरिसवायं वयमाणे, दासवायं वयमाणे, इच्चेए छ कप्पस्स पत्थारे पत्थरित्ता सम्मं अपरिपूरेमाणो तट्ठाणपत्ते । छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता तंजहा - कुक्कुइए संजमस्स पलिमंथू, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू, चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमंथू, तिंतिणिए एसणागोयरस्स पलिमंथू, इच्छालोभिए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू, भिज्जा णियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू, सव्वत्थ भगवया अणियाणया पसत्था ।

कल्पस्थिति

छव्विहा कप्पठिई पण्णत्ता तंजहा - सामाइय कप्पठिई, छेओवट्ठावणिय कप्पठिई, णिव्विसमाण कप्पठिई, णिविट्ठकप्पठिई, जिणकप्पठिई, थिविरकप्पठिई । समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे जाव पव्वइए ।

समणस्स भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरणाण दंसणे समुप्पण्णे । समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

सणंकुमार माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। सणंकुमार माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भव धारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता॥ ५७॥

कठिन शब्दार्थ - कप्पस्स - कल्प के, **पत्थारा** - प्रस्तार, **तट्ठाणपत्ते** - उस स्थान को प्राप्त, **पलिमंथू** - मंथन-घात करने वाले, **कुक्कुइए** - कौकुचिक, **मोहरिए** - मौखरिक, **चक्खुलोलुए** - चक्षुलोलुप, **तिंतिणिए** - तिंतिणक, **कप्पठिई** - कल्पस्थिति।

भावार्थ - कल्प यानी संयम के छह प्रस्तार यानी प्रायश्चित्त कहे गये हैं । यथा - हिंसा की बात कहना यानी हिंसा न करने पर भी किसी व्यक्ति पर हिंसा का दोष लगाना । मृषावाद बोलना यानी झूठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न बोलने पर भी दूसरे व्यक्ति पर झूठ बोलने का कलंक लगाना । अदत्तादान की बात कहना यानी चोरी न करने पर भी दूसरे पर चोरी का दोष मढना । अविरति की बात कहना यानी ब्रह्मचर्य का भंग न करने पर भी दूसरे पर ब्रह्मचर्य भंग का दोष लगाना । अपुरुष की बात कहना यानी किसी साधु के लिए झूठ मूठ यह कह देना कि यह पुरुषत्व हीन अर्थात् हींजड़ा है या पुरुष नहीं है । दासपने की बात कहना यानी किसी साधु के लिए यह कहना कि 'यह पहले दास था और इसको अमुक व्यक्ति ने मोल लिया था ।' संयम के इन छह प्रायश्चित्तों का कथन करने वाला व्यक्ति दूसरों पर लगाये गये उपरोक्त दोषों को प्रमाणित (साबूती) न कर सके तो वह स्वयं उस स्थान को प्राप्त हो जाता है । यानी दूसरे पर झूठा कलंक वाले व्यक्ति को उतना ही प्रायश्चित्त आता है जितना उस दोष के वास्तविक सेवन करने वाले को आता है । कल्प के यानी साधु के आचार का मन्थन अर्थात् घात करने वाले कल्पपलिमंथु कहलाते हैं । वे छह हैं। यथा - १. कौकुचिक-स्थान, शरीर और भाषा की अपेक्षा कुत्सित चेष्टा करने वाला कौकुचिक साधु संयम का घातक होता है । २. मौखरिक - बहुत बोलने वाला एवं अप्रिय और कठोर वचन बोलने वाला साधु सत्य-वचन का घातक होता है । ३. चक्षुलोलुप - मार्ग में चलते हुए इधर उधर देखने वाला चञ्चल साधु ईर्या समिति का घातक होता है । ४. तिंतिणक - आहार, उपधि या शय्या न मिलने पर खेदवश बिना विचारे जैसे तैसे बोल देने वाला तनुक मिजाज साधु एषणा समिति का घातक होता है क्योंकि ऐसे स्वभाव वाला साधु दुःखी होकर अनेषणीय आहार आदि भी ले लेता है । ५. इच्छा लोभिक - अतिशय लोभ और इच्छा होने से अधिक उपधि को ग्रहण करने वाला साधु निर्लोभता निष्परिग्रहता रूप मुक्तिमार्ग का घातक होता है । ६. भिज्झा यानी लोभ के वश चक्रवर्ती, इन्द्र आदि की ऋद्धि का नियाणा करने वाला साधु सम्यग् ज्ञान, दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का घातक होता है । सर्वत्र यानी सब जगह यहाँ तक कि चरमशरीरी और तीर्थंकर पद के लिए भी नियाणा न करना श्रेष्ठ है, इस प्रकार भगवान् ने फरमाया है । कल्पस्थिति यानी साधु के आचार की मर्यादा छह प्रकार की कही गई है। यथा -

१. सामायिक कल्पस्थिति - सर्व सावद्य विरति रूप ❀ सामायिक चारित्र वाले संयमी साधुओं की मर्यादा सामायिक कल्प स्थिति है । सामायिक कल्प प्रथम और चरम तीर्थंकरों के

❀ १. शय्यातर पिण्ड का त्याग, २. चार महाव्रतों का पालन, ३. कृतिकर्म ४. पुरुष ज्येष्ठता ये चार सामायिक चारित्र वालों में नियमित रूप से (नियमा से) होते हैं । इन्हें अवस्थित कल्प कहते हैं।

१. सफेद और प्रमाणोपेत वस्त्र की अपेक्षा अचेलता, २. औद्देशिक आदि दोषों का त्याग, ३. राजपिण्ड का त्याग, ४. प्रतिक्रमण, ५. मासकल्प, ६. पर्युषण कल्प, ये छह सामायिक चारित्र के अनवस्थित कल्प हैं अर्थात् ये अनियमित रूप से (भजना से) पाले जाते हैं ।

प्रथम और चरम तीर्थंकर के शासन में पांच महाव्रतों का अवस्थित कल्प होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं में इत्वर (स्वल्प) कालीन और बीच के २२ तीर्थंकरों के शासन में और महाविदेह क्षेत्र में यावज्जीवन होता है । और सभी तीर्थङ्करों के यावज्जीवन होता है ।

२. छेदोपस्थापनीय कल्प स्थिति - जिस चारित्र में पूर्व पर्याय को छेद कर फिर महाव्रतों का आरोपण हो उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं और इसकी मर्यादा को छेदोपस्थापनीय कल्प स्थिति कहते हैं । यह चारित्र प्रथम और चरम तीर्थंकरों के साधुओं में ही होता है । सामायिक कल्प स्थिति में बताये हुए अवस्थित कल्प के चार और अनवस्थित कल्प के छह, कुल दस बोलों का पालन करना छेदोपस्थापनीय चारित्र की मर्यादा है ।

३. निर्विशमान कल्प स्थिति - परिहार ✽ विशुद्धि चारित्र अङ्गीकार करने वाले पारिहारिक साधुओं की आचार मर्यादा को निर्विशमानकल्प स्थिति कहते हैं । पारिहारिक साधु ग्रीष्मकाल में जघन्य उपवास, मध्यम बेला और उत्कृष्ट तेला तप करते हैं । शीतकाल में जघन्य बेला, मध्यम तेला और उत्कृष्ट चौला तथा वर्षाकाल में जघन्य तेला, मध्यम चौला और उत्कृष्ट पचोला तप करते हैं । पारणे के दिन आयंबिल करते हैं । संसृष्ट और असंसृष्ट पिण्डैषणाओं को छोड़ कर शेष पांच में से इच्छानुसार आहार, पानी लेते हैं। इस प्रकार पारिहारिक साधु छह मास तक तप करते हैं। शेष चार आनुपारिहारिक एवं कल्पस्थित (गुरु रूप) ये पांच साधु सदा आयम्बिल ही करते हैं। इस प्रकार छह मास तक तप कर लेने के बाद वे आनुपारिहारिक अर्थात् वैयावृत्य करने वाले हो जाते हैं और वैयावृत्य करने वाले (आनुपारिहारिक) साधु पारिहारिक बन जाते हैं। अर्थात् तप करने लग जाते हैं यह क्रम भी छह मास तक पूर्ववत् चलता है। इस प्रकार आठ साधुओं के तप कर लेने पर उनमें से एक साधु गुरु पद पर स्थापित किया जाता है। शेष सात साधु वैयावृत्य करते हैं। पहले गुरु पद पर रहा हुआ साधु तप करना शुरू करता है। यह भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में यह परिहार तप का कल्प पूर्ण होता है। परिहार तप पूर्ण होने पर वे नव साधु या तो इसी कल्प को पुनः प्रारम्भ करते हैं या जिनकल्प धारण कर लेते हैं अथवा वापिस गच्छ में आ जाते हैं। यह चारित्र छेदोपस्थापनीय चारित्र वालों के ही होता हैं दूसरों के नहीं।

४. निर्विष्ट कल्प स्थिति - पारिहारिक तप पूरा करने के बाद जो वैयावृत्य करने लगते हैं वे निर्विष्टकायिक कहलाते हैं । इन्हीं को अनुपारिहारिक भी कहा जाता है । इनकी मर्यादा निर्विष्ट कायिक कल्प स्थिति कहलाती है ।

५. जिनकल्पस्थिति - गुरु महाराज की आज्ञा लेकर उत्कृष्ट चारित्र पालन करने की इच्छा से

✽ चारित्रवान् और उत्कृष्ट सम्यक्त्वधारी साधुओं का गण परिहार विशुद्धि चारित्र अङ्गीकार करता है । ये जघन्य नव पूर्वधारी और उत्कृष्ट किञ्चिन्न्यून दस पूर्वधारी होते हैं । वे व्यवहार कल्प और प्रायश्चित्तों में कुशल होते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गच्छ से निकले हुए साधु जिनकल्पी कहे जाते हैं । इनके आचार को जिनकल्प स्थिति कहते हैं । जघन्य नववें पूर्व की तृतीय आचार वस्तु और उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्वधारी साधु जिनकल्प अङ्गीकार करते हैं । वे वज्रऋषभ नाराच संहनन के धारक होते हैं । अकेले रहते हैं, उपसर्ग और रोगादि की वेदना को औषधादि का उपचार किये बिना सहते हैं । उपाधि से रहित स्थान में रहते हैं । पिछली पांच में से किसी एक पिण्डैषणा का अभिग्रह करके भिक्षा लेते हैं।

६. **स्थविर कल्पस्थिति** – गच्छ में रहने वाले साधुओं के आचार को स्थविर कल्प स्थिति कहते हैं । सतरह प्रकार के संयम का पालन करना, तप और प्रवचन को दीपाना, शिष्यों में ज्ञान, दर्शन चारित्र आदि गुणों की वृद्धि करना, वृद्धावस्था में जंघाबल क्षीण हो जाने पर वसति, आहार और उपधि के दोषों का परिहार करते हुए एक ही स्थान में रहना आदि स्थविर का आचार है ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चौविहार छट्ठ भत्त (बेले) का तप करके मुण्डित यावत् प्रव्रजित हुए थे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को चौविहार छट्ठ भत्त (बेले) के तप से अनन्त, प्रधान केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चौविहार छट्ठ भत्त (बेले) के तप से सब दुःखों का अन्त करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए थे ।

तीसरे सनत्कुमार और चौथे माहेन्द्र नामक देवलोकों में विमान छह सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं । तीसरे सनत्कुमार और चौथे माहेन्द्र नामक देवलोकों में देवों की भवधारणीय शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट छह हाथ की कही गई है ।

विवेचन – प्रस्तुत सूत्रों में कल्प यानी संयम के छह प्रस्तार-प्रायश्चित, कल्प पलिमंथु यानी साधु के आचार का मन्थन-घात करने वाले के छह भेद और छह प्रकार की कल्पस्थिति-साधु के शास्त्रोक्त आचार का वर्णन किया गया है।

भोजन परिणाम, विष परिणाम, प्रश्न

छव्विहे भोयण परिणामे पण्णत्ते तंजहा – मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, दीवणिज्जे, दप्पणिज्जे। छव्विहे विस परिणामे पण्णत्ते तंजहा – डक्के, भुत्ते, णिव्वइए, मंसाणुसारी, सोणियाणुसारी, अट्ठिमिंजाणुसारी । छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते तंजहा – संसयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे अतहणाणे । चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिए उववाएणं । एगमेगे णं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासा विरहिए उववाएणं । अहेसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं । सिद्धि गई णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववाएणं॥ ५८ ॥

कठिन शब्दार्थ – **भोयण** – भोजन, **परिणामे** – परिणाम, **रसिए** – रस युक्त, **पीणणिज्जे** –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रीणनीय, **बिंहणिज्जे** - बृंहनीय, **दीवणिज्जे** - दीपनीय, **दप्पणिज्जे** - दर्पनीय, **विस परिणामे** - विष परिणाम, **डक्के** - दष्ट, **भुत्ते** - भुक्त, **णिव्वइए** - निपतित, **मंसाणुसारी** - मांसानुसारी, **सोणियाणुसारी**- शोणितानुसारी, **अट्ठिमिंजाणुसारी** - अस्थिमिञ्जानुसारी, **पट्ठे** - प्रश्न, **संसयपट्ठे** - संशय प्रश्न, **वुग्गहेपट्ठे**- व्युद्ग्राह प्रश्न, **तहणाणे** - तथाज्ञान, **विरहिए** - विरह।

भावार्थ - भोजन का परिणाम छह प्रकार का होता है । यथा - १. मनोज्ञ अर्थात् कोई भोजन अभिलाषा योग्य होता है । २. रसिक - कोई भोजन माधुर्यादि रस युक्त होता है । ३. प्रीणनीय - कोई भोजन रसादि धातुओं को सम करने वाला होता है । ४. बृंहनीय - कोई भोजन की धातु वृद्धि करने वाला होता है । ५. दीपनीय - कोई भोजन पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला होता है । अथवा मदनीय - काम को जागृत करने वाला होता है । और ६. दर्पनीय - कोई भोजन उत्साह बढ़ाने वाला होता है । विष का परिणाम छह प्रकार का कहा गया है । यथा - दष्ट - दाढ आदि का विष जो डसे जाने पर चढ़ता है । यह दष्ट विष जङ्गम विष है । भुक्त - जो विष खाया जाने पर चढ़ता है । यह विष स्थावर विष है । निपतित - जो विष शरीर पर गिरने से चढ़ जाता है, जैसे दृष्टि विष । किसी किसी सर्प की दृष्टि में विष होता है उनकी नजर पड़ने मात्र से जहर चढ़ जाता है और त्वचा विष - किसी किसी की चमड़ी में विष होता है उनके शरीर का स्पर्श होते ही जहर चढ़ जाता है । ये तीन विष स्वरूप की अपेक्षा से हैं । मांसानुसारी - मांस तक फैल जाने वाला विष, शोणितानुसारी - खून तक फैल जाने वाला विष, अस्थिमिञ्जानुसारी - हड्डी में रही हुई मज्जा धातु तक असर करने वाला विष । ये तीन विष कार्य की अपेक्षा से है ।

प्रश्न - संशय निवारण या दूसरे को नीचा दिखाने की इच्छा से किसी बात को पूछना प्रश्न कहलाता है । प्रश्न छह प्रकार का कहा गया है । यथा - संशय प्रश्न - किसी अर्थ में संशय होने पर जो प्रश्न किया जाता है, वह संशय प्रश्न है । व्युद्ग्राह प्रश्न - दुराग्रह अथवा परपक्ष को दूषित करने के लिए किया जाने वाला प्रश्न व्युद्गाह प्रश्न है । अनुयोगी प्रश्न - अनुयोग अर्थात् किसी पदार्थ की व्याख्या एवं प्ररूपणा के लिए किया जाने वाला प्रश्न अनुयोगी प्रश्न कहलाता है । अनुलोम प्रश्न - सामने वाले को अनुकूल करने के लिए जो प्रश्न किया जाता है, जैसे 'आप कुशल तो हैं', इत्यादि । तथाज्ञान प्रश्न - जानते हुए भी जो प्रश्न किया जाता है वह तथाज्ञान प्रश्न है । अतथाज्ञान प्रश्न - नहीं जानते हुए जो प्रश्न किया जाता है वह अतथाज्ञान प्रश्न है ।

चमरेन्द्र की चमरचञ्चा राजधानी में उपपात यानी देव उत्पन्न होने की अपेक्षा उत्कृष्ट विरह छह महीने का है । प्रत्येक इन्द्र स्थान का उपपात की अपेक्षा उत्कृष्ट विरह छह महीने का है यानी एक इन्द्र के चव जाने पर दूसरे इन्द्र के उत्पन्न होने में उत्कृष्ट छह महीने का विरह पड़ सकता है । सब से नीचे की तमस्तमा नामक सातवीं नरक में उपपात की अपेक्षा उत्कृष्ट विरह छह महीने का पड़ सकता है । सिद्धि गति में उपपात की अपेक्षा यानी मोक्ष जाने में उत्कृष्ट विरह छह महीने का पड़ सकता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - छह प्रकार का भोजन परिणाम कहा है। यहां परिणाम का अर्थ है - स्वभाव या परिपाक। छह प्रकार के विष परिणामों में पहले तीन विष परिणाम स्वरूप की अपेक्षा और अंतिम तीन कार्य की अपेक्षा है।

आयु बन्ध

छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते तंजहा - जाइणामणिधत्ताउए, गइणामणिधत्ताउए, ठिइणामणिधत्ताउए, ओगाहणाणामणिधत्ताउए, पएसणामणिधत्ताउए, अणुभावणामणिधत्ताउए । णेरइयाण छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते तंजहा - जाइणामणिधत्ताउए जाव अणुभावणामणिधत्ताउए । एवं जाव वेमाणियाणं । णेरइया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति, एवामेव असुरकुमारावि जाव थणियकुमारा। असंखेज्जवासाउया सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिया णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति । असंखेज्जवासाउया सण्णिमणुस्सा णियमं जाव पगरेंति, वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया जहा णेरइया ।

छह भाव

छव्विहे भावे पण्णत्ते तंजहा - ओदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, परिणामिए, सण्णिवाइए॥ ५९ ॥

कठिन शब्दार्थ - आउयबंधे - आयु बन्ध, **ओगाहणाणामणिधत्ताउए** - अवगाहना नाम निधत्त आयु, **छम्मासावसेसाउया** - छह मास आयु शेष रहने पर, **परभवियाउयं** - परभव का आयुष्य, **ओदइए**- औदयिक, **उवसमिए** - औपशमिक, **खइए** - क्षायिक, **खओवसमिए** - क्षायोपशमिक, **परिणामिए** - पारिणामिक, **सण्णिवाइए** - सान्निपातिक।

भावार्थ - आयुबन्ध छह प्रकार का कहा गया है । यथा - १. जाति नाम निधत्त आयु - एकेन्द्रियादि जाति नामकर्म के साथ ❑ निषेक को प्राप्त हुआ जाति नाम निधत्तायु है। २. गति-नामनिधत्तआयु- नरक आदि गति नाम कर्म के साथ निषेक को प्राप्त आयु गति नाम निधत्तायु है । ३. स्थिति नामनिधत्तायु - आयुकर्म द्वारा जीव का विशिष्ट भव में रहना स्थिति है । स्थिति रूप परिणाम के साथ निषेक को प्राप्त आयु स्थिति नाम निधत्तायु है । ४. अवगाहना नाम निधत्त आयु - औदारिकादि शरीर नाम कर्म रूप अवगाहना के साथ निषेक को प्राप्त आयु अवगाहना नाम निधत्त आयु है । ५. प्रदेशनाम निधत्त आयु - प्रदेश नाम के साथ निषेक प्राप्त आयु प्रदेश नाम निधत्तायु है ।

❑ निषेक - फल भोग के लिए होने वाली कर्मपुद्गलों की रचना विशेष को निषेक कहते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. अनुभाव नाम निधत्तायु - आयु द्रव्य का विपाक रूप परिणाम अथवा अनुभाव रूप नामकर्म अनुभाव नाम है । अनुभाव नाम कर्म के साथ निषेक को प्राप्त आयु अनुभाव नाम निधत्तायु है । नैरयिक जीवों के छह प्रकार का आयुबन्ध कहा गया है। यथा - जाति नाम निधत्त आयु यावत् अनुभाव नाम निधत्त आयु । इसी प्रकार वैमानिक देवों पर्यन्त सभी जीवों के छह प्रकार का आयुबन्ध है ।

सभी नैरयिक जीव, असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक दस भवनपति, असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय, असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य, वाणव्यन्तर देव, ज्योतिषी देव और वैमानिक देव, ये सभी अपनी आयु छह महीने बाकी रहने पर परभव यानी अगले भव का आयुष्य बांधते हैं । छह प्रकार का भाव कहा गया है । यथा - १. औदयिक - यथायोग्य समय पर उदय में आये हुए आठ कर्मों का अपने अपने स्वरूप से फल भोगना उदय है । उदय से होने वाला भाव औदयिक है। २. औपशमिक-उपशम से होने वाला भाव औपशमिक कहलाता है । प्रदेश और विपाक दोनों प्रकार से कर्मों का उदय रुक जाना उपशम है । इस प्रकार का उपशम सर्वोपशम कहलाता है और वह सर्वोपशम मोहनीय कर्म का ही होता है, शेष कर्मों का नहीं । ३. क्षायिक - जो कर्म के सर्वथा क्षय होने पर प्रकट होता है वह क्षायिक भाव कहलाता है । ४. क्षायोपशमिक - उदय में आये हुए कर्म का क्षय और अनुदीर्ण अंश का विपाक की अपेक्षा उपशम होना क्षयोपशम कहलाता है । ५. पारिणामिक-कर्मों के उदय, उपशम आदि की अपेक्षा बिना जो भाव जीव को स्वभाव से ही होता है वह पारिणामिक भाव है । ६. सान्निपातिक-सन्निपात का अर्थ है संयोग । औदयिक आदि पांच भावों में से दो, तीन, चार या पांच के संयोग से होने वाला भाव सान्निपातिक भाव कहलाता है । द्विक संयोगी के दस भङ्ग, त्रिक संयोगी के दस, चतुस्संयोगी के पांच, और पञ्चसंयोगी का एक, इस प्रकार सान्निपातिक भाव के कुल मिला कर २६ छब्बीस भङ्ग होते हैं ।

इन में से छह भङ्ग के जीव पाये जाते हैं। शेष बीस भङ्ग शून्य है। अर्थात् कही नहीं पाये जाते हैं-

१. द्विक संयोगी भङ्गों में नवमा भङ्ग=क्षायिक पारिणामिक भाव सिद्धों में होता है। सिद्धों में ज्ञान दर्शन आदि क्षायिक तथा जीवत्व पारिणामिक भाव है।

२. त्रिक संयोगी भङ्गों में पांचवा भङ्ग=औदयिक क्षायिक पारिणामिक केवली में पाया जाता है। केवली में मनुष्य गति आदि औदयिक, ज्ञान दर्शन चारित्र आदि क्षायिक तथा जीवत्व पारिणामिक भाव हैं।

३. त्रिक संयोगी भङ्गों में छठा भङ्ग=औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक चारों गति में होता है। चारों गतियों में गति आदि रूप औदयिक, इन्द्रियादि रूप क्षयोपशमिक और जीवत्व रूप पारिणामिक भाव है।

४. चतुस्संयोगी भङ्गों में तीसरा भङ्ग=औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशिमिक पारिणामिक चारों गतियों में पाया जाता है। नरक, तिर्यंच और देव गति में प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय ही उपशम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाव होता है और मनुष्य गति में सम्यक्त्व प्राप्ति के समय तथा उपशम श्रेणी में औपशमिक भाव होता है। चारों गतियों में गति आदि औदयिक, सम्यक्त्व आदि औपशमिक, इन्द्रियादि क्षयोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक भाव हैं।

५. चतुस्संयोगी भङ्गों में चौथा भङ्ग=औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणाभिक चारों गतियों में पाया जाता है। चारों गतियों में गति आदि औदयिक, सम्यक्त्व आदि क्षायिक, इन्द्रियादि क्षायोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक भाव हैं।

६. पंच संयोग का भङ्ग उपशम श्रेणी स्वीकार करने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव में ही पाया जाता है, क्योंकि उसी में पांचों भाव एक साथ हो सकते हैं अन्य में नहीं। उक्त जीव में गति आदि औदयिक, चारित्र रूप औपशमिक क्षायिक सम्यक्त्व रूप क्षायिक, इन्द्रियादि क्षयोपशमिक भाव और जीवत्व पारिणामिक भाव है।

विवेचन - आगामी भव में उत्पन्न होने के लिये जाति, गति, आयु आदि का बांधना आयु बंध कहा जाता है। इसके छह भेद हैं। जाति आदि नाम कर्म के विशेषण से आयु के भेद बताने का यही आशय है कि आयु कर्म प्रधान है। यही कारण है कि नरकादि आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नाम कर्म का उदय होता है।

यहां भेद तो आयु के दिये हैं पर शास्त्रकार ने आयु बन्ध के छह भेद लिखे हैं। इससे शास्त्रकार यह बताना चाहते हैं कि आयु बन्ध से अभिन्न है। अथवा बन्ध प्राप्त आयु ही आयु शब्द का वाच्य है।

भाव - कर्मों के उदय, क्षय, क्षयोपशम या उपशम से होने वाले आत्मा के परिणामों को भाव कहते हैं। इसके छह भेद हैं।

छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते तंजहा - उच्चार पडिक्कमणे, पासवण पडिक्कमणे, इत्तरिए आवकहिए, जं किंचि मिच्छा, सोमणंतिए ।

कत्तिया णक्खत्ते छ तारे पण्णत्ते । असिलेसा णक्खत्ते छ तारे पण्णत्ते । जीवाणं छट्ठाण णिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तंजहा - पुढविकायणिव्वत्तिए जाव तसकाय णिव्वत्तिए । एवं चिण, उवचिण, बंध, उदीर, वेय, तह णिज्जरा चेव । छप्पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता । छह समय ठिइया पोग्गला अणंता पण्णत्ता । छगुण कालगा पोग्गला जाव छगुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ ६० ॥

।। छट्ठाणं छट्ठमज्झयणं समत्तं ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - उच्चार पडिक्कमणे - उच्चार प्रतिक्रमण, **पासवण पडिक्कमणे** - प्रस्रवण प्रतिक्रमण, **इत्तरिए** - इत्वर, **आवकहिए** - यावत्कथिक, **सोमणंतिए** - स्वप्नान्तिक ।

भावार्थ - प्रतिक्रमण - ग्रहण किये हुए व्रत प्रत्याख्यान में लगे हुए दोषों से निवृत्त होना प्रतिक्रमण कहलाता है । अथवा प्रमादवश पाप का आचरण हो जाने पर उसके लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' देना अर्थात् उस पाप को अकरणीय समझ कर दुबारा न करने का निश्चय करना और पाप से सदा सावधान रहना प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है -

स्वस्थानात् यत् परस्थानं प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते॥ १॥
क्षायोपशमिकाद्भावादोदयिकस्य वशं गतः।
तत्रापि च स एवार्थः प्रतिकूलगमात्स्मृतः॥ २॥

अर्थ - जो आत्मा अपने ज्ञान दर्शनादि रूप स्थान से प्रमाद के कारण दूसरे मिथ्यात्व आदि स्थानों में चला गया है उसका मुडकर फिर अपने स्थान में आना प्रतिक्रमण कहलाता है। अथवा जो आत्मा क्षायोपशमिक भाव से औदायिक भाव में गया है उसका फिर क्षायोपशमिक भाव में लौट आना प्रतिक्रमण कहलाता है। अथवा

''प्रति प्रति वर्तनं वा शुभेषु योगेषु मोक्षफलदेषु। निःशल्यस्य यतेर्यत्तद्वा ज्ञेयं प्रतिक्रमणम्॥''

अर्थात् शल्य रहित संयमी का मोक्षफल देने वाले शुभ योगों में प्रवृत्ति करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्रतिक्रमण छह प्रकार का कहा गया है । यथा -

१. उच्चार प्रतिक्रमण - उपयोग पूर्वक बडी नीत को परठ कर ईर्या का प्रतिक्रमण करना उच्चार प्रतिक्रमण है।

२. प्रस्रवण प्रतिक्रमण - उपयोग पूर्वक लघुनीत को परठ कर ईर्या का प्रतिक्रमण करना प्रस्रवण प्रतिक्रमण है।

३. इत्वर प्रतिक्रमण - स्वल्पकालीन जैसे दैवसिक, रात्रिक आदि प्रतिक्रमण इत्वर प्रतिक्रमण है ।

४. यावत्कथिक प्रतिक्रमण - महाव्रत तथा भक्त परिज्ञादि द्वारा सदा के लिए पाप से निवृत्ति करना यावत्कथिक प्रतिक्रमण कहलाता है ।

५. यत्किञ्चित् मिथ्या प्रतिक्रमण - संयम में सावधान साधु से प्रमादवश यदि कोई असंयम रूप विपरीत आचरण हो जाय तो 'वह मिथ्या है' इस प्रकार अपनी भूल को स्वीकार करते हुए 'मिच्छामि दुक्कडं' देना यत्किञ्चिन्मिथ्या प्रतिक्रमण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण – सो कर उठने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण है, अथवा स्वप्न देखने पर उसका प्रतिक्रमण करना स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण है ।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारों वाला कहा गया है । अश्लेषा नक्षत्र छह तारों वाला कहा गया है । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन छह कायों से निर्वर्तित पुद्गलों को जीवों ने पाप कर्म रूप से सञ्चय किये थे, सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे । जिस प्रकार ''चिण'' यानी सञ्चय करने का कहा गया है । उसी तरह उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना तथा निर्जरा के लिए भी कह देना चाहिए । छह प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। छह आकाशप्रदेशों का अवगाहन करने वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं । छह समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। छह गुण काले यावत् छह गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं।

विवेचन – स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण के लिये '**इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए**' का पाठ बोला जाता है। स्वप्न में प्राणातिपात आदि पांच आस्रव का सेवन हो गया हो तो उसकी शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग का विधान इस प्रकार है –

पाणि वह मुसावाए अदत्तमेहुण परिग्गहे चेव।

सयमेगं तु अणूणं, उसासाणं हवेज्जाहि॥

– प्राणीवध, मृषावाद, अदत्त, मैथुन और परिग्रह के संबंध में स्वप्न में दोष लगा हो, लगवाया हो और दोष लगाने वाले को भला जाना हो तो उसके लिये चार लोगस्स का काउस्सग्ग करना चाहिए।

।। इति छठा स्थान समाप्त ।।

✿ ✿ ✿ ✿

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ स्थान

छठे अध्ययन में छह संख्या युक्त पदार्थों की प्ररूपणा की गयी है। अब इस सातवें अध्ययन (स्थान) में सूत्रकार उन पदार्थों की विवेचना करेंगे जिनकी संख्या सात है। सातवें स्थानक में एक ही उद्देशक है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

गणापक्रमण

सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते तंजहा - सव्वधम्मा रोएमि, एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि, सव्वधम्मा वितिगिच्छामि, एगइया वितिगिच्छामि एगइया णो वितिगिच्छामि, सव्वधम्मा जुहुणामि एगइया जुहुणामि एगइया णो जुहणामि, इच्छामि णं भंते ! एगल्लविहार पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए॥

कठिन शब्दार्थ - गणावक्कमणे - गणापक्रमण, **वितिगिच्छामि** - सन्देह करता हूँ, **जुहुणामि**- देना चाहता हूँ, **एगल्लविहार** - एकल विहार ।

भावार्थ - गणापक्रमण - कारण विशेष से एक गण या संघ को छोड़ कर दूसरे गण में चला जाना या एकल विहार करना गणापक्रमण कहलाता है । आचार्य, उपाध्याय, स्थविर या अपने से बड़े साधु की आज्ञा लेकर ही दूसरे गण में जाना कल्पता है । इसी प्रकार एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में जाने की आज्ञा मांगने के लिए तीर्थङ्करों ने सात कारण बताये हैं । यथा - १. निर्जरा के हेतु मैं खन्ति (क्षमा), मुत्ति (निर्लोभता) आदि सभी धर्मों को पसन्द करता हूँ। सूत्र और अर्थ रूप श्रुत के नये भेद सीखना चाहता हूँ । भूले हुए को याद करना चाहता हूँ और पढे हुए की आवृत्ति करना चाहता हूँ । इन सब की व्यवस्था इस गण में नहीं है । इसलिए हे भगवन् ! मैं दूसरे गण में जाना चाहता हूँ इस प्रकार आज्ञा मांग कर दूसरे गण में जाना पहला गणापक्रमण है । अथवा दूसरे पाठ के अनुसार 'मैं सब धर्मों को जानता हूँ' इस प्रकार घमण्ड से गण छोड़ कर चला जाना पहला गणापक्रमण है । २. मैं श्रुत चारित्र रूप धर्म के कुछ भेदों का पालन करना चाहता हूँ और कुछ का नहीं । जिनका पालन करना चाहता हूँ उनके लिए इस गण में व्यवस्था नहीं है । इसलिए मैं दूसरे गण में जाना चाहता हूँ । इस कारण एक गण को छोड़ कर दूसरे में चला जाना दूसरा गणापक्रमण है । ३. मुझे सभी धर्मों में सन्देह है । अपना सन्देह दूर करने के लिए मैं दूसरे गण में जाना चाहता हूँ । यह तीसरा गणापक्रमण है । ४. मुझे कुछ धर्मों में सन्देह हैं और कुछ में नहीं। इसलिए दूसरे गण में जाना चाहता हूँ। यह चौथा गणापक्रमण है। ५. मैं सब धर्मों का ज्ञान दूसरे को देना चाहता हूँ । अपने गण में कोई पात्र न होने से मैं दूसरे गण में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाना चाहता हूँ । ६. कुछ धर्मों का ज्ञान दूसरे को देना चाहता हूँ । इस कारण दूसरे गण में जाना चाहता हूँ। ७. हे भगवन् ! गण से बाहर निकल कर मैं जिनकल्प आदि रूप एकलविहार पडिमा अङ्गीकार करना चाहता हूँ । इसलिए गण से निकलना सातवाँ गणापक्रमण है ।

विवेचन - छठे स्थानक के अंतिम सूत्र में पुद्‌गलों की पर्याय का कथन किया गया है तो सातवें स्थान के इस प्रथम सूत्र में पुद्‌गल विषयक क्षयोपशम से जो अनुष्ठान विशेष जीव को प्राप्त होता है उसके सात प्रकार बताये गये हैं। इस प्रकार दोनों सूत्रों का परस्पर संबंध है।

गण यानी गच्छ से अपक्रमण यानी निकलना अर्थात् एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में जाना गणापक्रमण कहलाता है। प्रस्तुत सूत्र में गणापक्रमण के सात कारण बताए हैं। आचार्य, उपाध्याय अथवा रत्नाधिक साधु की आज्ञा ले कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि की अभिवृद्धि के लिये एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में जाना दोष नहीं है।

विभंगज्ञान के भेद

सत्तविहे विभंगणाणे पण्णत्ते तंजहा - एग दिसिलोयाभिगमे, पंचदिसिलोयाभिगमे,किरियावरणे जीवे, मुदग्गे जीवे, अमुदग्गे जीवे, रूवी जीवे, सव्व मिणं जीवा । तत्थ खलु इमे पढमे विभंगणाणे - जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंग णाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासइ पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे, तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे एगदिसिं लोयाभिगमे । संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु पंचदिसिं लोयाभिगमे, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु पढमे विभंगणाणे । अहावरे दोच्चे विभंगणाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासइ - पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं जाव सोहम्मे कप्पे तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे पंचदिसिं लोयाभिगमे, संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु -एगदिसिं लोयाभिगमे, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, दोच्चे विभंगणाणे । अहावरे तच्चे विभंगणाणे, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासइ - पाणे अइवाएमाणे, मुसं वएमाणे, अदिण्णमाइयमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे वा, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो

पासइ,तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे, किरियावणे जीवे, संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु-णो किरियावरणे जीवे, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, तच्चे विभंगणाणे । अहावरे चउत्थे विभंगणाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासइ, बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता, फुरित्ता, फुट्टित्ता, विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए, तस्स णं एवं भवइ अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे मुदग्गे जीवे, संतेगइया समणा वा, माहणा वा, एवमाहंसु अमुदग्गे जीवे, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, चउत्थे विभंगणाणे । अहावरे पंचमे विभंगणाणे जया णं तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासइ बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं जाव विउव्वित्ताणं चिट्ठित्तए तस्स ण एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे अमुदग्गे जीवे, संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु-मुदग्गे जीवे जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु पंचमे विभंगणाणे । अहावरे छट्ठे विभंगणाणे, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासइ बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता जाव विउव्वित्ता चिट्ठित्तए, तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे रूवी जीवे, संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु - अरूवी जीवे, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, छठे विभंगणाणे । अहावरे सत्तमे विभंगणाणे, जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जइ, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासइ सुहुमेणं वाउकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं, तस्स णं एवं भवइ - अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे, सव्वमिणं जीवा, संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु - जीवा चेव अजीवा चेव, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, तस्स णं इमे चत्तारि जीव णिकाया णो सम्ममुवगया भवंति तंजहा - पुढविकाइया, आउकाइया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेउकाइया, वाउकाइया इच्चेएहिं चउहिं जीवणिकाएहिं मिच्छादंडं पवत्तेइ, सत्तमे विभंगणाणे॥ ६१ ॥

कठिन शब्दार्थ - विभंगणाणे - विभंगज्ञान, **लोयाभिगमे** - लोकाभिगम - लोक को जानना, **मुदग्गे** - बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों से बना हुआ शरीर, **समुप्पण्णेणं** - समुत्पन्न - उत्पन्न हुए, **अइवाएमाणे** - हिंसा करते हुए, **अदिण्ण- माइयमाणे** - चोरी करते हुए, **परियाइत्ता** - ग्रहण करके, **फुरित्ता** - स्फुरण करके, **फुट्टित्ता**-स्फोटन करके, **फुडं** - स्पृष्ट, **एयंतं** - कांपते हुए, **खुब्भंतं** - क्षुब्ध होते हुए, **सम्मुवगया** - सम्यक् ज्ञात ।

भावार्थ - विभंगज्ञान-मिथ्यात्व युक्त अवधिज्ञान सात प्रकार का कहा गया है । यथा - लोक को एक ही दिशा में जानना, लोक को पांच दिशाओं में जानना । क्रिया ही कर्म है और वही जीव का आवरण है ऐसा मानना । जीव पुद्गल रूप ही है, ऐसा मानना । जीव पुद्गल रूप नहीं है ऐसा मानना जीव रूपी है, ऐसा मानना । ये सभी जीव हैं । अब इन सातों विभंगज्ञानों का स्वरूप कहा जाता है उनमें से पहले विभङ्ग ज्ञान का स्वरूप इस प्रकार है - १. जब तथारूप यानी मिथ्यात्वी बाल तपस्वी को अज्ञान तप के द्वारा विभंगज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस उत्पन्न हुए विभङ्ग ज्ञान के द्वारा पूर्व, पश्चिम दक्षिण उत्तर अथवा ✳ ऊपर सौधर्म देवलोक तक देखता है । तब उसे ऐसा विचार होता है कि मुझे अतिशय यानी विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । उस अतिशय ज्ञान के द्वारा मैंने लोक को एक ही दिशा में देखा है । कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि पांचों दिशाओं में लोक है जो ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं । विभङ्ग ज्ञान का यह पहला भेद हैं । २. अब विभंगज्ञान के दूसरे भेद का स्वरूप बताया जाता है - जब तथारूप यानी मिथ्यात्वी बालतपस्वी श्रमण माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है। तब वह उस विभङ्ग ज्ञान के द्वारा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर अथवा ऊपर सौधर्म देवलोक तक देखता है। तब उसे ऐसा दुराग्रह उत्पन्न होता है कि मुझे अतिशय - विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । मैंने अतिशय ज्ञान द्वारा जाना है कि लोक पांच दिशाओं में ही है । कितनेक श्रमण माहन कहते हैं कि लोक एक दिशा में भी है वे मिथ्या कहते हैं । यह दूसरा विभंग ज्ञान है । ३. अब तीसरे विभंग ज्ञान का स्वरूप बतलाया जाता है - जब तथारूप यानी मिथ्यात्वी बालतपस्वी श्रमण माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब उस विभङ्गज्ञान द्वार वह प्राणियों की हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, चोरी करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह सञ्चित करते हुए और रात्रिभोजन करते हुए जीवों को देखता है किन्तु किये जाते हुए पाप कर्म को कहीं नहीं देखता है तब उसे ऐसा दुराग्रह उत्पन्न होता है

✳ ऐसा बाल तपस्वी ऊपर अधिक से अधिक सौधर्म देवलोक तक देख सकता है। विभंग ज्ञानी अधोलोक में बिलकुल नहीं देख सकता है। अवधिज्ञानी भी अधोलोक में मुश्किल से देख सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि मुझे अतिशय-विशिष्ट ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । मैंने उस विशिष्ट ज्ञान द्वारा देखा है कि क्रिया ही कर्म है और वही जीव का आवरण है। कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि क्रिया का आवरण जीव हीं है । जो ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं । विभङ्गज्ञान का यह तीसरा भेद है । ४. अब चौथे विभंगज्ञान का स्वरूप बतलाया जाता है - जब तथारूप यानी बालतपस्वी मिथ्यात्वी श्रमण माहन को विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस विभङ्ग ज्ञान के द्वारा बाहरी और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके फुरित्ता फुट्टित्ता उनका स्पर्श, स्फुरण तथा स्फोटन करके पृथक् पृथक् एक या अनेक रूपों का वैक्रिय करते हुए देवों को ही देखता है तब उसके मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । उसके द्वारा मैंने देखा है कि - जीव पुद्गल रूप ही है । कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गलरूप नहीं है वे मिथ्या कहते हैं यह विभङ्गज्ञान का चौथा भेद है । ५. अब पांचवें विभङ्ग ज्ञान का स्वरूप बतलाया जाता है - जब तथारूप यानी बालतपस्वी मिथ्यात्वी श्रमण माहन को विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है । तब वह उस विभङ्गज्ञान के द्वारा बाहरी और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही पृथक् पृथक् एक और अनेक रूपों का वैक्रिय करते हुए देवों को देखता है । तब उसके मन में विचार उत्पन्न होता है कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । उसके द्वारा मैंने देखा है कि - जीव पुद्गल रूप नहीं है ❁। कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव पुद्गल रूप नहीं है । वे मिथ्या कहते हैं । विभङ्गज्ञान का यह पांचवां भेद हैं । ६. अब छठे विभङ्गज्ञान का स्वरूप बतलाया जाता है - जब तथारूप यानी बालतपस्वी मिथ्यात्वी श्रमण माहन को विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस विभङ्गज्ञान के द्वारा बाहरी और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके अथवा ग्रहण किये बिना ही पृथक् पृथक् अनेक या अनेक रूपों का वैक्रिय करते हुए देवों को देखता है । तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । उससे मैंने देखा है कि जीव रूपी है । कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव अरूपी है । वे मिथ्या कहते हैं । यह विभङ्गज्ञान का छठा भेद है । ७. अब सातवें विभङ्गज्ञान का स्वरूप कहा जाता है - जब तथारूप यानी बालतपस्वी मिथ्यात्वी श्रमण माहन को विभङ्गज्ञान उत्पन्न होता है तब वह उस विभङ्गज्ञान के द्वारा सूक्ष्म यानी मन्दमन्द वायु से स्पृष्ट कांपते हुए, विशेष कांपते हुए, चलते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पन्दन करते हुए, दूसरे पदार्थ को स्पर्श करते हुए और दूसरे पदार्थ को प्रेरित करते हुए तथा उन उन परिणामों को प्राप्त होते हुए पुद्गलों को देखता है । तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मुझे अतिशय ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है । उसके द्वारा मैंने देखा है कि ये सब

❁ वास्तव में तो शरीर सहित संसारी जीव पुद्गल और अपुद्गल दोनों रूप है । इसलिए कोई एक सर्वथा एकान्त पक्ष मिथ्या है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव हैं। कितनेक श्रमण माहन ऐसा कहते हैं कि जीव भी हैं और अजीव भी हैं। वे मिथ्या कहते हैं। उस विभङ्गज्ञानी को पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय ये चार जीव निकाय सम्यक् ज्ञात नहीं होते हैं अर्थात् वह सिर्फ वनस्पति काय को ही जीव मानता है किन्तु पृथ्वीकाय आदि चार काय को जीव नहीं मानता है इसलिए वह इन चार कायों की हिंसा करता है। यह विभंगज्ञान का सातवां भेद है।

विवेचन - विभंगज्ञान - विरुद्ध अथवा अयथार्थ, अन्यथा वस्तु का भंग-विकल्प है जिसमें वह विभंग है, विभंग ऐसा जो ज्ञान है वह विभंगज्ञान है। अर्थात् मिथ्यात्व युक्त अवधिज्ञान को विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान) कहते हैं। किसी बाल तपस्वी को अज्ञान तप के द्वारा जब दूर के पदार्थ दीखने लगते हैं तो वह अपने को विशिष्ट ज्ञान वाला समझ कर सर्वज्ञ के वचनों में विश्वास न करता हुआ मिथ्या प्ररूपणा करने लगता है। ऐसा बाल तपस्वी अधिक से अधिक ऊपर सौधर्म कल्प तक देखता है। अधोलोक में बिल्कुल नहीं देखता। किसी तरफ का अधूरा ज्ञान होने पर वैसी ही वस्तु स्थिति समझ कर वह दुराग्रह करने लगता है। विभंगज्ञान के सात भेदों का स्वरूप भावार्थ में बतलाया गया है।

योनि संग्रह, गति आगति

सत्तविहे जोणिसंग्गहे पण्णत्ते तंजहा - अंडया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, (संसेइमा) सम्मुच्छिमा उब्भिया। अंडया सत्त गइया, सत्त आगइया पण्णत्ता तंजहा - अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा, पोयएहिंतो वा जाव उब्भिएहिंतो वा उववज्जेज्जा, से चेव णं से अंडए अंडयत्तं विप्पजहमाणे अंडयत्ताए वा पोययत्ताए वा जाव उब्भियत्ताए वा गच्छेज्जा। पोयया, सत्त गइया, सत्त आगइया एवं चेव सत्तण्हं वि गइरागई भाणियव्वा, जाव उब्भियत्ति।

संग्रह-असंग्रह स्थान

आयरियउज्झायस्स णं गणंसि सत्त संग्गहठाणा पण्णत्ता तंजहा - आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवइ, एवं जहा पंचट्ठाणे जाव आयरिय उवज्झाए गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवइ णो अणापुच्छियचारी यावि भवइ, आयरियउवज्झाए गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता भवइ, आयरियउवज्झाए गणंसि पुव्वुप्पण्णाइं उवगरणाइं सम्मं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ णो असम्मं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ। आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंग्गहठाणा पण्णत्ता तंजहा - आयरियउवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवइ एवं जाव उवगरणाणं णो सम्मं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिण्डैषणाएं, पानैषणाएं प्रतिमाएं

सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ । सत्त सत्तिक्कया पण्णत्ता । सत्त महज्झयणा पण्णत्ता। सत्तसत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एगूण पण्णयाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहिया वि भवइ॥ ६२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **जोणिसंगहे** - योनि संग्रह, **संसेयया (संसेइमा)** - संस्वेदज, **उब्भिया** - उद्भिज, **संग्गहठाणा** - संग्रह स्थान, **अणुप्पण्णाइं** - अप्राप्त, **पुव्वुप्पण्णाइं** - पूर्व उत्पन्न, **उवगरणाइं**- उपकरणों की, **पिण्डेसणाओ** - पिण्डैषणाएं, **पाणेसणाओ** - पानैषणाएं, **उग्गहपडिमाओ** - अवग्रह प्रतिमाएं, **सत्तिक्कया** - सप्तैकक, **महज्झयणा** - महा अध्ययन, **सत्तसत्तमिया** - सप्तसप्तमिका, **राइंदिएहिं** - रात्रि और दिन में ।

भावार्थ - योनि संग्रह यानी उत्पत्ति के स्थानों में उत्पन्न होने वाले जीव सात प्रकार के कहे गये हैं । यथा - अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम और उद्भिज । अण्डज यानी अण्डे से उत्पन्न होने वाले जीव सात गति वाले और सात आगति वाले कहे गये हैं । यथा - अण्डज जीवों में उत्पन्न होने वाला अण्डज जीव अण्डज जीवों से अथवा पोतज जीवों से यावत् उद्भिज जीवों से आकर उत्पन्न होता है । वही अण्डजपने को छोड़ता हुआ अण्डज जीव अण्डज रूप से, पोतज रूप से यावत् उद्भिज रूप से जाकर उत्पन्न होता है । पोतज जीव सात गति वाले और सात आगति वाले कहे गये हैं। इसी तरह उद्भिज तक सातों प्रकार के जीवों में सात गति और सात आगति कह देनी चाहिए ।

गण यानी गच्छ में आचार्य और उपाध्याय के सात संग्रह स्थान कहे गये हैं अर्थात् इन सात बातों का ध्यान रखने से वे शिष्यों का संग्रह कर सकते हैं और संघ में व्यवस्था रख कर साधुओं को नियमानुसार आज्ञा में चला सकते हैं । वे इस प्रकार हैं - आचार्य उपाध्याय को चाहिए कि वे अपने गच्छ में आज्ञा और धारणा का सम्यक् प्रयोग करावें, इत्यादि पांच बातें जैसे पांचवें ठाणे में कही हैं वैसे यहाँ पर भी जान लेना चाहिए । यावत् आचार्य उपाध्याय को अपने गच्छ में दूसरे साधुओं को पूछ कर काम करना चाहिए अथवा शिष्यों से उनके दैनिक कार्य के लिए पूछते रहना चाहिए किन्तु बिना पूछे कोई काम नहीं करना चाहिए । आचार्य उपाध्याय को अप्राप्त आवश्यक उपकरणों की प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए । आचार्य उपाध्याय को पूर्व प्राप्त उपकरणों की रक्षा का सम्यक् प्रकार से ध्यान रखना चाहिए किन्तु उनकी रक्षा की तरफ असावधानी नहीं करनी चाहिए । आचार्य उपाध्याय के अपने गच्छ में सात असंग्रह स्थान कहे गये हैं । यथा - आचार्य उपाध्याय अपने गण में आज्ञा और धारणा का सम्यक् प्रकार प्रयोग न करा सकते हों । यावत् प्राप्त हुए उपकरणों की सम्यक्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार से रक्षा न करवा सकते हों तो साधु आपस में या आचार्य के साथ कलह करने लगते हैं और गच्छ की व्यवस्था टूट जाती है ।

सात पिण्डैषणाएं कही गई हैं। सात पानैषणाएं कही गई है। सात अवग्रह प्रतिमाएं यानी उपाश्रय ग्रहण करने के अभिग्रह विशेष कहे गये हैं। सात सप्तैकक यानी आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कन्ध के अध्ययन कहे गये हैं। सात महाअध्ययन यानी सूत्रकृताङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अध्ययन कहे गये हैं। सप्तसप्तमिका भिक्षुपडिमा ४९ उन पचास अहोरात्रि में पूर्ण होती है और १९६ दत्ति (दात) आहार की तथा १९६ दत्ति (दात) पानी की होती है। इस प्रकार इसका सूत्रानुसार आराधन किया जाता है।

विवेचन - आचार्य तथा उपाध्याय के सात संग्रह स्थान-आचार्य और उपाध्याय सात बातों का ध्यान रखने से ज्ञान अथवा शिष्यों का संग्रह कर सकते हैं, अर्थात् इन सात बातों का ध्यान रखने से वे संघ में व्यवस्था कायम रख सकते हैं, दूसरे साधुओं को अपने अनुकूल तथा नियमानुसार चला सकते हैं।

१. आचार्य तथा उपाध्याय को आज्ञा और धारणा का सम्यक् प्रयोग करना चाहिए। किसी काम के लिए विधान करने को आज्ञा कहते हैं, तथा किसी बात से रोकने को अर्थात् नियन्त्रण को धारणा कहते हैं। इस तरह के नियोग (आज्ञा) या नियन्त्रण के अनुचित होने पर साधु आपस में या आचार्य के साथ कलह करने लगते हैं और व्यवस्था टूट जाती है। अथवा देशान्तर में रहा हुआ गीतार्थ साधु अपने अतिचार को गीतार्थ आचार्य से निवेदन करने के लिए अगीतार्थ साधु के सामने जो कुछ गूढार्थ पदों में कहता है उसे आज्ञा कहते हैं। अपराध की बार बार आलोचना के बाद जो प्रायश्चित्त विशेष का निश्चय किया जाता है उसे धारणा कहते हैं। इन दोनों का प्रयोग यथारीति न होने से कलह होने का डर रहता है, इसलिए शिष्यों के संग्रहार्थ इन का सम्यक् प्रयोग होना चाहिए।

२. आचार्य और उपाध्याय को रत्नाधिक की वन्दना वगैरह का सम्यक् प्रयोग कराना चाहिए। दीक्षा के बाद ज्ञान, दर्शन और चारित्र में बड़ा साधु छोटे साधु द्वारा वन्दनीय समझा जाता है। अगर कोई छोटा साधु रत्नाधिक को वन्दना न करे तो आचार्य और उपाध्याय का कर्त्तव्य है कि वे उसे वन्दना के लिए प्रवृत्त करें। इस वन्दना व्यवहार का लोप होने से व्यवस्था टूटने की सम्भावना रहती है। इसलिए वन्दना व्यवहार का सम्यक् प्रकार पालन करवाना चाहिए। यह दूसरा संग्रहस्थान है।

३. शिष्यों में जिस समय जिस सूत्र के पढ़ने की योग्यता हो अथवा जितनी दीक्षा के बाद जो सूत्र पढ़ाना चाहिए उस का आचार्य उपाध्याय हमेशा ध्यान रक्खे और समय आने पर उचित सूत्र पढ़ावे। यह तीसरा संग्रहस्थान है। ठाणांग सूत्र की टीका में सूत्र पढ़ाने के लिए दीक्षापर्याय की निम्नलिखित मर्यादा की गई है-

तीन वर्ष की दीक्षापर्याय वाले साधु को आचारांग पढ़ाना चाहिए। चार वर्ष वाले को सूयगडांग। पांच वर्ष वाले को दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार। आठ वर्ष की दीक्षापर्याय वाले को ठाणांग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और समवायांग। दस वर्ष की दीक्षापर्याय वाले को व्याख्याप्रज्ञप्ति अर्थात् भगवती सूत्र पढ़ाना चाहिए। ग्यारह वर्ष की दीक्षापर्याय वाले को खुड्डियविमाणपविभत्ति (क्षुल्लकविमानप्रविभक्ति), महल्लयाविमाणपविभत्ति (महद्विमानप्रविभक्ति), अंगचूलिया, बंगचूलिया और विवाहचूलिया ये पांच सूत्र पढ़ाने चाहिए। बारह वर्ष वाले को अरुणोववाए (अरुणोपपात), वरुणोववाए (वरुणोपपात), गरुलोववाए (गरुडोपपात), धरणोववाए (धरणोपपात) और वेसमणोववाए (वैश्रमणोपपात)। तेरह वर्ष वाले को उत्थानश्रुत, समुत्थानश्रुत, नागपरियावलिआउ और निरयावलिआउ ये चार सूत्र। चौदह वर्ष वाले को आशीविषभावना और पन्द्रह वर्ष वाले को दृष्टिविषभावना। सोलह सतरह और अठारह वर्ष वाले को क्रम से चारणभावना, महास्वप्नभावना और तेजोनिसर्ग पढ़ाना चाहिए। उन्नीस वर्ष वाले को दृष्टिवाद नाम का बारहवाँ अंग और बीस वर्ष पूर्ण हो जाने पर सभी श्रुतों को पढ़ने का वह अधिकारी हो जाता है। इन सूत्रों को पढ़ाने के लिए यह नियम नहीं है कि इतने वर्ष की दीक्षापर्याय के बाद ये सूत्र अवश्य पढ़ाये जायं, किन्तु योग्य साधु को इतने समय के बाद ही विहित सूत्र पढ़ाना चाहिए।

नोट - आचार्य या उपाध्याय किसी साधु को विशेष बुद्धिमान् और योग्य समझ कर यथावसर सूत्र आदि पढ़ा सकते हैं। उपरोक्त सूत्रों में से अंगचूलिया, बंगचूलिया आदि सूत्र उपलब्ध नहीं होते हैं। यहाँ पर जो दीक्षापर्याय का नियम बतलाया गया है वह भी सब जगह लागू नहीं होता है क्योंकि अन्तगड आदि सूत्रों में थोड़े वर्षों की दीक्षा पर्याय वाले अनगारों के ग्यारह अङ्ग तथा सम्पूर्ण बारह अङ्ग पढने का उल्लेख मिलता है।

४. आचार्य तथा उपाध्याय को बीमार, तपस्वी तथा विद्याध्ययन करने वाले साधुओं की वैयावच्च का ठीक प्रबन्ध करना चाहिए। यह चौथा संग्रहस्थान है।

५. आचार्य तथा उपाध्याय को दूसरे साधुओं से पूछ कर काम करना चाहिए, बिना पूछे नहीं। अथवा शिष्यों से दैनिक कृत्य के लिए पूछते रहना चाहिए कि तुमने आज कितना नया ज्ञान सीखा, कितना स्वाध्याय किया आदि। यह पांचवां संग्रहस्थान है।

६. आचार्य तथा उपाध्याय को अप्राप्त आवश्यक उपकरणों की प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए। अर्थात् जो वस्तुएं आवश्यक हैं और साधुओं के पास नहीं हैं उनकी निर्दोष प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए। यह छठा संग्रह स्थान है।

७. आचार्य तथा उपाध्याय को पूर्वप्राप्त उपकरणों की रक्षा का ध्यान रखना चाहिए। उन्हें ऐसे स्थान में न रखने देना चाहिए जिस से वे खराब हो जायं या चोर वगैरह ले जायं। यह सातवां संग्रहस्थान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिण्डैषणाएं सात –

बयालीस दोष टालकर शुद्ध आहार पानी ग्रहण करने को एषणा कहते हैं। इसके पिंडैषणा और पानैषणा दो भेद हैं। आहार ग्रहण करने को पिंडैषणा तथा पानी ग्रहण करने को पानैषणा कहते हैं। पिंडैषणा अर्थात् आहार को ग्रहण करने के सात प्रकार हैं। साधु दो तरह के होते हैं – गच्छान्तर्गत अर्थात् गच्छ में रहे हुए और गच्छविनिर्गत अर्थात् विशिष्ट साधना करने के लिये गच्छ से बाहर निकले हुए। गच्छान्तर्गत साधु सातों पिंडैषणाओं का ग्रहण करते हैं। गच्छविनिर्गत पहिले की दो पिंडैषणाओं को छोड़ कर बाकी पांच का ग्रहण करते हैं।

१. असंसट्ठा – हाथ और भिक्षा देने का बर्तन अन्नादि के संसर्ग से रहित होने पर सूजता अर्थात् कल्पनीय आहार लेना।

२. संसट्ठा ❀ – हाथ और भिक्षा देने का बर्तन अन्नादि के संसर्ग वाला होने पर सूजता और कल्पनीय आहार लेना।

३. उद्धडा – थाली बटलोई आदि बर्तन से बाहर निकाला हुआ सूझता और कल्पनीय आहार लेना।

४. अप्पलेवा – अल्प अर्थात् बिना चिकनाहट वाला आहार लेना। जैसे भुने हुए चने।

५. उग्गहिया – गृहस्थ द्वारा अपने भोजन के लिए थाली में परोसा हुआ आहार जीमना शुरू करने के पहिले लेना।

६. पग्गहिया – थाली में परोसने के लिए कुड़छी या चम्मच वगैरह से निकाला हुआ आहार थाली में डालने से पहिले लेना।

७. उज्झियधम्मा – जो आहार अधिक होने से या और किसी कारण से श्रावक ने फैंक देने योग्य समझा हो, उसे सूझता होने पर लेना।

पानैषणा के सात भेद –

निर्दोष पानी लेने को पानैषणा कहते हैं। इसके भी पिंडैषणा की तरह सात भेद हैं। पिंडैषणा और पानैषणा के सात सात भेद आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में बतलाये गये हैं।

अवग्रह प्रतिमाएं (प्रतिज्ञाएं) सात –

साधु जो मकान, वस्त्र, पात्र, आहारादि वस्तुएं लेता है उन्हें अवग्रह कहते हैं। इन वस्तुओं को लेने में विशेष प्रकार की मर्यादा करना अवग्रह प्रतिमा है। किसी धर्मशाला अथवा मुसाफिरखाने में ठहरने

❀ हाथ आदि संसृष्ट होने पर बाद में सचित्त पानी से धोने, या भिक्षा देने के बाद आहार कम हो जाने पर और बनाने में पश्चात्कर्म दोष लगता है। इसलिए श्रावक को बाद में सचित्त पानी से हाथ आदि नहीं धोने चाहिए और न नई वस्तु बनानी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले साधु को मकान मालिक के आयतन तथा दूसरे दोषों को टालते हुए नीचे लिखी सात प्रतिमाएं यथाशक्ति अंगीकार करनी चाहिए।

१. धर्मशाला आदि में प्रवेश करने से पहिले ही यह सोच ले कि "मैं अमुक प्रकार का अवग्रह लूँगा। इसके सिवाय न लूँगा" यह पहली प्रतिमा है।

२. "मैं सिर्फ दूसरे साधुओं के लिए स्थान आदि अवग्रह को ग्रहण करूंगा और स्वयं दूसरे साधु द्वारा ग्रहण किए हुए अवग्रह वाले स्थान में ठहरूंगा।" यह दूसरी प्रतिमा है।

३. "मैं दूसरे के लिए अवग्रह की याचना करूंगा किन्तु स्वयं दूसरे द्वारा ग्रहण किए अवग्रह को स्वीकार नहीं करूंगा।" गीला हाथ जब तक सूखता है उतने काल से लेकर पांच दिन रात तक के समय को लन्द कहते हैं। लन्द तप को अंगीकार कर के जिनकल्प के समान रहने वाले साधु यथालन्दिक कहलाते हैं। वे दो तरह के होते हैं - गच्छप्रतिबद्ध और स्वतंत्र। शास्त्रादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जब कुछ साधु एक साथ मिल कर रहते हैं तो उन्हें गच्छप्रतिबद्ध कहा जाता है। तीसरी प्रतिमा प्रायः गच्छप्रतिबद्ध साधु अंगीकार करते हैं। वे आचार्य आदि जिन से शास्त्र पढ़ते हैं उनके लिए तो वस्त्रपात्रादि अवग्रह ला देते हैं पर स्वयं किसी दूसरे का लाया हुआ ग्रहण नहीं करते।

४. मैं दूसरे के लिए अवग्रह नहीं मागूंगा पर दूसरे के द्वारा लाये हुए का स्वयं उपभोग कर लूंगा। जो साधु जिनकल्प की तैयारी करते हैं और उग्र तपस्वी तथा उग्र चारित्र वाले होते हैं, वे ऐसी प्रतिमा-प्रतिज्ञा लेते हैं। तपस्या आदि में लीन रहने के कारण वे अपने लिए भी मांगने नहीं जा सकते। दूसरे साधुओं द्वारा लाये हुए को ग्रहण करके अपना काम चलाते हैं।

५. मैं अपने लिए तो अवग्रह याचूंगा, दूसरे साधुओं के लिए नहीं। जो साधु जिनकल्प ग्रहण करके अकेला विहार करता है, यह प्रतिमा (प्रतिज्ञा) उसके लिए है।

६. जिससे अवग्रह ग्रहण करूंगा उसीसे दर्भादिक संथारा भी ग्रहण करूंगा। नहीं तो उत्कुटुक अथवा किसी दूसरे आसन से बैठा हुआ ही रात बिता दूंगा। यह प्रतिमा भी जिनकल्पिक आदि साधुओं के लिए है।

७. सातवीं प्रतिमा भी छठी सरीखी ही है। इसमें इतनी प्रतिज्ञा अधिक है 'शिलादिक संस्तारक बिछा हुआ जैसा मिल जायगा वैसा ही ग्रहण करूंगा, दूसरा नहीं।' यह प्रतिमा भी जिनकल्पिक आदि साधुओं के लिए है।

सात सप्तैकक - १. स्थान सप्तैकक, २. नैषेधिकी सप्तैकक, ३. उच्चार प्रस्रवण विधि सप्तैकक, ४. शब्द सप्तैकक, ५. रूप सप्तैकक, ६. परक्रिया सप्तैकक, ७. अन्योन्य क्रिया सप्तैकक । इनका विस्तृत वर्णन आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सात महाअध्ययन - १. पुण्डरीक, २. क्रियास्थान, ३. आहार परिज्ञा, ४. प्रत्याख्यान क्रिया, ५. अनाचार श्रुत, ६. आर्द्रकुमार, ७. नालंदा (उदगपेढाल पुत्र) । ये सात अध्ययन सूयगडाङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के हैं।

सात पृथ्वियाँ

अहोलोए णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, सत्त घणोदहीओ पण्णत्ताओ, सत्त घणवाया सत्त तणुवाया पण्णत्ता, सत्त उवासंतरा पण्णत्ता, एएसु णं सत्तसु उवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्ठिया । एएसु णं सत्तसु तणुवाएसु सत्त घणवाया पइट्ठिया, एएसु णं सत्तसु घणवाएसु सत्त घणोदही पइट्ठिया, एएसु णं सत्तसु घणोदहीसु पिंडलग पिहुलसंठाण संठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ तंजहा-पढमा जाव सत्तमा। एयासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा - घम्मा, वंसा, सेला, अंजणा, रिट्ठा, मघा, माघवई । एयासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता तंजहा- रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुयप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा॥ ६३ ॥

कठिन शब्दार्थ - उवासंतरा - अवकाशान्तर, **पिंडलग पिहुल संठाण संठियाओ** - फूलों की टोकरी के समान चौड़े संस्थान वाली।

भावार्थ - अधोलोक में सात पृथ्वियाँ, सात घनोदधि, सात घनवात, सात तनुवात और सात अवकाशान्तर यानी पृथ्वी के अन्तर कहे गये हैं। इन सात अन्तरों में सात तनुवात रही हुई हैं। इन सात तनुवातों में सात घनवात रही हुई हैं। इन सात घनवातों में सात घनोदधि रही हुई है। इन सात घनोदधियों में फूलों की टोकरी के समान विस्तार वाली सात पृथ्वियाँ कही गई है। यथा - पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं। इन सात पृथ्वियों के सात नाम कहे गये हैं। यथा - घम्मा, वंशा, सेला, अञ्जना, रिष्टा, मघा और माघवती। इन सात पृथ्वियों के सात गोत्र यानी गुणनिष्पन्न नाम कहे गये हैं। यथा - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमतमाप्रभा (महा तमः प्रभा)।

विवेचन - घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पापों का फल भोगने के लिये अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होते हैं उन्हें नरक कहते हैं। वे नरक सात पृथ्वियों में विभक्त हैं। अथवा मनुष्य और तिर्यंच जहां पर अपने अपने पापों के अनुसार भयंकर कष्ट उठाते हैं उन्हें नरक कहते हैं। सात पृथ्वियों के नाम इस प्रकार हैं - १. घम्मा २. वंशा ३. सीला ४. अंजना ५. रिट्ठा ६. मघा ७. माघवई। इन सातों के गोत्र हैं - १. रत्नप्रभा २. शर्करा प्रभा ३. वालुकाप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तमः प्रभा ७. महातमः प्रभा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली अनादिकालीन से प्रचलित संज्ञा को नाम कहते हैं। शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है उसे गोत्र कहते हैं। घम्मा आदि सात पृथ्वियों के नाम हैं और रत्नप्रभा आदि गोत्र।

'**पिंडलग पिहुल संठाण संठियाओ**' के स्थान पर कहीं कहीं '**छत्ताइछत्तसंठाणसंठियाओ**' यह पाठ भी मिलता है । इसका अर्थ यह है कि - जैसे एक छत्र पर दूसरा छत्र रखा हुआ हो, इस प्रकार के आकार वाली हैं । क्योंकि सातवीं नरक सात राजु की विस्तृत है और छठी नरक साढे छह राजु विस्तृत है । इस प्रकार पांचवीं नरक छह राजु चौथी नरक पांच राजु, तीसरी नरक चार राजु दूसरी नरक ढाई राजु और पहली नरक एक राजु विस्तृत है । मोटाई में सभी नरकें एक एक राजु हैं ।

दूसरा पाठान्तर है - "**पिहुल पिहुल संठाण संठियाओ।**" इसका अर्थ यह है कि - ये सातों नरक क्रम से अधिक अधिक विस्तार वाली हैं अर्थात् पहली नरक से दूसरी और दूसरी से तीसरी इस प्रकार आगे आगे की नरकें अधिक विस्तार वाली हैं ।

अधोलोक में सात पृथ्वियाँ कहने से यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि क्या ऊर्ध्वलोक में भी पृथ्वी है ? उत्तर हाँ ! ऊर्ध्व लोक में ईषत्प्राग्भारा नाम की एक पृथ्वी है जिसको 'सिद्ध शिला' भी कहते हैं।

सात नरकों का विशेष वर्णन जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति से जानना चाहिए।

बादर वायुकायिक, संस्थान

सत्तविहा बायर वाउकाइया पण्णत्ता तंजहा - पाईणवाए, पडीणवाए, दाहिणवाए, उदीणवाए, उड्ढवाए, अहोवाए, विदिसवाए । सत्त संठाणा पण्णत्ता तंजहा - दीहे, रहस्से, वट्टे, तंसे, चउरंसे, पिहुले, परिमंडले ।

भय स्थान, छद्मस्थ और केवली का विषय

सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा - इहलोग भए, परलोगभए, आयाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोयभए । सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणिज्जा तंजहा - पाणे अइवाइत्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, अदिण्णमाइत्ता भवइ, सद्दफरिस रसरूवगंधे आसाइत्ता भवइ, पूयासक्कार मणुबूहित्ता भवइ, इमं सावज्जं त्ति पण्णवित्ता पडिसेवित्ता भवइ, णो जहावाई तहाकारी यावि भवइ। सत्तहिं ठाणेहिं केवलीं जाणिज्जा तंजहा - णो पाणे अइवाइत्ता भवइ, जाव जहावाई तहाकारी यावि भवइ॥ ६४॥

कठिन शब्दार्थ - विदिसवाए - विदिशा की वायु, **संठाणा** - संस्थान, **रहस्से** - ह्रस्व, **तंसे** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्र्यस्र, **पिहुले** - पृथुल, **भयट्ठाणा** - भयस्थान, **आयाणभए** - आदान भय, **अकम्हाभए** - अकस्माद्‌भय, **असिलोयभए** - अश्लोक भय ।

भावार्थ - बादर वायुकाय सात प्रकार की कही गई हैं यथा - पूर्व की वायु, पश्चिम की वायु, दक्षिण की वायु उत्तर की वायु, ऊर्ध्व दिशा की वायु, अधोदिशा की वायु और विदिशा की वायु ।

सात संस्थान कहे गये हैं यथा - दीर्घ यानी लम्बा, ह्रस्व यानी छोटा, वृत्त-कुम्हार के चक्र जैसा गोल, त्र्यस - सिंघाड़े जैसा त्रिकोण, चतुरस्र - बाजोट जैसा चतुष्कोण, पृथुल - फैला हुआ और परिमण्डल - चूड़ी जैसा गोल । सात भय स्थान कहे गये हैं यथा - १. इहलोक भय - अपनी ही जाति के प्राणी से डरना इहलोक भय है, जैसे मनुष्य का मनुष्य से, देव का देव से, तिर्यञ्च का तिर्यञ्च से और नैरयिक का नैरयिक से डरना इहलोक भय है । २. परलोक भय - दूसरी जाति वाले से डरना परलोकभय है, जैसे मनुष्य का तिर्यञ्च या देव से डरना अथवा तिर्यञ्च का देव या मनुष्य से डरना परलोक भय है । ३. आदान भय - धन की रक्षा के लिए चोर आदि से डरना, ४. अकस्माद्‌भय - किसी भी बाहरी कारण के बिना यों ही अचानक डरने लगना अकस्माद् भय है । ५. वेदना भय - पीड़ा से डरना, ६. मरण भय - मरने से डरना और ७. अश्लोक भय-अपकीर्ति से डरना ।

सात बातों से छद्‌मस्थ जाना जा सकता है यथा - जानते या अजानते कभी छद्‌मस्थ से हिंसा हो जाती है क्योंकि चारित्र मोहनीय कर्म के कारण वह चारित्र का पूर्ण पालन नहीं कर सकता है । छद्‌मस्थ से कभी न कभी असत्य वचन बोला जा सकता है । छद्‌मस्थ से अदत्तादान का सेवन भी हो सकता है । छद्‌मस्थ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का रागपूर्वक सेवन कर सकता है । छद्‌मस्थ अपनी पूजा सत्कार का अनुमोदन कर सकता है अर्थात् अपनी पूजा सत्कार होने पर वह प्रसन्न होता है। छद्‌मस्थ आधाकर्म आदि को सावद्य जानते हुए और कहते हुए भी उनका सेवन कर सकता है। साधारणतया छद्‌मस्थ जैसा कहता है वैसा करता नहीं है । इन सात बातों से छद्‌मस्थ पहिचाना जा सकता है । सात बातों से केवलज्ञानी सर्वज्ञ पहिचाना जा सकता है यथा - केवली हिंसा आदि नहीं करते हैं यावत् जैसा कहते हैं वैसा ही करते हैं । ऊपर कहे हुए छद्‌मस्थ पहिचानने के बोलों से विपरीत सात बोलों से केवली पहिचाने जा सकते हैं । केवली के चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है इसलिए उनका संयम निरतिचार होता है । मूलगुण और उत्तरगुण सम्बन्धी दोषों का वे सेवन नहीं करते हैं । इसलिए वे उक्त सात बातों का सेवन नहीं करते हैं ।

विवेचन - आकार विशेष को संस्थान कहते हैं। इसके सात भेद हैं। मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय से पैदा हुए आत्मा के परिणाम विशेष को भय कहते हैं। इससे प्राणी डरने लगता है। भय के कारणों को भय स्थान कहते हैं। वे सात हैं। भय की अवस्था वास्तविक घटना होने से पहिले उसकी सम्भावना से पैदा होती है। सात भयस्थानों का वर्णन भावार्थ में कर दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सात बातों से यह जाना जा सकता है कि अमुक व्यक्ति छद्मस्थ है अर्थात् केवली नहीं है। छद्मस्थ जानने के सात स्थान मूल पाठ में बताये गये हैं। सभी छद्मस्थ सरीखे नहीं होते हैं । कोई कोई छद्मस्थ इस प्रकार के दोष सेवन कर लेते हैं। यह पाठ समुच्चय छद्मस्थ के लिए है । इन बातों को लेकर और इस पाठ के आधार से भगवान् महावीर स्वामी में दोष कायम करना और भगवान् को 'चूका' (भूल करने वाला अथवा दोष सेवन करने वाला) कहना अज्ञानता है । किंतु इससे विपरीत सात बोलों से केवली पहचाने जा सकते हैं। केवली हिंसादि से सर्वथा रहित होते हैं।

गोत्र सात

सत्त मूल गोत्ता पण्णत्ता तंजहा - कासवा, गोयमा, वच्छा, कोच्छा, कोसिया, मंडवा, वासिट्ठा । जे कासवा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते कासवा, ते संडिल्ला, ते गोल्ला, ते वाला, ते मुंजइणो, ते पव्वपेच्छइणो, ते वरिसकण्हा । जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते गोयमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अंगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्कराभा, ते उदगत्ताभा । जे वच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते वच्छा ते अग्गेया, ते मित्तिया, ते सामिलिणो, ते सेलपया, ते अट्ठिसेणा, ते वायकण्हा । जे कोच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते कोच्छा, ते मोग्गलायणा, ते पिंगलायणा, ते कोडीणा, ते मंडलीणो, ते हारिया, ते सोमया । जे कोसिया ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते कोसिया, ते कच्चायणा, ते सालंकायणा, ते गोलिकायणा, ते पक्खिकायणा, ते अग्गिच्चा, ते लोहिया । जे मंडवा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते मंडवा, ते अरिट्ठा, ते समुया, ते तेला, ते एलावच्छा, ते कंडिल्ला, ते खारायणा । जे वासिट्ठा ते सत्तविहा पण्णत्ता तंजहा - ते वासिट्ठा, ते उंजायणा, ते जारेकण्हा, ते वग्घावच्चा, ते कोडिण्णा, ते सण्णी, ते पारासरा॥ ६५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **मूल गोत्ता** - मूल गोत्र, **कासवा** - काश्यप, **गोयमा** - गौतम, **वच्छा** - वत्स, **कोच्छा** - कौत्स **कोसिया** - कौशिक, **मंडवा** - मण्डप, **वासिट्ठा** - वाशिष्ठ, **पव्वपेच्छइण्णो** - पर्व प्रेक्षक ।

भावार्थ - सात मूल गोत्र कहे गये हैं यथा - काश्यप, गौतम, वत्स, कौत्स, कौशिक, मण्डप और वाशिष्ठ। काश्यप सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - काश्यप, शाण्डिल्य, गोल, वाल, मुञ्ज, पर्वप्रेक्षक और वर्षकृष्ण । सात प्रकार के गौतम कहे गये हैं यथा - गौतम, गर्ग, भारत,, अंगीरस, शर्कराभ, भास्कराभ और उदगर्त्तभ। वत्स सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - वत्स, आग्नेय, मैत्रिक,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शामलीन, शेलक, अस्थिसेन और वातकृष्ण। कोत्स सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - कोत्स, मौद्गलायन, पिंगलायन, कौडीन, मण्डलीन, हारित और सोमक। कौशिक सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - कौशिक, कात्यायन, शालंकायन, गोलिकायन, पक्षिकायन, आगित्य और लोहित। माण्डव सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - माण्डव, अरिष्ठ, समुत, तैल, एलापत्य, काण्डिल्य और क्षारायन। वाशिष्ठ सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - वाशिष्ठ, उंजायन, जारकृष्ण,, वर्घापत्य, कौडिन्य संज्ञी और पाराशर।

विवेचन - गोत्र - किसी महापुरुष से चलने वाली मनुष्यों की सन्तान परम्परा को गोत्र कहते हैं। मूल गोत्र सात हैं-

१. काश्यप - भगवान् मुनिसुव्रत और नेमिनाथ को छोड़ कर बाकी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, सातवें गणधर से लेकर ग्यारहवें गणधर तथा जम्बूस्वामी आदि इसी गोत्र के थे।

२. गौतम - बहुत से क्षत्रिय, भगवान् मुनिसुव्रत और नेमिनाथ, नारायण और पद्म को छोड़ कर बाकी सभी बलदेव और वासुदेव, इन्द्रभूति आदि तीन गणधर और वैरस्वामी गौतम गोत्री थे।

३. वत्स - इस गोत्र में शय्यम्भव स्वामी हुए हैं।

४. कुत्सा - इसमें शिवभूति आदि हुए हैं।

५. कौशिक - षडुलूक आदि।

६. मण्डव - मण्डु की सन्तान परम्परा से चलने वाला गोत्र।

७. वाशिष्ठ - वशिष्ठ की सन्तान परम्परा। छठे गणधर तथा आर्य सुहस्ती आदि। इन में प्रत्येक गोत्र की फिर सात सात शाखाएं हैं।

नय सात

सत्त मूल णया पण्णत्ता तंजहा - णेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुसुत्ते, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूए॥ ६६॥

कठिन शब्दार्थ - मूल णया - मूल नय, **णेगमे** - नैगम, **उज्जुसुत्ते** - ऋजुसूत्र, **सद्दे** - शब्द, **एवंभूए** - एवंभूत ।

भावार्थ - सात मूल नय कहे गये हैं । प्रमाण से जानी हुई अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक धर्म को मुख्य रूप से जानने वाले तथा दूसरे धर्मों में उदासीन रहने वाले ज्ञान को नय कहते हैं । नय के सात भेद हैं यथा - १. नैगम - जो अनेक गमों अर्थात् बोधमार्गों से वस्तु को जानता है अथवा अनेक भावों से वस्तु का निर्णय करता है उसे नैगम नय कहते हैं ।२. संग्रह - विशेष से रहित सत्त्व, द्रव्यत्व आदि सामान्य मात्र को ग्रहण करने वाले नय को संग्रह नय कहते हैं । ३. व्यवहार - लौकिक व्यवहार के अनुसार विभाग करने वाले नय को व्यवहार नय कहते हैं । ४. ऋजुसूत्र - वर्तमान में होने वाली पर्याय को प्रधान रूप से ग्रहण करने वाले नय को ऋजुसूत्र नय कहते हैं । ५. शब्द - काल, कारक,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिङ्ग, संख्या, पुरुष और उपसर्ग आदि के भेद से शब्दों में अर्थभेद बतलाने वाले नय को शब्द नय कहते हैं । ६. समभिरूढ – पर्यायवाची शब्दों में निरुक्ति के भेद से भिन्न अर्थ मानने वाले नय को समभिरूढ नय कहते हैं । एवंभूत – शब्दों की स्वप्रवृत्ति की निमित्तभूत क्रिया से युक्त पदार्थों को ही उनका वाच्य बनाने वाला एवंभूत नय है ।

विवेचन – सात नयों का उदाहरण सहित विस्तृत वर्णन अनुयोग द्वार सूत्र से जानना चाहिये।

सात स्वर

सत्त सरा पण्णत्ता तंजहा –

सज्जे रिसहे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे ।
धेवए चेव णिसाए, सरा सत्त वियाहिया ॥ १॥

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सर ठाणा पण्णत्ता तंजहा –

सज्जं तु अग्ग जिब्भाए, उरेण रिसभं सरं ।
कंठुग्गएण गंधारं, मज्झ जिब्भाए मज्झिमं ॥ २॥
णासाए पंचमं बूया, दंतोट्ठेण य धेवयं ।
मुद्धाणेण य णिसायं, सर ठाणा वियाहिया ॥ ३॥

सत्त सरा जीव णिस्सिया पण्णत्ता तंजहा –

सज्जं रवइ मयूरो, कुक्कुडो रिसहं सरं ।
हंसो णदइ गंधारं, मज्झिमं तु गवेलगा ॥ ४॥
अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं ।
छट्ठं य सारसा कोंचा, णिसायं सत्तमं गया ॥ ५॥

सत्त सरा अजीव णिस्सिया पण्णत्ता तंजहा –

सज्जं रवइ मुइंगो, गोमुही रिसहं सरं ।
संखो णदइ गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी ॥ ६॥
चउचलणपइट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं ।
आडंबरो रेवइयं, महाभेरी य सत्तमं ॥ ७॥

एएसिं णं सत्त सराणं सत्त सर लक्खणा पण्णत्ता तंजहा –

सज्जेण लहइ वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ ।
गावो मित्ता य पुत्ता य, णारीणं चेव वल्लभो ॥ ८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिसहेण उ एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य ।
वत्थ गंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य ।। ९ ॥
गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्ज वित्ती कलाहिया ।
भवंति कविणो पण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा ।। १० ॥
मज्झिम सर संपण्णा, भवंति सुहजीविणो ।
खायइ पीयइ देइ, मज्झिमं सरमस्सिओ ।। ११ ॥
पंचमसर संपण्णा, भवंति पुढवीवई ।
सूरा संगह कत्तारो, अणेगगण णायगा ।। १२ ॥
रेवय सर संपण्णा, भवंति कलहप्पिया ।
साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधा य ।। १३ ॥
चंडाला मुट्ठिया सेया, जे अण्णे पावकम्मिणो ।
गोघायगा य जे चोरा, णिसायं सरमस्सिया ।। १४ ॥

एएसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता तंजहा –

सज्जगामे मज्झिमगामे गंधारगामे । सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ तंजहा –

मग्गी कोरविया हरिया, रयणी य सारकंता य ।
छट्ठी य सारसी णाम, सुद्ध सज्जा य सत्तमा ।। १५ ॥

मज्झिम गामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ तंजहा –

उत्तरमंदा रयणी, उत्तरा उत्तरासमा ।
आसोकंता य सोवीरा, अभीरु हवइ सत्तमा ।। १६ ॥

गंधार गामस्स सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ तंजहा –

णंदिया खुड्डिमा पूरिमा, य चउत्थी य सुद्धगंधारा ।
उत्तरगंधारा वि य, पंचमिया हवइ मुच्छा उ ।। १७ ॥
सुट्ठुत्तर मायामा सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा ।
अह उत्तरायया कोडीमा य सा सत्तमी मुच्छा ।। १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्त सराओ कओ संभवंति, गेयस्स का भवइ जोणी ।
कइ समया उस्सासा, कइ वा गेयस्स आगारा ।। १९ ।।
सत्त सरा णाभीओ भवंति, गीयं च रुण्ण जोणीयं ।
पादसमा उस्सासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा ।। २० ।।
आइ मिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारम्मि ।
अवसाणे तज्जविंतो तिण्णि य गेयस्स आगारा ।। २१ ।।
छद्दोसे अट्ठगुणे तिण्णि य वित्ताइं दो य भइणीओ ।
जाणाहिइ सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झम्मि ।। २२ ।।
भीयं दुयं रहस्सं, गायंतो मा य गाहि उत्तालं ।
काकस्सरमणुणासं, य होंति गीयस्स छ दोसा ।। २३ ।।
पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा अविघुट्ठं ।
महुरं समं सुकुमारं, अट्ठ गुणा होंति गीयस्स ।। २४ ।।
उरकंठ सिर पसत्थं च गेज्जंते मिउरिभिय पदवद्धं ।
समताल पडुक्खेवं, सत्तसर सीहरं गीयं ।। २५ ।।
णिद्दोसं सारवयं च, हेउजुत्तमलंकियं ।
उवणीयं सोवयारं च, मियं महुरमेव च ।। २६ ।।
सममद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं ।
तिण्णि वित्तप्पयाराइं, चउत्थं णोवलब्भइ ।। २७ ।।
सक्कया पागया चेव, दुहा भइणीओ आहिया ।
सरमंडलम्मि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया ।। २८ ।।
केसी गायइ य महुरं, केसी गायइ खरं च रुक्खं च ।
केसी गायइ चउरं, केसी विलंबं दुअं केसी ।। २९ ।।
विस्सरं पुण केरिसी ?
सामा गायइ महुरं, काली गायइ खरं च रुक्खं च ।
गोरी गायइ चउरं, काण विलंबं दुअं अंधा ।। ३० ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विस्सरं पुण पिंगला ।
तंतिसमं तालसमं पादसमं लयसमं गहसमं च ।
णिस्ससि उस्ससियसमं, संचार समा सरा सत्त ।। ३१ ॥
सत्त सरा य तओ गामा, मुच्छणा इक्कवीसई ।
ताणा एगूण पण्णासा, समत्तं सरमंडलं ।। ३२ ॥ ६७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सरा** - स्वर, **सर ठाणा** - स्वर स्थान, **अग्गजिब्भाए** - जिह्वा के अग्रभाग से, **कंठुग्गएण** - कंठ के अग्र भाग से, **दंतोट्ठेण** - दांत और ओठ से, **जीवणिस्सिया** - जीव निश्रित, **मुइंगो**- मृदङ्ग, **आडंबरो** - आडम्बर-नारा, **सरलक्खणा** - स्वर लक्षण, **वल्लभो** - वल्लभ, **एसज्ज** - ऐश्वर्य, **साउणिया** - चिडीमार, **वग्गुरिया** - वागुरिक-शिकारी, **गोधायगा** - गोघातक, **मूच्छणाओ** - मूर्छनाएं, **आसोकंता** - अश्वकान्ता, **णाभीओ** - नाभि से, **आइ** - आदि, **आगारा** - आकार, **भइणीओ**- भणितियाँ, **सुसिक्खिओ** - सुशिक्षित, **रंग मज्झम्मि** - रंगशाला में, **भीयं** - भीत, **दुयं** - द्रुत, **अणुणासं**- अनुनास, **अविघुट्ठं** - अविघुष्ट, **उरकंठसिरपसत्थं** - उर (उरस्), कंठ शिर प्रशस्त , **समताल पडुक्खेवं**- समताल प्रत्युत्क्षेप, **सत्तसरसीहरं** - सप्त स्वर सीभर, **सोवयारं** - सोपचार, **सक्कया** - संस्कृत भाषा, **पागया**- प्राकृत भाषा ।

भावार्थ - सात स्वर कहे गये हैं यथा - षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत या रैवत और निषाद ये सात स्वर कहे गये हैं ।। १ ॥

इन सात स्वरों के सात स्वर स्थान कहे गये हैं यथा - षड्ज स्वर जिह्वा के अग्रभाग से पैदा होता है । ऋषभ स्वर छाती से, गान्धार कण्ठ से, मध्यम स्वर जिह्वा के मध्यभाग से, पञ्चम स्वर नाक से, धैवत स्वर दांत और ओठ से और निषाद स्वर मुर्द्धा यानी जिह्वा को मस्तक की तरफ लगा कर बोला जाता है । स्वरों के ये सात स्थान कहे गये हैं ।। २-३ ॥

सात स्वर जीवनिश्रित कहे गये हैं यानी जानवरों की बोली से इन सात स्वरों की पहिचान कराई जाती है यथा - मोर षड्ज स्वर में बोलता है । कुक्कुट - कूकड़ा ऋषभ स्वर में बोलता है । हंस गान्धार स्वर में बोलता है । गाय और भेडें मध्यम स्वर में बोलती है । फूलों की उत्पत्ति के समय में यानी वसंत ऋतु में कोकिल पञ्चम में स्वर बोलती है । सारस और क्रौञ्च पक्षी छठा यानी धैवत स्वर में बोलते हैं और हाथी सातवां निषाद स्वर में बोलते हैं ।। ४-५ ॥

सात स्वर अजीवनिश्रित कहे गये हैं अर्थात् अचेतन पदार्थों से भी ये सात स्वर निकलते हैं यथा- मृदङ्ग षड्ज स्वर बोलता है अर्थात् मृदङ्ग से षड्ज स्वर निकलता है । गोमुखी बाजे से ऋषभ स्वर निकलता है । शंख से गान्धार, झल्लरी बाजे से मध्यम, चार चरणों से अवस्थित रहने वाले गोधिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामक बाजे से पञ्चम स्वर, आडम्बर यानी नगारे से धैवत या रेवत और महाभेरी से सातवां निषाद स्वर निकलता है ।। ६-७॥

इन सात स्वरों के सात लक्षण कहे गये हैं यथा - षड्ज स्वर से मनुष्य आजीविका को प्राप्त करता है । उसके किये हुए काम व्यर्थ नहीं जाते हैं । गौएं, मित्र और पुत्र प्राप्त होते हैं और वह पुरुष स्त्रियों का प्रिय होता है ।। ८॥

ऋषभ स्वर से ऐश्वर्य, सेनापतिपना, धन, वस्त्र, गन्ध, आभूषण, स्त्रियां और शयन प्राप्त होते हैं ।। ९॥

गान्धार स्वर को गाने की कला जानने वाले पुरुष वर्यवृत्ति यानी श्रेष्ठ आजीविका वाले विशिष्ट कवि, बुद्धिमान् और दूसरी कलाओं तथा शास्त्रों के पारगामी होते हैं ।। १०॥

मध्यम स्वर वाले मनुष्य सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं । वे सुखपूर्वक खाते, पीते और दान देते हैं ।। ११॥

पञ्चम स्वर वाला पुरुष पृथ्वीपति, शूरवीर, संग्रह करने वाला और अनेक गुणों का नायक होता है ।। १२॥

रैवत या धैवत स्वर वाला पुरुष कलहप्रिय, चिड़ीमार, वागुरिक यानी शिकारी शौकरिक यानी कसाई और मच्छीमार होता है ।। १३॥

निषाद स्वर वाला पुरुष चाण्डाल वृत्तिवाला, मौष्टिक मल्ल, सेवक पापकर्म करने वाले गोघातक यानी गायों की हत्या करने वाला और चोर होता है ।। १४॥

इन सात स्वरों के तीन ग्राम कहे गये हैं यथा - षड्जग्राम मध्यमग्राम और गान्धारग्राम । षड्ज ग्राम की सात मूर्छनाएं कही गई हैं यथा - मार्गी, कौर्विका, हरिता, रजनी, सारकान्ता, सारसी और शुद्ध षड्जा ।। १५॥

मध्यमग्राम की सात मूर्छनाएं कही गई हैं यथा - उत्तरमंदा, रजनी, उत्तरा, उत्तरासमा, अश्वकान्ता सौवीरा और सातवीं अभीरु नामक होती है ।। १६॥

गान्धार ग्राम की सात मूर्छनाएं कही गई है यथा - नन्दिता, क्षुद्रिमा, पूरिमा, शुद्धगान्धरा, उत्तरगान्धरा, सुष्ठुतर आयामा और उत्तरायत कोटिमा । इस प्रकार तीनों ग्रामों की सात सात मूर्छनाएं होती हैं ।। १८॥

सात स्वर कहाँ से उत्पन्न होते हैं? गीत की क्या योनि हैं ? और कितने समय से श्वासोच्छ्वास लिया जाता है ? ।। १९॥ इन प्रश्नों का उत्तर दिया जाता हैं।

सात स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं । गीत की योनि रुदन है । किसी कविता की एक कड़ी उसका सांस है और गीत के तीन आकार हैं । यानी प्रारम्भ करते हुए शुरूआत में मृदु और मध्य में तीव्र तथा अन्त में मन्द ये गीत के तीन आकार हैं ।। १९-२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन प्रकार का पद्य और दो भाषाओं को जो जानता है वह सुशिक्षित पुरुष रंगशाला यानी गायनशाला में भलीप्रकार गा सकता है ।। २२ ॥

भीत – डरते हुए गाना। द्रुत – जल्दी जल्दी गाना। शब्दों को छोटे बना कर गाना अथवा सांस लेकर जल्दी जल्दी गाना। उत्ताल – ताल से आगे बढ़ कर या आगे पीछे ताल देकर गाना। काकस्वर – कौए की तरह कर्णकटु और अस्पष्ट स्वर से गाना। अनुनास – नाक से गाना। ये गीत के छह दोष होते हैं ।। २३ ॥

पूर्ण – स्वर आरोह, अवरोह आदि से पूर्ण गाना। रक्त – गाई जाने वाली राग से अच्छी तरह गाना। परिष्कृत अलंकृत – दूसरे दूसरे स्पष्ट और शुभस्वरों से मण्डित। व्यक्त – व्यञ्जन और स्वरों की स्पष्टता के कारण स्पष्ट अविघुष्ट – रोने की तरह जहाँ स्वर बिगड़ने न पावे ऐसा गाना। मधुर – बसन्त ऋतु में मतवाली कोयल के शब्द की तरह मधुर। सम – ताल, स्वर आदि से ठीक नपा तुला गाना और सुकुमार यानी आलाप के कारण जिसकी लय बहुत कोमल बन गई हो ऐसा सुललित रूप से गाना। ये गीत के आठ गुण होते हैं ।। २४ ॥

संगीत में उपरोक्त गुणों का होना आवश्यक है । इन गुणों के बिना संगीत केवल विडम्बना है । इनके सिवाय संगीत के और भी बहुत से गुण हैं । यथा – उरोविशुद्ध – जो स्वर वक्षस्थल में विशुद्ध हो उसे उरोविशुद्ध कहते हैं । कण्ठविशुद्ध – जो स्वर गले में फटने न पावे और स्पष्ट तथा कोमल रहे उसे कण्ठविशुद्ध कहते हैं । शिरोविशुद्ध – मूर्धा को प्राप्त होकर भी जो स्वर नासिका से मिश्रित नहीं होता है उसे शिरोविशुद्ध कहते हैं । छाती, कण्ठ और मूर्धा में श्लेष्म या चिकनाहट के कारण स्वर स्पष्ट निकलता है और बीच में नहीं टूटता है इसी को उरोविशुद्ध, कण्ठविशुद्ध और शिरोविशुद्ध कहते हैं । मृदु – जो राग मृदु अर्थात् कोमल स्वर से गाया जाता है उसे मृदु कहते हैं । रिभित या रिङ्गित – जहाँ आलाप के कारण स्वर खेल सा कर रहा हो उसे रिभित या रिङ्गित कहते हैं । पदबद्ध – गाये जाने वाले पदों की जहाँ विशिष्ट रचना हो उसे पदबद्ध कहते हैं । समतालप्रत्युत्क्षेप – जहाँ नर्तकी का पाद निक्षेप और ताल आदि सब एक दूसरे से मिलते हों उसे समताल प्रत्युत्क्षेप कहते हैं । सप्तस्वरसीभर– जहाँ सातों स्वर अक्षर आदि से बराबर मिलान खाते हों उसे सप्तस्वरसीभर कहते हैं । इत्यादि अनेक गुणों से युक्त गीत होना चाहिए ।। २५ ॥

गीत के लिए बनाये जाने वाले पद्य में आठ गुण होने चाहिएं । वे ये हैं – निर्दोष यानी सूत्र के ३२ दोष रहित, सारवत् यानी अर्थ युक्त, हेतुयुक्त यानी अर्थबोध कराने वाले कारणों से युक्त। अलङ्कृत– काव्य के अलङ्कारों से युक्त। उपनीत – उपसंहार युक्त। सोपचार – उत्प्रास युक्त अथवा अनिष्ठुर, अविरुद्ध और अलज्जनीय । मित यानी पद और अक्षरों से परिमित और मधुर यानी शब्द, अर्थ और अभिधेय इन तीन की अपेक्षा मधुर होना चाहिए ।। २६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृत्त अर्थात् छन्द तीन तरह का होता है । यथा - सम यानी जिस छन्द के चारों पाद के अक्षरों की संख्या समान हो उसे सम कहते हैं । अर्द्धसम - जिस छन्द में पहला पाद और तीसरा पाद तथा दूसरा पाद और चौथा पाद परस्पर समान संख्या वाले हों उसे अर्द्धसम कहते हैं । और सर्वत्र विषम यानी जिस छन्द में चारों पादों के अक्षरों की संख्या एक दूसरे से न मिलती हो उसे विषम कहते हैं । छन्द के ये तीन भेद होते हैं इनके सिवाय चौथा कोई भेद नहीं होता है ।। २७ ॥

संस्कृत और प्राकृत ये संगीत की दो भाषाएं कही गई हैं । संगीत के अन्त में स्वर मण्डल में ऋषिभाषा उत्तम कही गई है ।। २८ ॥

संगीत कला में स्त्री का स्वर प्रशस्त माना गया है । कौनसी स्त्री कैसी गाती है ? यह प्रश्न करके आगे उत्तर दिया जाता है । यथा - कैसी स्त्री मधुर गाती है ? कैसी स्त्री कठोर और रूक्ष गाती है ? कैसी स्त्री चतुरतापूर्वक गाती है ? कैसी स्त्री विलम्ब से गाती है और कैसी स्त्री जल्दी जल्दी गाती है ? ।। २९ ॥ इन प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है -

श्यामा स्त्री मधुर गाती है । काली स्त्री कठोर और रूक्ष गाती है । गौर वर्ण वाली स्त्री चतुरतापूर्वक गाती है । काणी स्त्री ठहर ठहर कर, अन्धी स्त्री जल्दी जल्दी और पीले रंग की स्त्री विस्वर यानी खराब स्वर से गाती है ।। ३० ॥

तन्त्रीसम यानी वीणा आदि के शब्द के साथ गाना। तालसम - ताल के अनुसार हाथ पैर आदि हिलाना, पादसम - राग के अनुकूल पादविन्यास, वीणा आदि की लय के अनुसार गाना। ग्रहसम-बांसुरी या सितार आदि के स्वर के साथ गाना। निःश्वसित उच्छ्वसित सम - सांस लेने और बाहर निकालने के ठीक क्रम के अनुसार गाना और सञ्चारसम - बांसुरी या सितार आदि के सञ्चालन के साथ साथ गाना, ये सात स्वर हैं । संगीत का प्रत्येक स्वर अक्षरादि सातों से मिल कर सात प्रकार का हो जाता है ।। ३१ ॥

सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएं और उनपचास तान होते हैं अर्थात् प्रत्येक स्वर सात तानों के द्वारा गाया जाता है । इसलिए सातों स्वरों के ४९ भेद हो जाते हैं । यह स्वर मण्डल समाप्त हुआ ।। ३२ ॥

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में सात स्वरों का वर्णन किया गया है। यद्यपि सचेतन और अचेतन पदार्थों में होने वाले स्वर भेद के कारण स्वरों की संख्या अगणित हो सकती है तथापि स्वरों के प्रकार भेद के कारण उनकी संख्या सात ही है अर्थात् ध्वनि के मुख्य सात भेद हैं - षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, रैवत या धैवत और निषाद। इनका शब्दार्थ आदि भावार्थ में स्पष्ट कर दिया गया है।

काया क्लेश के भेद

सत्त विहे कायकिलेसे पण्णत्ते तंजहा - ठाणाइए, उक्कुडुयासणिए, पडिमठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए, दंडाइए, लगंडसाई ॥ ६८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - ठाणाइए - स्थानातिग, **उक्कुडुयासणिए** - उत्कुटुकासनिक, **पडिमठाई** - प्रतिमा स्थायी, **वीरासणिए** - वीरासनिक, **णेसज्जिए** - नैषधिक, **दंडाइए** - दण्डायतिक, **लगंडसाई** - लगण्डशायी ।

भावार्थ - कायाक्लेश - शास्त्रसम्मत रीति के अनुसार आसन विशेष से बैठना कायाक्लेश नाम का तप है इसके सात भेद कहे गये हैं यथा - १. स्थानातिग - एक स्थान पर निश्चल बैठ कर कायोत्सर्ग करना । २. उत्कुटुकासनिक - उत्कुटुक आसन से बैठना । ३. प्रतिमास्थायी - एक मासिकी, द्विमासिकी आदि पडिमा (प्रतिज्ञा विशेष) अङ्गीकार करके कायोत्सर्ग करना । ४. वीरासनिक- कुर्सी पर बैठ कर दोनों पैरों को नीचे लटका कर बैठे हुए पुरुष के नीचे से कुर्सी निकाल लेने पर जो अवस्था बनती है उस आसन से बैठ कर कायोत्सर्ग करना । ५. नैषदियक - दोनों कूलों के बल भूमि पर बैठना । दण्डायतिक - डण्डे की तरह लम्बा लेट कर कायोत्सर्ग करना। लगण्डशायी - टेढी लकड़ी की तरह लेट कर कायोत्सर्ग करना । इस आसन में दोनों एडियाँ और सिर ही भूमि को छूने चाहिए बाकी सारा शरीर धनुषाकार भूमि से उठा हुआ रहना चाहिए अथवा सिर्फ पीठ ही भूमि पर लगी रहनी चाहिए शेष सारा शरीर भूमि से उठा हुआ रहना चाहिए ।

विवेचन - बाह्य तप के भेदों में 'कायक्लेश' पांचवां तप है। प्रस्तुत सूत्र में कायक्लेश तप के अंतर्गत सात प्रकार के आसनों का वर्णन किया गया है। मानसिक एकाग्रता के लिये काया की स्थिरता आवश्यक है अतः इन आसनों की उपयोगिता है।

जंबूद्वीप में क्षेत्र पर्वत नदी आदि

जंबूद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता तंजहा - भरहे, एरवए, हेमवए, हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे । जंबूद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसहे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी, मंदरे । जंबूद्दीवे दीवे सत्त महाणईओ पुरत्थाभिमुहाओ लवणसमुद्दं समुप्पेंति तंजहा - गंगा, रोहिया, हरिसलीला, सीया, णरकंता, सुवण्णकूला, रत्ता । जंबूद्दीवे दीवे सत्त महाणईओ पच्चत्थाभिमुहाओ लवणसमुद्दं समुप्पेंति तंजहा - सिंधु, रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारीकंता, रुप्पकूला, रत्तवई । धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे णं सत्त वासा पण्णत्ता तंजहा - भरहे जाव महाविदेहे । धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे णं सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चुल्लहिमवंते जाव मंदरे । धायइसंडदीवपुरच्छिमद्धे णं सत्त महाणईओ पुरत्थाभिमुहाओ कालोयसमुद्दं समुप्पेंति तंजहा - गंगा जाव रत्ता । धायइसंड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीवपुरच्छिमद्धे णं सत्त महाणईओ पच्चत्थाभिमुहाओ लवणसमुद्दं समुप्पेंति तंजहा - सिंधु जाव रत्तवई। धायइ संडदीवपच्चत्थिमद्धेणं सत्त वासा एवं चेव, णवरं पुरत्थाभिमुहाओ लवणसमुद्दं समुप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहाओ कालोदं समुप्पेंति सेसं तं चेव । पुक्खरवरदीवड्ढ पुरच्छिमद्धेणं सत्त वासा तहेव, णवरं पुरत्थाभिमुहाओ पुक्खरोदं समुद्दं समुप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहाओ कालोदं समुद्दं समुप्पेंति, सेसं तं चेव, एवं पच्चत्थिमद्धे वि, णवरं पुरत्थाभिमुहाओ कालोदं समुद्दं समुप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहाओ पुक्खरोदं समुद्दं समुप्पेंति। सव्वत्थ वासा वासहरपव्वया महाणईओ य भणियव्वाणि॥ ६१ ॥

कठिन शब्दार्थ - पुरत्थाभिमुहाओ - पूर्वाभिमुखी-पूर्व की ओर बहने वाली, **समुप्पेंति** - मिलती हैं, **पच्चत्थाभिमुहाओ** - पश्चिमाभिमुखी-पश्चिम की ओर बहने वाली ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में सात वास-क्षेत्र कहे गये हैं यथा - भरत, ऐरवत, हेमवय, हिरण्णवय, हरिवास, रम्यकवास, महाविदेह । इस जम्बूद्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं यथा - चुल्लहिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी और मन्दर यानी मेरु पर्वत । इस जम्बूद्वीप में पूर्व की ओर बहने वाली सात महानदियाँ लवण समुद्र में जाकर मिलती हैं यथा - गङ्गा, रोहिता, हरिसलिला, सीता, नरकान्ता, सुवर्णकूला और रक्ता । इस जम्बूद्वीप में पश्चिम की ओर बहने वाली सात महानदियाँ लवण समुद्र में आकर मिलती हैं यथा - सिन्धु, रोहितांशा, हरिकान्ता, सीतोदा, नारीकान्ता, रुप्यकूला और रक्तवती । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में सात क्षेत्र कहे गये हैं यथा - भरत क्षेत्र यावत् महाविदेह क्षेत्र । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं यथा - चुल्लहिमवान् यावत् मेरुपर्वत । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में पूर्व की ओर बहने वाली सात महानदियाँ कालोद समुद्र में जाकर गिरती हैं यथा - गङ्गा यावत् रक्ता । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में पश्चिम की ओर बहने वाली सात महानदियाँ लवणसमुद्र में जाकर मिलती हैं यथा - सिन्धु यावत् रक्तवती । धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध में इसी तरह सात क्षेत्र, सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं और पूर्व की ओर बहने वाली सात महानदियाँ लवणसमुद्र में जाकर मिलती हैं तथा पश्चिम की ओर बहने वाली सात महानदियाँ कालोद समुद्र में जाकर मिलती हैं । अर्द्धपुष्कर द्वीप के पूर्वार्द्ध में सात क्षेत्र और सात वर्षधर पर्वत इसी तरह कहे गये हैं । पूर्व की ओर बहने वाली सात महानदियाँ पुष्करोद समुद्र में जाकर मिलती है और पश्चिम की ओर बहने वाली सिन्धु आदि सात महानदियाँ कालोद समुद्र में जाकर मिलती है । इसी तरह अर्द्धपुष्कर द्वीप के पश्चिमार्द्ध में भी सात क्षेत्र और सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं और पूर्व की ओर बहने वाली गंगा आदि सात महानदियाँ कालोद समुद्र में जाकर मिलती हैं तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिम की ओर बहने वाली सिन्धु आदि सात महानदियाँ पुष्करोद समुद्र में जाकर मिलती हैं । इस प्रकार सब जगह क्षेत्र वर्षधर पर्वत और महानदियों का कथन कर देना चाहिए ।

विवेचन - जम्बूद्वीप में वास (क्षेत्र) सात - मनुष्यों के रहने के स्थान को वास (वर्ष-क्षेत्र) कहते हैं। जम्बूद्वीप में चुल्लहिमवान, महाहिमवान आदि पर्वतों के बीच में आ जाने के कारण सात वास या क्षेत्र हो गए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. भरत २. हैमवत ३. हरि ४. विदेह ५. रम्यक ६. हैरण्यवत और ७. ऐरावत।

भरत से उत्तर की तरफ हैमवत क्षेत्र है। उससे उत्तर की तरफ हरि, इस तरह सभी क्षेत्र पहिले पहिले से उत्तर की तरफ हैं। व्यवहार नय की अपेक्षा जब दिशाओं का निश्चय किया जाता है अर्थात् जिधर सूर्योदय हो उसे पूर्व कहा जाता है तो ये सभी क्षेत्र मेरु पर्वत से दक्षिण की तरफ हैं। यद्यपि ये एक दूसरे से विरोधी दिशाओं में हैं फिर भी सूर्योदय की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है। निश्चय नय से आठ रुचक प्रदेशों की अपेक्षा दिशाओं का निश्चय किया जाता है, तब ये क्षेत्र भिन्न भिन्न दिशाओं में कहे जाएंगे।

वर्षधर पर्वत सात -

ऊपर लिखे हुए सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले सात वर्षधर पर्वत हैं - १. चुल्लहिमवान् २. महाहिमवान् ३. निषध ४. नीलवान् ५. रुक्मी ६. शिखरी ७. मन्दर (मेरु)।

जम्बूद्वीप में सात महानदियाँ पूर्व की तरफ लवण समुद्र में गिरती हैं। १. गंगा २.रोहिता ३. हरि ४. सीता ५. नारी ६. सुवर्णकूला और ७. रक्ता।

सात महानदियाँ पश्चिम की तरफ लवण समुद्र में गिरती हैं - १. सिन्धु २. रोहितांशा ३. हरिकान्ता ४. सीतोदा ५. नरकान्ता ६. रूप्यकूला ७. रक्तवती।

कुलकर वर्णन

जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था तंजहा -

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोस य सत्तमे ॥ १॥

जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था तंजहा -

पढमित्थ विमल वाहण, चक्खुमं जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो य पसेणई पुण मरुदेवे चेव णाभी य ॥ २॥

एएसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था तंजहा -

चंदजसा चंदकांता सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलगर इत्थीण णामाइं ॥ ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा भविस्संति तंजहा -

मित्तवाहण सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य, आगमेस्सिण होक्खइ ।। ४॥

विमलवाहणे णं कुलगरे सत्तविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिंसु तंजहा -

मत्तंगया य भिंतागा चित्तंगा चेव होंति चित्तरसा ।
मणियंगा य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ।। ५॥

सत्तविहा दंडणीई पण्णत्ता तंजहा - हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मंडलबंधे, चारए, छविच्छेए॥ ७०॥

कठिन शब्दार्थ - **कुलगरा** - कुलकर, **रुक्खा** - वृक्ष, **उवभोगत्ताए** - उपभोग में, **मत्तंगया** - मतगा, **भिंतागा** - भृङ्गा, **चित्तंगा** - चित्राङ्गा, **चित्तरसा** - चित्ररसा, **मणियंगा** - मणिअंगा, **अणियणा**- अनग्ना **दंडणीई** - दण्डनीति, **हक्कारे** - हकार दण्ड **मक्कारे** - मकार दण्ड, **धिक्कारे** - धिक्कार दण्ड, **मंडलबंधे** - मण्डल बन्ध, **चारए** - चारक, **छविच्छेए** - छविच्छेद ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गत उत्सर्पिणी में सात कुलकर हुए थे । उनके नाम इस प्रकार हैं - मित्रदाम, सुदाम, सुपार्श्व, स्वयम्प्रभ, विमलघोष, सुघोष और महाघोष ।। १ ॥

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में सात कुलगर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं - इन सातों में पहला विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, अभिचन्द्र, प्रश्रेणी, मरुदेव और नाभि ।। २ ॥

इन सात कुलकरों की सात भार्याएं थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं - चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुष्कान्ता, श्रीकान्ता और मरुदेवी । ये कुलकरों की भार्याओं के नाम हैं। इनमें मरुदेवी भगवान् ऋषभदेव स्वामी की माता थी और उसी भव में सिद्ध हुई है ।। ३ ॥

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर होंगे। उनके नाम इस प्रकार हैं - मित्रवाहन, सुभूम, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, दत्त, सूक्ष्म और सुबन्धु । ये सात कुलकर आगामी उत्सर्पिणी काल में होंगे ।। ४ ॥

वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम कुलकर विमलवाहन के समय सात प्रकार के वृक्ष उपभोग में आते थे । उनके नाम इस प्रकार हैं - मतङ्गा - पौष्टिक रस देने वाले । भृताङ्गा - पात्र आदि देने वाले - चित्राङ्गा - विविध प्रकार के फूल देने वाले । चित्ररसा - विविध प्रकार के भोजन देने वाले ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणिअङ्गा - आभूषण देने वाले । अनग्ना - वस्त्र आदि देने वाले और सातवां कल्पवृक्ष अन्य इच्छित वस्तु देने वाले। ये सात प्रकार के वृक्ष उस समय थे ।।५॥

दण्डनीति - अपराधी को दुबारा अपराध करने से रोकने के लिए कुछ कहना या कष्ट देना दण्डनीति है। इसके सात भेद हैं यथा - १. हकार दण्ड - 'हा' तुमने यह क्या किया ? इस प्रकार कहना। २. मकार दण्ड - 'फिर ऐसा मत करना' इस तरह निषेध करना। ३. धिक्कार दण्ड - किये हुए अपराध के लिए उसे धिक्कार देना । ४. परिभाष क्रोध से अपराधी को 'मत जाओ' इस प्रकार कहना । ५. मण्डलबन्धं - नियमित क्षेत्र से बाहर जाने के लिए रोक देना । ६. चारक - अपराधी को कैद में डाल देना ।७. छविच्छेद - चमड़ी आदि का छेद करना अथवा हाथ पैर नाक आदि काट डालना ।

विवेचन - कुलकर - अपने अपने समय के मनुष्यों के लिए जो व्यक्ति मर्यादा बाँधते हैं, उन्हें कुलकर कहते हैं। ये ही सात कुलकर सात मनु भी कहलाते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में सात कुलकर हुए हैं। कहा जाता है, उस समय १० प्रकार के वृक्ष कालदोष के कारण कम हो गए। यह देख कर युगलिए अपने अपने वृक्षों पर ममत्व करने लगे। यदि कोई युगलिया दूसरे के वृक्ष से फल ले लेता तो झगड़ा खड़ा हो जाता। इस तरह कई जगह झगड़े खड़े होने पर युगलियों ने सोचा कोई पुरुष ऐसा होना चाहिए जो सब के वृक्षों की मर्यादा बाँध दे। वे किसी ऐसे व्यक्ति को खोज ही रहे थे कि उनमें से एक युगल स्त्री पुरुष को वन के सफेद हाथी ने अपने आप सूँड से उठा कर अपने ऊपर बैठा लिया। दूसरे युगलियों ने समझा यही व्यक्ति हम लोगों में श्रेष्ठ है और न्याय करने लायक है। सबने उसको अपना राजा माना तथा उसके द्वारा बाँधी हुई मर्यादा का पालन करने लगे। ऐसी कथा प्रचलित है।

पहले कुलकर का नाम विमलवाहन है। बाकी के छह इसी कुलकर के वंश में क्रम से हुए। सातों के नाम इस प्रकार हैं -

१. विमलवाहन २. चक्षुष्मान् ३. यशस्वान ४. अभिचन्द्र ५. प्रश्रेणी ६. मरुदेव और ७. नाभि।

सातवें कुलकर नाभि के पुत्र भगवान् ऋषभदेव हुए। विमलवाहन कुलकर के समय सात ही प्रकार के वृक्ष थे। उस समय त्रुटितांग, दीप और ज्योति तथा गेहागारा नाम के वृक्ष नहीं थे। ये चार वृक्ष कम हो गये थे। इन चारों की पूर्ति करने के लिए एक सातवां वृक्ष कायम किया गया था। यह देवाधिष्ठित था और चारों वृक्षों की पूर्ति करने वाला होने से इसे 'कल्पवृक्ष' कहा गया।

चक्रवर्ती रत्न

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स णं सत्त एगिंदिय रयणा पण्णत्ता तंजहा - चक्करयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, दंडरयणे, असिरयणे, मणिरयणे, काकणिरयणे । एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदिय रयणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता तंजहा - सेणावइरयणे, गाहावइरयणे, वड्डइरयणे, पुरोहियरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे॥ ७१ ॥

कठिन शब्दार्थ - एगिंदिय रयणा - एकेन्द्रिय रत्न, **काकणि रयणे** - काकणी रत्न, **वड्डइरयणे**- वर्द्धकी (बढई) रत्न, **आसरयणे** - अश्व रत्न, **हत्थिरयणे** - हस्ति रत्न ।

भावार्थ - प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं यथा - चक्ररत्न, छत्ररत्न, चमररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न और काकणीरत्न । प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात पञ्चेन्द्रिय रत्न होते हैं अर्थात् सात पञ्चेन्द्रिय जीव ऐसे होते हैं जो अपनी अपनी जाति में सब से श्रेष्ठ होते हैं वे इस प्रकार हैं- सेनापति रत्न, गाथापति रत्न, वर्द्धकी अर्थात् बढई रत्न, पुरोहित रत्न, स्त्री रत्न, अश्व रत्न और हस्ति रत्न ।

विवेचन - प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पंचेन्द्रिय रत्न होते हैं। अपनी अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इन्हें रत्न कहा गया है। सभी एकेन्द्रिय रत्न पार्थिव अर्थात् पृथ्वी रूप होते हैं। इन चौदह रत्नों के एक-एक हजार देव रक्षक होते हैं। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में इन १४ रत्नों की उपयोगिता का विशेष वर्णन मिलता है। जिज्ञासुओं को वहां से देखना चाहिये।

दुःषमा सुषमा लक्षण

सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणिज्जा तंजहा - अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाहू पुज्जंति, साहू ण पुज्जंति, गुरुहिं जणो मिच्छं पडिवण्णो, मणोदुहया, वयदुहया । सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणिज्जा तंजहा - अकाले ण वरिसइ, काले वरिसइ, असाहू ण पुज्जंति, साहू पुज्जंति, गुरुहिं जणो सम्मं पडिवण्णो, मणोसुहया, वयसुहया॥ ७२॥

कठिन शब्दार्थ - दुस्समं - दुषमा, **ओगाढं** - अवगाढ-आया हुवा, **अकाले** - अकाल में, **वरिसइ**-वर्षा होती है, **असाहू** - असाधु, **पुज्जंति** - पूजे जाते हैं, **मणोदुहया** - मनोदुःखिता, **वयदुहया**- वाग् दुःखिता, **सुसमं**- सुषमा ।

भावार्थ - दुषमा - उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा तथा अवसर्पिणी काल का पांचवां आरा दुषमा काल कहलाता है । यह इक्कीस हजार वर्ष तक रहता है । सात बातों से यह जाना जा सकता है कि अब दुषमा आरा शुरू होने वाला है या सात बातों से दुषमा आरा का प्रभाव जाना जाता है । दुषमा आरा आने पर अकाल में वर्षा होती है । वर्षाकाल में जिस समय वर्षा की आवश्यकता होती है उस समय वर्षा नहीं होती है । असाधु पूजे जाते हैं । साधु और सज्जन पुरुषों का सन्मान नहीं होता है । माता पिता और गुरुजनों का विनय नहीं रहता है । लोगों का मन अप्रसन्न और दुर्भावना वाला हो जाता है । लोग कड़वे और द्वेष पैदा करने वाले वचन बोलते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुषमा – अवसर्पिणी काल का दूसरा आरा तथा उत्सर्पिणी काल का पांचवां आरा सुषमा कहलाता है । यह काल तीन कोडाकोडी सागरोपम तक रहता है । सात बातों से सुषमा काल का आगमन या प्रभाव जाना जाता है । सुषमा आरा आने पर अकाल में वर्षा नहीं होती है । काल में यानी ठीक समय पर वर्षा होती है । असाधु यानी असंयति की पूजा नहीं होती है । साधु और सज्जन पुरुष पूजे जाते हैं । लोग माता पिता तथा गुरुजनों का विनय करते हैं । लोग प्रसन्न मन और प्रेमभाव वाले होते हैं । लोग मीठे और दूसरे को आनन्ददायक वचन बोलते हैं।

संसारी जीव भेद

सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा – णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ ।

अकाल मृत्यु के कारण

सत्तविहे आउभेए पण्णत्ते तंजहा –

अज्झवसाण णिमित्ते, आहारे वेयणा पराघाए ।
फासे आणापाणू, सत्तविहं भिज्जए आउं ॥ १॥

सर्व जीव भेद

सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा – पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया तसकाइया, अकाइया । अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा – कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा, अलेस्सा॥ ७३ ॥

कठिन शब्दार्थ – **आउभेए** - आयुभेद, **अज्झवसाण** – अध्यवसान, **णिमित्ते** – निमित्त, **फासे** – स्पर्श, **आणापाणू** – आण प्राण-श्वासोच्छ्वास, **भिज्जए** – भेदन होता है।

भावार्थ – संसारी जीव सात प्रकार के कहे गये हैं यथा – नैरयिक, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चणी, मनुष्य मनुष्यणी यानी स्त्री, देव और देवी ।

आयुभेद – बांधी हुई आयुष्य पूरी किये बिना बीच ही में मृत्यु हो जाना आयुभेद है । यह सोपक्रम आयुष्य वाले के ही होता है । इसके सात कारण कहे गये हैं यथा – १. अध्यवसान यानी राग स्नेह या भयरूप प्रबल मानसिक आघात होने पर बीच में ही आयु टूट जाती है । २. निमित्त – शस्त्र, दण्ड आदि का निमित्त पाकर आयु टूट जाती है । ३. आहार – अधिक भोजन कर लेने पर, ४. वेदना- शूल आदि की असह्य वेदना होने पर, ५. पराघात – गड्ढे आदि में गिरना वगैरह बाह्य आघात पाकर, स्पर्श – सांप आदि के काट लेने पर या ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिसके छूने से शरीर में जहर फैल जाय, ७. आणप्राण – यानी श्वासोच्छ्वास की गति को बन्द कर देने से बीच ही में आयु टूट जाती है । इस प्रकार इन सात कारणों से व्यवहार नय के मतानुसार आयु बीच ही में टूट जाती है ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब जीव सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक यानी सिद्ध भगवान् । अथवा दूसरी तरह से सब जीव सात प्रकार के कहे गये हैं यथा - कृष्णलेश्या वाला, नीललेश्या वाला, कापोत लेश्या वाला, तेजोलेश्या वाला, पद्मलेश्या वाला और शुक्ललेश्या वाला, लेश्यारहित यानी चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली और सिद्ध भगवान् ।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, मल्लिनाथ के साथ दीक्षित राजा

बंभदत्ते णं राया चाउरंत चक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सत्त य वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए अप्पइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे । मल्ली णं अरहा अप्पसत्तमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तंजहा - मल्ली विदेहवरराय कण्णगा, पडिबुद्धी इक्खागराया, चंदच्छाए अंगराया, रुप्पी कुणालाहिवई, संखे कासीराया, अदीणसत्तू कुरुराया, जियसत्तू पंचालराया ॥ ७४ ॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पसत्तमे - आत्म सप्तम, **विदेहवरराय कण्णगा** - विदेह राज की कन्या।

भावार्थ - ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सात धनुष ऊंचे शरीर वाला था और काल के अवसर पर काल करके नीचे की सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ । उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लिनाथ स्वामी ने आत्मसप्तम यानी छह अन्य राजाओं ने और सातवें आप स्वयं ने इस प्रकार सात व्यक्तियों ने एक साथ मुण्डित होकर दीक्षा ली थी यथा - विदेहराज की कन्या भगवान् मल्लिनाथ, इक्ष्वाकुदेश का राजा प्रतिबुद्धि, अङ्गदेश का राजा चन्द्रच्छाय, कुणाल देश का राजा रुक्मी, काशी देश का राजा अदीनशत्रु और पञ्चाल देश का राजा जितशत्रु ।

विवेचन - भगवान् मल्लिनाथ के पूर्व भव के साथी होने के कारण इन छह राजाओं के ही नाम दिए गए हैं। वैसे तो भगवान् के साथ ३०० स्त्री और ३०० पुरुषों ने दीक्षा ली थी। भगवान् मल्लिनाथ स्वामी का और इन छह राजाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग' सूत्र के आठवें अध्ययन में है । जिज्ञासुओं को वहां से देखना चाहिये।

दर्शन, कर्म प्रकृति वेदन, छद्मस्थ-केवली का विषय

सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा - सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे । छउमत्थ वीयरागे णं मोहणिज्ज वज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेएइ तंजहा - णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, वेयणीयं, आउयं, णामं, गोयं, अंतराइयं । सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीर पडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं । एयाणि चेव उप्पण्ण णाणदंसण धरे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं जाव गंधं । समणे भगवं महावीरे वइरोसभणाराय संघयणे समचउरंस संठाणसंठिए सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था ।

विकथाएँ, सात अतिशय

सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ तंजहा - इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा, मिउकालुणिया, दंसणभेयणी, चरित्तभेयणी । आयरिय उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त अइसेसा पण्णत्ता तंजहा - आयरिय उवज्झाए अंतो उवस्सगस्स पाए णिगिज्झिय णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णाइक्कमइ एवं जहा पंचट्ठाणे जाव आयरिय उवज्झाए बाहिं उवस्सगस्स एगरायं वा दुरायं वा वसमाणे णाइक्कमइ, उवगरणाइसेसे, भत्तपाणाइसेसे ।

संयम, असंयम,आरम्भ और अनारंभ

सत्तविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइयसंजमे जाव तसकाइयसंजमे अजीवकायसंजमे सत्तविहे असंजमे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइयअसंजमे जाव तसकाइयअसंजमे अजीवकायअसंजमे । सत्तविहे आरंभे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइय आरंभे जाव अजीवकाय आरंभे । एवमणारंभे वि, एवं सारंभे वि, एवमसारंभे वि, एवं समारंभे वि, एवमसमारंभे वि, जाव अजीवकायसमारंभे॥ ७५ ॥

कठिन शब्दार्थ - छउमत्थ वीयरागे - छद्मस्थ वीतराग, **मिउकालुणिया** - मृदुकारुणिकी, **दंसणभेयणी** - दर्शन भेदिनी, **चरित्तभेयणी** - चारित्र भेदिनी, **उवगरणाइसेसे** - उपकरणातिशय, **भत्तपाणाइसेसे** - भक्तपानातिशय, **अणारंभे** - अनारम्भ, **सारंभे** - सारम्भ, **असारंभे** - असारम्भ, **समारंभे**- समारम्भ ।

भावार्थ - सात प्रकार का दर्शन कहा गया है यथा - सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, सम्यग्मिथ्यादर्शन, यानी मिश्रदर्शन, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन,, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । छद्मस्थ वीतराग यानी उपशान्तकषाय मोहनीय वाला या क्षीणकषायमोहनीय वाला व्यक्ति मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों का वेदन करता है यथा - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय । छद्मस्थ व्यक्ति सात बातों को सर्वभाव से नहीं जान सकता है और नहीं देख सकता है यथा- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गन्ध । केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक सर्वज्ञ धर्मास्तिकाय से लेकर गन्ध तक इन सातों को सर्वभाव से जानते और देखते हैं ।

वज्रऋषभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सात हाथ ऊंचे शरीर वाले थे ।

सात विकथाएं कही गई हैं यथा - स्त्रीकथा - स्त्री की जाति, कुल, रूप और वेश सम्बन्धी कथा करना । भक्तकथा - भोजन सम्बन्धी कथा करना । राजकथा - राजा की ऋद्धि आदि की कथा करना । मृदुकारुणिकी - पुत्रादि के वियोग से दुःखी माता आदि के करुणक्रन्दन से भरी हुई कथा को मृदुकारुणिकी कथा कहते हैं । दर्शनभेदिनी - दर्शन यानी समकित को दूषित करने वाली कथा करना । चारित्रभेदिनी - चारित्र की तरफ उपेक्षा पैदा करने वाली एवं चारित्र को दूषित करने वाली कथा करना। साधु को ये विकथाएं नहीं करनी चाहिए क्योंकि विकथाएं संयम को दूषित करती हैं । गण यानी गच्छ में आचार्य और उपाध्याय के सात अतिशय कहे गये हैं यथा - आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के अन्दर ही धूलि न उडे इस प्रकार से दूसरे साधुओं से अपने पैरों का प्रस्फोटन एवं प्रमार्जन कराते हैं यानी पूंजवाते हैं और धूलि दूर करवाते हैं, ऐसा करते हुए भी वे भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं यावत् आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक रात या दो रात तक अकेले रहते हुए भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । जैसे पांचवें ठाणे में कहे हैं वे पांच अतिशय यहां कह देने चाहिए । छठा अतिशय यह है कि आचार्य और उपाध्याय दूसरे साधुओं की अपेक्षा प्रधान और उज्ज्वल वस्त्र रखते हुए भी वे भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं । सातवां अतिशय यह है कि आचार्य और उपाध्याय दूसरे साधुओं की अपेक्षा कोमल और स्निग्ध आहार पानी का सेवन करते हुए वे भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते हैं।

सात प्रकार का संयम कहा गया है यथा - पृथ्वीकायसंयम, अप्कायसंयम, तेउकायसंयम, वायुकायसंयम, वनस्पतिकायसंयम, त्रसकायसंयम और अजीवकायसंयम यानी पुस्तक आदि निर्जीव पदार्थों को उपयोग पूर्वक लेना और रखना । सात प्रकार का असंयम कहा गया है यथा - पृथ्वीकाय असंयम यावत् त्रसकाय असंयम और अजीवकाय असंयम । सात प्रकार का आरम्भ कहा गया है यथा- पृथ्वीकाय आरम्भ यावत् अजीवकाय आरम्भ । इसी प्रकार अनारम्भ, सारम्भ, असारम्भ, समारम्भ और असमारम्भ, इन प्रत्येक के उपरोक्त सात सात भेद होते हैं ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात प्रकार के दर्शन कहे गये हैं। सम्यग्दर्शन यानी सम्यक्त्व, मिथ्यादर्शन यानी मिथ्यात्व और सम्यग्-मिथ्यादर्शन यानी मिश्र दर्शन। ये तीनों प्रकार के दर्शन तीन प्रकार के दर्शन मोहनीय के क्षय, क्षयोपशम और उदय से होते हैं। सम्यग्दर्शन त्रिविध दर्शन मोहनीय के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से और सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से होता है जबकि मिथ्यादर्शन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से और मिश्रदर्शन मिश्र मोहनीय के उदय से होता है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होते हैं और केवलदर्शन दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से होता है। सामान्य बोध ही इनका स्वभाव है। इस प्रकार तीन दर्शन श्रद्धान रूप और चार दर्शन सामान्य अवबोध रूप होने से दर्शन के सात भेद कहे गये हैं।

छद्मस्थ सात स्थानों को संपूर्ण रूप से न जान सकता है न देख सकता है। इनमें से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और शरीर रहित जीव अरूपी है। परमाणु पुद्गल, शब्द और गंध रूपी होने पर भी छद्मस्थ उन्हें सर्वपर्यायों सहित जानने में असमर्थ है। केवली भगवान् केवलज्ञान के द्वारा सभी रूपी और अरूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं और देखते हैं।

विकथा की व्याख्या और प्रथम के चार भेदों का वर्णन चौथे स्थान में किया गया है। शेष तीन कथाएं ये हैं -

१. मृदुकारुणिकी - पुत्रादि के वियोग से दुःखी माता आदि के करुण क्रन्दन से भरी हुई कथा को मृदुकारुणिकी कहते हैं।

२. दर्शनभेदिनी - ऐसी कथा करना जिस से दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व में दोष लगे या उसका भंग हो। जैसे ज्ञानादि की अधिकता के कारण कुतीर्थी की प्रशंसा करना। ऐसी कथा सुनकर श्रोताओं की श्रद्धा बदल सकती है।

३. चारित्रभेदिनी - चारित्र की तरफ उपेक्षा या उसकी निन्दा करने वाली कथा। जैसे - आज कल साधु महाव्रतों का पालन कर ही नहीं सकते क्योंकि सभी साधुओं में प्रमाद बढ़ गया है, दोष बहुत लगते हैं, अतिचारों को शुद्ध करने वाला कोई आचार्य नहीं है, साधु भी अतिचारों की शुद्धि नहीं करते, इसलिए वर्तमान तीर्थ ज्ञान और दर्शन पर ही अवलम्बित है। इन्हीं दो की आराधना में प्रयत्न करना चाहिए। ऐसी बातों से शुद्ध चारित्र वाले साधु भी शिथिल हो जाते हैं। जो चारित्र की तरफ अभी झुके हैं उन का तो कहना ही क्या? वे तो बहुत शीघ्र शिथिल हो जाते हैं।

योनि स्थिति, अप्कायिक नैरयिक जीवों की स्थिति

अह भंते ! अयसि कुसुंभ कोद्दव कंगु राल गवरा कोदूसगा सण सरिसव मूला बीयाणं एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्ला उत्ताणं जाव पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त संवच्छराइं, तेण परं जोणी पमिलायइ जाव जोणी वोच्छेए पण्णत्ते । बायर आउकाइयाणं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता ।

तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता । चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

अग्रमहिषियाँ और देव स्थिति

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतर परिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं देवीणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

कल्पों में देव स्थिति, सात श्रेणियाँ

सारस्सयमाइच्चाणं सत्त देवा सत्त देवसया पण्णत्ता । गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता । सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । माहिंदे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । बंभलोए कप्पे जहण्णेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । बंभलोय लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । भवणवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, एवं वाणमंतराणं एवं जोइसियाणं। सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जा सरीरा सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता तंजहा - जंबूद्दीवे दीवे, धायइसंडे दीवे, पोक्खरवरे दीवे, वरुणवरे दीवे, खीरवरे दीवे, घयवरे दीवे, खोयवरे दीवे । णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता तंजहा - लवणे, कालोए, पुक्खरोए, वरुणोए, खीरोए, घओए, खोओए । सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ तंजहा - उज्जुआयया, एगओवंका, दुहओवंका, एगओखुहा, दुहओखुहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला ॥ ७६ ॥

कठिन शब्दार्थ - अयसि कुसुंभ कोद्दव कंगु राल गवरा कोदूसगा सण सरिसव मूल -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कांग, राल, गंवार, कोदूसक, सण, सरसों और मूलक, **पमिलायइ** - म्लान हो जाती है, **जोणीवोच्छेए** - योनि का विच्छेद हो जाता है, **परिग्गहियाणं** - परिगृहीता, **खीरवरे** - क्षीरवर, **घयवरे** - घृतवर, **खोयवरे** - क्षोदवर, **सेढीओ** - श्रेणियाँ, **उज्जुआयया** - ऋज्वायता, **एगओवंका**- एकतो वक्रा, **दुहओवंका** - उभयतोवक्रा, **एगओखुहा** - एकतः खा, **दुहओखुहा** - उभयतःखा, **चक्कवाला** - चक्रवाल, **अद्धचक्कवाला** - अर्द्ध चक्रवाल ।

भावार्थ - अहो भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कांग, राल, गंवार, कोदूसक, सण, सरसों और मूलक इन धानों के बीज जो कोठे आदि में डाल कर बन्द किये गये हों, उनकी योनि कितने काल तक रहती है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सात वर्ष तक योनि रहती है, इसके बाद योनि म्लान हो जाती है यावत् योनि का विच्छेद हो जाता है । अर्थात् उपरोक्त धान अचित्त हो जाते हैं। बादर अप्काय की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की कही गई है । तीसरी बालुकाप्रभा नरक के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है । चौथी पङ्कप्रभा नरक के नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है ।

देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र के पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण के सात अग्रमहिषियां कही गई हैं । देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के पूर्व दिशा के लोकपाल सोम के सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के दक्षिण दिशा के लोकपाल यम के सात अग्रमहिषियाँ कही गई हैं । देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है । देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र की आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है । देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र की अग्रमहिषी देवियों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है । सौधर्म देवलोक में परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की कही गई है । सारस्वत और आदित्य इन दो लोकान्तिक देवों के सात देव और सात सौ देवों का परिवार कहा गया है । गर्दतोय और तुषित इन दो लोकान्तिक देवों के सात देव और सात हजार देवों का परिवार कहा गया है। सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है । माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम झाझेरी कही गई है । ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की कही गई है । ब्रह्मलोक नामक पांचवें और लान्तक नामक छठे देवलोक में विमान सात सौ योजन के ऊंचे कहे गये हैं । भवनवासी वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के भवधारणीय शरीर उत्कृष्ट सात हाथ के ऊंचे कहे गये हैं । सौधर्म और ईशान देवलोक में देवों के भवधारणीय शरीर सात हाथ ऊंचे कहे गये हैं । नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात द्वीप कहे गये हैं यथा - जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप, पुष्करवरद्वीप, वरुणवर द्वीप, क्षीरवरद्वीप घृतवरद्वीप, क्षोदवरद्वीप । नन्दीश्वर द्वीप के भीतर सात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्र कहे गये हैं यथा - लवण समुद्र, कालोद समुद्र, पुष्करोद समुद्र, वरुणोद समुद्र, क्षीरोदसमुद्र, घृतोद समुद्र और क्षोदोद समुद्र ।

सात श्रेणियाँ कही गई है यथा - ऋज्वायता - सीधी श्रेणी, जिसके द्वारा जीव ऊंचे लोक से नीचे लोक में सीधे चले जाते हैं । इसमें एक ही समय लगता है। एकतो वक्रा - जिस श्रेणी द्वारा जीव सीधा जाकर फिर दूसरी श्रेणी में प्रवेश करे। इसमें दो समय लगते हैं। उभयतो वक्रा - जिस श्रेणी से जाता हुआ जीव दो बार वक्रगति करे अर्थात् दो बार दूसरी श्रेणी को प्राप्त करे। इसमें तीन समय लगते हैं। एकतःखा - जिस श्रेणी द्वारा जीव त्रसनाड़ी के बाएं पसवाड़े से त्रसनाड़ी में प्रवेश करके और फिर त्रसनाड़ी द्वारा जाकर उसके बाईं तरफ वाले हिस्से में पैदा होते हैं। यह एक तरफ अंकुशाकार होती है। उभयतःखा - जिस श्रेणी द्वारा जीव त्रसनाड़ी के बाहर से बाएं पसवाड़े से प्रवेश करके त्रसनाड़ी द्वारा जाकर दाहिने पसवाड़े में पैदा होते हैं उसे उभयतःखा कहते हैं। यह दोनों तरफ अंकुशाकार होती है। चक्रवाल - जिस श्रेणी के द्वारा जीव गोल चक्कर खाकर उत्पन्न होते हैं। यह वलयाकार होती है। अर्द्धचक्रवाल - जिस श्रेणी के द्वारा जीव आधा चक्कर खाकर उत्पन्न होते हैं। यह अर्द्ध वलयाकार होती है ।

विवेचन - जिसके द्वारा जीव और पुद्गलों की गति होती है ऐसी आकाश प्रदेश की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं। जीव और पुद्गल एक स्थान से दूसरे स्थान श्रेणी के अनुसार ही जा सकते हैं, बिना श्रेणी के गति नहीं होती। श्रेणियाँ सात हैं। जिनका वर्णन भावार्थ से स्पष्ट है।

अनीका और अनीकाधिपति

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, महिसाणिए, रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए । दुमे पायत्ताणियाहिवई जवं जहा पंचट्ठाणे जाव किण्णरे रहाणियाहिवई, रिट्ठे णट्टाणियाहिवई गीयरई गंधव्वाणियाहिवई । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए, महद्दुमे पायत्ताणियाहिवई जाव किंपुरिसे रहाणियाहिवई, महारिट्ठे णट्टाणियाणियाहिवई गीयजसे गंधव्वाणियाहिवई । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए रुद्दसेणे पायत्ताणियाहिवई जाव आणंदे रहाणियाहिवई, णंदणे णट्टाणियाहिवई तेतली गंधव्वाणियाहिवई । भूयाणंदस्स सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए दक्खे पायत्ताणियाहिवई जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णंदुत्तरे रहाणियाहिवई रई णट्टाणियाहिवई माणसे गंधव्वाणियाहिवई । एवं जाव घोसमहाघोसाणं णेयव्वं ।

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई जाव माढरे रहाणियाहिवई। सेए णट्टाणियाहिवई तुंबरु गंधव्वाणियाहिवई । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता तंजहा - पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए। लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवई जाव महासेए णट्टाणियाहिवई रए गंधव्वाणियाहिवई सेसं जहा पंचठाणे एवं जाव अच्चुयस्स वि णेयव्वं॥ ७७ ॥

कठिन शब्दार्थ - पायत्ताणिए - पदाति अनीक, **णट्टाणिए** - नाट्यानीक, **गंधव्वाणिए** - गन्धर्वानीक ।

भावार्थ - असुरकुमारों के राजा असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदातिअनीक, पीठानीक, कुञ्जरानीक, महिषानीक, रथानीक, नाट्यानीक, गन्धर्वानीक । पदात्यनीक का अधिपति द्रुम है । पीठानीक का अधिपति सोदामी है । कुञ्जरानीक का अधिपति कुंथु है । महिषानीक का अधिपति लोहिताक्ष है । रथानीक का अधिपति किन्नर है । नाट्यानीक का अधिपति रिष्ट है । गन्धर्वानीक का अधिपति गीतरति है । वैरोचन राजा वैरोचनेन्द्र बलीन्द्र के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति अनीक यावत् गन्धर्वानीक । पदाति अनीक का अधिपति महाद्रुम है । यावत् रथानीक का अधिपति किंपुरुष है । नाट्यानीक का अधिपति महारिष्ट है और गन्धर्वानीक का अधिपति गीतयश है । नागकुमारों के राजा नागकुमारों के इन्द्र धरणेन्द्र के सात अनीक (सेना) और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति अनीक यावत् गन्धर्वानीक। पदाति अनीक का अधिपति रुद्रसेन है यावत् रथानीक का अधिपति आनन्द है । नाट्यानीक का अधिपति नन्दन है । गन्धर्वानीक का अधिपति तेतली है । भूतानन्द के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति अनीक यावत् गन्धर्वानीक । पदाति अनीक का अधिपति दक्ष है यावत् रथानीक का अधिपति नन्दोत्तर है । नाट्यानीक का अधिपति रती है और गन्धर्वानीक का अधिपति मानस है । इस प्रकार घोष महाघोष तक सब के सात सात अनीक और सात सात अनीकाधिपति जान लेने चाहिये ।

देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति अनीक यावत् गन्धर्वानीक । पदाति अनीक का अधिपति हरिणेगमेषी है यावत् रथानीक का अधिपति माढर है । नाट्यानीक का अधिपति श्वेत है । गन्धर्वानीक का अधिपति तुंबरु है। देवों के राजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के सात अनीक और सात अनीकाधिपति कहे गये हैं यथा - पदाति अनीक यावत् गन्धर्वानीक । पदाति अनीक का अधिपति लघुपराक्रम है यावत् नाट्यानीक का अधिपति महाश्वेत है । गन्धर्वानीक का अधिपति रति है। इसी प्रकार बारहवें अच्युत देवलोक तक सब के सात सात अनीक और सात सात अनीकाधिपति जान लेने चाहिए । शेष वर्णन पांचवें ठाणे के अनुसार जानना चाहिए ।

विवेचन - चमरेन्द्र की सात प्रकार की अनीक (सेना) है और सात अनीकाधिपति (सेनापति) हैं।

१. पदाति अनीक - पदाति का अर्थ है पैदल और अनीक का अर्थ है सेना अर्थात् पैदल मनुष्यों की सेना पैदल सेना।

२. पीठानीक - पीठ का अर्थ है अश्व (घोड़ा) अतः पीठानीक अर्थात् अश्वसेना।

३. कुंजरानीक - कुंजर का अर्थ है हाथी अतः कुंजरानीक अर्थात् हाथियों की सेना।

४. महिषानीक - महिष का अर्थ भैंसा अतः महिषानीक अर्थात् भैंसों की सेना।

५. रथानीक - रथ का अर्थ बैलों द्वारा अथवा घोड़ों द्वारा चलाये जाने वाला रथ अतः रथानीक का अर्थात् रथों की सेना।

६. नाट्यानीक - नाट्य-का अर्थ है खेल तमाशा करना। अतः खेल तमाशा करने वालों की सेना नाट्यानीक कहलाती है।

७. गन्धर्वानीक - गन्धर्व का अर्थ गीत, वाद्य आदि में निपुण व्यक्ति। गीत, वाद्य आदि में निपुण व्यक्तियों की सेना गंधर्वानीक कहलाती है।

अनीक का अर्थ है सेना। इन अनीकाओं के स्वामी को अनीकाधिपति कहते हैं। इन सब अनीकाओं के नाम और अनीकाधिपतियों के नाम इस प्रकार हैं -

अनीक	अनीकाधिपति
पदाति अनीक (पदात्यनीक)	द्रुम
पीठानीक	सोदामी
कुंजरानीक	कुन्थु
महिषानीक	लोहिताक्ष
रथानीक	किन्नर
नाट्यानीक	रिष्ट
गन्धर्वानीक	गीतरति

इसी प्रकार बलीन्द्र, धरणेन्द्र आदि तथा शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र आदि सभी इन्द्रों की सात सात अनीकायें और सात-सात अनीकाधिपति हैं। जिनका वर्णन भावार्थ में कर दिया गया है।

इसी प्रकार बलीन्द्र, वैरोचनेन्द्र आदि की भी भिन्न भिन्न सेनाएं तथा सेनापति हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाहिवइस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाहिवइस्स पढमाए कच्छाए चउसट्ठि देवसहस्सा पण्णत्ता । जावइया पढमा कच्छा तब्बिगुणा दोच्चा कच्छा, तब्बिगुणा तच्चा कच्छा एवं जाव जावइया छट्ठा कच्छा । तब्बिगुणा सत्तमा कच्छा । एवं बलिस्स वि णवरं महदुमे सट्ठि देव साहस्सिओ, सेसं तं चेव, धरणस्स एवं चेव णवरं अट्ठावीसं देवसहस्सा, सेसं तं चेव, जहा धरणस्स एवं जाव महाघोसस्स, णवरं पायत्ताणियावइणो अण्णे ते पुव्वभणिया । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ तंजहा - पढमा कच्छा एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुयस्स, णाणत्तं पायत्ताणियाहिवइणो अण्णे ते पुव्वभणिया, देवपरिमाणमिणं सक्कस्स चउरासीइं देवसहस्सा, ईसाणस्स असीइ देवसहस्साइं । देवा इमाए गाहाए अणुगंतव्वा -

चउरासीइ असीइ, बावत्तरि सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तालीसा तीसा, बीसा दससहस्सा ॥ १ ॥

जाव अच्चुयस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा, जाव जावइया छट्ठा कच्छा तब्बिगुणा सत्तमा कच्छा ॥ ७८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **कच्छाओ** - कक्षाएं-समूह, **चउसट्ठि देवसहस्सा** - चौसठ हजार देव, **तब्बिगुणा** - उससे दुगुने, **अण्णे** - अन्य, **पुव्वभणिया** - पहले कहे हुए, **देवपरिमाणं** - देवों का परिमाण, **पायत्ताणिय** - पदात्यनीक (पदाति+अनीक=पदात्यनीक) पदाति अनीक - पैदल सेना।

भावार्थ - असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र के पदाति अनीक के अधिपति द्रुम के सात कक्षाएं यानी समूह कहे गये हैं यथा - पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छट्ठा और सातवां समूह । असुरकुमारों के राजा, असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र के पदाति अनीक के अधिपति द्रुम के पहले समूह में चौसठ हजार देव कहे गये हैं । पहले समूह में जितने देव हैं दूसरे समूह में उनसे दुगुने देव हैं यानी दूसरे समूह में एक लाख अट्ठाईस हजार देव हैं । तीसरे समूह में उनसे दुगुने हैं यानी दो लाख छप्पन हजार देव हैं । इस तरह आगे के समूह में पहले समूह से दुगुने दुगुने देव हैं यावत् छठे समूह में जितने देव हैं उनसे दुगुनें सातवें समूह में हैं। इसी प्रकार बलीन्द्र के पदाति अनीक के अधिपति महाद्रुम के पहले समूह में साठ हजार देव हैं इससे आगे आगे के समूहों में दुगुने दुगुने देव हैं । धरणेन्द्र के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पदाति अनीक के अधिपति देव के पहले समूह में अठाईस हजार देव हैं । धरणेन्द्र के समान महाघोष तक सभी इन्द्रों के पदातिअनीक के अधिपति के पहले समूह में अठाईस अठाईस हजार देव हैं और आगे आगे के समूह में पूर्व समूह से दुगुने दुगुने देव हैं । इन इन्द्रों के पदाति अनीक के अधिपति देवों के नाम भिन्न भिन्न हैं वे पहले कह दिये गये हैं । देवों के इन्द्र शक्रेन्द्र के पदाति अनीक के अधिपति हरिणैगमेषी देव के सात समूह कहे गये हैं यथा - पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा और सातवां समूह । यावत् अच्युत नामक बारहवें देवलोक तक सभी इन्द्रों के सात सात समूह कहे गये हैं । इन सभी इन्द्रों के पदातिअनीक के अधिपति देवों के नाम भिन्न भिन्न हैं वे पहले कह दिये गये हैं । उनके पहले समूह के देवों का परिमाण इस गाथा से जानना चाहिए -

शक्रेन्द्र के चौरासी हजार, ईशानेन्द्र के अस्सी हजार, सनत्कुमारेन्द्र के बहत्तर हजार, माहेन्द्र के सित्तर हजार, ब्रह्मलोकेन्द्र के साठ हजार, लान्तकेन्द्र के पचास हजार, महाशुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के तीस हजार, नववें दसवें देवलोक के इन्द्र प्राणतेन्द्र के बीस हजार और ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र अच्युतेन्द्र के पदातिअनीक के अधिपति लघुपराक्रम के दस हजार सामानिक देव हैं । आगे आगे के समूहों में पूर्व पूर्व के समूह से दुगुने दुगुने देव हैं । यावत् छठे समूह में जितने देव हैं उनसे दुगुने देव सातवें समूह में होते हैं।

वचन विकल्प, विनय भेद

सत्तविहे वयण विकप्पे पण्णत्ते तंजहा - आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, संलावे, पलावे, विप्पलावे । सत्तविहे विणए पण्णत्ते तंजहा - णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए । पसत्थ मण विणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूयाभिसंकणे । अपसत्थ मणविणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - पावए, सावज्जे, सकिरिए, सोवक्केसे, अणण्हयकरे, छविकरे, भूयाभिसंकणे । पसत्थ वइविणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - अपावए, असावज्जे, जाव अभूयाभिसंकणे । अपसत्थ वइविणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - पावए जाव भूयाभिसंकणे । पसत्थ कायविणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - आउत्तं गमणं, आउत्तं ठाणं, आउत्तं णिसीयणं, आउत्तं तुयट्टणं, आउत्तं उल्लंघणं, आउत्तं पल्लंघणं, आउत्तं सव्विंदियजोग जुंजणया । अपसत्थ कायविणए सत्तविहे पण्णत्ते तं जहा - अणाउत्तं गमणं जाव अणाउत्तं सव्विंदिय जोगजुंजणया । लोगोवयार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विणए सत्तविहे पण्णत्ते तंजहा - अब्भासवत्तियं, परच्छंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कयपडिकिइया, अत्तगवेसणया, देसकालण्णुया, सव्वत्थेसु य अपडिलोमया॥ ७९॥

कठिन शब्दार्थ - वयणविकप्पे - वचन विकल्प, **आलावे** - आलाप, **अणालावे** - अनालाप, **उल्लावे** - उल्लाप, **अणुल्लावे** - अनुल्लाप, **संलावे** - संलाप, **पलावे** - प्रलाप, **विप्पलावे** - विप्रलाप, **लोगोवयार विणए** - लोकोपचार विनय, **पसत्थ मणविणए** - प्रशस्त मन विनय, **अपावए** - अपाप, **असावज्जे** - असावद्य, **णिरुवक्केसे** - निरुपक्लेश, **अणण्हयकरे** - अनास्रवकर, **अच्छविकरे** - अक्षणिकर, **अभूयाभिसंकणे** - अभूताभिशंकन, **आउत्तं** - आयुक्त-सावधानी पूर्वक, **णिसीयणं** - निषीदन-बैठना, **तुयट्टणं** - त्वग्वर्त्तन-शयन, **उल्लंघणं** - उल्लंघन, **पल्लंघणं** - प्रलंघन, **सव्विंदियजोगजुंजणया**- सर्वेन्द्रिय योग योजनता, **अब्भासवत्तियं** - अभ्यास वर्तित्व, **परच्छंदाणुवत्तियं**- परच्छन्दानुवर्तित्व, **कज्जहेउं** - कार्यहेतु, **कयपडिकिइया** - कृत प्रतिकृतिता, **अत्तगवेसणया** - आर्त्त गवेषणता, **देस-कालण्णुया** - देश कालज्ञता, **सव्वत्थेसु अपडिलोमया** - सर्वार्थ अप्रतिलोमता।

भावार्थ - सात प्रकार का वचन विकल्प कहा गया है यथा - आलाप - थोड़ा यानी परिमित बोलना । अनालाप - बुरे वचन बोलना । उल्लाप - किसी बात का व्यक्त रूप से वर्णन करना । अनुल्लाप - व्यक्त रूप से बुरा वर्णन करना । संलाप - आपस में बातचीत करना । प्रलाप - निरर्थक या अंटशंट भाषण करना । विप्रलाप - तरह तरह से निष्प्रयोजन भाषण करना ।

विनय - जिससे आठ कर्म रूपी मैल दूर हो वह विनय है । वह सात प्रकार का कहा गया है यथा - ज्ञान विनय - ज्ञान और ज्ञानियों का विनय करना, विधिपूर्वक ज्ञान ग्रहण करना तथा अभ्यास करना । दर्शन विनय - दर्शन और दर्शनधारी पुरुषों की सेवा भक्ति करना एवं उनकी आशातना न करना । चारित्रविनय - सामायिक आदि चारित्रों पर श्रद्धा करना, काया से उनका पालन करना तथा भव्य प्राणियों के सामने उनकी प्ररूपणा करना । मनविनय - मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा शुभप्रवृत्ति में लगाना । वचनविनय - वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा उसे शुभ प्रवृत्ति में लगाना । कायविनय - काया से अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा शुभप्रवृत्ति में लगाना । लोकोपचार विनय - दूसरे को सुख प्राप्त हो, इस तरह की बाह्य क्रियाएं करना लोकोपचार विनय है । प्रशस्त मन विनय - अशुभ का त्याग कर शुभ बातों का विचार करना प्रशस्त मन विनय है । वह सात प्रकार का कहा गया है यथा - अपाप - पापरहित मन का व्यापार । असावद्य - क्रोधादि दोष रहित मन की प्रवृत्ति । अक्रिय - कायिकी आदि क्रियाओं में आसक्ति रहित मन की प्रवृत्ति । निरुपक्लेश - शोकादि उपक्लेश रहित मन का व्यापार । अनास्रावकर- आस्रव रहित मन की प्रवृत्ति । अक्षपिकर - अपने तथा दूसरे को पीड़ित न करने रूप मन की प्रवृत्ति । अभूताभिशङ्कन - जीवों को भय न उत्पन्न करने वाला मन का व्यापार । अप्रशस्त मन विनय सात प्रकार का कहा गया है यथा - पापक - पाप वाले कार्य में मन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को लगाना। सावदय - दोष वाले कार्य में मन को लगाना। सक्रिय - कायिकी आदि क्रियाओं में आसक्ति सहित मन का व्यापार। सोपक्लेश - शोकादि उपक्लेश सहित मन का व्यापार। आस्रवकर - आस्रव वाले कार्यों में मन की प्रवृत्ति। क्षपिकर - अपने तथा दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले कार्य में मन की प्रवृत्ति। भूताभिशङ्कन - जीवों को भय उत्पन्न करने वाले कार्य में मन की प्रवृत्ति। प्रशस्त वचन विनय सात प्रकार का कहा गया है यथा - अपाप - पापरहित वचन बोलना। असावदय - दोष रहित वचन बोलना। यावत् अभूताभिशङ्कन - प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने वाला वचन बोलना। अप्रशस्त वचनविनय सात प्रकार का कहा गया है यथा - पापक - पापयुक्त वचन बोलना यावत् भूताभिशङ्कन - प्राणियों को कष्ट पहुँचाने वाला वचन बोलना। प्रशस्त काय विनय सात प्रकार का कहा गया है यथा - आयुक्त गमन - सावधानी पूर्वक जाना, आयुक्त स्थान - सावधानता पूर्वक ठहरना। आयुक्त निषीदन - सावधानी पूर्वक बैठना । आयुक्त शयन - सावधानता पूर्वक सोना । आयुक्त उल्लंघन - सावधानता पूर्वक उल्लंघन करना। आयुक्त प्रलंघन - सावधानता पूर्वक बारबार लांघना। सर्वेन्द्रिय योग योजनता - सभी इन्द्रिय और योगों की प्रवृत्ति सावधानता पूर्वक करना। अप्रशस्त काय विनय सात प्रकार का कहा गया है यथा - अनायुक्त गमन - असावधानी से जाना। यावत् अनायुक्त सर्वेन्द्रिय योग योजनता - सभी इन्द्रिय और योगों की प्रवृत्ति असावधानी पूर्वक करना। लोकोपचार विनय - दूसरों को सुख पहुँचाने वाले बाह्य आचार को अथवा लौकिक व्यवहार को लोकोपचार विनय कहते हैं। वह सात प्रकार का कहा गया है यथा - अभ्यास वर्तित्व यानी गुरु आदि अपने से बड़ों के पास रहना और अभ्यास में प्रेम रखना। परच्छन्दानुवर्तित्व - गुरु एवं अपने से बड़ों की इच्छानुसार चलना। कार्यहेतु - गुरु एवं अपने से बड़ों के द्वारा किये हुए ज्ञान दानादि कार्य के लिए उन्हें विशेष मानना। कृत प्रतिकृतिता - दूसरे के द्वारा अपने ऊपर किये हुए उपकार का बदला देना अथवा आहारादि के द्वारा गुरु की शुश्रूषा करने पर 'वे प्रसन्न होंगे और उसके बदले में वे मुझे ज्ञान सिखायेंगे' ऐसा समझ कर उनकी विनयभक्ति करना । आर्त्तगवेषणता - दुःखी प्राणियों की रक्षा के लिये उनकी गवेषणा करना। देशकालज्ञता - अवसर देख कर कार्य करना और सर्वार्थ अप्रतिलोमता - गुरु के सब कार्यों में अनुकूल रहना ।

विवेचन - वचन अर्थात् भाषण सात तरह का कहा है। विनय का व्युत्पत्त्यर्थ इस प्रकार है - "**विनीयतेष्टप्रकारं कर्मानेनेति विनयः।**" अर्थात् जिस से आठ प्रकार का कर्ममल दूर हो वह विनय है। अथवा-

दूसरे को उत्कृष्ट समझ कर उस के प्रति श्रद्धा भक्ति दिखाने और उस की प्रशंसा करने को विनय कहते हैं। विनय के सात भेद हैं -

१. ज्ञान विनय - ज्ञान तथा ज्ञानी पर श्रद्धा रखना, उनके प्रति भक्ति तथा बहुमान दिखाना, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्वों पर अच्छी तरह विचार तथा मनन करना और विधिपूर्वक ज्ञान का ग्रहण तथा अभ्यास करना ज्ञान विनय है। मतिज्ञान आदि के भेद से इसके पाँच भेद हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. **दर्शन विनय** – इस के दो भेद हैं – सुश्रूषा और अनाशातना। दर्शनगुणाधिकों की सेवा करना, स्तुति आदि से उनका सत्कार करना, सामने आते देख कर खड़े हो जाना, वस्त्रादि के द्वारा सन्मान करना, 'पधारिए, आसन अलंकृत कीजिए' इस प्रकार निवेदन करना, उन्हें आसन देना, उनकी प्रदक्षिणा करना, हाथ जोड़ना, आते हों तो सामने जाना, बैठे हों तो उपासना करना, जाते समय कुछ दूर पहुँचाने जाना सुश्रूषा विनय है। अनाशातना विनय – यह पैंतालीस तरह का है। अरिहन्त, अर्हत्प्रतिपादित धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, संघ, अस्तिवादरूप क्रिया, सांभोगिकक्रिया, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन पन्द्रह स्थानों की आशातना न करना, भक्तिबहुमान करना तथा गुणों का कीर्तन करना। धर्म संग्रह में भक्ति, बहुमान और वर्णवाद ये तीन बातें हैं। हाथ जोड़ना आदि बाह्य आचारों को भक्ति कहते हैं। हृदय में श्रद्धा और प्रीति रखना बहुमान है। गुणों को ग्रहण करना और उनकी प्रशंसा करना वर्णवाद है।

३. **चारित्र विनय** – सामायिक आदि चारित्रों पर श्रद्धा करना, काया से उनका पालन करना तथा भव्य प्राणियों के सामने उनकी प्ररूपणा करना चारित्र विनय है। सामायिक चारित्र विनय, छेदोपस्थापनिक चारित्र विनय, परिहारविशुद्धि चारित्र विनय, सूक्ष्मसंपराय चारित्र विनय और यथाख्यात चारित्र विनय के भेद से इसके पांच भेद हैं।

४. **मन विनय** – आचार्यादि का मन से विनय करना, मन की अशुभप्रवृत्ति को रोकना तथा उसे शुभ प्रवृत्ति में लगाना मन विनय है। इसके दो भेद हैं-प्रशस्त मन विनय तथा अप्रशस्त मन विनय। इनके भी प्रत्येक के सात सात भेद हैं।

५. **वचन विनय** – आचार्यादि की वचन से विनय करना, वचन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा उसे शुभ व्यापार में लगाना वचन विनय है। इसके भी मन की तरह दो भेद हैं। फिर प्रत्येक के सात सात भेद हैं।

६. **काय विनय** – आचार्यादि की काया से विनय करना, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा उसे शुभ व्यापार में प्रवृत्त करना काय विनय है। इसके भी मन विनय की तरह भेद हैं।

७. **उपचार विनय** – दूसरे को सुख प्राप्त हो, इस तरह की बाह्य क्रियाएं करना उपचार विनय है। इसके भी सात भेद हैं।

प्रशस्त मन विनय के ७ भेद, अप्रशस्त मन विनय के ७ भेद, प्रशस्त वचन विनय के ७ भेद, अप्रशस्त वचन विनय के ७ भेद, प्रशस्त काय विनय के ७ भेद, अप्रशस्त काय विनय के ७ भेद और लोकोपचार विनय के ७ भेदों का वर्णन भावार्थ से स्पष्ट है।

सात समुद्घात

सत्त समुग्घाया पण्णत्ता तंजहा - वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेयसमुग्घाए, आहारगसमुग्घाए, केवलिसमुग्घाए । मणुस्साणं सत्त समुग्घाया पण्णत्ता एवं चेव॥ ८०॥

भावार्थ - समुद्घात - कालान्तर में उदय में आने वाले वेदनीय आदि कर्म प्रदेशों को उदीरणा के द्वारा उदय में लाकर उनकी प्रबलता पूर्वक निर्जरा करना समुद्घात कहलाता है । वे सात कहे गये हैं यथा - १. वेदना समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात । २. कषाय समुद्घात - कषाय मोहनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात । ३. मारणान्तिक समुद्घात - मरण के समय में होने वाला समुद्घात । ४. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय के आरम्भ करने पर होने वाला समुद्घात । ५. तैजस समुद्घात - तेजो लेश्या लब्धि वाले पुरुष के द्वारा किया जाने वाला समुद्घात । ६. आहारक समुद्घात - आहारक शरीर का आरम्भ करने पर होने वाला समुद्घात । ७. केवलि समुद्घात - अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष जाने वाले केवली भगवान् के द्वारा किया जाने वाला समुद्घात केवलि समुद्घात कहलाता है ।

विवेचन - समुद्घात - वेदना आदि के साथ एकाकार हुए आत्मा का कालान्तर में उदय में आने वाले वेदनीय आदि कर्म प्रदेशों को उदीरणा के द्वारा उदय में लाकर उनकी प्रबलता पूर्वक निर्जरा करना समुद्घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं -

१. वेदना समुद्घात - वेदना के कारण से होने वाले समुद्घात को वेदना समुद्घात कहते हैं। यह असाता वेदनीय कर्मों के आश्रित होता है। तात्पर्य यह है कि वेदना से पीड़ित जीव अनन्तानन्त कर्म स्कन्धों से व्याप्त अपने प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालता है और उन से मुख उदर आदि छिद्रों और कान तथा स्कन्धादि अन्तरालों को पूर्ण करके लम्बाई और विस्तार में शरीर परिमाण क्षेत्र में व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त्त तक ठहरता है। उस अन्तर्मुहूर्त्त में प्रभूत असाता वेदनीय कर्म पुद्गलों की निर्जरा करता है।

२. कषाय समुद्घात - क्रोधादि के कारण से होने वाले समुद्घात को कषाय समुद्घात कहते हैं। यह कषाय मोहनीय के आश्रित है अर्थात् तीव्र कषाय के उदय से व्याकुल जीव अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाल कर और उनसे मुख और पेट आदि के छिद्रों और कान एवं स्कन्धादि अन्तरालों को पूर्ण करके लम्बाई और विस्तार में शरीर परिमाण क्षेत्र में व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है और प्रभूत कषाय कर्म पुद्गलों की निर्जरा करता है।

३. मारणान्तिक समुद्घात - मरण काल में होने वाले समुद्घात को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। यह अन्तर्मुहूर्त्त शेष आयु कर्म के आश्रित है अर्थात् कोई जीव आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाल कर उनसे मुंख और उदरादि के छिद्रों और कान एवं स्कन्धादि के अन्तरालों को पूर्ण करके विष्कम्भ (घेरा) और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में कम से कम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने शरीर के अंगुल के असंख्यात भाग परिमाण और अधिक से अधिक एक दिशा में असंख्येय योजन क्षेत्र को व्याप्त करता है और प्रभूत आयु कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है।

४. वैक्रिय समुद्घात – वैक्रिय के आरम्भ करने पर जो समुद्घात होता है उसे वैक्रिय समुद्घात कहते हैं और वह वैक्रिय शरीर नाम कर्म के आश्रित होता है अर्थात् वैक्रिय लब्धि वाला जीव वैक्रिय करते समय अपने प्रदेशों को अपने शरीर से बाहर निकाल कर विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन परिमाण दण्ड निकालता है और पूर्वबद्ध वैक्रिय शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है।

५. तैजस समुद्घात – यह तेजो लेश्या निकालते समय में रहने वाले तैजस शरीर नाम कर्म के आश्रित है अर्थात् तेजो लेश्या की स्वाभाविक लब्धि वाला कोई साधु आदि सात आठ कदम पीछे हटकर विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन परिमाण जीव प्रदेशों के दण्ड को शरीर से बाहर निकाल कर क्रोध के विषयभूत जीवादि को जलाता है और प्रभूत तैजस शरीर नाम कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है।

६. आहारक समुद्घात – आहारक शरीर का आरम्भ करने पर होने वाला समुद्घात आहारक समुद्घात कहलाता है। वह आहारक नाम कर्म को विषय करता है अर्थात् आहारक शरीर की लब्धि वाला आहारक शरीर की इच्छा करता हुआ विष्कम्भ और मोटाई में शरीर परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन परिमाण अपने प्रदेशों के दण्ड को शरीर से बाहर निकाल कर यथा स्थूल पूर्वबद्ध आहारक कर्म के प्रभूत पुद्गलों की निर्जरा करता है।

७. केवली समुद्घात – अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त करने वाले केवली के समुद्घात को केवली समुद्घात कहते हैं। वह वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म को विषय करता है।

अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त करने वाला कोई केवली (केवलज्ञानी) कर्मों को सम करने के लिए अर्थात् वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति को आयु कर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए समुद्घात करता है। केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं। प्रथम समय में केवली आत्मप्रदेशों के दण्ड की रचना करता है। वह मोटाई में स्वशरीर परिमाण और लम्बाई में ऊपर और नीचे से लोकान्त पर्यन्त विस्तृत होता है। दूसरे समय में केवली उसी दण्ड को पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में फैलाता है। फिर उस दण्ड का लोक पर्यन्त फैला हुआ कपाट बनाता है। तीसरे समय में दक्षिण और उत्तर अथवा पूर्व और पश्चिम दिशा में लोकान्त पर्यन्त आत्मप्रदेशों को फैला कर उसी कपाट को मथानी रूप बना देता है। ऐसा करने से लोक का अधिकांश भाग आत्मप्रदेशों से व्याप्त हो जाता है, किन्तु मथानी की तरह अन्तराल प्रदेश खाली रहते हैं। चौथे समय में मथानी के अन्तरालों को पूर्ण करता हुआ समस्त लोकाकाश को आत्मप्रदेशों से व्याप्त कर देता है, क्योंकि लोकाकाश और एक जीव के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश बराबर हैं। पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें समय में विपरीत क्रम से आत्मप्रदेशों का संकोच करता है। इस प्रकार आठवें समय में सब आत्मप्रदेश पुनः शरीरस्थ हो जाते हैं।

प्रवचन निह्नव

समणस्स भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयण णिण्हगा पण्णत्ता तंजहा - बहुरया, जीव पएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया। एएसि णं सत्तण्हं पवयण णिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था तंजहा - जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिल्ले। एएसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त उप्पइ णगरा होत्था तंजहा -

सावत्थी उसभपुरं, सेयविया मिहिलमुल्लगातीरं।
पुरि मंतरंजि दसपुर, णिण्हग उप्पइ णगराइं॥ १॥ ८१॥

कठिन शब्दार्थ - **तित्थंसि** - तीर्थ में, **पवयण** - प्रवचन, **णिण्हगा** - निह्नव, **बहुरया** - बहुरत, **जीवपएसिया** - जीव प्रादेशिक, **तीसगुत्ते** - तिष्यगुप्त, **अवत्तिया** - अव्यक्त दृष्टि, **सामुच्छेइया**- सामुच्छेदिक, **तेरासिया** - त्रैराशिक, **छलुए** - षडुलूक, **गोट्ठामाहिल्ले** - गोष्ठामाहिल्ल।

भावार्थ - जो व्यक्ति किसी महापुरुष के सिद्धांत को मानता हुआ भी किसी एक बात में विरोध करता है और फिर स्वयं एक अलग मत निकाल देता है उसे निह्नव कहते हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थ में सात प्रवचन निह्नव कहे गये हैं यथा - १. बहुरत - कोई क्रिया एक क्षण में सम्भव नहीं है। क्रिया के लिए बहुत समयों को आवश्यक मानने वाला होने से इस मत का नाम बहुरत है। इस मत का धर्माचार्य यानी प्रवर्त्तक जमाली था। वह श्रावस्ती नगरी में हुआ था। २. जीवप्रादेशिक - एक प्रदेश भी जीव नहीं है। इसी तरह संख्यात असंख्यात प्रदेश भी जीव नहीं है। इसके अतिरिक्त सभी प्रदेश अजीव हैं। अन्तिम प्रदेश के होने पर ही जीवत्व है। उसके बिना नहीं। इसलिए अन्तिम प्रदेश ही जीव है। इस मत का धर्माचार्य - प्रवर्त्तक तिष्यगुप्त था। वह ऋषभपुर नगर में हुआ था। ३. अव्यक्त दृष्टि - किसी भी वस्तु का ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता है। इसलिए इस मत के अनुयायी सब जगह सन्देह करते थे। इस मत का धर्माचार्य - प्रवर्त्तक आषाढाचार्य थे। वे श्वेताम्बिका नगरी में हुए थे। ४. सामुच्छेदिक दृष्टि - सब पदार्थों को क्षणक्षयी मानने वाला मत। इस का धर्माचार्य - प्रवर्त्तक अश्वमित्र मिथिला नगरी में हुआ था। ५. द्वैक्रिय - एक समय में दो क्रियाएं मानने वाला मत। इसका धर्माचार्य - प्रवर्त्तक आर्य गङ्ग उल्लुका नाम की नदी के किनारे बसे हुए उल्लुकातीर नामक नगर में हुआ था। ६. त्रैराशिक - जीव राशि, अजीव राशि और नोजीव नोअजीवराशि इन तीन राशि को मानने वाला मत। इसका धर्माचार्य - प्रवर्त्तक षडुलूक - रोहगुप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरञ्जिका पुरी में हुआ था । ७. अबद्धिक - इस मत की मान्यता है कि कर्मों का जीव के साथ बन्ध नहीं होता है किन्तु सर्प और सर्प की कंचुकी के समान स्पर्श मात्र होता है । इस मत का धर्माचार्य - प्रवर्त्तक गोष्ठामाहिल्ल दशपुर नगर में हुआ था ।

विवेचन - निह्नव - नि पूर्वक ह्नु धातु का अर्थ है अपलाप करना। जो व्यक्ति किसी महापुरुष के सिद्धान्त को मानता हुआ भी किसी विशेष बात में विरोध करता है और फिर स्वयं एक अलग मत का प्रवर्त्तक बन बैठता है उसे निह्नव कहते हैं। भगवान् महावीर के शासन में सात निह्नव हुए - १. जमाली २. तिष्यगुप्त ३. आषाढ ४. अश्व मित्र ५. गंग ६. षडुलूक (रोहगुप्त) ७. गोष्ठामाहिल्ल। भगवान् के केवलज्ञान के बाद निम्न वर्षों के पश्चात् क्रमशः ये निह्नव हुए - १४, १६, २१४, २२०, २२८, ५४४, ५८४।

कर्म का अनुभाव, सात तारों वाले नक्षत्र

सायावेयणिज्जस्स कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे पण्णत्ते तंजहा - मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, जाव मणुण्णा फासा, मणोसुहया, वइसुहया । असायावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविहे अणुभावे पण्णत्ते तंजहा - अमणुण्णा सद्दा जाव वइदुहया । मघा णक्खत्ते सत्त तारे पण्णत्ते । अभिईयाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता तंजहा - अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सत्तभिसया, पुव्वा भद्दवया, उत्तरा भद्दवया, रेवई। अस्सिणीयाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता तंजहा - अस्सिणी, भरणी, कत्तिया, रोहिणी, मिगसिरे, अद्दा, पुणव्वसू । पुस्साइया सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता तंजहा - पुस्सो, असिलेस्सा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता । साइया णं सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता तंजहा - साइ, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तारासाढा॥ ८२ ॥

कठिन शब्दार्थ - अणुभावे - अनुभाव-उदय, **मणोसुहया** - मन का सुख, **वइसुहया** - वचन का सुख, **पुव्वदारिया** - पूर्व द्वार वाले, **दाहिणदारिया** - दक्षिण द्वार वाले, **अवरदारिया** - पश्चिम द्वार वाले, **उत्तरदारिया** - उत्तर द्वार वाले ।

भावार्थ - सातावेदनीय कर्म का अनुभाव यानी उदय सात प्रकार का कहा गया है यथा - मनोज्ञ शब्द, मनोज्ञ रूप, मनोज्ञ गन्ध, मनोज्ञ रस, मनोज्ञ स्पर्श, मन का सुख, वचन का सुख । असातावेदनीय कर्म का अनुभाव यानी उदय सात प्रकार का कहा गया है यथा - अमनोज्ञ शब्द, अमनोज्ञ रूप, अमनोज्ञ गन्ध, अमनोज्ञ रस, अमनोज्ञ स्पर्श, मन का दुःख और वचन का दुःख । मघा नक्षत्र सात तारों वाला कहा गया है । अभिजित आदि सात नक्षत्र पूर्व द्वार वाले कहे गये हैं यानी ये सात नक्षत्र पूर्व दिशा से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने जाते हैं यथा - अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्व भाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा और रेवती। अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिण द्वार वाले कहे गये हैं यथा - अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्ष आर्द्रा और पुनर्वसु। पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिम द्वार वाले कहे गये हैं यथा - पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा। स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले कहे गये हैं यथा - स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा।

विवेचन - साता वेदनीय और असाता वेदनीय कर्म का विपाक सात-सात प्रकार का कहा है। जब साता वेदनीय का उदय होता है तब जीव सुख का अनुभव करता है और जब असाता वेदनीय का उदय होता है तब जीव दुःख का अनुभव करता है। पांचों इन्द्रियों, मन और वचन में शुभता का होना साता है और इनमें अशुभता का होना असाता है।

सात कूट, कुलकोटि, पुद्गल ग्रहण

जंबूद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वए सत्त कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सिद्धे सोमणसे तह बोद्धव्वे, मंगलावई कूडे।
देवकुरु विमल कंचण, विसिट्ठकूडे य बोद्धव्वे॥ १॥

जंबूद्दीवे दीवे गंधमायणे वक्खार पव्वए सत्त कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सिद्धे य गंधमायणे बोद्धव्वे, गंधिलावई कूडे।
उत्तरकुरु फलिहे, लोहियक्ख आणंदणे चेव॥ २॥

बेइंदियाणं सत्त जाइकुलकोडीजोणी पमुह सयसहस्सा पण्णत्ता। जीवा णं सत्त ट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा तंजहा - णेरइयणिव्वत्तिए जाव देवणिव्वत्तिए एवं चिण जाव णिज्जरा चेव। सत्त पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। सत्त पएसोगाढा पोग्गला जाव सत्त गुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ ८३॥

॥ सत्तमं ठाणं समत्तं। सत्तमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **वक्खारपव्वए** - वक्षस्कार पर्वत, **सत्त जाइकुल कोडी जोणी पमुह सय सहस्सा** - योनि से उत्पन्न हुई कुल कोडी सात लाख, **सत्तट्ठाणणिव्वत्तिए** - सात स्थान निर्वर्तित।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में सोमनस वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, सोमनस, मङ्गलावती, देवकुरु, विमल, काञ्चन और विशिष्ट। इस जम्बूद्वीप में गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, गन्धमादन, गन्धिलावती, उत्तरकुरु, स्फटिक, लोहिताक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और आनन्दन । बेइन्द्रिय जीवों की योनि से उत्पन्न हुई कुलकोडी सात लाख कही गई है । जीवों ने सात स्थान निर्वर्तित पुद्गलों को पापकर्म रूप से सञ्चित किये थे, सञ्चित करते हैं और सञ्चित करेंगे यथा - नरक निर्वर्तित यावत् देवनिर्वर्तित । इसी तरह चयन यावत् निर्जरा तक कह देना चाहिए । सात प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । सात प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं ।

विवेचन - बेइन्द्रिय जीवों की योनि दो लाख और जाति कुल कोटियाँ सात लाख है। कोटि से आशय एक समान कुल है अर्थात् एक कुल के अनेक प्रकार हैं जैसे एक ही प्रकार के गोबर में अनेक जाति के कृमि उत्पन्न होते हैं उनको सामूहिक रूप से कुल कहते हैं। इस विषय में वृत्तिकार कहते हैं -

"द्वीन्द्रिय जातौ या योनयस्तत्प्रभवा याः कुलकोटयस्तासां लक्षणानि सप्त प्रज्ञप्तानीति, तत्र योनिर्यथा गोमयस्तत्र चैकस्यामपि कुलानि-विचित्राकाराः कृम्यादय इति।"

एक ही योनि में अनेक कुल होते हैं अतः बेइन्द्रिय जीवों की योनियों में ७ लाख कुलकोटियाँ बताई गई हैं।

।। सातवां स्थान समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठवां स्थान

सातवें अध्ययन के वर्णन के बाद अब संख्या क्रम से आठवें स्थानक में जीव अजीव आदि तत्त्वों का आठ की संख्या की अपेक्षा वर्णन किया जाता है। आठवें स्थान में एक ही उद्देशक है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

एकाकी विहार योग्य अनगार गुण

अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए तंजहा - सड्ढी पुरिसजाए, सच्चे पुरिसजाए, मेहावी पुरिसजाए, बहुस्सुए पुरिसजाए, सत्तिमं, अप्पाहिगरणे, धिइमं, वीरियसंपण्णे ।

योनि संग्रह

अट्ठविहे जोणिसंग्गहे पण्णत्ते तंजहा - अंडया, पोयया, जराउया, रसइया, संसेइमा, सम्मुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया। अंडया अट्ठगइया अट्ठागइया पण्णत्ता तंजहा - अंडए, अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा पोयएहिंतो वा जाव उववाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा । से चेव णं से अंडए अंडयत्तं विप्पजहमाणे अंडयत्ताए वा पोययत्ताए वा जाव उववाइयत्ताए वा गच्छेज्जा । एवं पोयया वि, जराउया वि, सेसाणं गइरागई णत्थि ।

आठ कर्म प्रकृतियाँ

जीवा णं अट्ठ कम्म-पयडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तंजहा - णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, णामं, गोयं, अंतराइयं । णेरइया णं अट्ठ कम्म पयडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, एवं चेव, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया णं । जीवा णं अट्ठ कम्म पयडीओ उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा, एवं चेव, एवं चिण, उवचिण, बंध, उदीर, वेय, तह णिज्जरा चेव । एए छ चउवीसा दंडगा भाणियव्वा॥ ८४॥

कठिन शब्दार्थ - **अरिहइ** - योग्य माना जाता है, **एगल्लविहारपडिमं** - एकल विहार प्रतिमा को, **सड्ढी** - श्रद्धावान्, **पुरिसजाए** - पुरुषजात, **सत्तिमं** - शक्तिमान्, **अप्पाहिगरणे** - अल्पाधिकरण, **धिइमं** - धृतिमान् (धैर्यवान्), **रसइया** - रसज, **संसेइमा** - संस्वेदज **उब्भिया** - उद्भिज्ज, **उववाइया** - औपपातिक ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - आठ गुणों से युक्त अनगार - साधु एकलविहार प्रतिमा को अङ्गीकार करके अकेला विचर सकता है वे गुण ये हैं - १. श्रद्धावान् पुरुष जात - जिनमार्ग में प्रतिपादित तत्त्व तथा आचार में दृढ़ श्रद्धा वाला हो । कोई देव तथा इन्द्र भी उसे सम्यक्त्व तथा चारित्र से विचलित न कर सके, ऐसा पुरुषार्थी, उद्यमशील तथा हिम्मती होना चाहिए । २. सत्य पुरुषजात - सत्यवादी तथा दूसरों के लिए हित वचन बोलने वाला । ३. मेधावी पुरुष जात - शास्त्रों को ग्रहण करने की शक्ति वाला एवं मर्यादा में रहने वाला । ४. बहुश्रुत पुरुषजात - बहुत शास्त्रों को जानने वाला । सूत्र, अर्थ और तदुभय रूप आगम उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व तथा जघन्य नववें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु को जानने वाला होना चाहिए । ५. शक्तिमान तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल सम्पन्न होना चाहिए । ६. अल्पाधिकरण - थोड़े वस्त्र पात्रादि वाला तथा कलहरहित हो । ७. धृतिमान् - धैर्यवान् अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल परीषह उपसर्गों को सहन करने वाला होना चाहिए । ८. वीर्य सम्पन्न - परम उत्साह वाला होना चाहिए । उपरोक्त आठ गुणों वाला साधु एकल विहार पडिमा अङ्गीकार कर अकेला विचर सकता है ।

आठ प्रकार का योनि संग्रह कहा गया है यथा - १. अण्डज - अण्डे से पैदा होने वाले जीव, पक्षी आदि । २. पोतज - पोत यानी कोथली सहित पैदा होने वाले जीव, जैसे हाथी आदि । ३. जरायुज - जरायु सहित पैदा होने वाले जीव । जैसे मनुष्य, गाय, भैंस, मृग आदि । ये जीव जब गर्भ से बाहर आते हैं तब इनके शरीर पर एक झिल्ली रहती है, उसी को जरायु कहते हैं । उससे निकलते ही ये हलन चलन आदि करते हैं । ४. रसज - दूध, दही, घी, आदि तरल पदार्थ रस कहलाते हैं, उनके विकृत हो जाने पर उनमें पड़ने वाले जीव रसज कहलाते हैं । ५. संस्वेदज - पसीने से पैदा होने वाले जीव जूं, लीख आदि । ६. सम्मूर्च्छिम - शीत, उष्ण आदि का निमित्त मिलने पर आसपास के परमाणुओं से पैदा होने वाले जीव जैसे मच्छर, पिपीलिका, आदि । ७. उद्भिज्ज - उद्भेद अर्थात् जमीन को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले जीव जैसे - पतंगिया, टिड्डी फाका, खंजरीट, ममोलिया आदि । ८. औपपातिक - उपपात जन्म से उत्पन्न होने वाले जीव । देव शय्या से पैदा होते हैं और नैरयिक जीव कुम्भी से पैदा होते हैं । अतः देव और नैरयिक जीव औपपातिक कहलाते हैं । अण्डज जीवों में आठ की गति और आठ की आगति कही गई है यथा - अण्डज जीवों में उत्पन्न होने वाला अण्डज जीव अण्डजों से अथवा पोतजों से यावत् औपपातिक जीवों में से आकर उत्पन्न हो सकता है । अण्डज पने को छोड़ता हुआ वही अण्डज जीव अण्डजों में, पोतजों में यावत् औपपातिकों मे जाकर उत्पन्न हो सकता है । इसी तरह पोतज और जरायुज जीवों में भी आठ की गति और आठ की आगति होती है । शेष रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक जीवों में आठ की गति और आठ की आगति नहीं है किन्तु इनकी गति आगति भिन्न भिन्न है ।

सब जीवों ने आठ कर्मप्रकृतियों का सञ्चय किया है, सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय । इसी तरह नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक २४ ही दण्डक के जीवों ने आठ कर्मों का सञ्चय किया था, सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे । जीवों ने आठ कर्मों का उपचय किया था, उपचय करते हैं और उपचय करेंगे । इसी तरह चय, उपचय, बन्ध उदीरणा, वेदना और निर्जरा इन छह बातों का कथन २४ ही दण्डकों में कर देना चाहिए ।

विवेचन - जिनकल्प प्रतिमा या मासिकी प्रतिमा आदि अंगीकार करके साधु के अकेले विचरने रूप अभिग्रह को एकल विहार प्रतिमा कहते हैं। समर्थ और श्रद्धा तथा चारित्र आदि में दृढ़ साधु ही इसे अंगीकार कर सकता है। उसमें आठ बातें होनी चाहिये जिनका स्पष्टीकरण भावार्थ में दे दिया गया है।

उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। त्रस योनि के अनेक भेद होने पर भी सूत्रकार ने सभी त्रस जीवों के आठ उत्पत्ति स्थान कहे हैं - १. अंडज २. पोतज ३. जरायुज ४. रसज ५. संस्वेदज ६. सम्मूर्च्छिम ७. उद्भिज्ज और ८. औपपातिक। आगे के सूत्र में इन जीवों की गति आगति बतायी गयी है।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म प्रदेशों में हलचल होती है तब जिस क्षेत्र में आत्मप्रदेश हैं उसी क्षेत्र में रहे हुए अनन्तानंत कर्म योग्य पुद्गल जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं। जीव और कर्म का यह मैल ठीक वैसा ही होता है जैसा दूध और पानी का या अग्नि और लोह पिंड का। इस प्रकार आत्म प्रदेशों के साथ बन्ध को प्राप्त कार्मण वर्गणा के पुद्गल ही कर्म कहलाते हैं। कर्म के आठ भेद हैं। १. ज्ञानावरणीय २. दर्शनावरणीय ३. वेदनीय ४. मोहनीय ५. आयु ६. नाम ७. गोत्र और ८. अन्तराय।

१. ज्ञानावरणीय - वस्तु के विशेष धर्म को जानना 'ज्ञान' कहलाता है और जिसके द्वारा ज्ञान ढका जाय उसे 'ज्ञानावरणीय कर्म' कहते हैं। जैसे बादलों से सूर्य ढक जाता है।

२. दर्शनावरणीय - वस्तु के सामान्य धर्म को जानना 'दर्शन' कहलाता है, उस दर्शन को आच्छादित करने वाले कर्म को 'दर्शनावरणीय कर्म' कहते हैं। जैसे द्वारपाल के रोक देने पर राजा के दर्शन नहीं हो पाते हैं।

३. वेदनीय - जिस कर्म के द्वारा साता (सुख) और असाता (दुःख) का वेदन (अनुभव) हो, उसे 'वेदनीय कर्म' कहते हैं। जैसे - शहद लिपटी तलवार के चाटने से सुख और जीभ कटने से दुःख होता है।

४. मोहनीय - जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाय, उसे 'मोहनीय कर्म' कहते हैं। जैसे मदिरा पीने से मनुष्य बे-भान हो जाता है।

५. आयु - जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रुका रहे, उसे 'आयु कर्म' कहते हैं। जैसे बेड़ी में बंधने से अपराधी रुक जाता है, पराधीन हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. नाम – जिस कर्म से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे (शरीर आदि बने या जो जीव के अमूर्तत्व गुण को प्रगट न होने दे) उसे 'नाम कर्म' कहते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है।

७. गोत्र – जिस कर्म के उदय से जीव, उच्च-नीच कुलों में उत्पन्न हो, उसे 'गोत्र कर्म' कहते हैं। जैसे – कुंभकार छोटे-बड़े बरतन बनाता है।

८. अन्तराय – जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में विघ्न उत्पन्न हो, उसे 'अन्तराय कर्म' कहते हैं। जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भंडारी दान प्राप्ति में बाधक होता है।

मायावी और आलोचना

अट्ठहिं ठाणेहिं माई मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अब्भुट्ठेज्जा, णो पडिवज्जेज्जा तंजहा – करिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं, अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अवणए वा मे सिया, कित्ती वा मे परिहाइस्सइ, जसे वा मे परिहाइस्सइ। अट्ठहिं ठाणेहिं माई मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा तंजहा – माइस्स णं अस्सिं लोए गरहिए भवइ, उववाए गरहिए भवइ, आजाई गरहिया भवइ, एगमवि माई मायं कट्टु णो आलोएज्जा जाव णो पडिवज्जेज्जा णत्थि तस्स आराहणा, एगमवि माई मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा अत्थि तस्स आराहणा। बहुओ वि माई मायं कट्टु णो आलोएज्जा जाव णो पडिवज्जेज्जा णत्थि तस्स आराहणा बहुओ वि माई मायं कट्टु आलोएज्जा जाव पडिवज्जेज्जा अत्थि तस्स आराहणा, आयरिय-उवज्झायस्स वा मे अइसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा से य णं ममं आलोएज्जा माई णं एस । माई णं मायं कट्टु से जहा णामए अयागरेइ वा, तंबागरेइ वा, तउआगरेइ वा, सीसागरेइ वा, रुप्पागरेइ वा, सुवण्णागरेइ वा, तिलागणीइ वा, तुसागणीइ वा, बुसागणीइ वा, णलागणीइ वा, दलागणीइ वा, सोंडियालिच्छाणि वा, भंडियालिच्छाणि वा, गोलियालिच्छाणि वा, कुंभारावाएइ वा कवेल्लुवावाएइ वा, इट्टावाएइ वा, जंतवाडचुल्लीइ वा, लोहारंबरिसाणि वा, तत्ताणि समजोइभूयाणि किंसुकफुल्लसमाणाणि, उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुंचमाणाइं पमुंचमाणाइं, इंगालसहस्साइं परिकिरमाणाइं परिकिरमाणाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतो अंतो झियायंति एवामेव माई मायं कट्टु अंतो अंतो झियायइ, जइ वि य णं अण्णे केइ वयइ तं वि य णं माई जाणइ अहं एसे अभिसंकिज्जामि अभिसंकिज्जामि। माई णं मायं कट्टु अणालोइय पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति तंजहा - णो महिड्डिएसु जाव णो दुरंगइएसु, णो चिरट्ठिइएसु, से णं तत्थ देवे भवइ णो महिड्डिए जाव णो चिरट्ठिईए, जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवइ सा वि य णं णो आढाइ णो परिजाणाइ, णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ, भासं वि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठंति- मा बहुं देवे भासउ, मा बहुं देवे ! भासउ ! से णं तओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति तंजहा - अंतकुलाणि वा, पंतकुलाणि वा, तुच्छकुलाणि वा, दरिद्दकुलाणि वा, भिक्खागकुलाणि वा, किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाइ, से णं तत्थ पुमे भवइ दुरूवे दुवण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे, अमणामे, हीणस्सरे, दीणस्सरे, अणिट्ठस्सरे, अकंतस्सरे, अपियस्सरे, अमणुण्णस्सरे, अमणामस्सरे अणाएज्ज वयणे पच्चायाए, जा वि य तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवइ सा वि य णं णो आढाइ णो परिजाणाइ णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ, भासं वि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति मा बहुं अज्जउत्तो ! भासउ, मा बहुं अज्जउत्तो ! भासउ ।

माई णं मायं कट्टु आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति तंजहा - महिड्डिएसु जाव चिरट्ठिईएसु, से णं तत्थ देवे भवइ महिड्डिए जाव चिरट्ठिईए हार विराइयवच्छे, कडगतुडियथंभिय भुए, अंगद कुंडल मउड गंडतल कण्ण पीढधारी विचित्तहत्थाभरणे, विचित्तवत्थाभरणे, विचित्तमाला मउली, कल्लाणगपवर वत्थ परिहिए, कल्लाणगपवरगंध-मल्लाणुलेवणधरे, भासुरबोंदी पलंबवणमालधरे, दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं रसेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं संघाएणं, दिव्वेणं संठाणेणं, दिव्वाए इड्ढीए, दिव्वाए जूईए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चीए, दिव्वेणं तेएणं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिव्वाए लेस्साए, दस दिसाओ उज्जोएमाणा पभासेमाणा महयाहय-णट्टगीयवाइयतंती तल ताल तुडिय घणमुइंग पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, जा वि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवइ, सा वि य णं आढाइ, परिजाणाइ, महारिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ, भासं वि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति - बहुं देवे ! भासउ, बहुं देवे भासउ ! से णं तओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति इड्ढाइं जाव बहुजणस्स अपरिभूयाइं तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाइ, से णं तत्थ पुमे भवइ सुरूवे, सुवण्णे, सुगंधे, सुरसे, सुफासे, इट्ठे कंते मणामे अहीणस्सरे जाव मणामस्सरे आएज्जवयणे पच्चायाए, जा वि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवइ सा वि य णं आढाइ परिजाणाइ जाव बहुं अज्जउत्ते ! भासउ, बहुं अज्जउत्ते भासउ॥ ८५॥

कठिन शब्दार्थ - **विउट्टेज्जा** - निवृत्त होता है, **परिहाइस्सइ** - घट जायगा, **गरिहिए** - गर्हित, **जहा**- जैसे, **तउआगरेइ** - रांगे की खान, **सीसागरेइ** - शीशे की खान, **कवेल्लुवावाएइ** - कवेलु-नलिया पकाने के भट्टे की आग, **किंसुकफुल्लसमाणाणि** - किंशुक-पलाश के फूल की तरह लाल, **उक्कासहस्साइं** - हजारों उल्काओं को, **झियायंति** - सुलग रहे हैं, **अणालोइय-पडिक्कंते** - आलोयणा और प्रतिक्रमण किये बिना, **आउक्खएणं** - आयु क्षय होने पर, **भवक्खएणं** - भव क्षय होने पर, **ठिइक्खएणं** - स्थिति क्षय होने पर, **अणाएज्जवयणं** - अनादेय वचन, **महरिहेणं** - बहुमूल्य-अच्छा, **हारविराइयवच्छे** - वक्षस्थल हारों से सुशोभित होता है, **कडगतुडियथंभियभुए** - कड़े आदि बहुत से आभूषणों से हाथ भरे रहते हैं, **अंगद कुंडलमउडगंड तलकण्णपीढधारी** - अंगद, कुण्डल, मुकुट आदि आभूषणों से मण्डित, **कल्लाणगपवरवत्थपरिहिए** - शुभ और बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए, **कल्लाणगपवरगंध-मल्लाणुलेवणधरे** - शुभ और श्रेष्ठ चंदन आदि का लेप किये हुए, **भासुरबोंदी** - भास्वर शरीर वाला, **पलंबवणमालधरे** - लम्बी लटकती हुई वनमाला को धारण किये हुए, **दिव्वेणं** - दिव्य, **महया हय णट्टगीय वाइयतंतीतलताल तुडिय घणमुइंग पडुप्पवाइयरवेणं** - विविध प्रकार के नाट्य, गीत, ताल, घन मृदंग आदि वादिन्त्रों के साथ।

भावार्थ - आठ कारणों से मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोयणा नहीं करता है, उसका प्रतिक्रमण नहीं करता है आत्मसाक्षी से निंदा नहीं करता है, गुरु के समक्ष आत्मनिन्दा नहीं करता है, उस दोष से निवृत्त नहीं होता है, शुभ विचार रूपी जल के द्वारा अतिचार रूपी कीचड़ को नहीं धोता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। दुबारा नहीं करने का निश्चय नहीं करता है, दोष के लिए उचित प्रायश्चित्त नहीं लेता है। वे आठ कारण इस प्रकार हैं - १. वह यह सोचता है कि जब मैंने अपराध कर ही लिया है तो अब उस पर पश्चात्ताप क्या करना, २. अब भी मैं उसी अपराध को कर रहा हूँ उससे निवृत्त हुए बिना आलोयणा कैसे हो सकती है, ३. मैं उस अपराध को फिर करूँगा, इसलिए आलोयणा नहीं हो सकती है, ४. अपराध के लिए आलोचनादि करने से मेरी ✿ अपकीर्ति होगी। ५. इससे मेरा अवर्णवाद यानी ◆ अपयश होगा, ६. मेरा अपनय होगा अर्थात् पूजा सत्कार आदि मिट जायेंगे, ७. मेरी कीर्ति घट जायगी, ८. मेरा यश घट जायगा। इन आठ कारणों से मायावी पुरुष अपने अपराध की आलोचना नहीं करता है।

आठ कारणों से मायावी पुरुष माया करके उस की आलोचना करता है यावत् उसके लिए उचित प्रायश्चित्त लेता है ये आठ कारण इस प्रकार हैं - १. मायावी पुरुष की इस लोक में निन्दा एवं अपमान होता है यह समझ कर निन्दा एवं अपमान से बचने के लिए मायावी पुरुष आलोयणा करता है । २. मायावी का उपपात अर्थात् देवलोक में जन्म भी गर्हित होता है क्योंकि वह तुच्छ जाति के देवों में उत्पन्न होता है और वहाँ सभी उसका अपमान करते हैं । ३. देवलोक से चवने के बाद मनुष्य जन्म भी उसका गर्हित होता है । वह तुच्छ, नीच तथा निन्दित कुल में उत्पन्न होता है, वहाँ भी उसका कोई आदर नहीं करता है । ४. जो व्यक्ति एक बार भी माया करके उसकी आलोयणा नहीं करता यावत् उसके लिए उचित प्रायश्चित्त नहीं लेता है वह आराधक नहीं, विराधक हो जाता है। ५. जो व्यक्ति एक बार भी सेवन की हुई माया की आलोयणा कर लेता है यावत् उसकी शुद्धि के लिए उचित प्रायश्चित्त ले लेता है वह आराधक होता है। ६. जो मायावी बहुत बार माया करके भी आलोयणा नहीं करता है यावत् उसकी शुद्धि के लिए उचित प्रायश्चित्त नहीं लेता है वह आराधक नहीं होता है । ७. जो व्यक्ति बहुत बार माया करके भी उसकी आलोयणा कर लेता है यावत् उसकी शुद्धि के लिए उचित प्रायश्चित्त ले लेता है वह आराधक होता है । ८. आचार्य या उपाध्याय विशेष ज्ञान से मेरे दोषों को जान लेंगे और वे मुझे मायावी यानी दोषी समझेंगे इस डर से वह अपने दोष की आलोयणा आदि कर लेता है ।

जो मायावी पुरुष माया करके उसकी आलोयणा आदि नहीं करता है वह मन ही मन पश्चात्ताप रूपी अग्नि से जलता रहता है । जैसे लोहे की, ताम्बे, की रांगे की, शीशे की, चांदी की और सोने की भट्टी की आग अथवा तिलों की आग, तुसों की आग, जौ की आग, नल अर्थात् सरों की आग, पत्तों की आग ✱ सुण्डिका भण्डिका और गोलिया के चूल्हों की आग, कुम्हार के आवे-पजावे की आग कवेलू-नलिया पकाने के भट्टे की आग, ईंट पकाने के भट्टे की आग गुड़ या चीनी आदि बनाने की

✿ किसी खास बात के लिए क्षेत्र विशेष में होने वाली बदनामी को अपकीर्ति कहते हैं ।

◆ चारों तरफ फैली हुई बदनामी को अपयश कहते हैं ।

✱ सुण्डिका, भण्डिका और गोलिया ये तीनों शब्द किसी देश विशेष में प्रचलित हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भट्टी, लूहार के बड़े बड़े भट्टे तपे हुए, जलते हुए जो अग्नि के समान हो गए हैं जो किंशुक अर्थात् पलाश के कुसुम (फूल) की तरह लाल हो गये हैं जो हजारों उल्काओं को छोड़ रहे हैं, जो हजारों ज्वालाएं और अंगारे छोड़ रहे हैं और जो अन्दर ही अन्दर जोर से सुलग रहे हैं। ऐसे भट्टों और अग्नि की तरह माया का सेवन करके मायावी पुरुष हमेशा पश्चात्ताप रूपी अग्नि से अन्दर ही अन्दर जलता रहता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे पुरुष के लिए बातचीत करता हो तो भी मायावी पुरुष जानता है कि यह मेरे ही लिए कह रहा है, शायद इसने मेरे दोषों को जान लिया होगा इस प्रकार वह सदा शङ्का करता रहता है। मायावी पुरुष माया का सेवन करके उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना मर कर पहले कुछ शुभ करणी की हो तो भी व्यन्तर आदि छोटी जाति के देवों में उत्पन्न होता है किन्तु परिवारादि की बड़ी ऋद्धि वाले, शरीर और आभरण आदि की अधिक दीप्ति वाले, वैक्रियादि की अधिक लब्धि वाले, अधिक शक्ति सम्पन्न, अधिक सुख वाले महेश या सौधर्म आदि कल्पों में तथा एक सागर या उससे अधिक आयु वाले देवों में उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार वह महर्द्धिक यावत् लम्बी स्थिति वाला देव नहीं होता है। उसका दास दासी आदि बाहरी परिवार और स्त्री पुत्र आदि की तरह आभ्यन्तर परिवार भी उसका आदर नहीं करता है एवं उसको अपना स्वामी नहीं समझता है कोई भी उसको बैठने के लिए बहुमूल्य अच्छा आसन नहीं देता है। जब वह कुछ बोलने के लिए खड़ा होता है तो एक दम चार पांच देव खड़े होकर उसका अपमान करते हुए कहते हैं बस ! रहने दो, अधिक मत बोलो ।

जब वह मायावी जीव वहाँ की आयु, भव और स्थिति क्षय होने पर उस देवलोक से चव कर इस मनुष्य लोक में इन नीच कुलों में उत्पन्न होता है यथा - अन्तकुल अर्थात् वरुड छिंपक आदि । प्रान्तकुल - चाण्डाल आदि । तुच्छ यानी छोटे कुल जिनमें थोड़े आदमी हों अथवा ओछे हों जिनका जाति बिरादरी में कोई सन्मान न हो, दरिद्रकुल - नट आदि । भीख मांगने वाले कुल कृपणकुल इस प्रकार के हीनकुलों में पुरुष रूप से उत्पन्न होता है । इन कुलों में पुरुष रूप से उत्पन्न होकर भी वह कुरूप भद्दे रंग वाला, बुरी गन्ध वाला, बुरे रस वाला, कठोर स्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, अमनोहर, हीन स्वर वाला, दीन स्वर वाला, अनिष्ट स्वर वाला, अकान्त स्वर वाला, अमनोज्ञ स्वर वाला, अमनोहर स्वर वाला और अनादेय वचन वाला होता है । बाहरी और आभ्यन्तर परिवार यानी नौकर चाकर और पुत्र स्त्री आदि उसका सन्मान नहीं करते हैं, उसकी बात नहीं मानते हैं और उसे अपना स्वामी नहीं समझते हैं उसे बैठने के लिए बहुमूल्य - अच्छा आसन नहीं देते हैं । जब वह कुछ बोलता है तो चार पांच आदमी एक दम खड़े होकर उसका अपमान करते हुए कहते हैं कि बस ! रहने दो, अधिक मत बोलो । इस प्रकार वह मायावी पुरुष सब जगह अपमानित होता रहता है ।

जो मायावी पुरुष माया का सेवन करके उसकी आलोयणा और प्रतिक्रमण आदि कर लेता है वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ यथासमय मर कर बहुत ऋद्धि वाले तथा लम्बी स्थिति वाले ऊंचे देवलोक में उत्पन्न होता है । वह वहाँ महर्द्धिक यावत् लम्बी स्थिति वाला देव होता है। उसका वक्षस्थल हारों से सुशोभित होता है, कड़े आदि बहुत से आभूषणों से उसके हाथ भरे रहते हैं । वह अंगद, कुण्डल, मुकुट आदि सभी आभूषणों से मण्डित होता है, उसके हाथों में विचित्र आभूषण होते हैं । उसके विचित्र वस्त्र और भूषण होते हैं । विचित्र मालाओं का मुकुट होता है । शुभ और बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए होता है । शुभ और श्रेष्ठ चन्दन आदि का लेप किये होता है । भास्वर शरीर वाला होता है । लम्बी लटकती हुई वनमाला को धारण किये होता है । दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य स्पर्श, दिव्य संहनन, दिव्य संस्थान, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चि यानी कान्ति, दिव्य तेज, दिव्य लेश्या, इन सब के द्वारा वह दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रकाशित करता हुआ विविध प्रकार के नाट्य, गीत और ताल, घन, मृदङ्ग आदि वादिंत्रों के साथ दिव्य भोगों को भोगता है । उसकी बाहरी और आभ्यन्तर परिषदा के सभी देव देवी आदि परिवार वाले उसका सन्मान करते हैं और उसे अपना स्वामी समझते हैं । बैठने के लिए उसे बहुमूल्य आसन देते हैं । जब वह बोलने लगता है तो चार पांच देव एक दम खड़े होकर कहते हैं कि हे देव ! और कहिए, और कहिए ।

वह वहाँ की आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर उस देवलोक से चव कर इस मनुष्य लोक में ऋद्धि सम्पन्न और सब लोगों के सन्माननीय ऊंचे कुलों में जन्म लेता है । इस प्रकार के ऊंचे कुलों में पुरुष रूप से जन्म लेता है । वह पुरुष होकर सुरूप यानी अच्छे रूप वाला अच्छे वर्ण वाला, अच्छी गन्ध वाला, अच्छे रस वाला, अच्छे स्पर्श वाला, इष्ट कान्त यावत् मनोहर अहीन स्वर वाला यावत् मनोहर स्वर वाला आदेय वचन वाला होता है । उसके बाहरी और आभ्यन्तर परिवार वाले यानी नौकर चाकर तथा पुत्र स्त्री आदि परिवार के सभी लोग उसका आदर करते हैं और उसे अपना स्वामी समझते हैं । जब वह कुछ बोलता है तो सब लोग उसका आदर करते हुए कहते हैं कि हे आर्य ! और कहिये, और कहिये । इस प्रकार सब जगह वह सन्मानित होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में मायावी पुरुष द्वारा माया करके उसकी आलोचना नहीं करने के आठ स्थान और आलोचना करने के आठ स्थानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। जो साधक कृत दोषों की आलोचना नहीं करता है वह आराधक नहीं होता है। कहा भी है -

लज्जाए गारवेण य बहुस्सुयमएण वावि दुच्चरियं।
जे न कहिंति गुरुणं न हु ते आराहया होंति॥

- जो साधु लज्जा से, गौरव से या बहुश्रुत के मद से गुरु के सामने आलोचना नहीं करता वह आराधक नहीं विराधक बन जाता है।

माया शल्य की प्रायश्चित्त आदि से शुद्धि नहीं करने वाला इस लोक और परलोक में दुःखी होता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इससे विपरीत जो साधक हृदय से विनयशील बन कर अपने गुरु के समक्ष सभी दोषों को प्रकट कर आलोचना कर लेता है। वह परम शांति को प्राप्त होता है। आलोचना करने से साधक को आठ गुणों का लाभ होता है -

लहुयाल्हाइयजणणं अप्पपरणियत्ति अज्जवं सोही।
दुक्करकरणं आढा, णिस्सल्लत्तं च सोहिगुणा॥

- जैसे भारवाहक भार उतारने से हलका होता है वैसे ही आलोचक पाप कर्मों से हलका होता है तथा आह्लाद-प्रमोद भाव (आनंद) की वृद्धि होती है। स्व और पर आत्मा की निवृत्ति-आलोचना से स्वयं पाप से छूटता है और उसे देख कर अन्य भी आलोचना करने को तैयार होते हैं। प्रकट रूप से दोष कहने से सरलता आती है तथा अतिचार मल के धोने से आत्मा की शुद्धि होती है। आलोचना करना अत्यंत दुष्कर है अतः वह दुष्कर साधना करने में समर्थ हो जाता है। आलोचना से साधक आदरणीय और निःशल्य होता है। ये आलोचना करने के आठ गुण हैं। इन आठ गुणों से संपन्न जीव भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

संवर-असंवर, आठ स्पर्श

अट्ठविहे संवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदियसंवरे जाव फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वयसंवरे, कायसंवरे । अट्ठविहे असंवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदियअसंवरे जाव कायअसंवरे । अट्ठ फासा पण्णत्ता तंजहा - कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीए, उसिणे, णिद्धे, लुक्खे ।

लोक स्थिति

अट्ठविहा लोगठिई पण्णत्ता तंजहा - आगास पइट्ठिए वाए, वायपइट्ठिए उदही एवं जहा छट्ठाणे जाव जीवा कम्मपइट्ठिया अजीवा, जीव संग्गहीया जीवा कम्मसंग्गहीया॥ ८६ ॥

कठिन शब्दार्थ - कक्खडे - कर्कश, **मउए** - मृदु, **गरुए** - गुरु, **लहुए** - लघु, **णिद्धे** - स्निग्ध, **लुक्खे** - रूक्ष, **संग्गहीया** - संगृहीत ।

भावार्थ - आठ प्रकार का संवर कहा गया है यथा - श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संवर मन संवर, वचन संवर, कायसंवर । आठ प्रकार का असंवर कहा गया है यथा - श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् कायअसंवर । आठ स्पर्श कहे गये हैं यथा - कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत-ठंडा, उष्ण स्निग्ध, रूक्ष ।

आठ प्रकार की लोकस्थिति कही गई हैं यथा - वायु आकाश प्रतिष्ठित है यानी आकाश के सहारे ठहरा हुआ है । घनोदधि यानी पानी वायु पर स्थिर है । इस प्रकार जैसे छठे ठाणे में कथन किया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है वैसा यहाँ कह देना चाहिए । यावत् जीव कर्मों के सहारे ठहरा हुआ है । अजीव जीवों द्वारा संगृहीत यानी स्वीकृत हैं जीव कर्मों के द्वारा संगृहीत यानी बद्ध है ।

विवेचन - स्पर्श आठ -

१. **कर्कश** - पत्थर जैसा कठोर स्पर्श कर्कश कहलाता है।

२. **मृदु** - मक्खन की तरह कोमल स्पर्श मृदु कहलाता है।

३. **लघु** - जो हल्का हो उसे लघु कहते हैं।

४. **गुरु** - जो भारी हो वह गुरु कहलाता है।

५. **स्निग्ध** - चिकना स्पर्श स्निग्ध कहलाता है।

६. **रूक्ष** - रूखे पदार्थ का स्पर्श रूक्ष कहलाता है।

७. **शीत** - ठण्डा स्पर्श शीत कहलाता है।

८. **उष्ण** - अग्नि की तरह उष्ण (गर्म) स्पर्श को उष्ण कहते हैं।

लोकस्थिति - पृथ्वी, जीव, पुद्गल आदि लोक जिन पर ठहरा हुआ है उन्हें लोकस्थिति कहते हैं। वे आठ हैं -

१. **आकाश** - तनुवात और घनवात रूप दो तरह का वायु आकाश के सहारे ठहरा हुआ है। आकाश को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं होती। उसके नीचे कुछ नहीं है।

२. **वात** - घनोदधि अर्थात् पानी वायु पर स्थिर है।

३. **घनोदधि** - रत्नप्रभा आदि पृथ्वियाँ घनोदधि पर ठहरी हुई हैं। यद्यपि ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी जहाँ सिद्ध क्षेत्र है, घनोदधि पर ठहरी हुई नहीं है, उसके नीचे आकाश ही है, तो भी बाहुल्य के कारण यही कहा जाता है कि पृथ्वियाँ घनोदधि पर ठहरी हुई हैं।

४. **पृथ्वी** - पृथ्वियों पर त्रस और स्थावर जीव ठहरे हैं।

५. **जीव** - शरीर आदि पुद्गल रूप अजीव जीवों का आश्रय लेकर ठहरे हुए हैं, क्योंकि वे सब जीवों में स्थित हैं।

६. **कर्म** - जीव कर्मों के सहारे ठहरा हुआ है, क्योंकि संसारी जीवों का आधार उदय में नहीं आए हुए कर्म पुद्गल ही हैं। उन्हीं के कारण वे यहाँ ठहरे हुए हैं। अथवा जीव कर्मों के आधार से ही नरकादि गति में स्थिर हैं।

७. मन और भाषा वर्गणा आदि के परमाणुओं के रूप में अजीव जीवों द्वारा संगृहीत (स्वीकृत) हैं।

८. जीव कर्मों के द्वारा संगृहीत (बद्ध) हैं।

पाँचवें छठे बोल में आधार आधेय भाव की विवक्षा है और सातवें आठवें बोल में संग्राह्य संग्राहक भाव की विवक्षा है। यही इनमें भेद है। यों संग्राह्य संग्राहक भाव में अर्थापत्ति से आधाराधेय भाव आ ही जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोक स्थिति को समझाने के लिए मशक का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे मशक को हवा से फूला कर उसका मुंह बंद कर दिया जाय। इसके बाद मशक के मध्य भाग में गाँठ लगाकर ऊपर का मुख खोल दिया जाय और उसकी हवा निकाल दी जाय। ऊपर के खाली भाग में पानी भरकर वापिस मुंह बंद कर दिया जाय और बीच की गांठ खोल दी जाय। अब मशक के नीचे के भाग में हवा और हवा पर पानी रहा हुआ है। अथवा जैसे हवा से फूली हुई मशक को कमर में बाँध कर कोई पुरुष अथाह पानी में प्रवेश करे तो वह पानी की सतह पर ही रहता है। इसी प्रकार आकाश और वायु आदि भी आधाराधेय भाव से अवस्थित हैं।

गणि सम्पदा

अट्ठविहा गणि संपया पण्णत्ता तंजहा - आयार संपया, सुय संपया, सरीर संपया, वयण संपया, वायणा संपया, मइ संपया, पओगमइ संपया, संगहपरिण्णा णामं अट्ठमा । एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवाल पइट्ठाणे अट्ठट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते ।

समितियाँ

अट्ठ समिईओ पण्णत्ताओ तंजहा - ईरिया समिई, भासा समिई, एसणा समिई, आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा समिई, उच्चारपासवणखेल जल्ल सिंघाणपरिट्ठावणिया समिई, मण समिई, वय समिई, काय समिई॥ ८७॥

कठिन शब्दार्थ - **गणि संपया** - गणि संपदा, **पओगमइसंपया** - प्रयोग मति सम्पदा, **संगहपरिण्णा** - संग्रह परिज्ञा, **महाणिही** - महानिधि ।

भावार्थ - गणिसम्पदा - साधुओं के गण को धारण करने वाला गणी कहलाता है। आचार्य की आज्ञा से जो कुछ साधुओं को साथ लेकर अलग विचरता है और उन साधुओं के आचार विचार का ध्यान रखता हुआ जगह जगह धर्म का प्रचार करता है वही गणी कहा जाता है। गणी में जो गुण होने चाहिए उन्हें गणिसम्पदा कहते हैं। वे सम्पदाएं आठ हैं यथा-१. आचारसम्पदा - चारित्र की दृढता २. श्रुतसम्पदा - विशिष्ट श्रुतज्ञान का होना अर्थात् गणी को बहुत शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए । ३. शरीर सम्पदा - शरीर प्रभावशाली तथा सुसंगठित होना चाहिए। ४. वचन सम्पदा - मधुर, प्रभावशाली तथा आदेय वचन होना चाहिए। ५. वाचना सम्पदा - शिष्यों को शास्त्र आदि पढाने की योग्यता होनी चाहिए। ६. मति सम्पदा - मतिज्ञान की उत्कृष्टता। ७. प्रयोगमति सम्पदा - शास्त्रार्थ या विवाद के लिए अवसर आदि की जानकारी होनी चाहिए। ८. संग्रह परिज्ञा सम्पदा - चातुर्मास आदि के लिए मकान, पाट पाटला वस्त्रादि का अपने आचार के अनुसार संग्रह करना। गणी की ये आठ सम्पदाएं हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती की एक एक महानिधि आठ आठ चक्रों से युक्त है और * आठ आठ योजन की ऊंची है।

आठ समितियाँ कही गई है यथा - ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति उच्चार प्रस्रवण खेल जल्ल सिंघाण परिस्थापनिका समिति मन समिति, वचन समिति, काय समिति ।

विवेचन - गणिसम्पदा - साधु अथवा ज्ञान आदि गुणों के समूह को गण कहा जाता है। गण के धारण करने वाले को गणी कहते हैं। कुछ साधुओं को अपने साथ लेकर आचार्य की आज्ञा से जो अलग विचरता है, उन साधुओं के आचार विचार का ध्यान रखता हुआ जगह-जगह धर्म का प्रचार करता है वही गणी कहा जाता है। अथवा आचार्य को ही गणी कहा जाता है। गणी में जो गुण होने चाहिएं उन्हें गणिसम्पदा कहते हैं। इन गुणों का धारक ही गणीपद के योग्य होता है। वे सम्पदाएं आठ हैं -

१. आचार सम्पदा २. श्रुत सम्पदा ३. शरीर सम्पदा ४. वचन सम्पदा ५. वाचना सम्पदा ६. मति सम्पदा ७. प्रयोग मति सम्पदा ८. संग्रहपरिज्ञा सम्पदा।

१. आचार सम्पदा - चारित्र की दृढ़ता को आचार सम्पदा कहते हैं। इसके चार भेद हैं - (क) संयम क्रियाओं में ध्रुव योग युक्त होना अर्थात् संयम की सभी क्रियाओं में मन वचन और काया को स्थिरतापूर्वक लगाना। (ख) गणी की उपाधि मिलने पर अथवा संयम क्रियाओं में प्रधानता के कारण कभी गर्व न करना। सदा विनीतभाव से रहना। (ग) अप्रतिबद्ध विहार अर्थात् प्रतिबन्ध रहित होकर आगमानुसार विहार करना। चौमासे के अतिरिक्त कहीं अधिक दिन न ठहरना। एक जगह अधिक दिन ठहरने से संयम में शिथिलता आ जाने की संभावना रहती है। (घ) अपना स्वभाव बड़े बूढ़े व्यक्तियों सा रखना अर्थात् कम उमर होने पर भी चञ्चलता न करना। गम्भीर विचार तथा दृढ़ स्वभाव रखना।

२. श्रुत सम्पदा - श्रुत ज्ञान ही श्रुतसम्पदा है। अर्थात् गणी को बहुत शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। इसके चार भेद हैं - (क) बहुश्रुत अर्थात् जिसने सब सूत्रों में से मुख्य मुख्य शास्त्रों का अध्ययन किया हो, उनमें आए हुए पदार्थों को भली भाँति जान लिया हो और उनका प्रचार करने में समर्थ हो। (ख) परिचितश्रुत - जो सब शास्त्रों को जानता हो या सभी शास्त्र जिसे अपने नाम की तरह याद हों। जिसका उच्चारण शुद्ध हो और जो शास्त्रों के स्वाध्याय का अभ्यासी हो। (ग) विचित्रश्रुत - अपने और दूसरे मतों को जान कर जिसने अपने शास्त्रीयज्ञान में विचित्रता उत्पन्न करली हो। जो सभी दर्शनों की तुलना करके भली भाँति ठीक बात बता सकता हो। जो सुललित उदाहरण तथा अलंकारों से अपने व्याख्यान को मनोहर बना सकता हो तथा श्रोताओं पर प्रभाव डाल सकता हो, उसे विचित्रश्रुत कहते हैं। (घ) घोषविशुद्धिश्रुत - शास्त्र का उच्चारण करते समय उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ

---

* प्रत्येक महानिधि नव नव योजन की चौड़ी और बारह बारह योजन की लम्बी होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि स्वरों तथा व्यञ्जनों का पूरा ध्यान रखना घोषविशुद्धि है। इसी तरह गाथा आदि का उच्चारण करते समय षडज्, ऋषभ, गान्धार आदि स्वरों का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। उच्चारण की शुद्धि के बिना अर्थ की शुद्धि नहीं होती और श्रोताओं पर भी असर नहीं पड़ता।

३. शरीर सम्पदा - शरीर का प्रभावशाली तथा सुसंगठित होना ही शरीरसम्पदा है। इसके भी चार भेद हैं - (क) आरोहपरिणाह सम्पन्न - अर्थात् गणी के शरीर की लम्बाई चौड़ाई सुडौल होनी चाहिए। अधिक लम्बाई या अधिक मोटा शरीर होने से जनता पर प्रभाव कम पड़ता है। केशीकुमार और अनाथी मुनि के शरीर सौन्दर्य से ही पहिले पहल महाराजा परदेशी और श्रेणिक धर्म की और झुक गए थे। इससे मालूम पड़ता है कि शरीर का भी काफी प्रभाव पड़ता है। (ख) शरीर में कोई अंग ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे लज्जा हो, कोई अंग अधूरा या बेडौल नहीं होना चाहिए। जैसे काना आदि। (ग) स्थिरसंहनन - शरीर का संगठन स्थिर हो, अर्थात् ढीलाढाला न हो। (घ) प्रतिपूर्णेन्द्रिय अर्थात् सभी इन्द्रियाँ पूरी होनी चाहिए।

४. वचन सम्पदा - मधुर, प्रभावशाली तथा आदेय वचनों का होना वचन सम्पदा है। इसके भी चार भेद हैं - (क) आदेयवचन अर्थात् गणी के वचन जनता द्वारा ग्रहण करने योग्य हों। (ख) मधुर वचन अर्थात् गणी के वचन सुनने में मीठे लगने चाहिए। कर्णकटु न हों। साथ में अर्थगाम्भीर्य वाले भी हों। (ग)अनिश्रित - क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के वशीभूत होकर कुछ नहीं कहना चाहिए। हमेशा शान्त चित्त से सब का हित करने वाला वचन बोलना चाहिए। (घ) असंदिग्ध वचन - ऐसा वचन बोलना चाहिए जिसका आशय बिल्कुल स्पष्ट हो। श्रोता को अर्थ में किसी तरह का सन्देह उत्पन्न न हो।

५. वाचना सम्पदा - शिष्यों को शास्त्र आदि पढ़ाने की योग्यता को वाचना सम्पदा कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं - (क) विचयोद्देश अर्थात् किस शिष्य को कौनसा शास्त्र, कौनसा अध्ययन, किस प्रकार पढ़ाना चाहिए? इन बातों का ठीक ठीक निर्देश करना। (ख) विचय वाचना - शिष्य की योग्यता के अनुसार उसे वाचना देना। (ग) शिष्य की बुद्धि देखकर वह जितना ग्रहण कर सकता हो उतना ही पढ़ाना। (घ) अर्थनिर्यापकत्व - अर्थात् अर्थ की संगति करते हुए पढ़ाना। अथवा शिष्य जितने सूत्रों को धारण कर सके उतने ही पढ़ाना या अर्थ की परस्पर संगति, प्रमाण, नय, कारक, समास, विभक्ति आदि का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए पढ़ाना या शास्त्र के पूर्वा पर सम्बन्ध को अच्छी तरह समझाते हुए सभी अर्थों को बताना।

६. मति सम्पदा - मतिज्ञान की उत्कृष्टता को मति सम्पदा कहते हैं। इसके चार भेद हैं - अवग्रह, ईवा, अवाय और धारणा। अवग्रह आदि प्रत्येक के छह छह भेद हैं।

७. प्रयोगमति सम्पदा (अवसर का जानकार) - शास्त्रार्थ या विवाद के लिए अवसर आदि की जानकारी को प्रयोगमति सम्पदा कहते हैं। इसके चार भेद हैं - (क) अपनी शक्ति को समझ कर.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवाद करे। शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होने से पहिले भली भाँति समझ ले कि उस में प्रवृत्त होना चाहिए या नहीं? सफलता मिलेगी या नहीं? (ख) सभा को जान कर प्रवृत्त हो अर्थात् यह जान लेवे कि सभा किस ढंग की है, कैसे विचारों की है? सभ्य लोग मूर्ख हैं या विद्वान्? वे किस बात को पसन्द करते हैं? वे किस मत को मानने वाले हैं। इत्यादि। (ग) क्षेत्र को समझना चाहिए अर्थात् जहाँ शास्त्रार्थ करना है उस क्षेत्र में जाना और रहना उचित है या नहीं? अगर वहाँ अधिक दिन ठहरना पड़ा तो किसी तरह के उपसर्ग की सम्भावना तो नहीं है? आदि। (घ) शास्त्रार्थ के विषय को अच्छी तरह समझ कर प्रवृत्त हो। यह भी जान ले कि प्रतिवादी किस मत को मानने वाला है। उसका मत क्या है। उसके शास्त्र कौन से हैं? आदि।

८. **संग्रहपरिज्ञा सम्पदा** - वर्षावास (चौमासा) आदि के लिए मकान, पाटला, वस्त्रादि का ध्यान रख कर आचार के अनुसार संग्रह करना संग्रहपरिज्ञा सम्पदा है। इसके चार भेद हैं - (क) मुनियों के लिए वर्षाऋतु में ठहरने योग्य स्थान देखना। (ख) पीठ, फलक, शय्या, संथारे आदि का ध्यान रखना। (ग) समय के अनुसार सभी आचारों का पालन करना तथा दूसरे साधुओं से कराना। (घ) अपने से बड़ों का विनय करना।

पांच समिति और तीन गुप्ति को प्रवचन माता कहते हैं। पांच समितियों का वर्णन पांचवें स्थान में और तीन गुप्तियों का वर्णन तीसरे स्थान में किया जा चुका है।

आलोचना सुनने और करने वाले के गुण

अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ आलोयणा पडिच्छित्तए तंजहा - आयारवं, आहारवं, ववहारवं, उव्वीलए, पकुव्वए, अपरिस्सावी, णिज्जावए, अवायदंसी । अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ अत्तदोसमालोइत्तए तंजहा - जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे, विणयसंपण्णे, णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे, खंते, दंते ।

प्रायश्चित्त

अट्ठविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे ।

मदस्थान

अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता तंजहा - जाइमए, कुलमए, बलमए, रूवमए, तवमए, सुयमए, लाभमए, इस्सरियमए॥ ८८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिच्छित्तए** - देने के लिए, **अरिहइ** - योग्य होता है, **आयारवं** - आचारवान्, **आहारवं** - आधारवान्, **ववहारवं** - व्यवहारवान्, **उव्वीलए** - अपव्रीडक, **पकुव्वए** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकुर्वक, **अपरिस्सावी** - अपरिस्रावी, **णिज्जावए** - निर्यापक, **अवायदंसी** - अपायदर्शी, **अत्तदोसं** - अपने दोषों की, **आलोइत्तए** - आलोयणा करने के लिए, **छेयारिहे** - छेदार्ह, **मूलारिहे** - मूलार्ह, **इस्सरियमए** - ऐश्वर्य मद।

भावार्थ - आठ गुणों से युक्त साधु आलोयणा देने के योग्य होता है यथा - आचारवान् - ज्ञानादि आचार वाला । आधारवान् - बताये हुए अतिचारों को मन मे धारण करने वाला । व्यवहारवान् - आगम आदि पांच प्रकार के व्यवहार को जानने वाला । अपव्रीडक - शर्म से अपने दोषों को छिपाने वाले शिष्य की मीठे वचनों से शर्म दूर करके अच्छी तरह आलोचना कराने वाला । प्रकुर्वक - आलोचित अपराध का प्रायश्चित्त देकर अतिचारों की शुद्धि कराने में समर्थ । अपरिस्रावी - आलोयणा करने वाले के दोषों को दूसरे के सामने प्रकट न करने वाला । निर्यापक - अशक्ति या और किसी कारण से एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने में असमर्थ साधु को थोड़ा थोड़ा प्रायश्चित्त देकर निर्वाह कराने वाला । अपायदर्शी - आलोयणा नहीं करने में परलोक का भय तथा दूसरे दोष दिखाने वाला । आठ गुणों से युक्त साधु अपने दोषों की आलोयणा करने के योग्य होता है यथा - जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, क्षान्त अर्थात् क्षमाशील और दान्त अर्थात् इन्द्रियों का दमन करने वाला ।

प्रायश्चित्त - प्रमाद वश किसी दोष के लग जाने पर उसे दूर करने के लिए जो आलोयणा तपस्या आदि शास्त्र में बताई गई है उसे प्रायश्चित्त कहते हैं । प्रायश्चित्त आठ प्रकार का कहा गया है यथा - आलोयणा के योग्य, प्रतिक्रमण के योग्य, तदुभयार्ह - आलोयणा और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य, विवेकार्ह - यानी अशुद्ध भक्त पानादि परिठवने योग्य । व्युत्सर्गार्ह यानी कायोत्सर्ग के योग्य, तप के योग्य छेदार्ह - दीक्षा पर्याय का छेद करने के योग्य और मूलार्ह - मूल के योग्य अर्थात् फिर से महाव्रत लेने के योग्य । मद स्थान यानी मद आठ प्रकार के कहे गये हैं यथा - जाति मद, कुल मद, बल मद, रूप मद, तप मद, श्रुत मद, लाभ मद और ऐश्वर्य मद ।

विवेचन - सूत्रकार ने आलोचना सुनने वाले और आलोचना करने वाले के ८-८ गुण बताये हैं। यानी आठ गुणों से संपन्न अनगार को आलोचना सुनने का अधिकारी कहा है और जिस साधक में उपरोक्त आठ गुण होते हैं वही आलोचना कर सकता है। आलोचना सुन कर ही दोष निवृत्ति के लिए प्रायश्चित्त दिया जाता है अतः आगे के सूत्र में प्रायश्चित्त के आठ भेद बताये हैं।

अक्रियावादी, महानिमित्त,वचन विभक्ति

अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता तंजहा - एगावाई, अणेगावाई, मियवाई, णिमित्तवाई, सायवाई, समुच्छेयवाई, णिययवाई, ण संति परलोगवाई । अट्ठविहे महाणिमित्ते पण्णत्ते तंजहा - भोमे, उप्पाए, सुविणे, अंतलिक्खे, अंगे, सरे लक्खणे, वंजणे । अट्ठविहा वयण विभत्ती पण्णत्ता तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिद्देसे पढमा होइ, बिईया उवएसणे ।
तईया करणम्मि कया, चउत्थी संपयावणे ।। १ ।।
पंचमी य अवायाणे, छट्ठी सस्सामि वायणे ।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमी आमंतणी भवे ।। २ ।।
तत्थ पढमा विभत्ती, णिद्देसे सो इमो अहं वत्ति ।
बिईया पुण उवएसे, भण कुण व तिमं व तं वत्ति ।। ३ ।।
तइया करणम्मि कया, णीयं य कयं य तेण व मए व ।
हंदि णमो साहाए, हवइ चउत्थी पयाणम्मि ।। ४ ।।
अवणे गिण्हसु तत्तो, इत्तोत्ति व पंचमी अवायाणो ।
छट्ठी तस्स इमस्स व, गयस्स वा सामि संबंधे ।। ५ ।।
हवइ पुण सत्तमी, तम्मिमम्मि आहारकाल भावे य ।
आमंतणी भवे अट्ठमी, उ जह हे जुवाण त्ति ।। ६ ।।

छद्मस्थ और केवली का विषय

अट्ठ ठाणाइं छउमत्थे णं सव्वभावेणं ण जाणइ ण पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं जाव गंधं वायं । एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली जाणइ पासइ जाव गंधं वायं ।

आयुर्वेद के भेद

अट्ठविहे आउवेए पण्णत्ते तंजहा - कुमारभिच्चे, कायतिगिच्छा, सालाई, सल्लहत्ता, जंगोली, भूयविज्जा, खारतंते, रसायणे ।। ८९ ।।

कठिन शब्दार्थ - **अकिरियावाई** - अक्रियावादी, **समुच्छेयवाई** - समुच्छेद वादी, **सुविणे** - स्वप्न, **अंतलिक्खे** - आन्तरिक्ष, **वयण विभत्ति** - वचन विभक्ति, **आउवेए** - आयुर्वेद।

भावार्थ - अक्रियावादी यानी अनेकान्तात्मक यथार्थ स्वरूप को न मानने वाले नास्तिक के आठ भेद कहे गये हैं यथा-एकवादी - *अर्थात् संसार को एक ही वस्तुरूप मानने वाले अद्वैतवादी।* अनेकवादी अर्थात् संसार के समस्त पदार्थों को सर्वथा भिन्न भिन्न मानने वाले बौद्ध आदि। मितवादी अर्थात् जीव अनन्तानन्त है फिर भी उन्हें जो परिमित बताते हैं अथवा जो जीव को अंगुष्ठपरिमाण, श्यामाक तन्दुल परिमाण या अणुपरिमाण मानते हैं वे मितवादी हैं। निर्मितवादी अर्थात् संसार को ईश्वर, ब्रह्म या पुरुष आदि के द्वारा निर्मित यानी बनाया हुआ मानने वाले। सातवादी - जो कहते हैं कि संसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में सुख से रहना चाहिए। सुख से ही सुख की उत्पत्ति हो सकती है, तपस्या आदि दुःख से नहीं। जैसे सफेद तन्तुओं से बनाया गया कपड़ा ही सफेद्द होता है, लाल तन्तुओं से बनाया हुआ नहीं। इसी तरह दुःख से सुख की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार संयम और तप का खण्डन करने वाले सातवादी कहलाते हैं। समुच्छेदवादी अर्थात् वस्तु प्रत्येक क्षण में सर्वथा नष्ट होती रहती है, किसी भी अपेक्षा से नित्य नहीं है, इस प्रकार वस्तु का समुच्छेद मानने वाले बौद्ध आदि। नियतवादी अर्थात् सभी पदार्थों को नित्य मानने वाले सांख्य और योगदर्शन वाले नियतवादी कहलाते हैं। परलोक नास्तित्ववादी - चार्वाक दर्शन परलोक वगैरह को नहीं मानता है। आत्मा को भी पांच भूत स्वरूप ही मानता है। इसके मत में संयम आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। इसे परलोक नास्तित्ववादी कहते हैं। महानिमित्त - जिसके द्वारा भूत भविष्यत् और वर्तमान काल की बातें जानी जा सके उसको महानिमित्त कहते हैं। वह महानिमित्त आठ प्रकार का कहा गया है यथा-भौम - भूमि में किसी तरह की हलचल या और किसी लक्षण से शुभाशुभ जानना। उत्पात - रुधिर या हड्डियाँ आदि की वृष्टि होना, स्वप्न - अच्छे या बुरे स्वप्न से शुभाशुभ बताना। आन्तरिक्ष - आकाश में होने वाला निमित्त। अङ्ग - शरीर के किसी अङ्ग के स्फुरण आदि से शुभाशुभ का जानना। स्वर - षड्ज आदि सात स्वरों से शुभाशुभ बताना। लक्षण - स्त्री पुरुषों की रेखा या शरीर की बनावट आदि से शुभाशुभ बताना। व्यञ्जन - शरीर के तिल मस आदि से शुभाशुभ बताना ।

वचन विभक्ति - कर्ता कर्म आदि का विभाग आठ प्रकार का कहा गया है यथा - १. निर्देश करने में प्रथमा विभक्ति होती है । जैसे - वह है, यह है, मैं हूँ । २. द्वितीया विभक्ति उपदेश में होती है जैसे - इसको कहो । उस कार्य को करो । ३. तीसरी विभक्ति करण यानी क्रिया के व्यापार को पूरा करने वाले साधन में होती है । जैसे - तेन नीतं यानी उसके द्वारा ले जाया गया, मेरे द्वारा किया गया । ४. चौथी विभक्ति सम्प्रदान में और नमः आदि के योग में होती है । जैसे 'भिक्षवे भिक्षां ददाति' साधु के लिए भिक्षा देता है 'नमः सिद्धेभ्यः' सिद्ध भगवन्त के लिए नमस्कार हो। ५. अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है. । जैसे - तस्मात् अपनय यानी वहाँ से अमुक वस्तु दूर करो । यहाँ से अमुक वस्तु लो। 'वृक्षात् पत्रं पतति' अर्थात् वृक्ष से पत्ता गिरता है। पंचमी विभक्ति दूर होने में आती है। ६. स्वामी के साथ सम्बन्ध बतलाने में छठी विभक्ति होती है यथा - 'तस्य इदं पुस्तकं' अर्थात् यह उसकी पुस्तक है। 'अयं राज्ञ पुरुषः' गच्छति अर्थात् यह राजा का पुरुष जाता है। ७. आधार अर्थ में सातवीं विभक्ति होती है । जैसे- 'घटे जलं अस्ति' अर्थात् उस घडे में जल है। 'अस्मिन् घटे घृतं अस्ति' अर्थात् इस घडे में घी है। ८. आमन्त्रण में यानी किसी को पुकारने में आठवीं विभक्ति यानी सम्बोधन होता है । जैसे - हे युवन् ! अर्थात् हे जवान पुरुष । इन सातों विभक्तियों में हिन्दी में अलग अलग चिह्न लगते हैं। जैसे कि - १. पहली विभक्ति में (कर्ता) में कोई चिह्न नहीं लगता है। जैसे कि राम पढ़ता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. दूसरी विभक्ति (कर्म) में "को" लगता है। जैसे कि विद्यार्थी पुस्तक को पढ़ता है, ३. तीसरी विभक्ति (करण) में 'ने, से, के द्वारा' के चिह्न लगते हैं। जैसे कि - लक्ष्मण ने बाण के द्वारा रावण को मारा था, ४. चौथी विभक्ति (सम्प्रदान) में 'के लिए' चिह्न लगता है। जैसे मुनि मोक्ष के लिए संयम धारण करता है, ५. पांचवी विभक्ति (अपादान) में "से" (दूर होने में) लगता है, जैसे कि - वृक्ष से पत्ता नीचे गिरता है, ६. छठी विभक्ति (सम्बन्ध) में "का, की, के", "रा, री, रे" चिह्न लगते हैं। जैसे कि राम का बाण, राम की पुस्तक, राम के मित्र। सातवीं विभक्ति (अधिकरण) में "में, पे, पर" ये चिह्न लगते हैं। यथा घर में, घर पर, घर पे। आठवीं विभक्ति (संबोधन) "हे, रे, अरे, अहो, भो" आदि चिह्न लगते हैं। जैसे हे राजन् इत्यादि।

छद्मस्थ पुरुष आठ पदार्थों को सर्वभाव से यानी सम्पूर्ण पर्यायों सहित नहीं जान सकता है और नहीं देख सकता है यथा - धर्मास्तिकाय आदि छह बोल जो छठे ठाणे में बतलाये गये हैं और गन्ध तथा वायु । केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक, रागद्वेष को जीतने वाले, अरिहन्त केवली धर्मास्तिकाय से लेकर गन्ध और वायु तक इन आठों ही वस्तुओं को सर्वभाव से यानी समस्त पर्यायों सहित जानते और देखते हैं । आयुर्वेद यानी चिकित्सा शास्त्र आठ प्रकार का कहा गया है यथा - १. कुमारभृत्य - जिसमें बालकों के रोगों को तथा माता के दूध सम्बन्धी रोगों को दूर करने की विधि बताई गई हो । २. कायचिकित्सा - ज्वर, अतिसार कुष्ठ आदि रोगों को दूर करने की विधि बताने वाला ग्रन्थ । ३. शालाक्य - कान, मुंह नाक आदि के रोग, जिनमें सलाई की जरूरत पड़ती हो, उन रोगों को दूर करने की विधि बताने वाला शास्त्र । ४. शल्यहत्या - शरीर में से शल्य, कांटे आदि को बाहर निकालने का उपाय बताने वाला शास्त्र । ५. जङ्गोली - विष को नाश करने की औषधियाँ बताने वाला शास्त्र । ६. भूतविद्या - भूत, पिशाच आदि को दूर करने की विद्या बताने वाला शास्त्र । ७. क्षारतन्त्र - वीर्य को पुष्ट करने की औषधियाँ बताने वाला शास्त्र । ८. रसायन - मोती, प्रवाल, पारा आदि की भस्म बनाने की विधि बताने वाला शास्त्र रसायन शास्त्र कहलाता है ।

विवेचन - जिस शास्त्र में पूरी आयु को स्वस्थ रूप से बिताने का तरीका बताया गया हो अर्थात् जिसमें शरीर को नीरोग और पुष्ट रखने का मार्ग बताया हो उसे आयुर्वेद कहते हैं। इसका दूसरा नाम चिकित्सा शास्त्र है। इसके आठ भेदों का अर्थ भावार्थ में स्पष्ट कर दिया गया है।

अग्रमहिषियाँ

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - पउमा, सिवा, सई, अंजू, अमला, अच्छरा, णवमिया, रोहिणी । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ तंजहा - कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिया, वसू, वसुगुत्ता, वसुमित्ता, वसुंधरा । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ।

महाग्रह, तृण वनस्पतिकाय, चउरिन्द्रिय जीवों का संयम असंयम

अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता तंजहा - चंदे, सूरे, सुक्के, बुहे, बहस्सई, अंगारे, सणिंचरे, केऊ । अट्ठविहा तण वणस्सइ काइया पण्णत्ता तंजहा - मूले, कंदे, खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते, पुप्फे । चउरिंदियाणं जीवाणं असमारभमाणस्स अट्ठविहे संजमे कज्जइ तंजहा - चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ, एवं जाव फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, फासामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ । चउरिंदियाणं जीवाणं समारभमाणस्स अट्ठविहे असंजमे कज्जइ तंजहा - चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवित्ता भवइ, चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोइत्ता भवइ, एवं जाव फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवित्ता भवइ, फासामएणं दुक्खेणं संजोइत्ता भवइ ।

आठ सूक्ष्म, भरत चक्रवर्ती बाद सिद्ध आठ पुरुष

अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता तंजहा - पाणसुहुमे, पणगसुहुमे,बीयसुहुमे, हरियसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे । भरहस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स अट्ठपुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं तंजहा - आइच्चजसे, महाजसे, अइबले, महाबले, तेयवीरिए, कित्तवीरिए, दंडवीरिए, जलवीरिए । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था तंजहा - सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभयारी, सोमे, सिरिधरिए, वीरिए, भद्दजसे॥ ९०॥

कठिन शब्दार्थ - **महग्गहा** - महाग्रह, **बहस्सइ** - बृहस्पति, **केऊ** - केतु, **तया** - त्वचा, **साले** - शाखा, **पवाले** - प्रवाल, **पाणसुहुमे** - प्राणसूक्ष्म, **पणगसुहुमे** - पनक सूक्ष्म, **लेणसुहुमे** - लयनसूक्ष्म, **अणुबद्धं** - अनुबद्ध-अनुक्रम से ।

भावार्थ - देवों के राजा देवेन्द्र शक्रेन्द्र के आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - पद्मा, शिवा, शची, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी। देवों के राजा देवेन्द्र ईशानेन्द्र के आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं यथा - कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता,, वसु, वसुगुप्ता,, वसुमित्रा और वसुन्धरा । देवों के राजा देवों के इन्द्र शक्रेद्र के लोकपाल सोम के और ईशानेन्द्र के लोकपाल वैश्रमण के आठ आठ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठ आठ महाग्रह कहे गये हैं यथा - चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, अंगार यानी मंगल, शनिश्चर और केतु ।

तृण वनस्पति काय आठ प्रकार की कही गई है यथा - मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प। चतुरिन्द्रिय जीवों का आरम्भ न करने वाले पुरुष को आठ प्रकार का संयम होता है यथा - वह चतुरिन्द्रिय जीव को चक्षु सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता और उसको चक्षु सम्बन्धी दुःख प्राप्त नहीं करवाता है। वह चक्षु सम्बन्धी दुःख को प्राप्त नहीं होता है। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है तथा इन इन्द्रियाँ सम्बन्धी दुःख को प्राप्त नहीं करवाता है। चतुरिन्द्रिय जीवों का आरम्भ करने वाले पुरुष को आठ प्रकार का असंयम होता है। यथा - वह चक्षु सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है और चक्षु सम्बन्धी दुःख को प्राप्त करवाता है। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है तथा इन इन्द्रियाँ सम्बन्धी दुःख को प्राप्त करवाता है । सूक्ष्म जीव आठ कहे गये हैं। यथा - १. प्राण सूक्ष्म - कुन्थुआ आदि जीव जो चलते हुए ही दिखाई देते हैं, स्थिर नजर नहीं आते हैं। २. पनक सूक्ष्म - वर्षाकाल में भूमि और काठ आदि पर होने वाली पांच रंग की लीलन फूलन। ३. बीज सूक्ष्म-शाली आदि बीज का मुखमूल जिससे अङ्कुर उत्पन्न होता है। ४. हरित सूक्ष्म - नवीन उत्पन्न हुई हरितकाय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाली होती है। ५. पुष्प सूक्ष्म - बड़ या उदुम्बर आदि के फूल जो सूक्ष्म तथा उसी रंग के होने से जल्दी नजर नहीं आते हैं। ६. अण्ड सूक्ष्म-मक्खी, कीडी, छिपकली, गिरगट आदि के सूक्ष्म अण्डे जो दिखाई नहीं देते हैं। ७. लयन सूक्ष्म या उत्तिंग सूक्ष्म-कीड़ी नगरा अर्थात् कीड़ियों का बिल, उस बिल में दिखाई नहीं देने वाली चींटियाँ और बहुत से दूसरे सूक्ष्म जीव होते हैं। ८. स्नेह सूक्ष्म अवश्याय - (बर्फ) हिम महिका आदि रूप स्नेह होता है, यह स्नेह ही सूक्ष्म जीव होता है। चारों दिशाओं में राज्य का विस्तार करने वाले भरत चक्रवर्ती के बाद आठ पुरुष अनुक्रम से सिद्ध यावत् सब दुःखों का अन्त करने वाले हुए हैं। यथा-आदित्ययश, महायश, अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, कीर्तवीर्य, दण्डवीर्य, जलवीर्य। पुरुषादानीय यानी पुरुषों में माननीय तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर थे। यथा - शुभ, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीर्य और भद्रयश।

विवेचन - तृण वनस्पतिकाय - बादर वनस्पतिकाय को तृण वनस्पतिकाय कहते हैं। इसके आठ भेद हैं - १. मूल अर्थात् जड़ २. कन्द - स्कन्ध के नीचे का भाग ३. स्कन्ध - धड़, जहाँ से शाखाएं निकलती है ४. त्वक् - ऊपर की छाल ५. शाखाएं ६. प्रवाल अर्थात् अंकुर ७. पत्ते और ८. फूल।

सूक्ष्म - बहुत मिले हुए होने के कारण या छोटे परिमाण वाले होने के कारण जो जीव दृष्टि में नहीं आते या कठिनता से आते हैं, वे सूक्ष्म कहे जाते हैं। सूक्ष्म आठ प्रकार के जैसा कि गाथा में हैं -

सिणेहं पुप्फसुहुमं च पाणुत्तिगं तहेव य।
पाणगं बीयहरियं च अंडसुहुमं च अट्ठमं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन आठ प्रकार के सूक्ष्म का अर्थ भावार्थ से स्पष्ट है।

गण अर्थात् एक ही आचार वाले साधुओं का समुदाय, गण धारण करने वाले को गणधर कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में पुरुषों में आदेय नाम वाले भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर कहे हैं किंतु हरिभद्रीयावश्यक में भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के दस गण और दस गणधर कहे गये हैं। इसका कारण यह है कि दो गणधर अल्प आयु वाले थे । इसलिए उन दोनों की यहाँ विवक्षा नहीं की गई है । किन्तु यह मान्यता आगम सहित नहीं है। इसीलिए यहाँ आठ गण और आठ ही गणधर बतलाये गये हैं। महान् अर्थ और अनर्थ के साधक होने से आठ महाग्रह कहे हैं - चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति, मंगल, शनिश्चर और केतु।

आदित्ययश आदि आठ महापुरुषों का वर्णन ऊपर आया है। कितनेक आचार्यों की मान्यता है कि आदित्ययश, महायश आदि आठों भरत चक्रवर्ती के लडके थे और वे आठों भाई थे। उनकी यह मान्यता आगमानुकूल नहीं है। ये आठों ही वंश परम्परा है अर्थात् आदित्ययश के पुत्र महायश थे और महायश के पुत्र अतिबल और अतिबल के पुत्र महाबल थे, इस प्रकार ये परस्पर पिता-पुत्र थे और आठों ही उसी भव में मोक्ष पधारे हैं।

दर्शन, उपमाकाल

अट्ठविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा - सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे, सुविणदंसणे । अट्ठविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते तंजहा - पलिओवमे, सागरोवमे, उस्सप्पिणी, ओसप्पिणी, पोग्गल परियट्टे, तीयद्धा, अणागयद्धा, सव्वद्धा । अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी दुवासपरियाए अंतमकासी ।

भ० महावीर स्वामी द्वारा दीक्षित आठ राजा

समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवित्ता अगारओ अणगारियं पव्वाइया तंजहा -

वीरंगय वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी ।
सेयसिवे उदायणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥ १ ॥ ११ ॥

कठिन शब्दार्थ - सुविणदंसण - स्वप्न दर्शन, **अद्धोवमिए** - उपमा रूप काल, **पोग्गल परियट्टे**- पुद्गल परावर्तन, **तीयद्धा** - अतीतकाल, **अणागयद्धा** - अनागतकाल, **सव्वद्धा** - सर्वकाल ।

भावार्थ - आठ प्रकार का दर्शन कहा गया है यथा - सम्यग्-दर्शन, मिथ्या दर्शन, सममिथ्या दर्शन, यानी मिश्र दर्शन, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन और स्वप्न दर्शन । आठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार का उपमा रूप काल कहा गया है। यथा - पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गल परावर्तन, अतीत काल, अनागत काल और सर्वकाल। बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के मोक्ष पधारने के बाद उनके आठ पाट तक यानी उनके पाट पर बैठने वाले शिष्य प्रशिष्य आठ पुरुष मोक्ष गये और भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान हुए पीछे दो वर्ष बाद मोक्ष जाना शुरू हुआ था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठ राजाओं को मुण्डित करके दीक्षा दी थी। यथा - वीराङ्गक, वीरयश, संजय, एणेयक गोत्र वाला राजा प्रदेशी का निजी कोई राजर्षि, आमल कल्पा नगरी का स्वामी श्वेत, हस्तिनापुर का राजा शिव, सिन्धु सौवीर देशों का स्वामी उदायन राजा और ✻ काशीवर्द्धन शंख राजा ॥ १ ॥

विवेचन - दर्शन - वस्तु के सामान्य प्रतिभास को दर्शन कहते हैं। ये आठ हैं -

१. सम्यग्दर्शन - यथार्थ प्रतिभास को सम्यग्-दर्शन कहते हैं।

२. मिथ्यादर्शन - मिथ्या अर्थात् विपरीत प्रतिभास को मिथ्या दर्शन कहते हैं।

३. सम्यग् मिथ्यादर्शन - कुछ सत्य और कुछ मिथ्या प्रतिभास को सम्यग् मिथ्या दर्शन कहते हैं।

४. चक्षु दर्शन ५. अचक्षु दर्शन ६. अवधि दर्शन ७. केवल दर्शन । इन चारों का स्वरूप चौथे स्थानक में दे दिया गया है।

८. स्वप्नदर्शन - स्वप्न में कल्पित वस्तुओं को देखना।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षित आठ राजा - आठ राजाओं ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ली थी। उनके नाम इस प्रकार हैं।

१. वीरांगक २. वीरयशा ३. संजय ४. एणेयक ५. श्वेत ६. शिव ७. उदायन (वीतिभय नगर का राजा, जिसने चण्डप्रद्योत को हराया था तथा भाणेज को राज्य देकर दीक्षा ली थी) ८. शंख (अलख)।

आहार, कृष्ण राजियाँ, मध्य प्रदेश

अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते तंजहा - मणुण्णे असणे, पाणे, खाइमे, साइमे, अमणुण्णे असणे, पाणे, खाइमे, साइमे । उप्पिं सणंकुमार माहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठिं बंभलोए कप्पे रिट्ठविमाणे पत्थडे एत्थ णं अक्खाडग समचउरंस संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ तंजहा - पुरच्छिमेणं दो कण्हराईओ दाहिणेणं दो कण्हराईओ, पच्चच्छिमेणं दो कण्हराईओ, उत्तरेणं दो कण्हराईओ । पुरच्छिमा अब्भंतरा कण्हराई दाहिणं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा । दाहिणा अब्भंतरा कण्हराई पच्चच्छिमगं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा । पच्चच्छिमा अब्भंतरा कण्हराई उत्तरं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा । उत्तरा

✻ यह किस देश का राजा था सो ज्ञात नहीं होता है । अन्तगडदशाङ्ग सूत्र में वर्णन आता है कि वाणारसी नगरी में अलक नामक राजा को दीक्षा दी थी । शायद इसी अलक राजा का दूसरा नाम काशीवर्द्धन शंख हो ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब्भंतरा कण्हराई पुरच्छिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा । पुरच्छिम पच्चच्छिमिल्लाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ छलंसाओ । उत्तर दाहिणाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ तंसाओ । सव्वाओ वि णं अब्भंतर कण्हराईओ चउरंसाओ । एयासिणं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठ णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा - कण्हराई इ वा, मेहराई इ वा, मघा इ वा, माघवई इ वा, वायफलिहे इ वा, वायपलिक्खोभे इ वा, देवफलिहे इ वा, देवपलिक्खोभे इ वा। एयासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु उवासंतरेसु अट्ठ लोगंतिय विमाणा पण्णत्ता तंजहा - अच्ची, अच्चिमाली, वइरोयणे, पभंकरे, चंदाभे, सूराभे, सुपइट्ठाभे, अग्गिच्चाभे एएसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतिया देवा पण्णत्ता तंजहा -

सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥

एएसिणं अट्ठण्हं लोगंतिय देवाणं अजहण्णमणुक्कोसे णं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । अट्ठ धम्मत्थिकाय मज्झपएसा पण्णत्ता, अट्ठ अधम्मत्थिकाय मज्झपएसा पण्णत्ता एवं चेव अट्ठ आगासत्थिकाय मज्झपएसा पण्णत्ता । एवं चेव अट्ठ जीव मज्झपएसा पण्णत्ता॥ ९२ ॥

कठिन शब्दार्थ - कण्हराईओ - कृष्णराजियां, **पुट्ठा** - स्पर्श किये हुए है, **छलंसाओ** - षट् कोणाकार, **तंसाओ** - त्र्यस्र-त्रिकोणाकार, **चउरंसाओ** - चतुरस्र-चतुष्कोण, **मेहराई** - मेघराजि, **वायफलिहं** - वातपरिघा, **वायपलिक्खोभे** - वात परिक्षोभा, **लोगंतिय विमाणा** - लोकान्तिक विमान।

भावार्थ - आठ प्रकार का आहार कहा गया है । यथा - मनोज्ञ अशन पान खादिम स्वादिम अमनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम । सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर यानी तीसरे चौथे देवलोक के ऊपर और ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के नीचे रिष्ट विमान नाम का पाथड़ा है । यहाँ पर आखाटक आसन के आकार की समचतुरस्र संस्थान वाली आठ कृष्ण राजियाँ यानी काले वर्ण की सचित्त अचित्त पृथ्वी की भींत के आकार व्यवस्थित पंक्तियाँ कही गई हैं । यथा - पूर्व दिशा में दो कृष्ण राजियाँ, दक्षिण दिशा में दो कृष्ण राजियाँ, पश्चिम दिशा में दो कृष्ण राजियाँ और उत्तर दिशा में दो कृष्ण राजियाँ हैं । इस प्रकार चारों दिशाओं में आठ कृष्ण राजियाँ हैं । पूर्व दिशा की आभ्यन्तर कृष्ण राजि दक्षिण दिशा की बाहरी कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए है । दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्ण राजि पश्चिम दिशा की बाहरी कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए है ।

पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्ण राजि उत्तर दिशा की बाह्य कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्ण राजि पूर्व दिशा की बाहरी कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए है। इन आठ कृष्ण राजियों में से पूर्व और पश्चिम दिशा की बाहरी दो कृष्ण राजियां षट् कोणाकार हैं और उत्तर तथा दक्षिण दिशा की बाहरी दो कृष्ण राजियाँ त्र्यस्र यानी त्रिकोणाकार हैं। आभ्यन्तर चारों कृष्ण राजियाँ चतुरस्र यानी चतुष्कोण हैं। इन आठ कृष्ण राजियों के आठ नाम कहे गये हैं। यथा - कृष्ण राजि काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलों का परिणाम रूप पंक्ति। मेघराजि - काले मेघ की रेखा के समान। मघा - छठी नारकी के समान अन्धकार वाली । माघवती-सातवीं नारकी के समान अन्धकार वाली। वातपरिघा - आन्धी के समान सघन अन्धकार वाली और दुर्लंघनीय । वातपरिक्षोभा - आन्धी के समान अन्धकार वाली और क्षोभ पैदा करने वाली। देवपरिघा - देवों के लिए दुर्लंघनीय, देवपरिक्षोभा-देवों को क्षोभ पैदा करने वाली। इन आठ कृष्ण राजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान कहे गये हैं। यथा-अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभङ्कर,, चन्द्राभ, सूर्य्याभ, सुप्रतिष्ठाभ और * आग्नेयाम। इन आठ लोकान्तिक विमानों में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव रहते हैं । यथा - सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और आग्नेय । ये देव क्रमशः अर्ची आदि विमानों में रहते हैं ।

इन आठ लोकान्तिक देवों की अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम की कही गई हैं ।

धर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं । अधर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं । इसी तरह आकाशास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश और जीव के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं ।

विवेचन - कृष्ण राजियाँ - कृष्ण वर्ण की सचित्त अचित्त पृथ्वी की भित्ति के आकार व्यवस्थित पंक्तियाँ कृष्ण राजियाँ हैं एवं उनसे युक्त क्षेत्र विशेष भी कृष्ण राजि नाम से कहा जाता है।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर और ब्रह्मलोक कल्प के नीचे रिष्ट विमान नाम का पाथड़ा है। यहाँ पर आखाटक (आसन विशेष) अर्थात् अखाडा के आकार की समचतुरस्र संस्थान वाली आठ कृष्ण राजियाँ हैं। पूर्वादि चारों दिशाओं में दो दो कृष्ण राजियाँ हैं। पूर्व में दक्षिण और उत्तर दिशा में तिर्छी फैली हुई दो कृष्ण राजियाँ हैं। दक्षिण में पूर्व और पश्चिम दिशा में तिर्छी फैली हुई दो कृष्ण राजियाँ है। इसी प्रकार पश्चिम दिशा में दक्षिण और उत्तर में फैली हुई दो कृष्ण राजियाँ है और उत्तर दिशा में पूर्व पश्चिम में फैली हुई दो कृष्ण राजियाँ हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्ण राजियाँ क्रमशः दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम की बाहर वाली कृष्ण राजियाँ को छूती हुई हैं। जैसे पूर्व की आभ्यन्तर कृष्ण राजि दक्षिण की बाह्य कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए हैं। इसी प्रकार दक्षिण की आभ्यन्तर कृष्ण राजि पश्चिम की बाह्य कृष्ण राजि को, पश्चिम की आभ्यन्तर कृष्ण

* भगवती सूत्र में आठ लोकान्तिक विमानों के नाम इस प्रकार हैं - अर्ची, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभङ्कर, चन्द्राभ, सूर्याभ, शुक्राभ और सुप्रतिष्ठाभ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजि उत्तर की बाह्य कृष्ण राजि को और उत्तर की आभ्यन्तर कृष्ण राजि पूर्व की बाह्य कृष्ण राजि को स्पर्श किये हुए हैं।

इन आठ कृष्ण राजियों में पूर्व पश्चिम की बाह्य दो कृष्ण राजियां षट्कोणाकार हैं एवं उत्तर दक्षिण की बाह्य दो कृष्ण राजियाँ त्रिकोणाकार हैं। अन्दर की चारों कृष्ण राजियाँ चतुष्कोण हैं।

कृष्ण राजि के आठ नाम हैं - १. कृष्ण राजि २. मेघ राजि ३. मघा ४. माघवती ५. वातपरिघा ६. वातपरिक्षोभा ७. देवपरिघा ८. देवपरिक्षोभा।

काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलों के परिणाम रूप होने से इसका नाम कृष्ण राजि है। काले मेघ की रेखा के सदृश होने से इसे मेघ राजि कहते हैं। छठी और सातवीं नारकी के सदृश अंधकारमय होने से कृष्ण राजि को मघा और माघवती नाम से कहते हैं। आँधी के सदृश सघन अंधकार वाली और दुर्लंघ्य होने से कृष्ण राजि वातपरिघा कहलाती है। आँधी के सदृश अंधकार वाली और क्षोभ का कारण होने से कृष्ण राजि को वातपरिक्षोभा कहते हैं। देवता के लिये दुर्लंघ्य होने से कृष्ण राजि का नाम देवपरिघा है और देवों को क्षुब्ध करने वाली होने से यह देवपरिक्षोभा कहलाती है।

यह कृष्ण राजि सचित्त अचित्त पृथ्वी के परिणाम रूप है और इसीलिये जीव और पुद्गल दोनों के विकार रूप है।

ये कृष्ण राजियाँ असंख्यात हजार योजन लम्बी और संख्यात हजार योजन चौड़ी हैं। इनका परिक्षेप (घेरा) असंख्यात हजार योजन है।

लोकान्तिक देव - आठ कृष्ण राजियों के अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. अर्ची २. अर्चिमाली ३. वैरोचन ४. प्रभंकर ५. चन्द्राभ ६. सूर्याभ ७. शुक्राभ ८. सुप्रतिष्ठाभ।

अर्ची विमान उत्तर और पूर्व की कृष्ण राजियों के बीच में है। अर्चिमाली पूर्व में है। इसी प्रकार सभी को जानना चाहिए। रिष्टविमान बिल्कुल मध्य में है। इनमें आठ लोकान्तिक देव रहते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. सारस्वत २. आदित्य ३. वह्नि ४. वरुण ५. गर्दतोय ६. तुषित ७. अव्याबाध ८. आग्नेय। ये देव क्रमशः अर्ची आदि विमानों में रहते हैं।

सारस्वत और आदित्य के सात देव तथा उनके सात सौ परिवार है। वह्नि और वरुण के चौदह देव तथा चौदह हजार परिवार है। गर्दतोय और तुषित के सात देव तथा सात हजार परिवार हैं। बाकी देवों के नव देव और नव सौ परिवार है।

लोकान्तिक विमान वायु पर ठहरे हुए हैं। उन विमानों में जीव असंख्यात और अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं किन्तु देव के रूप में अनन्त बार उत्पन्न नहीं हुए।

लोकान्तिक देवों की आठ सागरोपम की स्थिति है। लोकान्तिक विमानों से लोक का अन्त असंख्यात हजार योजन दूरी पर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुचक प्रदेश - रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर तिर्यक् लोक के मध्य भाग में एक राजु परिमाण आयाम विष्कम्भ (लम्बाई चौड़ाई) वाले आकाश प्रदेशों के दो प्रतर हैं। वे प्रतर सब प्रतरों से छोटे हैं। मेरु पर्वत के मध्य प्रदेश में इनका मध्यभाग है। इन दोनों प्रतरों के बीचोबीच गोस्तनाकार चार चार आकाश प्रदेश हैं। ये आठों आकाश प्रदेश जैन परिभाषा में रुचक प्रदेश कहे जाते हैं। ये ही रुचक प्रदेश दिशा और विदिशाओं की मर्यादा के कारणभूत हैं।

उक्त आठों रुचक प्रदेश आकाशास्तिकाय के हैं। आकाशास्तिकाय के मध्यभागवर्ती होने से इन्हें आकाशास्तिकाय मध्य प्रदेश भी कहते हैं। आकाशास्तिकाय की तरह ही धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के मध्य भाग में भी आठ आठ रुचक प्रदेश रहे हुए हैं। इन्हें क्रमशः धर्मास्तिकाय मध्यप्रदेश और अधर्मास्तिकाय मध्यप्रदेश कहते हैं। कुछ आचार्यों की मान्यता है कि जीव के ये आठ रुचक प्रदेश कर्मबन्ध से रहित है किन्तु यह मान्यता आगमानुकूल नहीं है। क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वें अध्ययन की १८ वीं गाथा तथा भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ८ के मूल पाठ में कहा है - '**सव्व सव्वेण बद्धगं**' अर्थात् आत्मा के सभी प्रदेश सभी कर्मों से अर्थात् आठों कर्मों से बंधे हुए हैं। इस पाठ से स्पष्ट होता कि जीव के ये आठ रुचक प्रदेश भी कर्मों से बद्ध होते हैं। अतः रुचक प्रदेश कर्मबन्ध रहित नहीं है।

महापद्म द्वारा मुंडित राजा, आठ अग्रमहिषियाँ

अरहा णं महापउमे अट्ठ रायाणो मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वावेस्सइ तंजहा - पउमं, पउमगुम्मं, णलिणं, णलिणगुम्मं, पउमद्धयं, धणुद्धयं, कणगरहं, भरहं । कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणाओ । तंजहा-

पउमावई गोरी गंधारी, लक्खणा सुसीमा जंबवई ।
सच्चभामा रुप्पिणी, कण्ह अग्गमहिसीओ ॥ १ ॥

वीरियपुव्वस्स णं अट्ठवत्थू, अट्ठ चुलियावत्थू पण्णत्ता॥ ९२ ॥

भावार्थ - आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले प्रथम तीर्थङ्कर श्री महापद्म स्वामी आठ राजाओं को मुण्डित करके दीक्षा देंगे । यथा - पद्म, पद्मगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पद्मध्वज, धनुर्ध्वज, कनकरथ, भरत । कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियाँ बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर दीक्षित हुई थी और वे सिद्ध हुई यावत् उन्होंने सब दुःखों का अन्त किया। उनके नाम इस प्रकार हैं - पद्मावती, गौरी, गन्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी ये कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ थी ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीर्य पूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु कही गई हैं ।

गतियाँ, काकिणी रत्न

अट्ठ गईओ पण्णत्ताओ तंजहा - णिरयगई, तिरियगई, मणुस्सगई, देवगई, सिद्धिगई, गुरुगई, पणोल्लणगई, पब्भारगई । गंगा सिंधु रत्ता रत्तवई देवीणं दीवा अट्ठट्ठजोयणाइं आयाम विक्खंभेणं पण्णत्ता । उक्कामुह मेहमुह विज्जुमुह विज्जुदंत दीवाणं दीवा अट्ठट्ठ जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता । कालोए णं समुद्दे अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल विक्खंभेणं पण्णत्ते । अब्भंतरपुक्खरद्धे दीवे णं अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते, एवं बाहिर पुक्खरद्धे वि ।

एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकिणीरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठिए पण्णत्ते । मागहस्स णं जोयणस्स अट्ठ धणुसहस्साइं णिधत्ते पण्णत्ते॥ ९३ ॥

कठिन शब्दार्थ - गुरुगई - गुरु गति, **पणोल्लणगई** - प्रणोदन गति, **पब्भारगई** - प्राग्भार गति, **चक्कवाल विक्खंभेणं** - चक्रवाल विष्कम्भ, **अट्ठसोवण्णिए** - आठ सुवर्ण प्रमाण वाला, **छत्तले** - छह तलों वाला, **दुवालसंसिए** - बारह कोणों वाला, **अट्ठकण्णिए** - आठ कर्णिका वाला, **अहिगरणिसंठिए** - सुनार की एरण के समान संस्थान वाला, **णिधत्ते** - निश्चित्त प्रमाण ।

भावार्थ - आठ गतियाँ कही गई हैं । यथा - नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति, सिद्धिगति, गुरुगति-परमाणुओं की स्वाभाविक गति, प्रणोदनगति - दूसरों की प्रेरणा से होने वाली गति, प्राग्भारगति अधिक भार से नीचे की तरफ होने वाली गति । गङ्गा, सिन्धु, रक्ता, और रक्तवती इन नदियों की अधिष्ठात्री देवियों के द्वीप आठ, आठ योजन के लम्बे चौड़े कहे गये हैं । उल्कामुख द्वीप, मेघमुख द्वीप, विद्युत्मुख द्वीप और विद्युतदंत द्वीप, आठ सौ आठ सौ योजन के लम्बे चौड़े कहे गये हैं । कालोद समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन का कहा गया है । आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन का कहा गया है । इसी तरह बाहरी पुष्करार्द्ध द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ भी आठ लाख योजन का है ।

प्रत्येक चक्रवर्ती का काकिणी रत्न आठ सुवर्ण प्रमाण वाला, छह तलों वाला, बारह कोणों वाला, आठ कर्णिका वाला और सुनार की एरण के समान आकार वाला होता है । मगधदेश के योजन का निश्चित प्रमाण आठ हजार धनुष कहा गया है ।

तिमिस्रगुहा और खण्डप्रपातगुफा, वक्षस्कार पर्वत,आठ विजय

जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता । कूडसामली णं अट्ठ जोयणाइं एवं चेव । तिमिस गुहा णं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । खंडप्पवायगुहा णं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एवं चेव । जंबूमंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उभओ कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - चित्त कूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उभओ कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - अंकावई, पम्हावई, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वए, सूरपव्वए, णागपव्वए, देवपव्वए । जंबूमंदर पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता तंजहा - कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावई, आवत्ते, मंगलावत्ते, पुक्खले, पुक्खलावई । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता तंजहा - वच्छे, सुवच्छे, महावच्छे, वच्छावई, रम्मे, रम्मए, रमणिज्जे, मंगलावई । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता तंजहा - पम्हे, सुपम्हे, महापम्हे, पम्हावई, संखे, णलिणे, कुमुए, सलिलावई । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ चक्कवट्टि विजया पण्णत्ता तंजहा - वप्पे, सुवप्पे, महावप्पे, वप्पावई, वग्गू, सुवग्गू, गंधिला, गंधिलावई । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा - खेमा, खेमपुरी, अरिट्ठा, अरिट्ठावई, खग्गी, मंजूसा, उसहपुरी, पुंडरीगिणी । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणिओ पण्णत्ताओ तंजहा - सुसीमा, कुंडला, अपराजिया, पहंकरा, अंकावई, पम्हावई, सुभा, रयणसंचया। जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ रायहाणिओ पण्णत्ताओ तंजहा - आसपुरा, सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अपराजिया, अवरा, असोगा, वीयसोगा । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ रायहाणिओ पण्णत्ताओ तंजहा - विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा, अवज्झा, अउज्झा ॥ ९४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सुदंसणा** - सुदर्शन, **सव्वग्गेणं** - सर्वाग्र, **तिमिसगुहा** - तिमिस्र गुफा, **खंडप्पवायगुहा** - खंडप्रपात गुफा, **कूले** - कूल-तट पर ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जम्बू सुदर्शन वृक्ष आठ योजन ऊंचा है बीच में यानी शाखाओं के विस्तार की जगह आठ योजन चौड़ा है और सर्वाग्र यानी सब परिमाण आठ योजन से कुछ अधिक कहा गया है अर्थात् दो गव्यूति धरती में ऊंडा है और आठ योजन धरती के ऊपर है । इस प्रकार जम्बू सुदर्शन वृक्ष का सारा परिमाण आठ योजन दो गव्यूति (कोस) है । इसी प्रकार कूट शाल्मली वृक्ष का भी जानना चाहिए । तिमिस्र गुफा आठ योजन की ऊंची कही गई है । इसी प्रकार खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊंची कही गई है । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी के दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं । यथा - चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट, एक शैल, त्रिकूट, वैश्रमण कूट, अञ्जन, मातञ्जन । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दोनों तटों पर आठ वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं । यथा - अंकावती, पद्मावती, आशीविष, सुखावह, चन्द्रपर्वत, सूर्यपर्वत, नाग पर्वत, देव पर्वत । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी की उत्तर दिशा में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं । यथा - कच्छ, सुकच्छ, महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त्त, मंगलावर्त्त, पुष्कल, पुष्कलावती । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी की दक्षिण दिशा में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं । यथा - वत्स, सुवत्स, महावत्स, वच्छावती, रम्य, रम्यक, रमणीय, मङ्गलावती । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी की दक्षिण दिशा में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं । यथा - पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मावती, शंख, नलिन, कुमुद, सलिलावती । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी की उत्तर दिशा में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं । यथा - वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती, वल्गु, उवल्गु, गन्धिला, गन्धिलावती । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी की उत्तर दिशा में आठ राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्ठा, अरिष्ठावती, खड्गी, मञ्जूषा, ऋषभपुरी और पुण्डरीकिणी । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी की दक्षिण दिशा में आठ राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभङ्करा, अङ्कावती पद्मावती, शुभा, रत्नसञ्चया । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी की दक्षिण दिशा में आठ राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - आशपुरा, सिंहपुरा, महप्पुरा, विजयपुरा, अपराजिता, अपरा, अशोका, वीतशोका । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी की उत्तर दिशा में आठ राजधानियाँ कही गई हैं । यथा - विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरा, खड्गपुरा, अवध्या और अयोध्या ।

जंबूमंदर पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं उक्कोसपए अट्ठ अरिहंता अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा, उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणेणं उक्कोसपए एवं चेव । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं उक्कोसपए एवं चेव । एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरेण वि । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खंडप्पवायगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधुओ, अट्ठ गंगाकूडा, अट्ठ सिंधुकूडा, अट्ठ उसभकूडा पव्वया, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता । जंबूमंदरपुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा एवं चेव जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता णवरं एत्थ रत्ता रत्तवईओ तासिं चेव कूडा । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए दाहिणेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधुओ, अट्ठ गंगाकूडा, अट्ठ सिंधुकूडा, अट्ठ उसभकूडा पव्वया, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता । जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उत्तरेणं अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ रत्ता, अट्ठ रत्तवईओ, अट्ठ रत्तकूडा, अट्ठ रत्तवईकूडा जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता ।

मंदर चूलिया णं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । धायइसंडदीवे पुरच्छिमद्धेणं धायइरुक्खे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते । एवं धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जंबूद्दीव वत्तव्वया भाणियव्वा जाव मंदरचूलयत्ति। एवं पच्चत्थिमद्धे वि महाधायइरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति । एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरच्छिमद्धे वि पउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति । एवं पुक्खवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे वि महापउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति । जंबूद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए भद्दसाल वणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता तंजहा -

पउमुत्तर णीलवंते, सुहत्थी अंजणगिरी कुमुए य ।
पलासए वडिंसे, अट्ठमए रोयणगिरी ॥ १ ॥

जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता॥ ९५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **दीहवेयड्ढा** - दीर्घ वैताढ्य, **कयमालगा** - कृतमालक, **णट्टमालगा** - नृत्यमालक, **हत्थिकूडा** - हस्ति कूट ।

भावार्थ - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी के उत्तर में उत्कृष्ट आठ तीर्थङ्कर, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव, आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी के दक्षिण में उत्कृष्ट आठ तीर्थङ्कर, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । इसी प्रकार जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दक्षिण में और उत्तर में आठ आठ तीर्थङ्कर, आठ आठ चक्रवर्ती, आठ आठ बलदेव, आठ आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तिमिस्र गुफाएं, आठ खण्डप्रपात गुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव आठ गङ्गा नदियाँ, आठ सिन्धु नदियाँ, आठ गङ्गा कूट, आठ सिन्धुकूट, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव कहे गये हैं । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में सीता महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत यावत् आठ ऋषभकूट देव कहे गये हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर रक्ता और रक्तवती नदियाँ तथा रक्त कूट और रक्तवतीकूट कहने चाहिएं । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घवैताढ्य पर्वत यावत् आठ नृत्यमालक देव, आठ गङ्गा नदियाँ, आठ सिन्धु नदियाँ, आठ गंगाकूट, आठ सिंधुकूट, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव कहे गये हैं । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य पर्वत यावत् आठ नृत्यमालक देव, आठ रक्ता नदियाँ, आठ रक्तवती नदियाँ, आठ रक्त कूट, आठ रक्तवती कूट यावत् आठ ऋषभकूट देव कहे गये हैं ।

मेरुपर्वत की चूलिका मध्य भाग में आठ योजन चौड़ी कही गई है । धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में धातकी वृक्ष आठ योजन ऊंचा है । बीच में यानी शाखाओं के विस्तार की जगह आठ योजन चौड़ा है और सर्वाग्र यानी उस वृक्ष की उद्वेध सहित सारी ऊंचाई आठ योजन से कुछ अधिक है । इस तरह धातकी वृक्ष से लगा कर मेरु पर्वत की चूलिका तक सारा वर्णन जम्बूद्वीप के समान कह देना चाहिए । इसी प्रकार धातकीखण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध में भी महाधातकीवृक्ष से लगा कर मेरुपर्वत की चूलिका तक सारा वर्णन जम्बूद्वीप के समान कह देना चाहिए । इसी प्रकार अर्द्धपुष्करवर द्वीप के पूर्वार्द्ध में पद्मवृक्ष से लगा कर मेरु पर्वत की चूलिका तक और इसी प्रकार अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्द्ध में महापद्म वृक्ष से लगा कर मेरु पर्वत की चूलिका तक सारा वर्णन जम्बूद्वीप के समान कह देना चाहिए ।

इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत पर भद्रशाल वन में पूर्वादि दिशाओं में आठ हस्तिकूट कहे गये हैं । यथा - पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अञ्जनगिरि, कुमुद, पलाश, वतंस और रोचनगिरि । इस जम्बूद्वीप की जगती यानी कोट आठ योजन ऊंचा है और बीच में आठ योजन चौड़ा कहा गया है ।

पर्वतों के कूट और दिशाकुमारियाँ

जंबूद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स दाहिणेणं महाहिमवंते वासहरपव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धे महहिमवंते, हिमवंते रोहिया हरिकूडे ।
हरिकंता हरिवासे, वेरुलिय चेव कूडा उ ॥ १ ॥

जंबूमंदर उत्तरेणं रुप्पिम्मि वासहरपव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सिद्धे य रुप्पी रम्मग, णरकंता बुद्धि रुप्पकडे य ।
हिरण्णवए मणिकंचणे य, रुप्पिम्मि कूडा उ ॥ २ ॥

जंबूमंदर पुरच्छिमेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

रिट्ठे तवणिज्ज कंचण, रयय दिसासोत्थिए पलंबे य ।
अंजणे अंजणपुलए, रुयगस्स पुरच्छिमे कूडा ॥ ३ ॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारि महत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवम ठिइयाओ परिवसंति तंजहा -

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा ।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥ ४ ॥

जंबूमंदर दाहिणेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

कणए कंचणे पउमे, णलिणे ससि दिवायरे चेव ।
वेसमणे वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ॥ ५ ॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारि महत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवम ठिईयाओ परिवसंति तंजहा -

समाहारा सुप्पइण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा ।
लच्छिवई सेसवई, चित्तगुत्ता वसुंधरा ॥ ६ ॥

जंबूमंदर पच्चत्थिमेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सोत्थिए य अमोहे य, हिमवं मंदरे तहा ।
रुयगे रुयगुत्तमे चंदे, अट्ठमे य सुदंसणे ॥ ७ ॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारि महत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमठिईयाओ परिवसंति तंजहा -

इला देवी सुरादेवी, पुढवी पउमावई ।
एगणासा णवमिया, सीया भद्दा य अट्ठमा ॥ ८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंबूमंदर उत्तरेणं रुयगवरे पव्वए अट्ठ कूडा पण्णत्ता तंजहा -

रयणे रयणुच्चए य, सव्वरयण रयणसंचए चेव ।
विजए य वेजयंते, जयंते अपराजिए ॥ ९ ॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारि महत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवम ठिईयाओ परिवसंति तंजहा -

अलंबूसा मियकेसी, पोंडरिगिणी वारुणी ।
आसा य सव्वगा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरओ ॥ १० ॥

अट्ठ अहेलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा -

भोगंकरा भोगवई, सुभोगा भोगमालिणी ।
सुवच्छा वच्छमित्ता य, वारिसेणा बलाहगा ॥ ११ ॥

अट्ठ उड्डलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारि महत्तरियाओ पण्णत्ताओ तंजहा -

मेघकरा मेघवई, सुमेघा मेघमालिणी ।
तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिया ॥ १२ ॥

अट्ठ कप्पा तिरियमिस्सोववण्णगा पण्णत्ता तंजहा - सोहम्मे जाव सहस्सारे । एएसु णं अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इंदा पण्णत्ता तंजहा - सक्के जाव सहस्सारे । एएसिं णं अट्ठण्हं इंदाणं अट्ठ परिजाणिया विमाणा पण्णत्ता तंजहा - पालए, पुप्फए, सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदावत्ते, कामगमे, पीइमणे, विमले॥ १६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अहेलोगवत्थव्वाओ** - अधोलोक में रहने वाली, **उड्डलोगवत्थव्वाओ** - ऊर्ध्वलोक में रहने वाली, **परिजाणिया** - परियानक ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - सिद्ध, महाहिमवान्, हिमवान्, रोहित, हरि, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्य ये आठ कूट हैं ॥ १ ॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - सिद्ध, रुक्मी, रम्यक, नरकान्त, बुद्धि, रूप्य, हिरण्णवय और मणिकाञ्चन । रुक्मी पर्वत पर ये आठ कूट हैं ॥ २ ॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - रिष्ठ, तपनीय, काञ्चन, रजत, दिशा, स्वस्तिक, प्रलम्ब, अञ्जन और अञ्जनपुलाक । ये आठ कूट रुचक पर्वत के पूर्व में हैं ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ यानी रुचक पर्वत के कूटों पर महाऋद्धिशाली एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारियाँ रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - नन्दुत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयंती, जयन्ती और अपराजिता ॥ ४ ॥

जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - कनक, काञ्चन, पद्म, नलिन, शशी, दिवाकर, वैश्रमण और वैडूर्य । ये आठ कूट रुचकवर पर्वत के दक्षिण में हैं ॥ ५ ॥

वहाँ यानी रुचकवर पर्वत के कूटों पर महाऋद्धिशाली एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारियाँ रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - समाधारा, सुप्रतिज्ञा, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा ॥ ६ ॥

जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - स्वस्तिक, अमोघ, हिमवान्, मंदर, रुचक, रुचकोत्तम, चन्द्र और सुदर्शन ॥ ७ ॥

वहाँ यानी उपरोक्त रुचकवर पर्वत के कूटों पर महाऋद्धिशाली एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारियाँ रहती हैं । उनके नाम ये हैं - इला देवी, सुरा देवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, सीता और भद्रा ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में रुचकवर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं । यथा - रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न, रत्नसञ्चय, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ॥ ९ ॥

वहाँ पर महाऋद्धि शाली एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ, दिशाकुमारी देवियाँ रहती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं - अलंबूषा, मृगकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सर्वगा श्री और ह्री ॥१०॥

अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ कही गई हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं - भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिसेना और बलाहका ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ कही गई हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं - मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता ॥ १२ ॥

सौधर्म से सहस्रार तक यानी पहले देवलोक से आठवें देवलोक तक तिर्यञ्च भी उत्पन्न होते हैं। इन आठ देवलोकों में आठ इन्द्र कहे गये हैं। यथा - शक्रेन्द्र यावत् सहस्रारेन्द्र इन आठ इन्द्रों के आठ परियानक यानी जिनमें बैठ कर इन्द्र इधर उधर जाया करते हैं वे विमान कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - पालक, पुष्पक, सोमनस, श्रीवत्स, नन्दावर्त्त, कामगम, प्रीतिमन और विमल।

विवेचन - जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है तब ५६ दिशाकुमारी देवियों का आसन चलित होता है। तब वे देवियाँ अवधि का उपयोग लगाकर देखती हैं कि हमारा आसन चलित क्यों हुआ? तब उन्हें मालूम होता है कि - तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है। हम दिशाकुमारियों का यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीत व्यवहार है कि हम तीर्थंकर भगवान् का अशुचि कर्म निवारण करके उनका जन्म महोत्सव मनावें। तब वे अपने अपने यान-विमानों से तीर्थंकर भगवान् के जन्म स्थान पर पहुँचती हैं और अशुचि निवारण करके जन्म महोत्सव मनाती हैं। उनका स्थान इस प्रकार है -

मेरु अह उड्ढलोया, चउदिसिरुयगाउ अट्ठपत्तेयं।

चउविदिसि मज्झरुयगा इंति छप्पन्न दिसिकुमारी॥ (सत्तरिसयगणवृत्ति ग्रन्थ)

अर्थ - इस जम्बू द्वीप से तेरहवें द्वीप का नाम रुचक द्वीप है। उस द्वीप में रुचक पर्वत है। वह वलयाकार है, वह ८४,००० योजन का ऊँचा है। मूल में १०२२ बीच में ७०२३ और ऊपर ४०२४ योजन का चौड़ा है। ऊपर की चौड़ाई में चौथे हजार में चारों दिशाओं में सिद्धायतन कूट के दोनों तरफ चार-चार कूट हैं। उन कूटों पर एक-एक दिशाकुमारी देवी है। चारों दिशाओं में आठ-आठ कूट हैं। उन एक-एक कूट पर एक-एक दिशाकुमारी देवी है। इस प्रकार बत्तीस दिशाकुमारी देवियाँ हैं। चार विदिशा में चार दिशाकुमारी देवियाँ हैं। रुचक पर्वत के शिखर पर ४०२४ योजन की चौड़ाई में से बीच की दो हजार की चौड़ाई में चार दिशाकुमारी देवियाँ हैं, इनको मध्य रुचक वासिनी देवियाँ कहते हैं। समतल भूमि भाग से ९०० सौ योजन नीचे चार गजदन्ता पर्वतों के नीचे आठ कूट हैं। उन पर रहने वाली आठ दिशाकुमारियों को अधोलोक वासिनी देवियाँ कहते हैं। समतल भूमि भाग से ५०० योजन के ऊपर मेरु पर्वत के नन्दन वन में ५०० योजन के ऊँचे आठ कूट हैं, ऊन आठों कूटों पर एक-एक देवी रहती हैं। इनको ऊर्ध्वलोक वासिनी दिशाकुमारी देवियाँ कहते हैं। ये ५६ दिशाकुमारी देवियाँ भवनपति जाति की हैं। इस प्रकार इन ५६ दिशाकुमारी देवियों का निवास स्थान है।

भिक्षु प्रतिमा, संसारी जीव, सर्व जीव, संयम

अट्ठट्ठमियाणं भिक्खुपडिमाणं चउसट्ठिएहिं राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्ता जाव अणुपालिया वि भवइ । अट्ठविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - पढमसमय णेरइया, अपढमसमय णेरइया, एवं जाव अपढमसमय देवा । अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ, सिद्धा । अहवा अट्ठ विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - आभिणिबोहियणाणी, जाव केवलणाणी, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी, विभंगणाणी । अट्ठ विहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - पढमसमय सुहुम संपरायसरागसंजमे, अपढमसमय सुहुमसंपराय सरागसंजमे, पढमसमय बादर संजमे, अपढमसमय बादर संजमे, पढमसमय उवसंत कसायवीयरागसंजमे, अपढमसमय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवसंतकसाय वीयरागसंजमे, पढमसमय खीणकसायवीयरागसंजमे अपढमसमय खीण कसाय वीयराग संजमे ।

आठ पृथ्वियाँ,ईषत्प्राग्भारा के नाम

अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ तंजहा - रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ईसिपब्भारा । ईसिपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । ईसिपब्भाराए णं पुढवीए अट्ठ णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा - ईसि इ वा, ईसिपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणुतणू इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ती इ वा, मुत्तालए इ वा॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठट्ठमियाणं** - अष्ट अष्टमिका, **अहासुत्ता** - सूत्र के अनुसार, **ईसि** - ईषत्, **ईसिपब्भारा** - ईषत्प्राग्भारा, **तणू** - तन्वी (पतली), **तणुतणू** - तनुतन्वी, **सिद्धालए** - सिद्धालय, **मुत्ती**- मुक्ति, **मुत्तालए** - मुक्तालय ।

भावार्थ - अष्ट अष्टमिका भिक्षुपडिमा चौसठ दिनों में पूर्ण होती है और २८८ भिक्षाएं होती हैं। इस पडिमा का सूत्र के अनुसार पालन करना चाहिए । आठ प्रकार के संसारी जीव कहे गये हैं । यथा - प्रथम समय के नैरयिक, अप्रथम समय के नैरयिक यावत् अप्रथम समय के देव । आठ प्रकार के सब जीव कहे गये हैं । यथा - नैरयिक, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चणी, मनुष्य, मनुष्यणी, देव, देवी और सिद्ध भगवान् अथवा दूसरे प्रकार से सर्व जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं । यथा - आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभङ्ग ज्ञानी । आठ प्रकार का संयम कहा गया है । यथा - प्रथम समय सूक्ष्म सम्परायसराग संयम, अप्रथम समय सूक्ष्म सम्पराय सराग संयम, प्रथमसमय बादर संयम, अप्रथम समय बादर संयम, प्रथम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम, अप्रथम समय उपशान्तकषाय वीतराग संयम, प्रथमसमय क्षीण कषाय वीतराग संयम, अप्रथमसमय क्षीण कषाय वीतराग संयम । आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं । यथा - रत्नप्रभा से लेकर सातवीं नरक तमतमा तक सात पृथ्वियाँ और आठवी ईषत् प्राग्भारा । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के मध्य भाग का आठ योजन का क्षेत्र आठ योजन का लम्बा चौड़ा कहा गया है । ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम कहे गये हैं । यथा - ईषत् यानी रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों की अपेक्षा छोटी, ईषत्प्राग्भारा - रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों की अपेक्षा कम ऊंचाई वाली। तन्वी - पतली, तनुतन्वी - अधिक पतली यानी अन्तिम भाग में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली । सिद्धि - जहाँ जाकर जीव सिद्ध होते हैं। सिद्धालय - सिद्ध का स्थान। मुक्ति-सकल कर्मों से मुक्त जीव वहाँ रहते हैं । मुक्तालय - मुक्त जीवों का स्थान ।

विवेचन - जो प्रतिमा आठ अष्टक रूप दिवसों (६४ दिनों) में पूरी होती है उसे अष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमिका प्रतिमा कहते हैं। प्रथम अष्टक में एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की, दूसरे अष्टक में दो दत्ति भोजन दो दत्ति पानी इस प्रकार आठवें अष्टक में आठ दत्ति भोजन की और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। पहले अष्टक में आठ, दूसरे अष्टक में १६, तीसरे में २४, चौथे में ३२, पांचवें में ४०, छठे में ४८, सातवें में ५६ और आठवें में ६४ इस प्रकार कुल २८८ दत्तियाँ भोजन और पानी की होती है। यहाँ जाव शब्द से निम्न शब्दों का ग्रहण हुआ है -

अहाकप्पा अहातच्चा सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आराहिया -

इनका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है - यथाकल्प-आचार के अनुरूप, यथातथ्य-तत्त्व के अनुसार, सम्यक् प्रकार से शरीर के द्वारा स्पर्श करना, उपयोग में लाकर उसकी रक्षा करना, अतिचारों से शुद्धिकरण करना, कीर्ति द्वारा उसे पूर्ण करना, सम्यक् आराधना करना और गुरुजनों की आज्ञानुसार प्रतिमा का पालन करना।

जिन जीवों को नरक में उत्पन्न हुए एक ही समय हुआ है वे 'प्रथम समय नैरयिक' कहलाते हैं और जिनको उत्पन्न हुए अनेक समय हुआ है वे 'अप्रथम समय नैरयिक' कहलाते हैं। इसी तरह तिर्यंच, मनुष्य और देवों के विषय में भी समझना चाहिये।

आठ प्रकार के संयम के विशेष वर्णन के लिये भगवती सूत्र शतक २५ देखें।

पृथ्वियाँ आठ कही है। सात नरकों के अलावा आठवी पृथ्वी ईषत्प्राग्भारा है। जिसका मध्य भाग आठ योजन मोटा है। इसके आठ गुण-निष्पन्न नाम बताये हैं। जिनके अर्थ भावार्थ में दे दिये गये हैं।

प्रमाद नहीं करने योग्य आठ कर्त्तव्य

अट्ठहिं ठाणेहिं सम्मं संघडियव्वं, जइयव्वं, परक्कमियव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएयव्वं भवइ - असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, सुयाणं धम्माणं ओगिण्हयाए ओवहारणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, पावाणं कम्माणं संजमेणं अकरणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, पोराणाणं कम्माणं तवसा विगिंचणयाए विसोहणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, असंगिहीय परियणस्स संगिण्हयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, सेहं आयारगोयरगहणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ, साहम्मियाणं अहिगरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सिओवस्सिओ अपक्खग्गाही मज्झत्थभाव भूए कहण्णु साहम्मिया अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमंतुमा उवसामणयाए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ॥ ९८॥

कठिन शब्दार्थ - संघडियव्वं - अप्राप्त को प्राप्त करना चाहिये, **परक्कमियव्वं** - पराक्रम करना चाहिये, **अब्भुट्ठेयव्वं** - उद्यम करना चाहिये, **सुणणयाए** - सुनने के लिए, **विगिंचणयाए** - निर्जरा करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए, **विसोहणयाए** - आत्म विशुद्धि के लिए, **आयारगोयरगहणयाए** - आचार तथा गोचरी संबंधी ज्ञान ग्रहण करने के लिए, **वेयावच्चकरणयाए** - वैयावच्च करने के लिए, **अणिस्सिओवस्सिओ** - रागद्वेष रहित, **अपक्खग्गाही** - अपक्षग्राही।

भावार्थ - नीचे लिखी आठ बातें अगर प्राप्त न हों तो प्राप्त करने के लिए कोशिश करनी चाहिए अगर प्राप्त हों तो उनकी रक्षा के लिए अर्थात् वे नष्ट न हो जाय, इसके लिये प्रयत्न करना चाहिए, पराक्रम करना चाहिए और इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए । वे आठ बातें ये हैं - १. शास्त्र की जिन बातों को या जिन सूत्रों को न सुना हो उन्हें सुनने के लिए उदयम करना चाहिए । २. सुने हुए शास्त्रों को हृदय में जमा कर उनकी स्मृति को स्थायी बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । ३. संयम द्वारा पाप कर्मों को रोकने की कोशिश करनी चाहिए । ४. तप के द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करते हुए आत्म विशुद्धि के लिए यत्न करना चाहिए । ५. नये शिष्यों का संग्रह करने के लिए कोशिश करनी चाहिए । ६. नये शिष्यों को साधु का आचार तथा गोचरी सम्बन्धी ज्ञान आदि सिखाने में प्रयत्न करना चाहिए । ७. ग्लान अर्थात् बीमार साधु की वैयावच्च अग्लान भाव से करने के लिए यत्न करना चाहिए । ८. साधर्मियों में विरोध होने पर रागद्वेष रहित तथा पक्षपात रहित होकर मध्यस्थ भाव रक्खे और दिल में यह भावना करे कि किस तरह ये सब साधर्मिक जोर जोर से बोलना असम्बद्ध प्रलाप तथा 'तू तू मैं मैं' वाले शब्द छोड़ कर शान्त, स्थिर तथा प्रेम वाले होवें । हर तरह से उनका कलह दूर करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

उच्चत्वमान, वादि सम्पदा

महासुक्क सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसयावाईणं सदेव मणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ।

केवलि समुद्घात

अट्ठसमइए केवलि समुग्घाए पण्णत्ते तंजहा - पढमे समए दंडं करेइ, बीए समए कवाडं करेइ, तईए समए मंथाणं करेइ, चउत्थे समए लोगं पूरेइ, पंचमे समए लोगं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ ॥ ११ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अट्ठसमइए** - आठ समय, **दंडं** - दण्ड, **कवाडं** - कपाट, **मंथाणं** - मथानी, **पडिसाहरइ** - साहरण करता है ।

भावार्थ - महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् सातवें और आठवें देवलोक में विमान आठ सौ योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के ऊंचे कहे गये हैं । बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के देव, मनुष्य और असुरों की सभा में वाद के विषय में पराजित न होने वाले उत्कृष्ट आठ सौ वादी थे।

केवलिसमुद्घात - अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त करने वाला कोई केवलज्ञानी कर्मों को सम करने के लिए अर्थात् वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए समुद्घात करता है । केवलिसमुद्घात में आठ समय लगते हैं । यथा - प्रथम समय में केवली आत्मप्रदेशों के दण्ड की रचना करता है । वह मोटाई में स्वशरीर प्रमाण और लम्बाई में ऊपर और नीचे से लोकान्त पर्यन्त विस्तृत होता है । दूसरे समय में उसी दण्ड को पूर्व और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण में फैलाता है । फिर उस दण्ड का लोकपर्यन्त फैला हुआ कपाट बनता है । तीसरे समय में दक्षिण और उत्तर अथवा पूर्व और पश्चिम दिशा में लोकान्त पर्यन्त आत्मप्रदेशों को फैला कर उसी कपाट को मथानी रूप बना देता है । ऐसा करने से लोक का अधिकांश भाग आत्मप्रदेशों से व्याप्त हो जाता है, किन्तु मथानी की तरह अन्तराल प्रदेश खाली रहते हैं । चौथे समय में मथानी के अन्तरालों को पूर्ण करता हुआ समस्त लोकाकाश को आत्मप्रदेशों से व्याप्त कर देता है क्योंकि लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश बराबर हैं । पांचवें समय में अन्तरालों का साहरण करता है अर्थात् वापिस खींचता है । छठे समय में मथानी का साहरण करता है । सातवें समय में कपाट का साहरण करता है और आठवें समय में दण्ड का साहरण कर लेता है । उस समय सब आत्मप्रदेश फिर शरीरस्थ हो जाते हैं ।

विवेचन - जिन केवलियों के वेदनीय आदि कर्म अत्यधिक हो और आयुष्य कर्म अल्प हो वे अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त करने के लिये शेष कर्मों को सम करने के लिये केवली समुद्घात करते हैं। केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं। इन आठ समयों में से पहले और आठवें इन दो समयों में औदारिक काय योग का प्रयोग होता है। दूसरे, छठे और सातवें इन तीन समयों में औदारिक मिश्र काय योग का प्रयोग होता हैं। तीसरे, चौथे और पांचवें इन तीन समयों में कार्मण काय योग का प्रयोग होता है। इसका विशेष वर्णन औपपातिक सूत्र एवं प्रज्ञापना सूत्र के समुद्घात पद से जानना चाहिये।

अनुत्तरौपपातिक सम्पदा

समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं जाव आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइय संपया होत्था ।

वाणव्यंतर देव और चैत्यवृक्ष

अट्ठविहा वाणमंतरा देवा पण्णत्ता तंजहा - पिसाया, भूया, जक्खा, रक्खसा, किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गंधव्वा । एएसिणं अट्ठण्हं वाणमंतरदेवाणं अट्ठ चेइयरुक्खा पण्णत्ता तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कलंबो य पिसायाणं, वडो जक्खाणं चेइयं ।
तुलसी भूयाणं भवे, रक्खसाणं च कंडओ ॥ १ ॥
असोओ किण्णराणं च, किंपुरिसाणं च चंपओ ।
णागरुक्खो भुयंगाणं, गंधव्वाणं च तेंदुओ ॥ २ ॥

द्वीप समुद्र द्वारों की ऊँचाई

इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसए उड्ढबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ । अट्ठ णक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति तंजहा - कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विस्साहा, अणुराहा, जेट्ठा । जंबूद्दीवस्स णं दीवस्स दारा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । सव्वेसिं वि दीवसमुद्दाणं दारा अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

कर्म स्थिति, कुलकोटि,पापकर्म और पुद्गलों की अनन्तता

पुरिसवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठ संवच्छराइं बंधठिई पण्णत्ता । जसोकित्तीणामस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ताइं बंधठिई पण्णत्ता । उच्चगोयस्स णं कम्मस्स एवं चेव । तेइंदियाणं अट्ठ जाइकुलकोडी जोणीय पमुयसय सहस्सा पण्णत्ता । जीवा णं अट्ठ ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा तंजहा - पढमसमय णेरइयणिव्वत्तिए जाव अपढमसमय देवणिव्वत्तिए । एवं चिण उवचिण जाव णिज्जरा चेव । अट्ठपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । अट्ठपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव अट्ठगुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ १००॥

॥ अट्ठमं ठाणं समत्तं । अट्ठमं अज्झयणं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ - **आगमेसिभद्दाणं** - आगामी जन्म में मोक्ष प्राप्त करने वाले, **चेइयरुक्खा** - चैत्यवृक्ष, **पमद्दं** - प्रमर्द, **अट्ठजाइकुलकोडी जोणीय पमुयसय सहस्सा** - आठ लाख जाती कुलकोडी योनी प्रमुख।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में विजयादि पांच अनुत्तर विमान रूप श्रेष्ठ गति में उत्पन्न होने वाले यावत् आगामी जन्म में मोक्ष प्राप्त करने वाले आठ सौ साधु थे ।

आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव कहे गये हैं । यथा - पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और महोरग गंधर्व। इन आठ वाणव्यन्तर देवों के आठ चैत्यवृक्ष कहे गये हैं । यथा - १. पिशाच जाति के देवों का कदम्ब वृक्ष है। २. यक्ष जाति के देवों का वट वृक्ष हैं । ३. भूत जाति के देवों का तुलसी वृक्ष है । ४. राक्षस जाति के देवों का कण्डक वृक्ष है। ५. किन्नर जाति के देवों का अशोक वृक्ष है । ६. किंपुरुष जाति के देवों का चम्पक वृक्ष है। ७. भुजंग यानी महोरग जाति के देवों का नागवृक्ष है और ८. गन्धर्व जाति के देवों का तिन्दुक वृक्ष है ॥ १-२ ॥

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के इस समतल भूमि भाग से आठ सौ योजन ऊपर सूर्य का विमान चलता है । आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग जोड़ते हैं । यथा - कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा । इस जम्बूद्वीप के द्वार आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं । सभी द्वीप समुद्रों के द्वार आठ आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं ।

पुरुष वेदनीय कर्म की जघन्य बन्ध स्थिति आठ वर्ष कही गई है । यशःकीर्ति नाम कर्म की जघन्य बन्ध स्थिति आठ मुहूर्त्त की कही गई है । इसी तरह उच्चगोत्र कर्म की जघन्य बन्ध स्थिति आठ मुहूर्त्त की कही गई है । तेइन्द्रिय जीवों की जाती कुलकोडी आठ लाख कही गई है । जीवों ने आठ स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म रूप से सञ्चय किया है । सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे । यथा - प्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित यावत् अप्रथम समय देव निर्वर्तित । इसी प्रकार चय, उपचय यावत् अप्रथम समय देव निर्वर्तित । इसी प्रकार चय, उपचय यावत् निर्जरा तक कह देना चाहिए । आठ प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । आठ प्रदेशावगाढ यानी आठ प्रदेशों को अवगाहन कर रहे हुए पुद्गल अनन्त कहे गये हैं । यावत् आठ गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं ।

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के १४००० श्रमणों में ८०० श्रमण पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए जो भविष्य में निर्वाण पद को प्राप्त करेंगे। उनकी गति और स्थिति दोनों कल्याणकारी कही है। अनुत्तर विमानवासी देव एकान्त सम्यग्दृष्टि, परित्त संसारी, सुलभबोधि एवं आराधक होते हैं।

॥ आठवाँ स्थान समाप्त ॥

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नववाँ स्थान

आठवें स्थान में आठ प्रकार से जीवादि पदार्थों का वर्णन करने के पश्चात् अब सूत्रकार नौवें स्थान में नौ-नौ प्रकार से इन पदार्थों का वर्णन करते हैं -

विसांभोगिक करने के कारण

णवेहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ तंजहा- आयरिय पडिणीयं, उवज्झायपडिणीयं, थेरपडिणीयं, कुलपडिणीयं, गणपडिणीयं, संघ पडिणीयं, णाणपडिणीयं, दंसणपडिणीयं, चरित्तपडिणीयं।

ब्रह्मचर्य अध्ययन, ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ

णव बंभचेरा पण्णत्ता तंजहा - सत्थ परिण्णा, लोगविजओ, सीओसणिज्जं, सम्मत्तं, आवंती, धूयं, विमोहो, उवहाणसुयं, महापरिण्णा । णव बंभचेर गुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवइ णो, इत्थिसंसत्ताइं, णो पसुसंसत्ताइं णो, पंडग संसत्ताइं, सयणासणाइं सेवित्ता भवइ, णो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ, णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवइ, णो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ, णो पणीयरसभोई भवइ, णो पाणभोयणस्स अइमायं आहारए सया भवइ, णो पुव्वरयं पुव्वकीलियं समरित्ता भवइ, णो सद्दाणुवाई णो रूवाणुवाई णो सिलोगाणुवाई भवइ, णो साया सोक्ख पडिबद्धे यावि भवइ । णवबंभचेर अगुत्तीओ पण्णत्ताओ तंजहा - णो विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवइ, इत्थीसंसत्ताइं पसुसंसत्ताइं पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवइ, इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ, इत्थीणं ठाणाइं सेवित्ता भवइ, इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ, पणीयरसभोई भवइ, पाणभोयणस्स अइमायं आहारए सया भवइ, पुव्वरयं पुव्वकीलियं समरित्ता भवइ, सद्दाणुवाई रूवाणुवाई सिलोगाणुवाई भवइ, सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवइ॥ १०१॥

कठिन शब्दार्थ - संभोइयं - सम्भोगी साधु को, **पडिणीयं** - प्रत्यनीक-प्रतिकूल चलने वाले को, **सीओसणिज्जं** - शीतोष्णीय, **सायासोक्खपडिबद्धे** - साता सुख में आसक्त, **पणीयरसभोई** - प्रणीतरसभोजी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - नौ कारणों से किसी सम्भोगी साधु को विसम्भोगी यानी अपने सम्भोग से अलग करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है । यथा - आचार्य से विरुद्ध चलने वाले साधु को, उपाध्याय से विरुद्ध चलने वाले साधु को, स्थविर से विरुद्ध चलने वाले साधु को, साधु कुल से विरुद्ध चलने वाले को, साधुगण से प्रतिकूल चलने वाले को, संघ से प्रतिकूल चलने वाले को, ज्ञान से विपरीत चलने वाले को, दर्शन से विपरीत चलने वाले को, चारित्र से विपरीत चलने वाले को । इन उपरोक्त कारणों का सेवन करने वाले प्रत्यनीक कहलाते हैं ।

आचाराङ्ग सूत्र के ब्रह्मचर्य नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन कहे गये हैं । यथा - शस्त्रपरिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवंती, केआवंती, धूत, विमोक्ष, उपधानश्रुत और महा परिज्ञा । ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ - ब्रह्म अर्थात् आत्मा में, चर्या अर्थात् लीन होना, ब्रह्मचर्य कहलाता है । सांसारिक विषय वासनाएं जीव को आत्म चिन्तन से हटा कर बाह्य विषयों की ओर खींचती हैं, उनसे बचने का नाम ब्रह्मचर्य गुप्ति है । वे ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ नौ कही गई हैं । यथा - १. ब्रह्मचारी को स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित एकान्त स्थान और आसन का सेवन करना चाहिए । २. स्त्रियों की कथा वार्ता न करे अर्थात् अमुक स्त्री सुन्दर है या अमुक देश वाली स्त्री ऐसी होती है, इत्यादि बातें न करे । ३. स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठे। ४. स्त्रियों के मनोहर और मनोरम अङ्गों को न देखे, यदि अकस्मात् दृष्टि पड़ जाय तो तुरन्त दृष्टि को फेर ले। ५. जिसमें से घी टपक रहा हो ऐसा पक्वान्न या गरिष्ठ भोजन न करे । ६. रूखा सूखा भोजन भी अधिक न करे । ७. पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण न करे । ८. स्त्रियों के शब्द, रूप और प्रशंसा आदि पर ध्यान न दे। ९. पुण्योदय के कारण प्राप्त हुए अनुकूल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के सुखों में आसक्त न होवे । ये ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ हैं । इनका पालन करने से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है । इनके विपरीत ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ कही गई हैं। यथा - स्त्री, पशु, नपुंसक युक्त स्थान और आसन आदि का सेवन करे । स्त्रियों की कथा वार्ता करे। स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठे । स्त्रियों के मनोहर और मनोरम अङ्गों को देखे । गरिष्ठ आहार करे । परिमाण से अधिक भोजन करे । पहले भोगे हुए भोगों का स्मरण करे । स्त्रियों के शब्द, रूप और प्रशंसा आदि पर ध्यान देवे । साता और सुखों में आसक्त होवे । ये ब्रह्मचर्य की अगुप्तियाँ हैं। इनका सेवन करने से ब्रह्मचर्य का नाश होता है ।

विवेचन - प्रश्न - संभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - समान समाचारी वाले साधु साध्वियों के सम्मिलित आहार, वंदन आदि व्यवहार को संभोग कहते हैं।

संभोगी को विसंभोगी करने के नौ स्थान - नौ कारणों से किसी साधु को संभोग से अलग करने वाला साधु जिन शासन की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. आचार्य से विरुद्ध चलने वाले साधु को।

२. उपाध्याय से विरुद्ध चलने वाले को।

३. स्थविर से विरुद्ध चलने वाले को।

४. साधुकुल के विरुद्ध चलने वाले को।

५. गण के प्रतिकूल चलने वाले को।

६. संघ से प्रतिकूल चलने वाले को।

७. ज्ञान से विपरीत चलने वाले को।

८. दर्शन से विपरीत चलने वाले को।

९. चारित्र से विपरीत चलने वाले को।

इन्हीं कारणों का सेवन करने वाले प्रत्यनीक कहलाते हैं।

ब्रह्मचर्य गुप्ति नौ –

ब्रह्म अर्थात् आत्मा में चर्या अर्थात् लीन होने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। सांसारिक विषयवासनाएं जीव को आत्मचिन्तन से हटा कर बाह्य विषयों की ओर खींचती हैं। उनसे बचने का नाम ब्रह्मचर्यगुप्ति है, अथवा वीर्य के धारण और रक्षण को ब्रह्मचर्य कहते हैं। शारीरिक और आध्यात्मिक सभी शक्तियों का आधार वीर्य है। वीर्य रहित पुरुष लौकिक या आध्यात्मिक किसी भी तरह की सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नौ बातें आवश्यक हैं। इनके बिना ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता। वे इस प्रकार हैं –

१. ब्रह्मचारी को स्त्री, पशु और नपुंसकों से अलग स्थान में रहना चाहिए। जिन स्थान में देवी, मानुषी या तिर्यंच का वास हो, वहाँ न रहे। उनके पास रहने से विकार होने का डर है।

२. स्त्रियों की कथा वार्ता न करे। अर्थात् अमुक स्त्री सुन्दर है या अमुक देशवाली ऐसी होती है, इत्यादि बातें न करे।

३. स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठे, उनके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त्त तक उस आसन पर न बैठे अथवा स्त्रियों में अधिक न आवे जावे। उनसे सम्पर्क न रक्खे।

४. स्त्रियों के मनोहर और मनोरम अङ्गों को न देखे। यदि अकस्मात् दृष्टि पड़ जाय तो उनका ध्यान न करे और शीघ्र ही उन्हें भूल जाय।

५. जिसमें घी टपक रहा हो ऐसा पक्वान्न या गरिष्ठ भोजन न करे, क्योंकि गरिष्ठ भोजन विकार उत्पन्न करता है।

६. रूखा सूखा भोजन भी अधिक परिमाण में न करे। आधा पेट अन्न से भरे, आधे में से दो हिस्से पानी से तथा एक हिस्सा हवा के लिए छोड़ दे। इससे मन स्वस्थ रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. पहिले भोगे हुए भोगों का स्मरण न करे।

८. स्त्रियों के शब्द, रूप या ख्याति (वर्णन) आदि पर ध्यान न दे, क्योंकि इन से चित्त में चञ्चलता पैदा होती है।

९. पुण्योदय के कारण प्राप्त हुए अनुकूल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के सुखों में आसक्त न हो।

इन बातों का पालन करने से ब्रह्मचर्य की रक्षा की जा सकती है। इनके विपरीत ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ हैं।

चौथे पांचवें तीर्थंकर के बीच का काल

अभिणंदणाओ णं अरहओ सुमई अरहा णवहिं सागरोवमकोडीसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे ।

सद्भाव पदार्थ (तत्त्व), संसारी जीव, गति आगति, सर्व जीव

णव सब्भावपयत्था पण्णत्ता तंजहा - जीवा, अजीवा, पुण्णं, पावो, आसवो, संवरो, णिज्जरा, बंधो, मुक्खो । णव विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया, जाव वणस्सइ काइया, बेइंदिया जाव पंचिंदिया। पुढविकाइया णवगइया णव आगइया पण्णत्ता तंजहा - पुढवीकाइए पुढवीकाइएसु उववज्जमाणे पुढवीकाइएहिंतो वा जाव पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा, से चेव णं से पुढवीकाइए पुढवी काइयत्तं विप्पजहमाणे पुढवीकाइयत्ताए जाव पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा । एवं आउकाइया वि जाव पंचिंदियत्ति । णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, णेरइया, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा, सिद्धा । अहवा णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - पढम समय णेरइया अपढमसमयणेरइया जाव अपढमसमय देवा, सिद्धा । णवविहा सव्व जीवोगाहणा पण्णत्ता तंजहा - पुढवीकाइयओगाहणा आउकाइयओगाहणा जाव वणस्सइकाइय-ओगाहणा, बेइंदियओगाहणा, तेइंदिय ओगाहणा, चउरिंदिय ओगाहणा, पंचिंदियओगाहणा । जीवा णं णवहिं ठाणेहिं संसारं वत्तिंसु वा, वत्तंति वा, वत्तिस्संति वा तंजहा - पुढवीकाइयत्ताए जाव पंचिंदियत्ताए ।

रोगोत्पत्ति के कारण

णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया तंजहा - अच्चासणाए, अहियासणाए, अइणिद्दाए, अइजागरिएणं, उच्चारणिरोहेणं, पासवणणिरोहेणं, अद्धाणगमणेणं, भोयणपडिकूलयाए, इंदियत्थविकोवणयाए॥ १०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - रोगुप्पत्ती - रोग की उत्पत्ति, **ओगाहणा** - अवगाहना, **अच्चासणाए** - अति आसनता (अति अशनता), **अहियासणाए** - अहितासनता(अहित अशनता), **अइनिद्दाए** - अति निद्रा से, **अइजागरिएण** - अति जागरिता से, **उच्चारणिरोहेणं** - उच्चार (मल) निरोध-टट्टी की बाधा रोकने से, **पासवणणिरोहेणं** - प्रस्रवण निरोध से, **अद्धाणगमणेणं** - अद्धा गमन-मार्ग में अधिक चलने से, **भोयणपडिकूलयाए** - भोजन प्रतिकूलता से, **इंदियत्थविकोवणयाए** - इन्द्रियार्थ विकोपनता-इन्द्रिय विषयों का विपाक-काम विकार से।

भावार्थ - चौथे तीर्थङ्कर श्री अभिनन्दन स्वामी के मोक्ष जाने के बाद नव लाख कोटिसागरोपम बीत जाने पर पांचवें तीर्थङ्कर श्री सुमति नाथ भगवान् उत्पन्न हुए थे ।

सद्‌भाव पदार्थ यानी वास्तविक मुख्य पदार्थ नौ कहे गये हैं । यथा - १. जीव - जिसे सुखदुःख का ज्ञान होता है तथा जिसका उपयोग लक्षण है, २. अजीव - जड़ पदार्थ जो सुख दुःख के ज्ञान से तथा उपयोग से रहित हैं ३. पुण्य - शुभ कर्म, ४. पाप - अशुभ कर्म, ५. आस्रव - शुभ और अशुभ कर्मों के आने का कारण, ६. संवर - गुप्ति आदि से कर्मों को रोकना, ७. निर्जरा - फलभोग के द्वारा या तपस्या के द्वारा कर्मों को खपाना, ८. बन्ध-आस्रव के द्वारा आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना । ९. मोक्ष - समस्त कर्मों का नाश हो जाने पर आत्मा का अपने स्वरूप में लीन हो जाना। संसारी जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं । यथा - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । पृथ्वीकायिक जीवों में नौ की गति और नौ की आगति कही गई है । यथा - पृथ्वी काय में उत्पन्न होने वाला पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वी काय में से यावत् पञ्चेन्द्रियों में से आकर उत्पन्न होता है । जब कोई पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय को छोड़ता है तो वह पृथ्वीकाय को छोड़ कर पृथ्वीकाय में यावत् पञ्चेन्द्रिय जीवों में जाकर उत्पन्न होता है । इसी तरह अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों में नौ की गति और नौ की आगति कह देनी चाहिए । सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं । यथा - एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय - द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय-त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय, मनुष्य, देव और सिद्ध भगवान् अथवा दूसरी तरह से सर्व जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं । यथा - प्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय नैरयिक यावत् अप्रथम समय देव और सिद्ध भगवान् । सब जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की कही गई है । यथा - पृथ्वीकायिक अवगाहना, अप्कायिक अवगाहना यावत् वनस्पतिकायिक अवगाहना, बेइन्द्रिय अवगाहना, तेइन्द्रिय अवगाहना, चतुरिन्द्रिय अवगाहना, पञ्चेन्द्रिय अवगाहना । जीवों ने नौ स्थानों में संसार परिभ्रमण किया है, परिभ्रमण करते हैं और परिभ्रमण करेंगे । यथा - पृथ्वीकाय रूप से यावत् पञ्चेन्द्रिय रूप से ।

नौ कारणों से रोग की उत्पत्ति होती है । यथा - १. अति आसनता - अधिक बैठे रहने से अर्श-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मस्सा आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं । अथवा अतिअशनता (अहित अशनता) - ज्यादा खाने से अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं । २. अहितासनता - अहित यानी जो आसन प्रतिकूल हो उस आसन से बैठने पर शरीर में कई रोग उत्पन्न हो जाता है अथवा अहिताशनता - अहित यानी कुपथ्य का सेवन करने से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है। ३. अतिनिद्रा - अधिक नींद लेने से, ४. अति जागरिता - अधिक जागने से, ५. उच्चार निरोध यानी टट्टी की बाधा को रोकने से, ६. प्रस्रवणनिरोध - पेशाब की बाधा को रोकने से ७. अद्धा गमन- मार्ग में अधिक चलने से ८. भोजन प्रतिकूलता - जो भोजन अपनी प्रकृति के अनुकूल न हो ऐसा भोजन करने से, ९. इन्द्रियार्थ विकोपनता - इन्द्रियों के शब्दादि विषयों का विपाक अर्थात् कामविकार । कामभोगों का अधिक सेवन से तथा उनमें अधिक आसक्ति रखने से उन्माद आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

विवेचन - तत्त्व - वस्तु के यथार्थ स्वरूप को तत्त्व कहते हैं। इन्हें सद्भाव पदार्थ भी कहा जाता है। तत्त्व नौ हैं -

जीवाऽजीवा पुण्णं पावाऽऽसव संवरो य निज्जरणा।
बंधो मुक्खो य तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥ (नवतत्त्व, गाथा १)

१. **जीव** - जिसे सुख दुःख का ज्ञान होता है तथा जिसका उपयोग लक्षण है, उसे जीव कहते हैं।

२. **अजीव** - जड़ पदार्थों को या सुख दुःख के ज्ञान तथा उपयोग से रहित पदार्थों को अजीव कहते हैं।

३. **पुण्य** - कर्मों की शुभ प्रकृतियाँ पुण्य कहलाती है।

४. **पाप** - कर्मों की अशुभ प्रकृतियाँ पाप कहलाती हैं।

५. **आस्रव** - शुभ तथा अशुभ कर्मों के आने का कारण आस्रव कहलाता है।

६. **संवर** - समिति गुप्ति आदि से कर्मों के आगमन को रोकना संवर है।

७. **निर्जरा** - फलभोग या तपस्या के द्वारा कर्मों के अंश खपाना निर्जरा है।

८. **बन्ध** - आस्रव के द्वारा आए हुए कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना बन्ध है।

९. **मोक्ष** - सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा का अपने स्वरूप में लीन हो जाना मोक्ष है।

शरीर में किसी तरह के विकार होने को रोग कहते हैं। रोगोत्पत्ति के नौ कारण बताये गये हैं।

मूल में '**अच्चासणाए**' पाठ है जिसके दो रूप होते हैं - १. अत्यासन यानी अति आसनता - अधिक बैठे रहने से और २. अत्याशन - अति अशन अर्थात् ज्यादा खाने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वैद्यक शास्त्र में भी कहा है -

अत्यंबुपानाद्विषमासना च्च, संधारणा मूत्र पुरीषयोश्च।
दिवाशय्या जागरणाच्च रात्रौ, षड्भिः प्रकारैः प्रभवंति रोगाः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् १. ज्यादा पानी पीने से २. विषम आसन से बैठने से ३. मूत्र रोकने से ४. मल रोकने से ५. दिन में सोने से ६. रात्रि में जागरण से-इन छह प्रकार से रोगों की उत्पत्ति होती है।

दर्शनावरणीय के भेद

णवविहे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयलापयला, थीणगिद्धी, चक्खुदंसणावरणे, अचक्खुदंसणावरणे, ओहिदंसणावरणे, केवलदंसणावरणे ।

नक्षत्र चन्द्रयोग, बलदेवों वासुदेवों के पिता

अभिई णं णक्खत्ते साइरेगे णव मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ। अभीइ आइया णव णक्खत्ता णं चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति तंजहा - अभीई सवणो धणिट्ठा जाव भरणी । इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोयण सयाइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ । जंबूद्दीवे णं दीवे णवजोयणिया मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा । जंबूद्दीवे दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव वासुदेव पियरो हुत्था तंजहा -

पयावई य बंभे य, रोद्दे सोमे सिवेइया ।
महासीहे अग्गिसीहे, दसरह णवमे य वासुदेवे ।। १ ।।

इत्तो आढत्तं जहा समवाए णिरवसेसं जाव एगासे गब्भवसही सिज्झिस्सइ आगमेस्सेणं । जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए णव बलदेव वासुदेव पियरो भविस्संति, णव बलदेव वासुदेव मायरो भविस्संति एवं जहा समवाए णिरवसेसं जाव महाभीमसेणे सुग्गीवे य, अपच्छिमे ।

एए खलु पडिसत्तू कित्ती पुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे वि चक्कजोही हम्मिहंति सचक्केहिं ।। २ ।। १०३ ।।

कठिन शब्दार्थ - दरिसणावरणिज्जे - दर्शनावरणीय, **णिद्दाणिद्दा** - निद्रा निद्रा, **पयलापयला** - प्रचला प्रचला, **थीणगिद्धी** - स्त्यानगृद्धि, **एगासे** - एक बार, **कित्तीपुरिसाण** - कीर्ति पुरुष-श्लाघ्य पुरुष, **चक्कजोही** - चक्र योधी।

भावार्थ - नौ प्रकार का दर्शनावरणीय कर्म कहा गया है यथा - निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय। अभिजित नक्षत्र नौ मुहूर्त से कुछ अधिक चन्द्रमा के साथ योग करता है । अभिजित् आदि यानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिजित् श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्व भाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी तक नौ नक्षत्र चन्द्रमा के उत्तर में योग करते हैं । इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमिभाग से नौ सौ योजन की ऊंचाई में बीच में ऊपर का तारा यानी शनैश्चर घूमता हैं । इस जम्बूद्वीप में नौ योजन के विस्तार वाले मत्स्यों ने प्रवेश किया है, प्रवेश करते हैं और प्रवेश करेंगे । इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में नौ बलदेव वासुदेवों के नौ पिता हुए थे यथा - प्रजापति, ब्रह्म, रौद्र, सोम, शिव, महासिंह, अग्निसिंह, दशरथ और वसुदेव । इस सूत्र से लेकर जैसा समवायांग में उनके पूर्वभव के नाम, धर्माचार्यों के नाम, नियाणा आदि सारा अधिकार यहां कह देना चाहिए यावत् एक वक्त गर्भावास में आकर आगामी काल में सिद्ध होवेंगे । इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में नौ बलदेव वासुदेवों के नौ पिता होवेंगे । इस प्रकार जैसा समवायांग सूत्र में कथन किया है वैसा महाभीमसेन सुग्रीव प्रतिवासुदेव तक का सारा अधिकार यहां कह देना चाहिये ।

कीर्ति पुरुष यानी श्लाघ्यपुरुष वासुदेवों के ये प्रतिवासुदेव शत्रु होते हैं । ये सब चक्र से युद्ध करने वाले होते हैं और ये प्रतिवासुदेव अपने ही चक्र से मारे जाते हैं।

विवेचन - दर्शनावरणीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है-

१. चक्षुदर्शनावरणीय - चक्षु अर्थात् आंख से पदार्थों का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला कर्म चक्षु दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

२. अचक्षुदर्शनावरणीय - श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पर्शन और मन के संबंध से शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे अचक्षु दर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला कर्म अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

३. अवधिदर्शनावरणीय - इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी द्रव्य का जो सामान्य बोध होता है उसे अवधि दर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला कर्म अवधि दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

४. केवल दर्शनावरणीय - संसार के सम्पूर्ण पदार्थों का जो सामान्य अवबोध होता है उसे केवल दर्शन कहते हैं। उसका आवरण करने वाला कर्म केवल दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

५. निद्रा - सोया हुआ आदमी जरा सी खटखटाहट से या आवाज से जाग जाता है उस नींद को 'निद्रा' कहते हैं। जिस कर्म से ऐसी नींद आवे उस कर्म को 'निद्रा' दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

६. निद्रा निद्रा - जोर से आवाज देने पर या देह हिलाने से जो आदमी बड़ी मुश्किल से जागता है उसकी नींद को 'निद्रा निद्रा' कहते हैं। जिस कर्म के उदय से ऐसी नींद आवे उस कर्म का नाम ''निद्रा निद्रा'' दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

७. प्रचला - खड़े खड़े या बैठे बैठे जिसको नींद आती है उसकी नींद को 'प्रचला' कहते हैं, जिस कर्म के उदय से ऐसी नींद आवे उस कर्म का नाम 'प्रचला' दर्शनावरणीय कर्म है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८. प्रचला प्रचला – चलते फिरते जिसको नींद आती है उसकी नींद को 'प्रचला प्रचला' कहते हैं। जिस कर्म के उदय से ऐसी नींद आवे उस कर्म को 'प्रचला प्रचला' दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

९. स्त्यानगृद्धि – जो दिन में सोचे हुए काम को रात में नींद की हालत में कर डालता है उस नींद को स्त्यानगृद्धि कहते हैं। जिस कर्म के उदय से ऐसी नींद आवे उसका नाम स्त्यान गृद्धि दर्शनावरणीय कर्म है। जब स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि) कर्म का उदय होता है तब वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले जीव में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। यदि उस समय उस जीव की मृत्यु हो जाय और उसने यदि पहले आयु न बांधी हो तो नरक गति में जाता है।

नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव के नाम, माता पिता, पूर्वभव के नाम आदि का वर्णन समवायांग सूत्र के अनुसार जानना चाहिये।

बलदेव नौ – वासुदेव के बड़े भाई को बलदेव कहते हैं। बलदेव सम्यग्दृष्टि होते हैं वे अवश्य दीक्षा अंगीकार करते हैं। दीक्षा पालकर वे स्वर्ग या मोक्ष में ही जाते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल के नौ बलदेवों के नाम इस प्रकार हैं –

१. अचल २. विजय ३. भद्र ४. सुप्रभ ५. सुदर्शन ६. आनन्द ७. नन्दन ८. पद्म (रामचन्द्र) और ९. राम (बलराम बलभद्र)। इन में बलराम को छोड़ कर बाकी सब मोक्ष गए हैं। नवें बलराम पांचवें देवलोक में गए हैं।

वासुदेव नौ – प्रतिवासुदेव को जीत कर जो तीन खण्ड पर राज्य करता है उसे वासुदेव कहते हैं। इसका दूसरा नाम अर्धचक्री भी है। वर्तमान अवसर्पिणी के नौ वासुदेवों के नाम निम्न लिखित हैं।

१. त्रिपृष्ठ २. द्विपृष्ठ ३. स्वयम्भू ४. पुरुषोत्तम ५. पुरुषसिंह ६. पुरुषपुण्डरीक ७. दत्त ८. नारायण (राम का भाई लक्ष्मण) ९. कृष्ण।

वासुदेव, प्रतिवासुदेव पूर्वभव में नियाणा करके ही उत्पन्न होते हैं। नियाणे के कारण वे शुभगति को प्राप्त नहीं करते हैं।

प्रतिवासुदेव नौ – वासुदेव जिसे जीत कर तीन खण्ड का राज्य प्राप्त करता है उसे प्रतिवासुदेव कहते हैं। वे नौ होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी के प्रतिवासुदेव नीचे लिखे अनुसार हैं –

१. अश्वग्रीव २. तारक ३. मेरक ४. मधुकैटभ (इनका नाम सिर्फ मधु है, कैटभ इनका भाई था। साथ साथ रहने से मधुकैटभ नाम पड़ गया) ५. निशुम्भ ६. बलि ७. प्रभाराज अथवा प्रह्लाद ८. रावण ९. जरासन्ध।

बलदेवों के पूर्वभव के नाम – अचल आदि नौ बलदेवों के पूर्वभव में क्रमशः नीचे लिखे नौ नाम थे –

१. विषनन्दी २. सुबन्धु ३. सागरदत्त ४. अशोक ५. ललित ६. वाराह ७. धर्मसेन ८. अपराजित ९. राजललित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासुदेवों के पूर्व भव के नाम –

१. विश्वभूति २. पर्वतक ३. धनदत्त ४. समुद्रदत्त ५. ऋषिपाल ६. प्रियमित्र ७. ललितमित्र ८. पुनर्वसु ९. गंगदत्त।

बलदेव और वासुदेवों के पूर्वभव के आचार्यों के नाम –

१. सम्भूत २. सुभद्र ३. सुदर्शन ४. श्रेयांस ५. कृष्ण ६. गंगदत्त ७. आसागर ८. समुद्र ९. द्रुमसेन।

पूर्वभव में बलदेव और वासुदेवों के ये आचार्य थे। इन्हीं के पास उत्तम करनी करके इन्होंने बलदेव या वासुदेव का आयुष्य बाँधा था। बलदेव और वासुदेव दोनों सगे भाई होते हैं। इन दोनों के पिता एक होते हैं। किन्तु मातायें भिन्न-भिन्न होती हैं। इसीलिए माताओं के नाम भिन्न-भिन्न बताये हैं और पिताओं के नाम एक बताये हैं।

यद्यपि लवण समुद्र में ५०० योजन तक के मत्स्य होते हैं। परन्तु गंगा सिन्धु नदियाँ जगती के नीचे होकर लवण समुद्र में मिलती हैं वहाँ नदी मुख में भरत क्षेत्र की खाडी में नौ योजन के मत्स्य (मच्छ) ही आते हैं। यह लोकानुभाव (लोक का स्वभाव) ऐसा ही है।

महानिधियाँ

एगमेगे णं महाणिही णव णव जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते । एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहीओ पण्णत्ताओ तंजहा –

णेसप्पे पंडुयए पिंगलए सव्वरयण महापउमे ।
काले य महाकाले, माणवग महाणिही संखे ॥ १॥
णेसप्पम्मि णिवेसा, गामागरणगर पट्टणाणं च ।
दोणमुहमंडवाणं, खंधाराणं गिहाणं च ॥ २॥
गणियस्स य बीयाणं, माणुम्माणस्स जं पमाणं च ।
धण्णस्स य बीयाणं, उप्पत्ती पंडुए भणिया ॥ ३॥
सव्वा आभरणविही, पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं ।
आसाण य हत्थीण य, पिंगलगणिहिम्मि सा भणिया ॥ ४॥
रयणाइं सव्वरयणे, चोद्दसपवराइं चक्कवट्टिस्स ।
उप्पज्जंति एगिंदियाइं, पंचिंदियाइं च ॥ ५॥
वत्थाण य उप्पत्ती, णिप्पत्ती चेव सव्वभत्तीणं ।
रंगाण य धोयाण य, सव्वा एसा महापउमे ॥ ६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काले कालण्णाणं, भव्व पुराणं च तीसु वासेसु ।
सिप्पसयं कम्माणि य, तिण्णि पयाए हियकराइं ।। ७ ।।
लोहस्स य उप्पत्ती, होइ महाकालि आगराणं च ।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य, मणिमोत्ति सिलप्पवालाणं ।। ८ ।।
जोहाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य जुद्धणीई, माणवए दंडणीई य ।। ९ ।।
णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स चउविहस्स उप्पत्ती ।
संखे महाणिहिम्मि, तुडियंगाणं च सव्वेसिं ।। १० ।।
चक्कट्ठ पइट्ठाणा अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभे ।
बारसदीहा मंजूससंठिया, जण्हवीई मुहे ।। ११ ।।
वेरुलियमणिकवाडा, कणगमया विविहरयणपडिपुण्णा ।
ससिसूर चक्कलक्खण अणुसमजुग बाहुवयणा य ।। १२ ।।
पलिओवमठिइया, णिहिसरिणामा य तेसु खलु देवा ।
जेसिं ए आवासा, अक्किज्जा आहिवच्चा वा ।। १३ ।।
एए णव णिहीओ, पभूयधणरयण संचयसमिद्धा ।
जे वसमुवगच्छंति, सव्वेसिं चक्कवट्टीणं ।। १४ ।। १०४ ।।

कठिन शब्दार्थ - **णेसप्पे** - नैसर्प निधि में, **पंडुयए** - पाण्डुक निधि, **पिंगलए** - पिंगलक निधि, **सव्वरयण** - सर्वरत्न, **गामागरणगरपट्टणाणं** - ग्राम, आकर, नगर, पत्तनों का, **दोणमुहमंडवाणं** - द्रोणमुख मंडपों का, **खंधाराणं** - स्कन्धावार-सेना के पडावों का, **उप्पत्ती** - उत्पत्ति, **णिप्पत्ती** - निष्पत्ति, **सिप्पसयं** - शिल्पशत-सौ प्रकार का शिल्प, **पयाए** - प्रजा के, **हियकराइं** - हित के लिये, **णट्टविही** - नृत्य विधि, **णाडगविही** - नाटक विधि, **कव्वस्स** - काव्य की, **तुडियंगाणं** - बाजों की, **चक्कपइट्ठाणा** - चक्रों पर प्रतिष्ठित, **मंजूस संठिया** - पेटी के आकार के समान, **ससिसूर चक्कलक्खण अणुसम जुग बाहु वयणा** - चन्द्र, सूर्य, चक्र लक्षण, समान स्तम्भ और दरवाजों वाली, **आहिवच्चा** - आधिपत्य, **पभूयधणरयणसंचयसमिद्धा** - प्रचुर धन रत्न संचय करने वाली।

भावार्थ - महानिधि - चक्रवर्ती के विशाल निधान अर्थात् खजाने को महानिधि कहते हैं । प्रत्येक महानिधान नौ नौ योजन विस्तारवाला होता है । प्रत्येक चक्रवर्ती राजा के नौ महानिधियाँ कही गई हैं यथा - नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गलक, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शंख ।। १ ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नये ग्रामों का बसाना, पुराने ग्रामों को व्यवस्थित करना, आकर यानी नमक आदि की खानों का प्रबन्ध, नगर, पत्तन अर्थात् बन्दरगाह और द्रोणमुख – जहाँ जल और स्थल दोनों तरह का मार्ग हो, मंडप यानी ऐसा जंगल जहाँ नजदीक बस्ती न हो, स्कन्धावार अर्थात् सेना का पडाव और घर इत्यादि वस्तुओं का प्रबन्ध नैसर्प निधि के द्वारा होता है ।। २ ॥

गणित यानी सोना चांदी के सिक्के, मोहर आदि गिनी जाने वाली वस्तुएं और इन वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली सामग्री और मान यानी जिनका माप कर व्यवहार होता है ऐसे धान आदि उन्मान अर्थात् तोली जाने वाली वस्तुएं गुड़ खांड आदि तथा धान्य एवं बीजों की उत्पत्ति आदि का सारा काम पाण्डुक निधि द्वारा होता है ऐसा तीर्थङ्कर भगवान् ने फरमाया है ।। ३ ॥

स्त्री पुरुष हाथी और घोड़े इन सब के आभूषणों एवं अलङ्कारों का प्रबन्ध पिङ्गलक निधि द्वारा होता है ।। ४ ॥

चक्रवर्ती के चौदह प्रधानरत्न अर्थात् चक्र आदि सात एकेन्द्रिय रत्न और सेनापति आदि सात पञ्चेन्द्रिय रत्न ये सब चौदह रत्न सर्वरत्न नामक निधि के द्वारा उत्पन्न होते हैं ।। ५ ॥

रंगीन और सफेद सब प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति और निष्पत्ति यानी सिद्धि ये सब महापद्म निधि के द्वारा होता है ।। ६ ॥

भविष्यत् काल के तीन वर्ष, भूतकाल के तीन वर्ष और वर्तमान इन तीनों कालों का ज्ञान और शिल्पशत यानी घट, लोह, चित्र, वस्त्र, नापित इनमें प्रत्येक के बीस बीस भेद होने से सौ प्रकार का शिल्प तथा कृषि, वाणिज्य आदि कर्म कालनिधि द्वारा होते हैं । कालज्ञान, शिल्प और कर्म ये तीनों बातें प्रजा के हित के लिए होती हैं ।। ७ ॥

खानों से सोना, चांदी, लोहा आदि धातुओं की उत्पत्ति और चन्द्रकान्त आदि मणियाँ, मोती, स्फटिक मणि की शिलाएं और मूंगे आदि को इकट्ठा करने का काम महाकालनिधि द्वारा होता है ।। ८ ॥

शूरवीर योद्धाओं को इकट्ठा करना, कवच आदि बनाना, और हथियार तैयार करना तथा युद्धनीति यानी व्यूह रचना आदि और साम, दाम, दण्ड, भेद यह चार प्रकार की दण्डनीति, इन सब की व्यवस्था माणवक निधि द्वारा होती है ।। ९ ॥

नाच तथा उसके सब भेद नाटक और उसके सब भेद और चतुर्विध काव्य अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थ का साधक अथवा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, सङ्कीर्ण इन चार भाषाओं में बना हुआ अथवा समछन्द, विषम छन्द, अर्द्धसम छन्द और गदय इस चार प्रकार के अथवा गदय, पदय, गेय और वर्णपदबद्ध इस चार प्रकार के काव्य की उत्पत्ति और सब प्रकार के बाजों की उत्पत्ति शंख नामक महानिधि द्वारा होती है ।। १० ॥

ये महानिधियाँ आठ चक्रों पर प्रतिष्ठित हैं । इनकी ऊंचाई आठ योजन और चौड़ाई नौ योजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और लम्बाई बारह योजन की होती है । इनका आकार पेटी के समान होता है । और इनका स्थान गङ्गा नदी का मुख है ।। ११ ॥

इनके किंवाड़ वैडूर्य मणि के बने हुए होते हैं । ये सोने की बनी हुई अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण होती है । ये चन्द्र, सूर्य और चक्र आदि के चिन्हों वाली तथा समान स्तम्भ और दरवाजों वाली होती है ।। १२ ॥

एक पल्योपम की स्थिति वाले और महानिधियों के समान नाम वाले त्रायस्त्रिंश देव उन महानिधियों के आश्रय यानी अधिष्ठाता हैं । ये बेची नहीं जा सकती हैं । उन महानिधियों पर देवों का आधिपत्य है ।। १३ ॥

बहुत धन और रत्नों का सञ्चय करने वाली ये नौ महानिधियाँ हैं जो कि सब चक्रवर्तियों के वश में होती है अर्थात् प्रत्येक चक्रवर्ती के पास ये नौ महानिधियाँ होती है ।। १४ ॥

विगय, द्वार, पुण्य, पाप स्थान और पाप श्रुत

णव विगईओ पण्णत्ताओ तंजहा - खीरं, दहिं, णवणीयं, सप्पिं, तेलं, गुलो, महुं, मज्जं, मंसं । णव सोयपरिस्सवा बोंदी पण्णत्ता तंजहा - दो सोया, दो णेत्ता, दो घाणा, मुंह, पोसे, पाऊ । णव विहे पुण्णे पण्णत्ते तंजहा - अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मणपुण्णे, वयपुण्णे, कायपुण्णे, णमोक्कारपुण्णे। णव पावस्स आययणा पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवाए, मुसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे, परिग्गहे, कोहे, माणे, माया, लोभे । णव विहे पावसुयपसंगे पण्णत्ते तंजहा - उप्पाए, णिमित्ते, मंते, आइक्खिए, तिगिच्छए, कला, आवरणे, अण्णाणे, मिच्छापावयणे इ य॥ १०५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णवणीयं** - नवनीत (मक्खन) **सप्पिं** - सर्पि (घी) **गुलो** - गुड, **महुं** - मधु-शहद, **णव सोयपरिस्सवा** - नव स्रोत परिस्राव-नौ द्वारों से मल झरता है, **पोसे** - उपस्थ-पेशाब करने की जगह, **पाऊ** - पायु (गुदाद्वार) मलद्वार, **णमोक्कार पुण्णे** - नमस्कार पुण्य, **आययणा** - स्थान, **पावसुयपसंगे**- पापश्रुत प्रसंग, **उप्पाए** - उत्पात, **णिमित्ते** - निमित्त, **मंते** - मन्त्र, **आइक्खिए** - मातङ्गविद्या, **तिगिच्छिए**- चैकित्सिक (आयुर्वेद), **आवरणे** - आवरण, **अण्णाणे** - अज्ञान, **मिच्छापावयणे** - मिथ्या प्रवचन।

भावार्थ - विकृति (विगय)-शरीर पुष्टि के द्वारा इन्द्रियों को उत्तेजित्त करने वाले अथवा मन में विकार उत्पन्न करने वाले पदार्थों को विकृति (विगय) कहते हैं । वे नौ हैं यथा - १. क्षीर यानी दूध - बकरी, भेड़, गाय, भैंस और ऊंटनी के भेद से यह पांच प्रकार का है। २. दही - यह चार प्रकार का

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

है। ऊंटनी के दूध का दही, मक्खन और घी नहीं होता है । ३. नवनीत - मक्खन - यह भी चार प्रकार का होता है । ४. सर्पि यानी घी - यह भी चार प्रकार का होता है । ५. तेल - तिल अलसी कुसुम्भ और सरसों के भेद से यह चार प्रकार का है, बाकी तेल लेप हैं, विगय नहीं है । ६. गुड़ - यह दो तरह का होता है ढीला और पिण्ड अर्थात् बंधा हुआ । यहाँ गुड़ शब्द से खांड, चीनी, मिश्री, आदि सभी मीठी वस्तुएं ले ली जाती हैं ।७. मधु - शहद ।८. मद्य - शराब ।९. मांस ।

इस औदारिक शरीर में नौ द्वारों से मल झरता रहता है यथा - दो कान, दो नेत्र, नाक के दो छेद, मुख, उपस्थ यानी पेशाब करने की जगह और पायु यानी गुदा द्वार - टट्टी करने की जगह ।

पुण्य नौ प्रकार का कहा गया है यथा - १. अन्न पुण्य यानी अन्न देने से होने वाला पुण्य । २. पान पुण्य- दूध, पानी आदि पीने की वस्तुएं देने से होने वाला पुण्य । ३. वस्त्र पुण्य - वस्त्र देने से होने वाला पुण्य । ४. लयन पुण्य - मकान आदि ठहरने का स्थान देने से होने वाला पुण्य । ५. शयन पुण्य - बिछाने के लिए पाटा बिस्तर आदि देने से होने वाला पुण्य । ६. मन पुण्य - गुणियों को देख कर मन में प्रसन्न होने से होने वाला पुण्य । ७. वचन पुण्य - वाणी के द्वारा गुणी पुरुषों की प्रशंसा करने से होने वाला पुण्य । ८. काय पुण्य - शरीर से दूसरों की सेवा भक्ति करने से होने वाला पुण्य । ९. नमस्कार पुण्य - अपने से अधिक गुण वाले को नमस्कार करने से होने वाला पुण्य । पाप के नौ स्थान कहे गये हैं यथा - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ। पापश्रुत प्रसंग यानी जिस शास्त्र के पठन पाठन और विस्तार आदि से पाप होता है उसे पापश्रुत कहते हैं। वह पापश्रुत नौ प्रकार का कहा गया है यथा - १. उत्पात - प्रकृति के विकार अर्थात् रक्तवृष्टि आदि या राष्ट्र के उत्पात आदि को बताने वाला शास्त्र । २. निमित्त - भूत भविष्यत् की बात को बताने वाला शास्त्र । ३. मन्त्र - दूसरे को मारना, वश में कर लेना आदि मंत्रों को बताने वाला शास्त्र । ४. मातङ्गविद्या - जिसके उपदेश से भोपा आदि के द्वारा भूत भविष्यत् की बातें बताई जाती हैं। ५. चैकित्सिक - आयुर्वेद । ६. कला - लेख आदि जिनमें गणित प्रधान है अथवा पक्षियों के शब्द का ज्ञान आदि । पुरुष की बहत्तर और स्त्री की चौसठ कलाएं । ७. आवरण - मकान आदि बनाने का वास्तु विद्या । ८. अज्ञान - लौकिक ग्रन्थ भरत नाट्य शास्त्र और काव्य आदि । ९. मिथ्याप्रवचन - चार्वाक आदि दर्शन । ये सभी पापश्रुत हैं ।

विवेचन - पुण्य - शुभ कर्मों के बन्ध को पुण्य कहते हैं। पुण्य के नौ भेद हैं -

अन्नं पानं च वस्त्रं च, आलयः शयनासनम्।
शुश्रूषा वन्दनं तुष्टिः, पुण्यं नवविधं स्मृतम्॥

१. अन्नपुण्य - पात्र को अन्न देने से तीर्थंकर नाम शुभ प्रकृतियों का बँधना।

२. पानपुण्य - दूध, पानी आदि पीने की वस्तुओं को देने से होने वाला शुभ बन्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. वस्त्र पुण्य - कपड़े देने से होने वाला शुभ बन्ध।

४. लयन पुण्य - ठहरने के लिये स्थान देने से होने वाला शुभ कर्मों का बन्ध।

५. शयन पुण्य - बिछाने के लिये पाटा बिस्तर और स्थान आदि देने से होने वाला पुण्य।

६. मनः पुण्य - गुणियों को देख कर मन में प्रसन्न होने से शुभ कर्मों का बँधना।

७. वचन पुण्य - वाणी के द्वारा दूसरे की प्रशंसा करने से होने वाला शुभ बन्ध।

८. काय पुण्य - शरीर से दूसरे की सेवा भक्ति आदि करने से होने वाला शुभ बन्ध।

९. नमस्कार पुण्य - गुणी पुरुषों को नमस्कार करने से होने वाला पुण्य।

नैपुणिक वस्तु

णव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता तंजहा - संखाणे, णिमित्ते, काइए, पोराणे, पारिहत्थिए, परपंडिए, वाइए, भूइकम्मे, तिगिच्छए ।

नौ गण, नौ कोटि भिक्षा

समणस्स भगवओ महावीरस्स णव गणा हुत्था तंजहा - गोदासगणे, उत्तर बलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्डियगणे, माणवगणे, कोडियगणे । समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णव कोडिपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते तंजहा - ण हणइ, ण हणावइ, हणंतं णाणुजाणइ, ण पयइ, ण पयावेइ, पयंतं णाणुजाणइ, ण किणइ, ण किणावेइ, किणंतं णाणुजाणइ॥ १०६ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णेउणिया वत्थू** - नैपुणिक वस्तु, **संखाणे** - संख्यान, **काइए** - कायिक, **पारिहत्थिए** - पारिहस्तिक, **परपंडिए** - पर पण्डित, **वाइए** - वादी, **भूइकम्मे** - भूतिकर्म, **णव कोडिपरिसुद्धे** - नौ कोटि परिशुद्ध, **भिक्खे** - भिक्षा, **पयइ** - पकाता है, **किणइ** - खरीदता है ।

भावार्थ - नैपुणिक वस्तु - निपुण अर्थात् सूक्ष्म ज्ञान को धारण करने वाले नैपुणिक कहलाते हैं। अनुप्रवाद नाम के नवमें पूर्व में नैपुणिक वस्तुओं के नौ अध्ययन कहे गये हैं यथा - १. संख्यान - गणित शास्त्र में निपुण व्यक्ति । २. निमित्त - चूड़ामणि आदि निमित्तों का जानकार । ३. कायिक - शरीर की नाड़ियों को जानने वाला अर्थात् प्राणतत्त्व का विद्वान् । ४. पुराण - वृद्ध पुरुष, जिसने दुनिया को देख कर तथा स्वयं अनुभव करके बहुत ज्ञान प्राप्त किया है, अथवा पुराण नाम के शास्त्र को जानने वाला । ५. पारिहस्तिक - जो व्यक्ति स्वभाव से चतुर हो, अपने सब प्रयोजन समय पर पूरे कर लेता हो । ६. परपण्डित - उत्कृष्ट पण्डित अर्थात् बहुत शास्त्रों को जानने वाला, अथवा जिसका मित्र आदि कोई पण्डित हो और उसके पास बैठने उठने से बहुत कुछ सीख लिया हो और अनुभव कर लिया हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. वादी – शास्त्रार्थ में निपुण जिसे दूसरा न जीत सकता हो, अथवा मन्त्रवादी या धातुवादी ।
८. भूतिकर्म – ज्वर आदि उतारने के लिए भभूत (राख) आदि मन्त्रित करके देने में निपुण ।
९. चैकित्सिक – चिकित्सा में निपुण वैदय आदि ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नौ गण हुए थे यथा – गोदास गण, उत्तरबलिसह गण, उद्देह गण, चारण गण, उद्दवाइ गण, विश्ववादी गण, कामर्द्धि गण, माणव गण, कोटिक गण। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नौ कोटि परिशुद्ध भिक्षा कही है यथा – साधु आहारादि के लिए किसी जीव की हिंसा न करे, दूसरे द्वारा हिंसा न करावे, हिंसा करते हुए का अनुमोदन न करे अर्थात् उसे भला न समझे। आहार आदि स्वयं न पकावे, दूसरे से न पकवावे, पकाते हुए का अनुमोदन न करे। स्वयं न खरीदे, दूसरों से न खरीदवावे, खरीदते हुए का अनुमोदन न करे। ये सभी कोटियाँ मन, वचन और काया रूप तीनों योगों से हैं। निर्ग्रन्थ साधु को इन नौ कोटियों से विशुद्ध आहार आदि लेना चाहिए।

विवेचन – गण – जिन साधुओं की क्रिया और वाचना एक सरीखी हो उन्हें गण कहते हैं। भगवान् महावीर के नौ गण थे –

१. गोदास गण – गोदास भद्रबाहु स्वामी के प्रथम शिष्य थे। इन्हीं के नाम से पहला गण प्रचलित हुआ।

२. उत्तरबलिस्सह गण – उत्तरबलिस्सह स्थविर महागिरि के प्रथम शिष्य थे। इनके नाम से भगवान् महावीर का दूसरा गण प्रचलित हुआ।

३. उद्देह गण ४. चारण गण ५. उद्दवाइ गण ६. विश्ववादी गण ७. कामर्द्धि गण ८. मानव गण ९. कोटिक गण।

भिक्षा की नौ कोटियाँ – निर्ग्रन्थ साधु को नौ कोटियों से विशुद्ध आहार लेना चाहिए।

१. साधु आहार के लिए स्वयं जीवों की हिंसा न करे।
२. दूसरे द्वारा हिंसा न करावे।
३. हिंसा करते हुए का अनुमोदन न करे, अर्थात् उसे भला न समझे।
४. आहार आदि स्वयं न पकावे।
५. दूसरे से न पकवावे।
६. पकाते हुए का अनुमोदन न करे।
७. स्वयं न खरीदे।
८. दूसरे को खरीदने के लिये न कहे।
९. खरीदते हुए किसी व्यक्ति का अनुमोदन न करे।

ऊपर लिखी हुई सभी कोटियाँ मन, वचन और काया रूप तीनों योगों से हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्रमहिषियाँ, लोकान्तिक देव, ग्रैवेयक विमान

ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो णव अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । ईसाणे कप्पे उक्कोसेणं देवीणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । णव देवणिकाया पण्णत्ता तंजहा -

सारस्सय माइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ।। १ ।।

अव्वाबाहाणं देवाणं णव देवा णव देव सया पण्णत्ता । एवं अग्गिच्चा वि, एवं रिट्ठा वि । णव गेविज्ज विमाण पत्थडा पण्णत्ता तंजहा - हेट्ठिमहेट्ठिम गेविज्ज विमाणपत्थडे, हेट्ठिम मज्झिम गेविज्ज विमाणपत्थडे, हेट्ठिम उवरिम गेविज्ज विमाणपत्थडे, मज्झिम हेट्ठिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, मज्झिम मज्झिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, मज्झिम उवरिम गेविज्ज विमाण पत्थडे, उवरिम हेट्ठिम गेविज्जविमाण पत्थडे, उवरिम मज्झिम गेविज्ज विमाणपत्थडे, उवरिम उवरिम गेविज्जविमाणपत्थडे । एएसि णं णवण्हं गेविज्ज विमाण पत्थडाणं णव णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा -

भद्दे सुभद्दे सुजाए, सोमणसे पियदंसणे ।
सुदंसणे अमोहे य, सुप्पबुद्धे जसोहरे ।। २ ।। १०७ ।।

कठिन शब्दार्थ - देवणिकाया - देवनिकाय, **अव्वाबाहाणं** - अव्याबाध देवों के, **गेविज्ज विमाण पत्थडा** - ग्रैवेयक विमान प्रस्तट, **हेट्ठिमहेट्ठिम** - अधस्तन अधस्तन, **हेट्ठिममज्झिम** - अधस्तन मध्यम, **हेट्ठिमउवरिम** - अधस्तन उपरिम, **मज्झिमहेट्ठिम** - मध्यम अधस्तन, **मज्झिममज्झिम** - मध्यम मध्यम, **मज्झिम उवरिम** - मध्यम उपरिम, **उवरिम हेट्ठिम** - उपरिमअधस्तन, **उवरिममज्झिम** - उपरिम मध्यम, **उवरिमउवरिम** - उपरिम उपरिम।

भावार्थ - देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र के वरुण नामक लोकपाल के नौ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। देवों के राजा देवों के इन्द्र ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों की नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है। ईशान देवलोक में परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है। नौ देवनिकाय कहे गये हैं यथा - सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ठ। इन में से पहले के आठ देवनिकाय आठ कृष्ण राजियों में रहते हैं। रिष्ठ नामक देवनिकाय कृष्ण राजियों के बीच में रिष्टाभ नामक विमान के प्रत्तर में रहते हैं। अव्याबाध देवों के नौ देव और नौ सौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों का परिवार है। इसी तरह आग्नेय और रिष्ठ देवों के भी नौ देव और नौ सौ देवों का परिवार है। नौ ग्रैवेयक विमान कहे गये हैं यथा-अधस्तनअधस्तन ग्रैवेयक विमान-नीचे की त्रिक का सब से नीचे का विमान, अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक विमान नीचे की त्रिक का बीचला विमान। अधस्तन उपरिम ग्रैवेयक विमान-नीचे की त्रिक का ऊपर का विमान। मध्यम अधस्तन ग्रैवेयक विमान-बीच की त्रिक का नीचे का विमान। मध्यम मध्यम ग्रैवेयक विमान-बीच की त्रिक का बीच का विमान, मध्यम उपरिम ग्रैवेयक विमान-बीच की त्रिक का ऊपर का विमान। उपरिम अधस्तन ग्रैवेयक विमान-ऊपर की त्रिक का नीचे का विमान, उपरिम मध्यम ग्रैवेयक विमान-ऊपर की त्रिक का बीच का विमान। उपरिम उपरिम ग्रैवेयक विमान-ऊपर की त्रिक का ऊपर का विमान। इन नौ ग्रैवेयक विमानों के नौ नाम कहे गये हैं यथा - भद्र, सुभद्र, सुजात, सोमनस, प्रियदर्शन, सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध और यशोधर ।। २ ॥

विवेचन - जैसे एक घड़े पर दूसरा घड़ा रखा जाता है उसी प्रकार नौ ग्रैवेयक विमान भी घड़े की तरह एक एक के ऊपर है। इन नौ की तीन त्रिक हैं - नीचे की त्रिक, बीच की त्रिक और ऊपर की त्रिक । एक एक त्रिक में तीन तीन विमान हैं ।

आयु परिणाम

णवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते तंजहा - गइपरिणामे, गइबंधण परिणामे, ठिइपरिणामे, ठिइबंधण परिणामे, उड्ढंगारवपरिणामे, अहेगारवपरिणामे, तिरियंगारवपरिणामे, दीहंगारवपरिणामे, रहस्संगारवपरिणामे ।

भिक्षु प्रतिमा, प्रायश्चित्त

णवणवमिया णं भिक्खुपडिमा एगासीएहिं राइंदिएहिं चउहिं य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्ता जाव आराहिया यावि भवइ । णवविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - आलोयणारिहे जाव मूलारिहे, अणवठप्पारिहे ॥ १०८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **आउपरिणामे** - आयुपरिणाम, **गइबंधण परिणामे** - गतिबन्धन परिणाम, **उड्ढंगारव परिणामे** - ऊर्ध्वगौरव परिणाम, **अहेगारव परिणामे** - अधोगौरव परिणाम, **तिरियंगारव परिणामे**- तिर्यग् गौरव परिणाम, **दीहंगारव परिणामे** - दीर्घगौरव परिणाम, **रहस्संगारव परिणामे** - ह्रस्व गौरव परिणाम, **णवणवमिया** - नवनवमिका, **अणवठप्पारिहे** - अनवस्थाप्यार्ह पारांचिक।

भावार्थ - आयुष्य कर्म की स्वाभाविक शक्ति को आयुपरिणाम कहते हैं । अर्थात् आयुष्य कर्म जिस जिस रूप में परिणत होकर फल देता है वह आयुपरिणाम है इसके नौ भेद हैं यथा - गतिपरिणाम - आयुकर्म जिस स्वभाव से जीव को देव आदि निश्चित गतियाँ प्राप्त कराता है उसे गतिपरिणाम कहते हैं । गतिबन्धनपरिणाम - आयुकर्म के जिस स्वभाव से नियत गति का कर्मबन्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है उसे गतिबन्ध परिणाम कहते हैं, जैसे नारक जीव मनुष्य गति या तिर्यञ्चगति की आयु बांध सकता है, देवगति और नरकगति की नहीं। इसी तरह देव गति का जीव मनुष्य गति या तिर्यंच गति का आयु बांध सकता है, किन्तु देवगति और नरकगति का नहीं। स्थितिपरिणाम - आयुकर्म की जिस शक्ति से जीव गति विशेष में अन्तर्मुहूर्त्त से लेकर तेतीस सागरोपम तक रहता है । स्थितिबन्धन परिणाम - आयुकर्म की जिस शक्ति से जीव आगामी भव के लिए नियत स्थिति की आयु बांधता है उसे स्थितिबन्धन परिणाम कहते हैं । जैसे तिर्यञ्च आयु में रहा हुआ जीव देवगति की आयु बांधने पर उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की ही बांध सकता है । ऊर्ध्व गौरवपरिणाम - आयुकर्म के जिस स्वभाव से जीव में ऊपर जाने की शक्ति आ जाती है, जैसे पक्षी आदि में । अधोगौरवपरिणाम - जिससे नीचे जाने की शक्ति प्राप्त हो । तिर्यग्गौरवपरिणाम- जिससे तिर्छे जाने की शक्ति प्राप्त हो । दीर्घगौरवपरिणाम - जिससे जीव को बहुत दूर तक जाने की शक्ति प्राप्त हो । इस परिणाम के उत्कृष्ट होने से जीव लोक के एक कोने से दूसरे कोने तक जा सकता है । ह्रस्वगौरवपरिणाम - जिससे थोड़ी दूर चलने की शक्ति हो । नवनवमिका भिक्षुपडिमा ईक्यासी रातदिन में पूर्ण होती है और इसमें ४०५ भिक्षा की दत्तियाँ होती है । इस प्रकार इसका सूत्रानुसार आराधन किया जाता है। नौ प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है यथा - आलोचनार्ह यावत् मूलार्ह और अनवस्थाप्यार्ह। ठाणाङ्ग सूत्र के दसवें ठाणे में और भगवती सूत्र के २५ वें शतक में प्रायश्चित्त के दस भेद बतलाये गये हैं। परन्तु यहाँ नवमा स्थान होने से नव ही भेद कहे गये हैं। दसवां भेद पाराञ्चिक प्रायश्चित्त हैं।

नौ कूटों वाले पर्वत

जंबूमंदर दाहिणेणं भरहे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सिद्धे भरहे खंडग माणी, वेयड्ढ पुण तिमिसगुहा ।
भरहे वेसमणे य, भरहे कूडाण णामाइं ।। १ ।।

जंबूमंदर दाहिणेणं णिसहे वासहरपव्वए णव कूडा पण्णत्ता तंजहा -

सिद्धे णिसहे हरिवास विदेह हरि धिइ य सीओआ ।
अवरविदेहे रुयगे, णिसहे कूडाण णामाणि ।। २ ।।

जंबूमंदर पव्वए णंदणवणे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा -

णंदणे मंदरे चेव णिसहे हेमवए रयय रुयगे य ।
सागरचित्ते वइरे, बलकूडे चेव बोद्धव्वे ।। ३ ।।

जंबूद्दीवे दीवे मालवंते वक्खारपव्वए णव कूडा पण्णत्ता तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धे य मालवंते उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयए ।
सीया तह पुण्णणामे, हरिस्सह कूडे य बोद्धव्वे ।। ४ ।।

जंबू कच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे कच्छे खंडग माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
कच्छे वेसमणे य, कच्छे कूडाण णामाइं ।। ५ ।।

जंबू सुकच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे सुकच्छे खंडग माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
सुकच्छे वेसमणे य, सुकच्छे कूडाण णामाइं ।। ६ ।।

एवं जाव पुक्खलावइम्मि दीहवेयड्ढे, एवं वच्छे दीहवेयड्ढे एवं जाव मंगलावइम्मि दीहवेयड्ढे । जंबू विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे य विज्जुणामे देवकुरा पम्ह कणग सोवत्थी ।
सीओआए सजले, हरिकूडे चेव बोद्धव्वे ।। ७ ।।

जंबू पम्हे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे पम्हे खंडग माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
पम्हे वेसमणे य, पम्हे कूडाण णामाइं ।। ८ ।।

एवं चेव जाव सलिलावइम्मि दीह वेयड्ढे, एवं वप्पे दीहवेयड्ढे एवं जाव गंधिलावइम्मि दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे गंधिल खंडग माणी, वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
गंधिलावई वेसमण, कूडाणं होंति णामाइं ।। ९ ।।

एवं सव्वेसु दीहवेयड्ढेसु दो कूडा सरिसणामगा सेसा ते चेव । जंबू मंदरेणं उत्तरेणं णीलवंते वासहरपव्वए णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे णीलवंत विदेह सीया कित्ती य णारीकांता य ।
अवर विदेहे रम्मगकूडे, उवदंसणे चेव ।। १० ।।

जंबू मंदर उत्तरेणं एरवए दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता तंजहा –

सिद्धे रयणे खंडग माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
एरवए वेसमणे, एरवए कूड णामाइं ।। ११ ।। १०९ ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में भरत दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, भरत, खंदक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, भरत और वैश्रमण, ये भरतकूट के नाम हैं ।। १ ॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में निषध वर्षधर पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, धृति, सीतोदा, अपरविदेह और रुचक । ये निषध पर्वत के कूटों के नाम हैं ।। २ ॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के नन्दनवन में नौ कूट कहे गये हैं यथा - नन्दन, मन्दर, निषध, हेमवय, रजत, रुचक, सागरचित्र, वज्र और बलकूट ।। ३ ॥

इस जम्बूद्वीप के मालवंत वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, मालवंत, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, सीता, पूर्णभद्र और हरिस्सह कूट ।। ४ ॥

जम्बूद्वीप के कच्छ विजय में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, कच्छ, खंदक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, कच्छ और वैश्रमण । ये कच्छ विजय के कूटों के नाम हैं ।। ५ ॥

जम्बूद्वीप के सुकच्छ विजय के दीर्घवैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, सुकच्छ, खंदक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, सुकच्छ और वैश्रमण । ये सुकच्छ विजय के कूटों के नाम हैं ।। ६ ॥

इसी तरह पुष्कलावती विजय के दीर्घ वैताढ्य तक कूटों के नाम जान लेने चाहिए । इसी प्रकार वच्छ विजय के दीर्घ वैताढ्य यावत् मङ्गलावती विजय के दीर्घ वैताढ्य पर्वत तक कूटों के नाम जान लेने चाहिएं ।

जम्बूद्वीप के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, कनक, सौवस्तिक, सीतोदा, सजल और हरिकूट ।। ७ ॥

जम्बूद्वीप के पद्म दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, पद्म, खन्दक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, पद्म और वैश्रमण। ये पद्म पर्वत पर के कूटों के नाम हैं। ८।

इसी तरह सलिलावती विजय के दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर और वप्रावती विजय के दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ नौ कूट हैं । गन्धिलावती विजय के दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, गन्धिल, खन्दक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, गन्धिलावती और वैश्रमण । ये कूटों के नाम हैं ।। ९ ॥

इसी तरह सब दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ नौ कूट हैं जिनमें दो दो के नाम तो उसी पर्वत के समान नाम वाले हैं और शेष सात सात कूटों के नाम ऊपर कहे अनुसार हैं । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में नीलवंत वर्षधर पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, नीलवन्त, विदेह, सीता, कीर्ति, नारीकान्ता, अपरविदेह, रम्यक और उपदर्शन ॥ १०॥

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में एरवत दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं यथा - सिद्ध, रत्न, खन्दक, मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुफा, एरवत और वैश्रमण । ये एरवत के कूटों के नाम हैं ॥ ११ ॥

भ० पार्श्वनाथ का देहमान, भ० महावीर के समय तीर्थंकर गोत्र बांधने वाले जीव

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए वज्जरिसहणाराय संघयणे समचउरंस संठाणसंठिए णव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । समणस्स भगवओ महावीरस्स तित्थंसि णवहिं जीवेहिं तित्थयरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिए तंजहा - सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा, संखेणं, सयएणं सुलसाए सावियाए, रेवईए॥ ११०॥

कठिन शब्दार्थ - **तित्थयरणामगोत्ते** - तीर्थंकर नाम गोत्र, **णिव्वत्तिए** - बांधा था,

भावार्थ - पुरुषादानीय यानी पुरुषों में आदरणीय वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले, समचतुरस्र संस्थान वाले तीर्थङ्कर भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी के शरीर की ऊंचाई नौ हाथ थी । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में नौ जीवों ने तीर्थङ्कर गोत्र बांधा था उनके नाम इस प्रकार हैं - श्रेणिक राजा, सुपार्श्व - भगवान् महावीर के चाचा । उदायी - कोणिक राजा का पुत्र । पोट्टिल अनगार, दृढायु, शंख श्रावक, शतक श्रावक यानी पोखलीश्रावक, सुलसा श्राविका और रेवती गाथापत्नी - भगवान् महावीर स्वामी को औषधि बहराने वाली श्राविका ।

विवेचन - जिस नाम कर्म के उदय से जीव तीर्थंकर रूप में उत्पन्न हो उसे तीर्थंकर गोत्र नामकर्म कहते हैं।

भगवान् महावीर के समय में नौ व्यक्तियों ने तीर्थंकर गोत्र बाँधा था। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. श्रेणिक राजा ।

२. सुपार्श्व - भगवान् महावीर के चाचा।

३. उदायी - कोणिक का पुत्र। कोणिक के बाद उसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाई थी। वह शास्त्रज्ञ और चारित्रवान् गुरु की सेवा किया करता था। आठम चौदस वगैरह पर्वों पर पौषध आदि किया करता था। धर्माराधन में लीन रहता और श्रावक के व्रतों को उत्कृष्ट रूप से पालता था। किसी शत्रुराजा ने उदायी का सिर काट कर लाने वाले के लिए बहुत पारितोषिक देने की घोषणा कर रक्खी थी। साधु के वेश में इस दुष्कर्म को सुसाध्य समझ कर एक अभव्य जीव ने दीक्षा ली। बारह वर्ष तक द्रव्य संयम का पालन किया। दिखावटी विनय आदि से सब लोगों में अपना विश्वास जमा लिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक दिन उदायी राजा ने पौषध किया। रात को उस धूर्त साधु ने छुरी से राजा का सिर काट लिया। उदायी ने शुभ ध्यान करते हुए तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

४. पोट्टिल अनगार - अनुत्तरोववाई सूत्र में पोट्टिल अनगार की कथा आई है। हस्तिनागपुर में भद्रा नाम की सार्थवाही का एक लड़का था। बत्तीस स्त्रियाँ छोड़कर भगवान् महावीर का शिष्य हुआ। एक महीने की संलेखना के बाद सर्वार्थ सिद्ध नामक विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और मोक्ष प्राप्त करेगा।

यहाँ बताया गया है कि वे तीर्थंकर होकर भरत क्षेत्र से ही सिद्धि प्राप्त करेंगे। इससे मालूम होता है ये पोट्टिल अनगार दूसरे हैं।

५. दृढायु - इनका वृत्तान्त प्रसिद्ध नहीं है।

६ - ७ शंख और पोखली (शतक) श्रावक।

चौथे आरे में जिस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भरत क्षेत्र में भव्य प्राणियों को प्रतिबोध दे रहे थे, उस समय श्रावस्ती नाम की एक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नाम का चैत्य था। श्रावस्ती नगरी में शंख आदि बहुत से श्रमणोपासक रहते थे। वे धन धान्य से सम्पन्न थे, विद्या बुद्धि और शक्ति तीनों के कारण सर्वत्र सन्मानित थे। जीव अजीव आदि तत्त्वों के जानकार थे।

शंख श्रावक की उत्पला नाम की भार्या थी। वह बहुत सुन्दर, सुकुमार तथा सुशील थी। नव तत्त्वों को जानती थी। श्रावक के व्रतों को विधिवत् पालती थी। उसी नगरी में पोखली नाम का श्रावक भी रहता था। बुद्धि, धन और शक्ति से सम्पन्न था। सब तरह से अपरिभूत तथा जीवादि तत्त्वों का जानकार था।

एक दिन की बात है, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी के उद्यान में पधारे। सभी नागरिक धर्मकथा सुनने के लिए गए। शंख आदि श्रावक भी गए। उन्होंने भगवान् को वन्दना की, धर्म कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् के पास जाकर वन्दना नमस्कार करके प्रश्न पूछे। इसके बाद परम आनन्दित होते हुए भगवान् को फिर वन्दना की। कोष्ठक नामक चैत्य से निकल कर श्रावस्ती नगरी की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग में शंख ने दूसरे श्रावकों से कहा - देवानुप्रियो ! घर जाकर आहार आदि सामग्री तैयार करो। हम लोग पाक्षिक पौषध ✱ (दया) अङ्गीकार करके धर्म की आराधना करेंगे। सब श्रावकों ने शंख की यह बात मान ली।

✱ आठम चौदस या पक्खी आदि पर्व कहलाते हैं। उन तिथियों पर पन्द्रह पन्द्रह दिन से जो पौषध किया जाय वह पाक्षिक पौषध है। अशनादि चारों प्रकार का आहार करते हुए जो पौषध किया जाए उसको दया कहते हैं। छह कायों की दया पालते हुए सब प्रकार के सावद्य व्यापार का एक करण एक योग या दो करण तीन योग से त्याग करना दया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद शंख ने मन में सोचा – 'अशनादि का आहार करते हुए पाक्षिक पौषध का आराधन करना मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है। मुझे तो अपनी पौषधशाला में मणि और सुवर्ण का त्याग करके, माला, उद्वर्तन (मसी आदि लगाना) और विलेपन आदि छोड़कर शस्त्र और मूसल आदि का त्याग कर, दर्भ का संथारा (बिस्तर) बिछाकर, अकेले बिना किसी दूसरे की सहायता के पौषध की आराधना करनी चाहिए।' यह सोच कर वह घर आया और अपनी स्त्री के सामने अपने विचार प्रकट किये। फिर पौषधशाला में जाकर विधिपूर्वक पौषध ग्रहण करके बैठ गया।

दूसरे श्रावकों ने अपने अपने घर जाकर अशन आदि तैयार कराए। एक दूसरे को बुलाकर कहने लगे – हे देवानुप्रियो ! हमने पर्याप्त अशनादि तैयार करवा लिये हैं, किन्तु शंखजी श्रावक अभी तक नहीं आए। इसलिए उन्हें बुला लेना चाहिये।

इस पर पोखली श्रमणोपासक बोला – 'देवानुप्रियो ! आप लोग चिन्ता मत कीजिए। मैं स्वयं जाकर शंखजी श्रावक को बुला लाता हूँ' यह कह कर वह वहाँ से निकला और श्रावस्ती के बीच से होता हुआ शंख श्रमणोपासक के घर जाने लगा।

अपने घर की ओर आते हुए पोखली श्रमणोपासक को देखकर उत्पला श्रमणोपासिका बहुत प्रसन्न हुई। अपने आसन से उठकर सात आठ कदम उनके सामने गई। पोखली श्रावक को वन्दना नमस्कार किया। उन्हें आसन पर बैठने के लिये उपनिमन्त्रित किया। श्रावक के बैठ जाने पर उसने विनय पूर्वक कहा – हे देवानुप्रिय ! कहिए ! आपके पधारने का क्या प्रयोजन है ? पोखली श्रावक ने पूछा – देवानुप्रिये ! शंख श्रमणोपासक कहाँ हैं ? उत्पला ने उत्तर दिया – शंख श्रमणोपासक तो पौषधशाला में पौषध करके ब्रह्मचर्य आदि व्रत ले कर धर्म का आराधन कर रहे हैं।

पोखली श्रमणोपासक पौषधशाला में शंख के पास आए। वहाँ आकर गमनागमन (ईर्यावहि) का प्रतिक्रमण किया। इसके बाद शंख श्रमणोपासक को वन्दना नमस्कार करके बोला, हे देवानुप्रिय ! आपने जैसा कहा था, पर्याप्त अशन आदि तैयार करवा लिये गए हैं। हे देवानुप्रिय ! आइये ! वहाँ चलें और आहार करके पाक्षिक पौषध की आराधना तथा धर्म जागृति करें। इसके बाद शंख ने पोखली से कहा – हे देवानुप्रिय ! मैंने पौषधशाला में पौषध ले लिया है। अतः मुझे अशनादि का सेवन करना नहीं कल्पता। मुझे तो विधिपूर्वक पौषध का पालन करना चाहिए। आप लोग अपनी इच्छानुसार उस विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम चारों प्रकार के आहार का सेवन करते हुए धर्म की जागरणा कीजिए।

इसके बाद पोखली पौषधशाला से बाहर निकला। नगरी के बीच से होता हुआ श्रावकों के पास आया। उसने कहा – हे देवानुप्रियो ! शंखजी श्रावक तो पौषधशाला में पौषध लेकर धर्म की आराधना कर रहे हैं। वे अशन आदि का सेवन नहीं करेंगे। इसलिए आप लोग यथेच्छ आहार करते हुए धर्म की आराधना कीजिए। श्रावकों ने वैसा ही किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी रात्रि के मध्यभाग में धर्मजागरणा करते हुए शंख के मन में यह बात आई कि मुझे सुबह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके लौटकर पौषध पारना चाहिए। यह सोचकर वह सुबह होते ही पौषधशाला से निकला। शुद्ध, बाहर जाने के योग्य मांगलिक वस्त्रों को अच्छी तरह पहिन कर घर से बाहर आया। श्रावस्ती के बीच से होता हुआ पैदल कोष्ठक चैत्य में भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् को वन्दना की। नमस्कार किया। पर्युपासना (सेवाभक्ति) करके एक स्थान पर बैठ गया।

भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक ५ में निम्न लिखित पाँच अभिगम बताये गए हैं। धर्मस्थान में पहुँचने पर इनका पालन करके फिर वन्दना नमस्कार करना चाहिए।

१. अपने पास अगर कोई सचित्त वस्तु हो तो उसे अलग रख दे। २. अचित्त वस्तु अर्थात् वस्त्र आदि को समेट कर चले। ३. बीच में बिना सिले हुए दुप्पट्टे का उत्तरासंग करे। ४. साधु साध्वी को देखते ही दोनों हाथ जोड़ कर ललाट पर रख ले। ५. मन को एकाग्र करे।

शंख श्रावक पौषध में आए थे। उनके पास सचित्तादि वस्तुएं नहीं थी। इसलिए उन्होंने सचित्त त्याग रूप अभिगम नहीं किया।

दूसरे श्रावक भी सुबह स्नानादि के बाद शरीर को अलंकृत करके घर से बाहर निकले। सब एक जगह इकट्ठे हुए। नगर के बीच से होते हुए कोष्ठक नामक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सेवा में पहुँचे। वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने धर्म का उपदेश दिया। वे सब श्रावक धर्मकथा सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ से उठ कर भगवान् को वन्दन नमस्कार किया। फिर शंख के पास आकर कहने लगे - 'हे देवानुप्रिय ! कल आपने हमें कहा था, पुष्कल आहार आदि तैयार कराओ। फिर हम लोग पाक्षिक पौषध का आराधन करेंगे। इसके बाद आप पौषधशाला में पौषध लेकर बैठ गए। इस प्रकार आपने हमारी अच्छी हीलना (हाँसी) की।'

इस पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रावकों को कहा - 'हे आर्यो ! आप लोग शंख श्रावक की हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हना या अवमानना मत करो, क्योंकि शंख श्रमणोपासक प्रियधर्मा और दृढ़धर्मा है। इसने प्रमाद और निद्रा का त्याग करके ज्ञानी की तरह सुदक्खुजागरिया (सुदृष्टि जागरिका) का आराधन किया है।

गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने बताया जागरिकाएं तीन हैं। उनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार हैं -

१. बुद्ध जागरिका - केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवान् बुद्ध कहलाते हैं। उनकी प्रमाद रहित अवस्था को बुद्धजागरिका कहते हैं।

२. अबुद्ध जागरिका-जो अनगार ईर्यादि पाँच समिति, तीन गुप्ति तथा पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं, वे सर्वज्ञ न होने के कारण अबुद्ध कहलाते हैं। उनकी जागरणा को अबुद्ध जागरिका कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. सुदक्खु जागरिया (सुदृष्टिजागरिका) - जीव, अजीव आदि तत्त्वों के जानकार श्रमणोपासक सुदृष्टि (सुदर्शन) जागरिका किया करते हैं।

इसके बाद शंख श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से क्रोध आदि चारों कषायों के फल पूछे। भगवान् ने फरमाया - क्रोध करने से जीव लम्बे काल के लिए अशुभ गति का बन्ध करता है। कठोर तथा चिकने कर्म बांधता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभ से भी भयंकर दुर्गति का बन्ध होता है। भगवान् से क्रोध के तीव्र तथा कटुफल को जानकर सभी श्रावक कर्मबन्ध से डरते हुए संसार से उद्विग्न होते हुए शंखजी के पास आए। बार बार उनसे क्षमा मांगी। इस प्रकार खमत खामणा करके वे सब अपने अपने घर चले गए।

श्री गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने फरमाया - शंख श्रावक मेरे पास चारित्र अंगीकार नहीं करेगा। वह बहुत वर्षों तक श्रावक के व्रतों का पालन करेगा। शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, पौषध, उपवास आदि विविध तपस्याओं को करता हुआ अपनी आत्मा को निर्मल बनाएगा। अन्त में एक मास का संथारा करके सौधर्म कल्प में चार पल्योपम की स्थिति वाला देव होगा।

यह शंख श्रावक और पुष्कली श्रावक तो महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जाएंगे। इसलिए तीर्थंकर गोत्र बांधने वाले शंख और पुष्कली कोई दूसरे हैं। (भगवती श० १२ उ० १)

८. सुलसा - प्रसेनजित राजा के नाग नामक सारथि की पत्नी। इसका चरित्र नीचे लिखे अनुसार है - एक दिन सुलसा का पति पुत्रप्राप्ति के लिए इन्द्र की आराधना कर रहा था। सुलसा ने यह देख कर कहा - दूसरा विवाह करलो। सारथि ने, 'मुझे तुम्हारा पुत्र ही चाहिए' यह कह कर उसकी बात अस्वीकार कर दी।

एक दिन स्वर्ग में इन्द्र द्वारा सुलसा के दृढ़ सम्यक्त्व की प्रशंसा सुन कर एक देव ने परीक्षा लेने की ठानी। साधु का रूप बना कर सुलसा के घर आया। सुलसा ने कहा - 'पधारिये महाराज ! क्या आज्ञा है ?' देव बोला - 'तुम्हारे घर में लक्षपाक तेल है। मुझे किसी वैद्य ने बताया है, उसे दे दो।' 'लाती हूँ' यह कह कर वह कोठार में गई। जैसे ही वह तेल को उतारने लगी देव ने अपने प्रभाव से बोतल (भाजन) फोड़ डाली। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बोतल भी फोड डाली। सुलसा वैसे ही शान्तचित्त खड़ी रही। देव उसकी दृढ़ता को देख कर प्रसन्न हुआ। उसने सुलसा को बत्तीस गोलियाँ दी और कहा - एक एक खाने से तुम्हारे बत्तीस पुत्र होंगे। कोई दूसरा काम पड़े तो मुझे अवश्य याद करना। मैं उपस्थित हो जाऊँगा। यह कह कर वह चला गया।

'इन सभी से मुझे एक ही पुत्र हो' यह सोच कर उसने सभी गोलियाँ एक साथ खाली। उसके पेट में बत्तीस पुत्र आगये और कष्ट होने लगा। देव का ध्यान किया। देव ने उन पुत्रों को लक्षण के रूप में बदल दिया। यथासमय सुलसा के बत्तीस लक्षणों वाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी आचार्य का मत है कि ३२ पुत्र उत्पन्न हुए थे।

९. रेवती – श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को औषध देने वाली।

विहार करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एक बार मेढिक नाम के गाँव में आए। वहाँ उन्हें पित्तज्वर हो गया। सारा शरीर जलने लगा। आव पड़ने लगे। लोग कहने लगे, गोशालक ने अपने तप के तेज से श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शरीर जला डाला। छह महीने के अन्दर इनका देहान्त हो जायगा। वहीं पर सिंह नाम का मुनि रहता था। आतापना के बाद वह सोचने लगा, मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को ज्वर हो रहा है। दूसरे लोग कहेंगे, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को गोशालक ने अपने तेज से अभिभूत कर दिया। इसलिए आयु पूरी होने के पहले ही काल कर गए। इस प्रकार की भावना से उसके हृदय में दुःख हुआ। एक वन में जाकर जोर जोर से रोने लगा। भगवान् ने दूसरे स्थविरों के द्वारा उसे बुलाकर कहा – 'सिंह ! तुमने जो कल्पना की है वह नहीं होगी। मैं कुछ कम सोलह वर्ष की कैवल्य पर्याय को पूरा करूँगा।'

नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी (गृहपत्नी) ने दो पाक तैयार किए हैं। उनमें कूष्माण्ड अर्थात् कोहलापाक मेरे लिए तैयार किया है। उसे मत लाना। वह अकल्पनीय है। दूसरा बिजौरा पाक घोड़ों की वायु दूर करने के लिए तैयार किया है। उसे ले आओ।

रेवती ने बहुमान के साथ आत्मा को कृतार्थ समझते हुए बिजौरा पाक मुनि को बहरा दिया। मुनि ने लाकर भगवान् को दिया। उसके खाने से रोग दूर हो गया। सभी मुनि तथा देव प्रसन्न हुए। रेवती ने तीर्थंकर गोत्र बाँधा।

चतुर्याम धर्म के प्ररूपक (भावी तीर्थंकर)

एस णं अज्जो ! कण्हे वासुदेवे, रामे बलदेवे, उदए पेढालपुत्ते, पोट्टिले सयए गाहावई, दारुए णियंठे, सच्चई णियंठीपुत्ते, सावियबुद्धे अंबडे परिव्वायए अज्जा वि णं सुपासा पासावच्चिज्जा आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवइत्ता सिज्झिहिंति जाव अंतं काहिंति॥ १११ ॥

कठिन शब्दार्थ – **चाउज्जामं** – चतुर्याम धर्म को, **पण्णवइत्ता** – प्ररूपणा करके, **सावियबुद्धे** – श्राविका द्वारा प्रतिबोधित, **परिव्वायए** – परिव्राजक।

भावार्थ – श्रमण भगवान् महावीर स्वामी साधुओं को सम्बोधित करके फरमाते हैं कि हे आर्यो! आगामी उत्सर्पिणी में ये नौ जीव चतुर्याम - चार महाव्रत धर्म की प्ररूपणा करके सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे । उनके नाम इस प्रकार हैं – कृष्णवासुदेव, राम बलदेव, उदक पेढालपुत्र, पोट्टिल, शतक गाथापति, दारुक निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थीपुत्र सत्यकि, सुलसा श्राविका से प्रतिबोध पाया हुआ अम्बड़ परिव्राजक । और भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की शिष्यानुशिष्या सुपार्श्वा आर्या ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महापद्म चरित्र

एस णं अज्जो ! सेणिए राया भिंभिसारे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए णरए चउरासीइवाससहस्स ठिइयंसि णिरयंसि णेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । से णं तत्थ णेरइए भविस्सइ काले कालोभासे जाव परमकिण्हे वण्णेणं, से णं तत्थ वेयणं वेइहिइ उज्जलं जाव दुरहियासं । से णं तओ णरगाओ उव्वट्टित्ता आगमीस्साए उस्सप्पिणीए इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्डगिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे णंयरे सम्मुइस्स कुलगरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुमत्ताए पच्चायाहिइ । तएणं सा भद्दा भारिया णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमाल पाणिपायं अहीणपडिपुण्ण पंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणं जाव सुरूवं दारगं पयाहिइ । जं रयणिं च णं से दारए पयाहिइ तं रयणिं च णं सयदुवारे णयरे । सब्भिंतरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिइ । तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वइक्कंते जाव बारसाहे दिवसे अयमेवारूवं गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधिज्जं काहिंति जम्हा णं अम्हं इमंस्सि दारगंति जायंसि समाणंसि सयदुवारे णयरे सब्भिंतर बाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वुट्ठे तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स णाम धिज्जं महापउमे । तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधिज्जं काहिंति महापउमे त्ति । तएणं महापउमं दारगं अम्मापियरो साइरेगं अट्ठवासजायगं जाणित्ता महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिहिंति । से णं तत्थ राया भविस्सइ महया हिमवंत महंतमलयमंदररायवण्णओ जाव रज्जं पसाहेमाणे विहरिस्सइ ।

तएणं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णया कयाइ दो देवा महिड्डिया जाव महेसक्खा सेणाकम्मं काहिंति तंजहा - पुण्णभद्दे मणिभद्दे । तएणं सयदुवारे णयरे बहवे राइसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठि सेणावइ सत्थवाहप्पभिइओ अण्णमण्णं सद्दाविहिंति एवं वइस्संति जम्हा णं देवाणुप्पिया ! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्डिया जाव महेसक्खा सेणाकम्मं करेंति तंजहा - पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया ! महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि णामधिज्जे देवसेणे । तएणं तस्स महापउमस्स दोच्चेवि णामधिज्जे भविस्सइ देवसेणे त्ति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तएणं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाइ सेयसंखतल विमलसण्णिगासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिइ। तएणं से देवसेणे राया तं सेयं संखतल-विमलसण्णिगासं चउद्दंतं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे सयदुवारं णयरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं अभिक्खणं अइज्जाहि य णिज्जाहि य । तएणं सयदुवारे णयरे बहवे राइसरतलवर जाव अण्णमण्णं सद्दाविहिंति एवं वइस्संति जम्हा णं देवाणुप्पिया अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेए संखतलविमल सण्णिगासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पण्णे, तं होउ णं अम्हं देवाणुप्पिया ! देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि णामधिज्जे विमलवाहणे । तएणं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि णामधिज्जे भविस्सइ विमलवाहणे ।

तएणं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरेहिं अब्भणुण्णाए समाणे उउम्मि सरए संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंतिएहिं जीय कप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं धण्णाहिं सिवाहिं मंगलाहिं सस्सिरीआहिं वग्गूहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिथुवमाणे संबोहणाहिं संबोहिए य बहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसं आयाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिइ ।

तस्स णं भगवंतस्स साइरेगाइं दुवालसवासाइं णिच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे । से णं भगवं जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता जाव पव्वयाहिइ तं चेव दिवसं अयमेवारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिइ – जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा – दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिया वा ते उप्पण्णे सम्मं सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहियासिस्सइ। तएणं से भगवं ईरियासमिए भासासमिए जाव गुत्तबंभयारी अममे अकिंचणे छिण्णगंथे णिरुवलेवे कंसपाईव मुक्कतोए जहा भावणाए जाव सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते।

कंसे संखे जीवे गगणे वाए य सारए सलिले ।
पुक्खरपत्ते कुम्मे विहगे खग्गे य भारंडे ॥ १ ॥
कुंजर वसहे सीहे, णगराया चेव सागरमखोभे ।
चंदे सूरे कणगे वसुंधरा चेव सुहुय हुए ॥ २ ॥

णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे भवइ । से य पडिबंधे चउव्विहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते तंजहा – अंडए वा, पोयए वा, उग्गहेइ वा, पग्गहिएइ वा, जं णं जं णं दिसं इच्छइ तं णं तं णं दिसं अपडिबद्धे सुचिभूए लहुभूए अप्पगंथे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेभाणे विहरिस्सइ, तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं णाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुवचरिएणं एवं आलएणं विहारेणं अज्जवे मद्दवे लाघवे खंती मुत्ती गुत्ती सच्च संजम तवगुण सुचरियसोवचिय फल परिणिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स झाणंतरिया वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिंति, तएणं से भगवं अरहा जिणे भविस्सइ, केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स परियागं जाणइ पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चयणं उववायं तक्कं मणोमाणसियं भुत्तं कडं परिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं मणसवयसकाइए जोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ ।

तएणं से भगवं तेणं अणुत्तरेणं केवल वरणाणदंसणेणं सदेवमणुयासुरलोगं अभिसमिच्चा समणाणं णिग्गंथाणं ॐ पंच महव्वयाइं सभावणाइं छच्च जीवणिकायधम्मं देसमाणे विहरिस्सइ । से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं एगे आरंभठाणे पण्णत्ते, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं एगं आरंभठाणं पण्णविहिइ । से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं दुविहे बंधणे पण्णत्ते तंजहा – पेज्जबंधणे दोसबंधणे, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं दुविहं बंधणं पण्णविहिइ तंजहा – पेज्जबंधणं च दोसबंधणं च । से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडा पण्णत्ता तंजहा – मणदंडे वयदंडे कायदंडे, एवामेव महापउमे वि समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडा

ॐ किसी किसी प्रति में यहाँ पर इतना पाठ अधिक है – 'जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा – दिव्वा वा मणुस्सा वा तिरिक्ख जोणिया वा ते उप्पण्णे सम्मं सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहियासिस्सइ । तएणं से भगवं अणगारे भविस्सइ ईरियासमिए भासासमिए एवं जहा वद्धमाणसामी तं चेव णिरवसेसं जाव अव्वावार विउसजोगजुत्ते, तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसेहिं संवच्छरेहिं वीइक्कंतेहिं तेरसेहिं य पक्खेहिं तेरसमस्स णं संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेणं णाणेणं जहा भावणाए केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिंति जिणे भविस्सइ केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइए जाव ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णविहिइ तंजहा - मणदंडे वयदंडे कायदंडे । से जहा णामए एएणं अभिलावेणं चत्तारि कसाया पण्णत्ता तंजहा - कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए। पंच कामगुणे पण्णत्ते तंजहा - सद्दे रूवे रसे गंधे फासे । छज्जीवणिकाया पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया जाव तसकाइया, एवामेव जाव तसकाइया । से जहा णामए एएणं अभिलावेणं सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणा पण्णविहिइ । एवं अट्ठ भयट्ठाणे, णव बंभचेरगुत्तीओ दसविहे समणधम्मे एवं जाव तेत्तीसं आसायणा उ त्ति।

से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावे मुंडभावे अण्हाणए अदंतवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे जाव लद्धावलद्धवित्तीउ पण्णत्ताओ एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावे जाव लद्धावलद्ध वित्ती पण्णविहिइ । से जहा णामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं आहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मीसज्जाए इ वा अज्झोयरए इ वा, पूइए, कीए, पामिच्चे, अच्छिज्जे, अणिसिट्ठे, अभिहडे इ वा, कंतारभत्तेइ वा, दुब्भिक्खभत्ते, गिलाणभत्ते, वद्दलियाभत्ते इ वा, कंदभोयणे इ वा, फलभोयणे इ वा, बीयभोयणे इ वा, हरियभोयणे इ वा, पडिसिद्धे, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं आहाकम्मियं वा जाव हरियभोयणं वा पडिसेहिस्सइ । से जहा णामए अज्जो !

मए समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वइए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंच महव्वइयं जाव अचेलगं धम्मं पण्णविहिइ । से जहा णामए अज्जो ! मए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए दुवालसविहे सावयधम्मे पण्णत्ते एवामेव महापउमे वि अरहा पंचाणुव्वइयं जाव सावयधम्मं पण्णविस्सइ । से जहा णामए अज्जो !

मए समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जायरपिंडे इ वा, रायपिंडे इ वा, पडिसिद्धे, एवामेव महापउमे वि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जायरपिंडे इ वा, रायपिंडे इ वा पडिसेहिस्सइ। से जहा णामए अज्जो ! मम णव गणा एगारस गणहरा, एवामेव महापउमस्स वि अरहओ णव गणा एगारस गणहरा भविस्संति। जहाणामए अज्जो !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता तेरसेहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बावत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालित्ता सिज्झिस्सं जाव सव्वदुक्खाण मंतं करेस्सं। एवामेव महापउमे वि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता जाव पव्विहिइ, दुवालस संवच्छराइं, जाव बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालित्ता सिज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

जं सीलमायारो अरहा तित्थयरो महावीरो ।

तस्सीलसमायारो होइ उ अरहा महापउमे ॥ १ ॥ ११२॥

कठिन शब्दार्थ - कालोभासे - काली प्रभा वाला, **दुरहियासं** - दुःसह, **वेयड्ढगिरिपायमूले** - वैताढ्य पर्वत के पास में, **सुकुमालपाणिपायं** - सुकोमल हाथ पैर वाले, **भारग्गसो** - भार प्रमाण, **कुंभग्गसो** - कुम्भ प्रमाण, **गोण्णं** - गुण संयुक्त, **गुणणिप्फण्णं** - गुण निष्पन्न, **महेसक्खा** - महान् ऐश्वर्य वाले, **राइसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसेट्ठिसेणावइसत्थवाहप्पभिइओ** - राजा, युवराज, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि, **सद्दाविहिंति** - सम्बोधित करेंगे, **सेयसंखतलविमलसण्णिगासे** - निर्मल शंख के समान सफेद, **अइज्जाहि** - आवेगा, **णिज्जाहि** - जावेगा, **गुरुमहत्तरेहिं** - बड़े पुरुषों की, **जीयकप्पिएहिं** - जीतकल्प वालों से, **सस्सिरीआहिं** - शोभनीयों से, **वग्गुहिं** - वचनों से, **अभिणंदिज्जमाणे** - अभिनंदन किये जाते हुवें, **अभिथुव्वमाणे** - स्तुति किये जाते हुवें, **छिण्णगंथे** - छिन्नग्रंथ-बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से रहित, **णिरुवलेवे** - निरुपलेप, **कंसपाईव** - कांस्यपात्री की तरह, **मुक्कतोए** - स्नेह रहित, **सुहुयहुयासणे** - भली प्रकार घृतादि की आहुति दी हुई अग्नि, **उग्गहेइ** - औपग्रहिक, **पग्गहिएइ** - प्रग्रहिक, **पडिबंधे** - प्रतिबन्ध, **सुचिभूए** - शुचिभूत-शुद्ध भावपूर्वक, **अप्पगंथे** - परिग्रह से रहित, **तवगुणसुचरियसोवचियफलपरिणिव्वाणमग्गेणं**- तप, गुण, सुचरित्र, शौच आदि मोक्षदायक गुणों से।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अपने साधुओं को सम्बोधित करके फरमाते हैं कि - हे आर्यो ! यह श्रेणिक राजा जिसका दूसरा नाम ❖ भिंभिसार है, जिसने इस भव में तीर्थङ्करगोत्र उपार्जन किया है, वह काल के समय काल करके यानी यहाँ की आयु पूरी करके इस रत्नप्रभा नामक पहली नरक के श्रीमन्तक नामक नरकावास में चौरासी हजार की स्थिति वाला नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा ।

❖ श्रेणिक राजा ने बचपन में घर से भिंभि यानी जयढक्का - डमरू निकाली थी । इसलिए पिता ने उसको भिंभिसार कह कर पुकारा था । इसलिए श्रेणिक राजा के नाम के पीछे भिंभिसार विशेष लगता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ उस नैरयिक के शरीर का वर्ण काला काली प्रभावाला यावत् अत्यन्त काला होगा । वहाँ वह अत्यन्त उज्ज्वल यावत् दुःसह वेदना को वेदेगा । वह श्रेणिक राजा का जीव उस नरक से निकल कर आगामी उत्सर्पिणी काल में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत के पास में पुण्ड देश के शतद्वार नगर में समुचि कुलकर की भद्रा भार्या की कुक्षि में पुरुष रूप से पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । तत्पश्चात् वह भद्रा भार्या पूरे नौ महीने और साढे सात रात दिन व्यतीत होने पर सुकोमल हाथ पैर वाले परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों वाले लक्षण और व्यञ्जनों से युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म देगी । जिस ○ रात्रि में उस बालक का जन्म होगा उसी रात्रि में शतद्वार नगर के बाहर और अन्दर सब जगह भारप्रमाण ✳ और कुम्भप्रमाण पद्म यानी कमलों की वर्षा और रत्नों की वर्षा होगी ।

साठ आढक का एक कुम्भ होता है । उस कुम्भ प्रमाण अर्थात् घटप्रमाण ।

तत्पश्चात् ग्यारह दिन बीत जाने पर बारहवें दिन उस बालक के मातापिता इस प्रकार का गुण संयुक्त गुण निष्पन्न नाम रखने का विचार करेंगे कि - चूंकि हमारे इस पुत्र के उत्पन्न होने पर शतद्वार नगर के भीतर और बाहर सब जगह भार प्रमाण और कुम्भप्रमाण कमलों की और रत्नों की वर्षा हुई थी। इसलिए हमारे इस पुत्र का नाम महापद्म रखना ठीक है। ऐसा विचार करके उस बालक के माता-पिता उस बालक का 'महापद्म' नाम रखेंगे। तत्पश्चात् उसके माता-पिता महापद्म कुमार को आठ वर्ष से अधिक हुआ जान कर महान् ठाठपाट से उसका राज्याभिषेक करेंगे । तब वह राजा होगा। तब वह महान् राजा होकर राज्य करेगा। तत्पश्चात् किसी एक समय महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्य वाले पूर्णभद्र और माणिभद्र ये दो देव उस महापद्म राजा के सेना का कार्य करेंगे। तब शतद्वार नगर में बहुत से राजा, युवराज, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि परस्पर एक दूसरे को सम्बोधित करके इस प्रकार कहेंगे कि-हे देवानुप्रियो! महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्य वाले पूर्णभद्र और माणिभद्र ये दो देव हमारे महापद्म राजा के सेना का कार्य करते हैं। इसलिए हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन होवे। तब उस महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन होगा। तब किसी समय उस देवसेन राजा के यहाँ निर्मल शंख के समान सफेद चार दांत वाला हस्तीरत्न यानी एक श्रेष्ठ हाथी उत्पन्न होगा। तब वह देवसेन राजा निर्मल शंख के समान सफेद चार दांत वाले उस हाथी पर चढ़ कर शतद्वार नगर के बीच में बारम्बार आवेगा और जावेगा । तब शतद्वार नगर में बहुत से राजा, युवराज, कोटवाल, सेठ, सेनापति आदि परस्पर एक दूसरे को सम्बोधित करके इस प्रकार कहेंगे कि - हे देवानुप्रियो! हमारे देवसेन राजा

○ तीर्थङ्करों का जन्म आधी रात के समय हुआ करता है । इसलिए यहाँ रजनी (रात्रि) शब्द दिया है ।

✳ दो हजार पल का एक भार होता है अथवा पुरुष के द्वारा जितना बोझ आसानी से उठाया जा सकता है उतने बोझ को एक भार कहते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के यहाँ निर्मल शंख के समान सफेद चार दांत वाला हस्तिरत्न उत्पन्न हुआ है। इसलिए हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन होवे । तब देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन होगा । तब वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष तक गृहस्थवास में रह कर माता-पिता के देवलोक चले जाने पर बड़े पुरुषों की आज्ञा लेकर शरद ऋतु में प्रधान मोक्ष मार्ग में संबुद्ध होंगे यानी दीक्षा लेने का विचार करेंगे । तब वें बारह महीने तक वर्षीदान देंगे। वर्षीदान की समाप्ति पर ◆ जीतकल्प वाले लोकान्तिक देव इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, उदार, कल्याणकारी, धन्य, निरुपद्रवकारी मङ्गलकारी, शोभनीय वचनों से प्रशंसा करते हुए एवं स्तुति करते हुए सम्बोधित करेंगे । यानी दीक्षा लेने की प्रार्थना करेंगे । तब वे महापद्म शतद्वार नगर के बाहर सुभूमिभाग उदयान में एक देवदूष्य वस्त्र लेकर मुण्डित होकर गृहस्थवास को छोड़ कर दीक्षा लेंगे। वे भगवान् बारह वर्ष और साढ़े छह महीने तक शरीर पर किञ्चिन्मात्र ममत्व न रखते हुए परीषह उपसर्गादि को सहन करेंगे। वे भगवान् जिस दिन मुण्डित होकर दीक्षा लेंगे। उसी दिन ऐसा अभिग्रह धारण करेंगे कि देवता सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यञ्च सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होंगे उन सब को समभाव पूर्वक सहन करूँगा, खमूँगा अर्थात् क्रोध नहीं करूँगा, अदीन भाव से सहन करूँगा और विचलित न होते हुए सहन करूँगा ।

तत्पश्चात् वे भगवान् ईर्यासमिति युक्त भाषा समिति युक्त यावत् इन्द्रियों का गोपन करने वाले ब्रह्मचारी ममत्वभाव रहित अकिञ्चन बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित निरुपलेप कांस्यपात्री के समान स्नेह रहित यावत् भली प्रकार घृतादि की आहुति दी हुई अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान होंगे । इस प्रकार श्री आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का जैसा वर्णन किया है वैसा सारा अधिकार यहाँ कह देना चाहिए । अब दो गाथाओं द्वारा भगवान् के गुणों का वर्णन किया जाता है -

कांस्यपात्र के समान निरुपलेप, शंख के समान निर्मल, जीव के समान अप्रतिहत गति वाले, आकाश के समान निरावलम्बन, वायु के समान अप्रतिबद्ध, शरद ऋतु के जल के समान निर्मल मन वाले, कमल पत्र के समान निरुपलेप, कच्छुए के समान गुप्तेन्द्रिय, पक्षी के समान अनियतवास वाले, खड्ग यानी गैंडे के सींग की तरह अकेला यानी रागद्वेष रहित, भारण्ड पक्षी के समान अप्रमादी, हाथी के समान शूरवीर, वृषभ के समान धीर, सिंह के समान साहसिक यानी परीषह उपसर्गों से पराजित न

◆ सब तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं इसलिए उनको किसी के बोध की आवश्यकता नहीं रहती है। वर्षीदान देने के बाद "अब मैं दीक्षा अंगीकार करूँ" ऐसा विचार करने पर लोकान्तिक देव अपना जीत कल्प (परम्परागत व्यवहार-रीति) पूरा करने के लिए तीर्थंकर भगवान् की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन करते हैं कि - "हे भगवन् अब आप धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करें अर्थात् धर्म तीर्थ प्रवरतावें"।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले, मेरु पर्वत के समान स्थिर यानी अनुकूल प्रतिकूल परीषहों से विचलित न होने वाले, सागर के समान गम्भीर, चन्द्रमा के समान शीतल, सूर्य के समान तेजस्वी, सोने के समान निर्मल, पृथ्वी के समान समभावी और भली प्रकार घृतादि की आहुति दी हुई अग्नि के समान तपतेज से जाज्वल्यमान होंगे ॥ १-२ ॥

उन महापद्म तीर्थङ्कर भगवान् को अण्डज, पोतज, औपग्रहिक और प्रग्रहिक इन चार प्रकार के प्रतिबन्धों में से कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होगा। इसलिए वे जिस जिस दिशा में जाने की इच्छा करेंगे। उस उस दिशा में प्रतिबन्ध रहित शुद्ध भाव पूर्वक लघुभूत बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित होकर संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरेंगे। इस प्रकार प्रधान ज्ञान प्रधान दर्शन ग्रामादि में एक रात्रि ठहर कर विहार करने रूप प्रधान चारित्र से तथा आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षान्ति-क्षमा, मुक्ति-त्याग, गुप्ति, सत्य, संयम, तप, गुण, सुचरित्र, शौच आदि मोक्षदायक गुणों से अपनी आत्मा को भावित करते हुए उन महापद्म तीर्थङ्कर भगवान् को शुक्लध्यान के तीसरे पाये में चढ़ने पर अनन्त अनुत्तर यावत् निराबाध केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न होंगे। तब वे भगवान् अरिहंत जिन होंगे। वे केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् देव, मनुष्य और असुर रूप सम्पूर्ण लोक की समस्त पर्यायों को जानेंगे और देखेंगे। सम्पूर्ण लोक में सब जीवों की गति आगति स्थिति च्यवन-मरण, उपपात-जन्म, तर्क-विचार, मनोगत भाव भुक्त - खाया हुआ, कृत-किया हुआ, परिसेवित-आचरण किया हुआ, प्रकट कार्य गुप्त कार्य, इन सब को तथा सम्पूर्ण लोक में रहे हुए सब जीवों के उस उस काल में होने वाले मन, वचन, और काया इन तीनों योगों सम्बन्धी सब भावों को जानते हुए और देखते हुए वे अरिहन्त भगवान् विचरेंगे। तब वे भगवान् उस प्रधान केवलज्ञान केवलदर्शन से देव, मनुष्य और असुरों सहित परिषदा को जान कर श्रमण निर्ग्रन्थों पच्चीस भावना सहित पांच महाव्रत छह जीव निकाय की रक्षा रूप धर्म का उपदेश देते हुए विचरेंगे।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों को एक आरम्भस्थान, राग और द्वेष यह दो प्रकार का बन्धन, मन दण्ड, वचन दण्ड, काया दण्ड ये तीन दण्ड, क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय, शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श ये पांच कामगुण, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय, ये छह जीव निकाय, सात भय, आठ मद, नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति, दस प्रकार का श्रमण धर्म यावत् तेतीस आशातना मैंने कहीं हैं । उसी तरह महापद्म तीर्थङ्कर भगवान् भी एक आरम्भ स्थान राग, द्वेष ये दो बन्धन, मन, वचन, काया ये तीन दण्ड, क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, शब्द रूप रस गन्ध, स्पर्श ये पांच कामगुण, पृथ्वीकाया यावत् त्रसकाया ये छह जीव निकाय, सात भय, आठ मद, नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ, दस प्रकार का श्रमण धर्म यावत् तेतीस आशातना की प्ररूपणा करेंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे आर्यो ! जैसे मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नग्न भाव, मुण्डित होना, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्रधारण न करना पगरखी नहीं पहनना, भूमि शय्या – भूमि पर सोना, फलकशय्या-पाटिये पर सोना, काष्ठशय्या – काठ पर सोना, केशलोच, ब्रह्मचर्य पालन, परगृहप्रवेश – भिक्षा के लिए गृहस्थों के घर जाना यावत् आहारादि के मिलने पर अथवा आहारादि के न मिलने पर संतोष रखना, इत्यादि बातें कही हैं । इसी तरह महापद्म तीर्थङ्कर भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव यावत् प्राप्त अप्राप्त आहारादि में सन्तोष रखना आदि की प्ररूपणा करेंगे । हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए आधाकर्म, औद्देशिक, मिश्र – अपने लिए और साधु के लिए शामिल बनाया हुआ, अध्यवपूरक – अपने लिए बनते हुए भोजन में साधुओं का आगमन सुन कर उनके निमित्त से और मिला देना, पूतिकर्म – शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश मिल जाना, क्रीत-साधु के लिए मोल लिया हुआ । प्रामित्य – साधु के लिए उधार लिया हुआ । आच्छेद्य – निर्बल व्यक्ति से या अपने आश्रित रहने वाले नौकर चाकर और पुत्रादि से छीन कर साधुजी को देना, अनिसृष्ट – किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा के बिना देना, अभिहृत – साधु के लिए गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ आहारादि, कान्तारभक्त – जंगल में साधु के लिए बना कर दिया जाने वाला आहारादि, दुर्भिक्षभक्त – दुर्भिक्ष के समय साधु के लिए बना कर देना, ग्लान भक्त – अपने रोग की शान्ति के लिए साधु को दान देना अथवा बीमार साधु के निमित्त आहारादि बना कर देना । वर्षा के समय भिक्षा के लिए न जा सकने वाले साधुओं के निमित्त आहारादि बना कर देना । नवीन आये हुए साधु के निमित्त आहारादि बना कर देना, सचित्त मूले का सेवन करना, वज्रकन्द आदि कन्दों का सेवन करना । आम, नीम्बू आदि सचित्त फलों का सेवन करना, सचित्त तिल आदि बीजों का सेवन करना । हरित भोजन – सचित्त हरी लीलोती का सेवन करना, आदि बातों का निषेध किया है । इसी तरह महापद्म तीर्थङ्कर भी आधाकर्मी यावत् हरितभोजन आदि का निषेध करेंगे ।

हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए सुबह शाम दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना, पांच महाव्रतों का पालन करना और अचेलक यानी परिमाणोपेत वस्त्र रखना इत्यादि धर्म कहा है । इसी प्रकार महापद्म तीर्थङ्कर श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच महाव्रत यावत् अचेलक धर्म की प्ररूपणा करेंगे । हे आर्यो! जिस प्रकार मैंने पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत यह बारह व्रत रूप श्रावक धर्म कहा है । इसी प्रकार महापद्म तीर्थङ्कर भी पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत यह बारह व्रत रूप श्रावक धर्म की प्ररूपणा करेंगे । हे आर्यो ! जिस प्रकार मैंने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातर पिण्ड और राजपिण्ड का निषेध किया है । इसी प्रकार महापद्म तीर्थङ्कर भी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का निषेध करेंगे । हे आर्यो ! जिस प्रकार मेरे नौ गण और ग्यारह गणधर हैं उसी प्रकार महापद्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थङ्कर के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे । हे आर्यो ! जैसे मैंने तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रह कर फिर मुण्डित होकर यावत् दीक्षा ली> बारह वर्ष साढे छह महीने छद्मस्थ पर्याय का पालन करके तीस वर्ष में तेरह पक्ष कम यानी उनतीस वर्ष साढे पांच महीने केवलि पर्याय का पालन करके, इस प्रकार बयालीस वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन करके, कुल बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण करके सिद्ध होऊंगा यावत् सब दुःखों का अन्त करूँगा। इसी प्रकार महापद्म तीर्थङ्कर भी तीस वर्षों तक गृहस्थावस्था में रह कर फिर दीक्षा लेंगे। बारह वर्ष साढे छह महीने छद्मस्थावस्था में रह कर उनतीस वर्ष साढे पांच महीने केवलि पर्याय में रह कर कुल बयालीस वर्ष श्रमण पर्याय में रह कर इस तरह कुल बहत्तर वर्ष की आयु पूरी करके सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

जो शील यानी स्वभाव और आचार - संयम पालन की क्रिया अरिहंत तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी के हैं । वही शील और आचार तीर्थङ्कर भगवान् महापद्म स्वामी का होगा ॥ १ ॥

पश्चाद् भोग वाले नक्षत्र, विमानों की ऊँचाई, नववीथियाँ

णव णक्खत्ता चंदस्स पच्छंभागा पण्णत्ता तंजहा -

अभिई सवणो धणिट्ठा, रेवई अस्सिणी मग्गसिर पूसो ।
हत्थो चित्ता य तहा, पच्छं भागा णव हवंति ॥ १ ॥

आणयपाणयआरणअच्चुएसु कप्पेसु विमाणा णव जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता । विमलवाहणे णं कुलगरे णव धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था । उसभे णं अरहा कोसलिए णं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं वीइक्कंताहिं तित्थे पवत्तिए । घणदंत लट्ठदंत गूढदंत सुद्धदंत दीवाणं दीवा णव णव जोयण सयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता । सुक्कस्स णं महागहस्स णव विहीओ पण्णत्ताओ तंजहा - हयवीही, गयवीही, णागवीही वसह वीही गो वीही, उदग वीही, अय वीही, मिय वीही, वेसाणर वीही ।

नो कषाय, कुलकोटि, पापकर्म, पुद्गलों की अनंतता

णव विहे णोकसायवेयणिज्जे कम्मे पण्णत्ते तंजहा - इत्थीवेए, पुरिसवेए, णपुंसगवेए, हासे, रई, अरई, भये, सोगे, दुगुंछे । चउरिंदियाणं णव जाइकुलकोडि जोणीपमुह सयसहस्सा पण्णत्ता । भुयगपरिसप्पथलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं णव जाइकुल कोडि जोणी पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता । जीवा णं णव ठाण णिव्वत्तिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा, चिणंति वा, चिणिस्संति वा पुढविकाइय णिव्वत्तिए जाव पंचिंदियणिव्वत्तिए एवं चिण उवचिण जाव णिज्जरा चेव । णव पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता । णव पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव णवगुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ ११३ ॥

॥ णवमं ठाणं समत्तं ॥ णवमं अज्झयणं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ - **पच्छंभागा** - पश्चाद् भोग वाले, **कोसलिए** - कौशलिक-कौशल देश में उत्पन्न, **वीहीओ** - वीथियाँ-क्षेत्र भाग, **वेसाणरवीही** - वैश्वानर वीथी, **णोकसायवेयणिज्जे कम्मे** - नोकषाय वेदनीय कर्म, **दुगुंछे** - दुगुंच्छा-जुगुप्सा ।

भावार्थ - नौ नक्षत्र चन्द्रमा के पश्चाद्भोग वाले कहे गये हैं अर्थात् चन्द्रमा इनका उल्लंघन करके फिर भोग करता है । उनके नाम इस प्रकार हैं - अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य, हस्त और चित्रा ये नौ नक्षत्र पश्चाद्भोग वाले हैं । आणत, प्राणत, आरण, अच्युत इन देवलोकों में विमान नौ सौ योजन के ऊंचे कहे गये हैं । विमलवाहन कुलकर के शरीर की ऊंचाई नौ सौ धनुष थी । इस अवसर्पिणी काल के नौ कोडाकोडी सागरोपम व्यतीत होने पर कौशल देश में उत्पन्न ऋषभदेव भगवान् ने तीर्थ प्रवर्ताया था । घनदन्त, लष्टदन्त गूढदन्त, और शुद्धदंत ये चार अन्तरद्वीप नौ सौ नौ सौ योजन के लम्बे चौड़े कहे गये हैं । शुक्र महाग्रह की नौ वीथियाँ यानी क्षेत्र भाग कहे गये हैं। यथा - हय वीथी, गज वीथी, नाग वीथी, वृषभ वीथी, गो वीथी, उरग वीथी, अज वीथी मृग वीथी और वैश्वानर वीथी । नोकषाय वेदनीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है । यथा - स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक और दुगुंच्छा - जुगुप्सा । चतुरिन्द्रिय जीवों की नौ लाख कुलकोटि कही गई हैं । भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों की नौ लाख कुलकोटि कही गई हैं । सब जीवों ने पृथ्वीकाय निर्वर्तित यावत् पञ्चेन्द्रिय निर्वर्तित इन नौ स्थान निर्वर्तित पुद्गलों को पाप कर्म रूप से उपार्जन किये हैं, उपार्जन करते हैं और उपार्जन करेंगे । इसी प्रकार चय, उपचय यावत् निर्जरा तक कह देना चाहिए । नौ प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । नौ प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं । यावत् नौ गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं ।

॥ नववां स्थान समाप्त ॥

॥ नववाँ अध्ययन समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसवाँ स्थान

लोकस्थिति

दसविहा लोगट्ठिई पण्णत्ता तंजहा - जण्णं जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तत्थेव तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायंति एवं एगा लोगट्ठिई पण्णत्ता । जण्णं जीवा सया समियं पावे कम्मे कज्जइ एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता । जण्णं जीवा सया समियं मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जइ एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता । ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा, जं जीवा अजीवा भविस्संति, अजीवा वा जीवा भविस्संति, एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता। ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा, तसा पाणा वोच्छिज्जिस्संति थावरा पाणा वोच्छिज्जिस्संति तसा पाणा भविस्संति वा । एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता । ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा, जं लोए अलोए भविस्सइ, अलोए वा लोए भविस्सइ, एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता । ण एवं भूयं वा, भव्वं वा, भविस्सइ वा, जं लोए अलोए पविस्सइ, अलोए वा लोए पविस्सइ एवंप्पेगा लोगट्ठिई । जाव जाव लोए ताव ताव जीवा, जाव जाव जीवा ताव ताव लोए एवंप्पेगा लोगट्ठिई । जाव जाव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए ताव ताव लोए, जाव जाव लोए ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गइपरियाए एवंप्पेगा लोगट्ठिई। सव्वेसु वि णं लोगंतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जइ जेणं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए एवंप्पेगा लोगट्ठिई पण्णत्ता॥ ११४॥

कठिन शब्दार्थ - लोगट्ठिई - लोक स्थिति, **उद्दाइत्ता** - मर कर, **अबद्धपासपुट्ठा** - अबद्ध पार्श्व स्पृष्ट।

भावार्थ - लोक की स्थिति दस प्रकार से व्यवस्थित है । यथा - जीव बारम्बार मरकर इस लोक में पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं, यह लोक की प्रथम स्थिति है । जीव अनादि काल से निरन्तर पाप कर्मों को बांधते रहते हैं, यह दूसरी लोक स्थिति है । जीव अनादि काल से निरन्तर मोहनीय कर्म को बांधते रहते हैं, यह लोक की तीसरी स्थिति है । ऐसा कभी नहीं हुआ है, न होता है और न होगा कि-जीव अजीव हो जायेंगे अथवा अजीव जीव हो जावेंगे । यह लोक की चौथी स्थिति है । ऐसा कभी नहीं हुआ है, न होता है और न होगा कि त्रस प्राणियों का सर्वथा व्यच्छेद (अभाव) हो जायगा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा स्थावर प्राणियों का सर्वथा व्यवच्छेद – अभाव हो जायगा अथवा स्थावर प्राणी त्रस बन जायेंगे अथवा त्रस प्राणी स्थावर बन जायेंगे । यह लोक की पांचवीं स्थिति है । ऐसा कदापि त्रिकाल में भी नहीं हुआ है, नहीं होता है और नहीं होगा कि – लोक अलोक हो जायगा अथवा अलोक लोक हो जायगा, यह लोक की छठी स्थिति है । ऐसा कदापि तीन काल में भी नहीं हुआ है, नहीं होता है और न होगा कि लोक अलोक में प्रविष्ट हो जायगा अथवा अलोक लोक में प्रविष्ट हो जायगा, यह लोक की सातवीं स्थिति है । जितने क्षेत्र में लोक है । वहाँ वहाँ जीव हैं और जितने क्षेत्र में जीव हैं उतना क्षेत्र लोक है, यह आठवीं लोकस्थिति है । जहाँ जहाँ जीव और पुद्गलों की गति होती है । वह लोक है और जहाँ जहाँ लोक है वहाँ वहाँ जीव और पुद्गलों की गति होती है, यह नववीं लोक स्थिति है । लोकान्त में सब पुद्गल इतने रूक्ष हो जाते हैं कि वे परस्पर पृथक् हो जाते हैं अर्थात् बिखर जाते हैं जिससे जीव और पुद्गल लोक के बाहर जाने में समर्थ नहीं होते हैं अर्थात् लोक का ऐसा ही स्वभाव है कि लोकान्त में जाकर पुद्गल अत्यन्त रूक्ष हो जाते हैं जिससे कर्म सहित जीव और पुद्गल फिर आगे गति करने में असमर्थ हो जाते हैं, यह दसवीं लोकस्थिति है ।

विवेचन – लोकस्थिति – लोक की स्थिति दस प्रकार से व्यवस्थित है।

१. जीव एक जगह से मर कर लोक के एक प्रदेश में किसी गति, योनि अथवा किसी कुल में निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं। यह लोक की प्रथम स्थिति है।

२. प्रवाह रूप से अनादि अनन्त काल से मोक्ष के बाधक स्वरूप ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों को निरन्तर रूप से जीव बाँधते रहते हैं। यह दूसरी लोक स्थिति है।

३. जीव अनादि अनन्त काल से मोहनीय कर्म को बाँधते रहते हैं। यह लोक की तीसरी स्थिति है।

४. अनादि अनन्त काल से लोक की यह व्यवस्था रही है कि जीव कभी अजीव नहीं हुआ है, न होता है और न भविष्यत् काल में कभी ऐसा होगा। इसी प्रकार अजीव कभी भी जीव नहीं हुआ है, न होता है और न होगा। यह लोक की चौथी स्थिति है।

५. लोक के अन्दर कभी भी त्रस और स्थावर प्राणियों का सर्वथा अभाव न हुआ है, न होता है और न होगा और ऐसा भी कभी न होता है, न हुआ है और न होगा कि सभी त्रस प्राणी स्थावर बन गए हों अथवा सब स्थावर प्राणी त्रस बन गए हों। इसका यह अभिप्राय है कि ऐसा समय न आया है, न आता है और न आवेगा कि लोक के अन्दर केवल त्रस प्राणी ही रह गए हों अथवा केवल स्थावर प्राणी ही रह गए हों। यह लोक स्थिति का पाँचवां प्रकार है।

६. लोक अलोक हो गया हो या अलोक लोक हो गया हो ऐसा कभी त्रिकाल में भी न होगा, न होता है और न हुआ है। यह लोक स्थिति का छठा प्रकार है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. लोक का अलोक में प्रवेश या अलोक का लोक में प्रवेश न कभी हुआ है, न कभी होता है और न कभी होगा। यह सातवीं लोक स्थिति है।

८. जितने क्षेत्र में लोक शब्द का व्यपदेश (कथन) है वहाँ वहाँ जीव हैं और जितने क्षेत्र में जीव हैं, उतना क्षेत्र लोक है। यह आठवीं लोक स्थिति है।

९. जहाँ जहाँ जीव और पुद्गलों की गति होती है वह लोक है और जहाँ लोक है वहीं वहीं पर जीव और पुद्गलों की गति होती है। यह नववीं लोक स्थिति है।

१०. लोकान्त में सब पुद्गल इस प्रकार और इतने रूक्ष हो जाते हैं कि वे परस्पर पृथके हो जाते हैं अर्थात् बिखर जाते हैं। पुद्गलों के रूक्ष हो जाने के कारण जीव और पुद्गल लोक से बाहर जाने में असमर्थ हो जाते हैं। अथवा लोक का ऐसा ही स्वभाव है कि लोकान्त में जाकर पुद्गल अत्यन्त रूक्ष हो जाते हैं जिससे कर्म सहित जीव और पुद्गल फिर आगे गति करने में असमर्थ हो जाते हैं। यह दसवीं लोक स्थिति है।

शब्द और इन्द्रिय विषय

दसविहे सद्दे पण्णत्ते तंजहा -

णीहारी पिंडिमे लुक्खे, भिण्णे जज्जरिए इय ।
दीहे रहस्से, पुहुत्ते य, काकणी खिंखिणीस्सरे ।। १ ।।

दस इंदियत्था अतीता पण्णत्ता तंजहा - देसेण वि एगे सद्दाइं सुणिंसु सव्वेण वि एगे सद्दाइं सुणिंसु, देसेण वि एगे रूवाइं पासिंसु, सव्वेण वि एगे रूवाइं पासिंसु, एवं गंधाइं रसाइं फासाइं जाव सव्वेण वि एगे फासाइं पडिसंवेदिंसु । दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता तंजहा - देसेण वि एगे सद्दाइं सुणेंति, सव्वेण वि एगे सद्दाइं सुणेंति, एवं जाव फासाइं । दस इंदियत्था अणागया पण्णत्ता तंजहा - देसेण वि एगे सद्दाइं सुणिस्संति, सव्वेण वि एगे सद्दाइं सुणिस्संति एवं जाव सव्वेण वि एगे फासाइं पडिसंवेदिस्संति ॥ ११५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णीहारी** - निर्हारी, **पिंडिमे** - पिण्डिम, **जज्जरिए** - जर्जरित, **खिंखिणी** - किंकिणी, **इंदियत्था** - इन्द्रियों के अर्थ (विषय) **देसेण** - एक देश से, **सव्वेण** - सम्पूर्ण रूप से, **पडुप्पण्णा** - प्रत्युत्पन्न (वर्तमान)।

भावार्थ - शब्द दस प्रकार का कहा गया है । यथा - १. निर्हारी - आवाज युक्त शब्द, जैसे घण्टा झालर आदि का शब्द २. पिण्डिम - घोष यानी आवाज से रहित शब्द, जैसे डमरु आदि का शब्द ३. रूक्ष - रूखा शब्द, जैसे कौए का शब्द ४. भिन्न शब्द - जैसे कोढ आदि रोग से पीड़ित पुरुष का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांपता हुआ शब्द ५. जर्जरित-करटिका आदि वादय विशेष का शब्द ६. दीर्घ-दीर्घ वर्णों से युक्त जो शब्द हो, अथवा जो शब्द बहुत दूर तक सुनाई देता हो, जैसे मेघ की गर्जना ७. ह्रस्व - ह्रस्व वर्णों से युक्त अथवा दीर्घ शब्द की अपेक्षा जो लघु हो, जैसे वीणा आदि का शब्द ८. पृथक् - अनेक प्रकार के वाद्यों का मिला हुआ शब्द ९. काकणी शब्द - सूक्ष्म कण्ठ से जो गीत गाया जाता है उसे काकणी या काकली शब्द कहते हैं १०. किंकिणी शब्द - छोटे छोटे घूघरे जो बैलों के गले में बांधे जाते हैं अथवा नाचने वाले पुरुष अपने पैरों में बांधते हैं उन घूघरों के शब्द को किङ्किणी शब्द कहते हैं ।

इन्द्रियों के अतीत विषय दस कहे गये हैं। यथा - किसी ने शब्दों को एक देश से सुना । किसी ने शब्दों को सम्पूर्ण रूप से सुना। किसी ने रूपों को एक देश से देखा । किसी ने सम्पूर्ण रूप से रूपों को देखा । इसी तरह गन्ध, रस और स्पर्श के भी दो दो भेद कह देने चाहिए । इस प्रकार पांच इन्द्रियों के दस भेद हो जाते हैं। इन्द्रियों के वर्तमान विषय दस कहे गये हैं। यथा - कोई पुरुष शब्दों को एक देश से सुनता है। कोई पुरुष सम्पूर्ण रूप से शब्दों को सुनता है। इसी तरह रूप, गन्ध, रस और स्पर्श तक प्रत्येक के दो दो भेद कह देने चाहिए। इन्द्रियों के अनागत यानी भविष्यत् कालीन विषय दस कहे गये हैं। यथा - कोई पुरुष एक देश से शब्दों को सुनेगा। कोई पुरुष सम्पूर्ण रूप से शब्दों को सुनेगा। इसी तरह रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन प्रत्येक के दो दो भेद कह देने चाहिए। इस प्रकार पांच इन्द्रियों के दस विषय होते हैं ।

विवेचन - शब्द के तीन भेद होते हैं - १. जीव शब्द २. अजीव शब्द ३. मिश्र शब्द। उपर्युक्त दस शब्दों का समावेश भी इन तीन भेदों में हो जाता है। शब्द इन्द्रिय ग्राह्य हैं अतः आगे के सूत्र में इन्द्रिय विषयों का तीन कालों की अपेक्षा से वर्णन किया गया है। एक देश से सुनने का अर्थ है - जब श्रोत्रेन्द्रिय अधूरी बात को सुनती है या एक ओर की बात को टेलिफोन की तरह एक कान से सुनती है। जब किसी बात को पूरी तरह से अनेक दृष्टियों से सुना जाता है तो उसे सर्व से - सम्पूर्ण रूप से सुनना कहा जाता है। इसी तरह अन्य इन्द्रिय विषयों के लिए भी समझना चाहिये।

पुद्गलों के चलित होने के कारण

दसहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा तंजहा - आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा, परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा, उस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा, णिस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा, वेइज्जमाणे वा चलेज्जा, णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा, विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा, परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा, जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा, वायपरिग्गहे वा चलेज्जा ।

क्रोधोत्पत्ति के कारण

दसहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ती सिया तंजहा - मणुण्णाइं मे सद्दफरिसरसरूवगंधाइं

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

अवहरिंसु, अमणुण्णाइं मे सद्दफरिसरसरूवगंधाइं उवहरिंसु, मणुण्णाइं मे सद्दफरिसरसरूवगंधाइं अवहरइ, अमणुण्णाइं मे सद्दफरिसरसरूवगंधाइं उवहरइ, मणुण्णाइं मे सद्दाइं जाव गंधाइं अवहरिस्सइ, अमणुण्णाइं मे सद्दाइं जाव गंधाइ उवहरिस्सइ, मणुण्णाइं मे सद्दाइं जाव गंधाइं अवहरिंसु वा अवहरइ वा अवहरिस्सइ वा, अमणुण्णाइं मे सद्दाइं जाव गंधाइं उवहरिंसु वा उवहरइ वा उवहरिस्सइ वा । मे मणुण्णामणुण्णाइं सद्दाइं जाव गंधाइं अवहरिंसु, अवहरइ, अवहरिस्सइ, उवहरिंसु, उवहरइ, उवहरिस्सइ। अहं च णं आयरियउवज्झायाणं सम्मं वट्टामि ममं य णं आयरियउवज्झाया मिच्छं पडिवण्णा ।

संयम-असंयम, संवर-असंवर

दसविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइय संजमे जाव वणस्सइकाइय संजमे, बेइंदिय संजमे, तेइंदिय संजमे, चउरिंदिय संजमे, पंचिंदिय संजमे, अजीवकाय संजमे। दसविहे असंजमे पण्णत्ते तंजहा - पुढविकाइय असंजमे, आउकाइय असंजमे, तेउकाइय असंजमे, वाउकाइय असंजमे, वणस्सइ काइय असंजमे जाव अजीवकाय असंजमे। दसविहे संवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय संवरे जाव फासिंदिय संवरे, मण संवरे, वय संवरे, काय संवरे, उवगरण संवरे, सूईकुसग्ग संवरे । दसविहे असंवरे पण्णत्ते तंजहा - सोइंदिय असंवरे जाव सूई कुसग्ग असंवरे॥ ११६॥

कठिन शब्दार्थ - अच्छिण्णे - अछिन्न, **चलेज्जा** - चलित होता है, **परिणामेज्जमाणे** - परिणमित होता हुआ, **उस्ससिज्जमाणे** - उच्छ्वास लेते हुए, **णिस्ससिज्जमाणे** - निःश्वास लेते हुए, **णिज्जरिज्जमाणे** - निर्जरित करते हुए, **विउविज्जमाणे** - वैक्रिय शरीर बनाते हुए, **परियारिज्जमाणे** - परिचारणा करते हुए, **उवगरण संवरे** - उपकरण संवर, **सूईकुसग्ग संवरे** - सूची कुशाग्र मात्र संवर ।

भावार्थ - अछिन्न यानी शरीर से सम्बन्धित पुद्गल दस कारणों से चलित होता है । यथा - खाया जाता हुआ पुद्गल चलित होता है । परिणमित होता हुआ पुद्गल चलित होता है । उच्छ्वास लेते हुए, निःश्वास लेते हुए, वैक्रिय शरीर बनाते हुए, परिचारणा यानी मैथुन सेवन करते हुए, पुद्गल चलित होता है । यक्षाधिष्ठित शरीर होने पर पुद्गल चलित होता है । शरीर में रही हुई वायु से प्रेरित हुआ पुद्गल चलित होता है । दस कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है । यथा - मेरे मनोज्ञ शब्द स्पर्श रस, रूप और गन्ध को इसने ले लिये हैं, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है । अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप गन्ध का मेरे साथ इसने संयोग करवाया है, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे मनोज्ञ शब्द स्पर्श रस रूप गन्ध को यह लेता है और लेवेगा, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है । मेरे साथ अमनोज्ञ शब्दादि का संयोग किया है और संयोग करेगा, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है । मेरे मनोज्ञ शब्दादि को यह ले गया है, ले जाता है, ले जायगा इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है । अमनोज्ञ शब्दादि का मेरे साथ इसने संयोग किया है, यह संयोग करता है, संयोग करेगा, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है । मेरे मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि को इसने लिया है, लेता है, लेगा तथा संयोग किया है, संयोग करता है, संयोग करेगा, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

मैं आचार्य और उपाध्याय जी के साथ सम्यक् बर्ताव करता हूँ किन्तु आचार्य और उपाध्यायजी मेरे से विपरीत रहते हैं, इस विचार से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

दस प्रकार का संयम कहा गया है । यथा - पृथ्वीकाय संयम, अप्काय संयम, तेउकाय संयम, वायुकाय संयम, वनस्पतिकाय संयम, बेइन्द्रिय संयम, तेइन्द्रिय संयम, चतुरिन्द्रिय संयम और अजीवकाय संयम । दस प्रकार का असंयम कहा गया है। यथा- पृथ्वीकाय असंयम, अप्कायअसंयम, तेउकाय असंयम, वायुकाय असंयम, वनस्पतिकाय असंयम यावत् अजीवकाय असंयम । दस प्रकार का संवर कहा गया है । श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संवर, मन संवर, वचन संवर, काय संवर, उपकरण संवर और सूची कुशाग्र मात्र संवर । दस प्रकार का असंवर कहा गया है । यथा - श्रोत्रेन्द्रिय असंवर यावत् सूची कुशाग्र मात्र असंवर ।

विवेचन - जो पुद्गल शरीर से अभिन्न है या विवक्षित स्कन्ध से अपृथक्भूत हैं वे दस कारणों से चलायमान होते हैं अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होते हैं। ये ही दस कारण शरीर में हलन चलन के भी हैं।

संयमी के लिये क्रोध करना हानिप्रद एवं अनुचित है। अतः सूत्रकार ने क्रोध उत्पत्ति के दस स्थानों का वर्णन किया है। साधक को इन क्रोध उत्पन्न होने के कारणों का त्याग करना चाहिये। क्रोध पर संयम और संवर से विजय पायी जाती है अतः सूत्रकार ने दस प्रकार के संयम और इससे विपरीत दस प्रकार के असंयम का वर्णन किया है।

संवर - इन्द्रिय और योगों की अशुभ प्रवृत्ति से आते हुए कर्मों को रोकना संवर है। इसके दस भेद हैं -

१. श्रोत्रेन्द्रिय संवर २. चक्षुरिन्द्रिय संवर ३. घ्राणेन्द्रिय संवर ४. रसनेन्द्रिय संवर ५. स्पर्शनेन्द्रिय संवर ६. मन संवर ७. वचन संवर ८. काय संवर ९. उपकरण संवर १०. सूचीकुशाग्र संवर।

पाँच इन्द्रियाँ और तीन योगों की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा उन्हें शुभ व्यापार में लगाना क्रम से श्रोत्रेन्द्रिय आदि आठ संवर है।

९. उपकरण संवर - जिन वस्त्रों के पहनने में हिंसा हो अथवा जो वस्त्रादि न कल्पते हों, उन्हें न

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

लेना उपकरण संवर है। अथवा बिखरे हुए वस्त्रादि को समेट कर रखना उपकरण संवर है। यह उपकरण संवर समग्र औधिक उपधि की अपेक्षा कहा गया है। जो वस्त्र पात्रादि उपधि एक बार ग्रहण करके वापिस न लौटाई जाय उसे औधिक कहते हैं।

१०. सूची कुशाग्र संवर - सूई और कुशाग्र आदि वस्तुएं जिन के बिखरे रहने से शरीर में चुभने आदि का डर है, उन सब को समेट कर रखना। सामान्य रूप से यह संवर सारी औपग्रहिक उपधि के लिए है। जो वस्तुएं आवश्यकता के समय गृहस्थ से लेकर काम होने पर वापिस कर दी जायँ उन्हें औपग्रहिक उपधि कहते हैं। जैसे सूई आदि।

अन्त के दो द्रव्य संवर हैं और पहले आठ भाव संवर हैं।

असंवर - संवर से विपरीत अर्थात् कर्मों के आगमन को असंवर कहते हैं। इसके भी संवर की तरह दस भेद हैं। इन्द्रिय, योग और उपकरणादि को वश में न रख कर खुले रखना अथवा बिखरे पड़े रहने देना क्रमशः दस प्रकार का असंवर है।

मद के कारण

दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा तंजहा - जाइ मएण वा, कुल मएण वा जाव इस्सरिय मएण वा, णागसुवण्णा मे अंतियं हव्वमागच्छंति, पुरिसधम्माओ वा मे उत्तरिए अहोइए णाणदंसणे समुप्पण्णे ।

समाधि-असमाधि

दसविहा समाहि पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवाय वेरमणे, मुसावाय वेरमणे, अदिण्णादाण वेरमणे, मेहुण वेरमणे, परिग्गहा वेरमणे, ईरिया समिई, भासा समिई, एसणा समिई, आयाण भंडमंतणिक्खेवणा समिई, उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाण परिट्ठावणिया समिई । दसविहा असमाहि पण्णत्ता तंजहा - पाणाइवाए जाव परिग्गहे, ईरिया असमिई जाव उच्चार पासवण खेलजल्ल सिंघाण परिट्ठावणिया असमिई ।

प्रव्रज्या, श्रमण धर्म

दसविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तंजहा -

छंदा रोसा परिजुण्णा सुविणा पडिस्सुया चेव ।

सारणिया रोगिणीया अणाढिया देवसण्णत्ती वच्छाणुबंधिया ॥

दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते तंजहा - खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे। दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते तंजहा - आयरिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेयावच्चे, उवज्झाय वेयावच्चे, थेर वेयावच्चे, तवस्सि वेयावच्चे, गिलाण वेयावच्चे, सेह वेयावच्चे, कुल वेयावच्चे, गण वेयावच्चे, संघ वेयावच्चे, साहम्मिय वेयावच्चे ।

जीव परिणाम, अजीव परिणाम

दसविहे जीव परिणामे पण्णत्ते तंजहा - गइ परिणामे, इंदिय परिणामे, कसाय परिणामे, लेस्सा परिणामे, जोग परिणामे, उवओग परिणामे, णाण परिणामे, दंसण परिणामे, चरित्त परिणामे, वेय परिणामे । दसविहे अजीव परिणामे पण्णत्ते तंजहा - बंधण परिणामे, गइ परिणामे, संठाण परिणामे, भेय परिणामे, वण्ण परिणामे, रस परिणामे, गंध परिणामे, फास परिणामे, अगुरुलहु परिणामे, सद्द परिणामे ॥ ११७ ॥

कठिन शब्दार्थ - णाग सुवण्णा - नागकुमार सुवर्णकुमार, **उत्तरिए** - उत्कृष्ट, **अहोइए** - अवधि, **पव्वज्जा** - प्रव्रज्या, **छंदा** - छंद, **रोसा** - रोष से, **परिजुण्णा** - परिद्यूना, **सुविणा** - स्वप्न से, **पडिस्सुया** - प्रतिश्रुत, **सारणिया** - स्मरण आदि, **रोगिणिया** - रोगिणिका, **अणाढिया** - अनादर, **देवसण्णत्ति** - देवसंज्ञप्ति, **वच्छाणुबंधिया** - वत्सानुबंधिका, **सेह वेयावच्चे** - शैक्ष वैयावृत्य, **अगुरुलहु परिणामे** - अगुरुलघु परिणाम।

भावार्थ - दस कारणों से "मैं ही सब से बड़ा हूँ" इस प्रकार मनुष्य मद करता है यथा - जातिमद, कुलमद, यावत् ऐश्वर्यमद, नागकुमार सुवर्णकुमार मेरे पास आते हैं, इस प्रकार मनुष्य मद करता है और सामान्य पुरुषों की अपेक्षा मुझे उत्कृष्ट प्रधान अवधिज्ञान, अवधिदर्शन उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार मनुष्य मद करता है ।

दस प्रकार की समाधि कही गई है यथा - प्राणातिपात से निवृत्ति, मृषावाद से निवृत्ति, अदत्तादान से निवृत्ति, मैथुन से निवृत्ति, परिग्रह से निवृत्ति, ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदानभाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चारप्रस्रवण खेलजल्ल सिंघाण परिस्थापनिका समिति । दस प्रकार की असमाधि कही गई है यथा - प्राणातिपात यावत् परिग्रह इन पांच पापों का सेवन करना, ईर्या असमिति और उच्चार प्रस्रवण खेलजल्ल सिंघाण परिस्थापनिका असमिति ।

दस प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है यथा - १. छन्द यानी इच्छा से-अपनी या दूसरे की इच्छा से दीक्षा लेना, जैसे गोविन्दवाचक और सुन्दरीनन्द ने अपनी इच्छा से दीक्षा ली और भवदत्त ने अपने भाई की इच्छा से दीक्षा ली। २. रोष यानी क्रोध से दीक्षा लेना, जैसे शिवभूति। ३. परिद्यूना यानी दरिद्रता के कारण दीक्षा लेना, जैसे लकड़हारे ने दीक्षा ली थी। ४. स्वप्न से - विशेष प्रकार का स्वप्न आने से दीक्षा लेना, जैसे - पुष्पचूला ने दीक्षा ली। ५. प्रतिश्रुत - आवेश में आकर या वैसे ही प्रतिज्ञा कर लेने से दीक्षा लेना । जैसे शालिभद्र के बहनोई धन्ना सेठ ने दीक्षा ली थी। ६. स्मरण आदि-किसी के द्वारा कुछ

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

कहने से या कोई दृश्य देखने से जातिस्मरण ज्ञान होना और पूर्वभव को जान कर दीक्षा ले लेना। जैसे-भगवान् मल्लिनाथ के द्वारा पूर्वभव का स्मरण कराने पर प्रतिबुद्धि आदि छह राजाओं ने दीक्षा ली थी। ७. रोगिणिका - रोग के कारण संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेना, जैसे - सनत्कुमार चक्रवर्ती ने दीक्षा ली थी ८. अनादर - किसी के द्वारा अपमानित होने पर दीक्षा ले लेना। जैसे - नन्दिषेण और अनादृतकुमार ने दीक्षा ली ९. देवसंज्ञप्ति - देवों के द्वारा प्रतिबोध देने पर दीक्षा लेना, जैसे-मेतार्यमुनि। १०. वत्सानुबन्धिका - पुत्र स्नेह के कारण दीक्षा लेना, जैसे-वैरस्वामी की माता ने दीक्षा ली ।

दस प्रकार का श्रमणधर्म - साधुधर्म कहा गया है यथा - १. क्षमा - क्रोध पर विजय प्राप्त करना, क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी शान्ति रखना २. मुक्ति - लोभ पर विजय प्राप्त करना, पौद्गलिक वस्तुओं पर आसक्ति न रखना ३. आर्जव - कपट रहित होना, माया, दम्भ, ठगी आदि का सर्वथा त्याग करना ४. मार्दव - मान का त्याग करना, मद न करना, मिथ्याभिमान को सर्वथा छोड़ देना ५. लाघव - यानी द्रव्य और भाव से हल्का रहना ६. सत्य - सत्य, हित और मित वचन बोलना ७. संयम - मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति करना, अशुभ प्रवृत्ति को रोकना, पांच इन्द्रियों का दमन करना, चार कषाय को जीतना, मन वचन काया की प्रवृत्ति को रोकना, प्राणातिपात आदि पांच पापों से निवृत्त होना, इस तरह १७ प्रकार के संयम का पालन करना ८. तप - इच्छा को रोकना एवं बारह प्रकार का तप करना ९. त्याग - किसी वस्तु पर मूर्च्छा न रखना और १०. ब्रह्मचर्य - नववाड सहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना ।

अपने से बड़े या असमर्थ की सेवा सुश्रूषा करना, वैयावच्च - वैयावृत्य कहलाता है । इसके दस भेद हैं यथा - आचार्य की वेयावच्च, उपाध्याय की वेयावच्च, स्थविर की वेयावच्च, तपस्वी की वेयावच्च, ग्लान यानी रोगी की वेयावच्च, शैक्ष अर्थात् नवदीक्षित साधु की वेयावच्च । कुल अर्थात् एक आचार्य के शिष्य परिवार की वेयावच्च । गण अर्थात् साथ रहने वाले साधु समूह की वेयावच्च । संघ की वेयावच्च और साधर्मिक की वेयावच्च ।

दस प्रकार का जीव परिणाम कहा गया है यथा - गति परिणाम - चार गतियों में से किसी एक गति की प्राप्ति होना । इन्द्रिय परिणाम - पांच इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय की प्राप्ति होना । कषाय परिणाम - क्रोध मान माया लोभ इन कषायों का होना । लेश्या परिणाम - कृष्णादि छह लेश्याओं में से किसी भी लेश्या की प्राप्ति होना। योग परिणाम - मन वचन काया रूप योगों की प्राप्ति होना । उपयोग परिणाम - उपयोगों की प्राप्ति होना। ज्ञान परिणाम - ज्ञान की प्राप्ति होना। दर्शन परिणाम - सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और मिश्र इन में से किसी दर्शन की प्राप्ति होना। चारित्र परिणाम - सामायिकादि पांच चारित्रों में से किसी चारित्र की प्राप्ति होना। वेद परिणाम- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इन वेदों में से किसी एक वेद की प्राप्ति होना। दस प्रकार का अजीव परिणाम कहा गया है यथा - बन्धन परिणाम -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजीव पदार्थों का आपस में मिलना। गति परिणाम - अजीव पुद्गलों की गति होना । संस्थान परिणाम-अजीव पुद्गलों का छह संस्थान रूप में परिणत होना । भेद परिणाम - पदार्थों में भेद होना । वर्ण परिणाम - पांच प्रकार के वर्ण में परिणत होना । रस परिणाम - पांच रसों में से किसी रस में परिणत होना । गन्ध परिणाम - सुगन्ध या दुर्गन्ध रूप में पुद्गलों का परिणत होना । स्पर्श परिणाम - आठ स्पर्शों में से किसी स्पर्श में परिणत होना । अगुरुलघु परिणाम - जो न तो इतना भारी हो कि नीचे चला जावे और न इतना हल्का हो कि जो ऊपर चला जावे ऐसा अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु अगुरुलघु परिणाम कहलाता है । शब्द परिणाम - शब्द के रूप में पुद्गलों का परिणत होना ।

विवेचन - अहंकार के दस कारण - दस कारणों से अहंकार की उत्पत्ति होती है। वे ये हैं -

१. जातिमद २. कुलमद ३. बलमद ४. श्रुतमद ५. ऐश्वर्यमद ६. रूप मद ७. तप मद ८. लब्धि मद ९. नागसुवर्णमद १०. अवधि ज्ञान दर्शन मद।

मेरी जाति सब जातियों से उत्तम है। मैं श्रेष्ठ जाति वाला हूँ। जाति में मेरी बराबरी करने वाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। इस प्रकार जाति का मद करना जातिमद कहलाता है। इसी तरह कुल, बल आदि मदों के लिए भी समझ लेना चाहिए।

९. नागसुवर्ण मद - मेरे पास नाग कुमार, सुवर्णकुमार आदि जाति के देव आते हैं। मैं कितना तेजस्वी हूँ कि देवता भी मेरी सेवा करते हैं। इस प्रकार मद करना।

१०. अवधिज्ञान दर्शन मद - मनुष्यों को सामान्यतः जो अवधि ज्ञान और अवधि दर्शन उत्पन्न होता है उससे मुझे अत्यधिक विशेष ज्ञान उत्पन्न हुआ है। मेरे से अधिक अवधिज्ञान किसी भी मनुष्यादि को हो नहीं सकता। इस प्रकार से अवधिज्ञान और अवधि दर्शन का मद करना।

इस भव में जिस बात का मद किया जायगा, आगामी भव में वह प्राणी उस बात में हीनता को प्राप्त करेगा। अतः आत्मार्थी पुरुषों को किसी प्रकार का मद नहीं करना चाहिए।

समाधान रूप समाधि अर्थात् समता, सामान्य से रागादि का अभाव, वह उपाधि के भेद से दस प्रकार की कही है।

गृहस्थावास छोड़ कर साधु बनने को प्रव्रज्या कहते हैं। सूत्रकार ने इसके छन्द आदि दस कारण बताये हैं जिनका अर्थ भावार्थ में कर दिया गया है।

श्रमण धर्म - मोक्ष की साधन रूप क्रियाओं के पालन करने को चारित्र धर्म कहते हैं। इसी का नाम श्रमण धर्म है। यद्यपि इसका नाम श्रमण अर्थात् साधु का धर्म है फिर भी सभी के लिये जानने योग्य तथा आचरणीय है। धर्म के ये ही दस लक्षण माने जाते हैं। अजैन सम्प्रदाय भी धर्म के इन लक्षणों को मानते हैं। वे इस प्रकार है -

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे य बोधव्वे।
सच्चं सोअं अकिंचणं च, बंभं च जइ धम्मो॥

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

कहीं कहीं इनके क्रम में अंतर मिलता है।

अपने से बड़े या असमर्थ की सेवा सुश्रूषा करने को वेयावच्च (वैयावृत्य) कहते हैं। इसके दस भेद हैं। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ७ में भी इनका वर्णन आया है।

जीव परिणाम दस - एक रूप को छोड़ कर दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाना परिणाम कहलाता है। अथवा विद्यमान पर्याय को छोड़ कर नवीन पर्याय को धारण कर लेना परिणाम कहलाता है। जीव के दस परिणाम बतलाए गए हैं -

१. गति परिणाम - नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति में से जीव को किसी भी गति की प्राप्ति होना गति परिणाम है। गति नामकर्म के उदय से जीव जब जिस गति में होता है तब वह उसी नाम से कहा जाताहै। जैसे नरक गति का जीव नारक, देव गति का जीव देव आदि।

किसी भी गति में जाने पर जीव के इन्द्रियाँ अवश्य होती हैं। इसलिए गति परिणाम के आगे इन्द्रिय परिणाम दिया गया है।

२. इन्द्रिय परिणाम - किसी भी गति को प्राप्त हुए जीव को श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय की प्राप्ति होना इन्द्रिय परिणाम कहलाता है।

इन्द्रिय की प्राप्ति होने पर राग द्वेष रूप कषाय की परिणति होती है। अतः इन्द्रिय परिणाम के आगे कषाय परिणाम कहा है।

३. कषाय परिणाम - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार कषायों का होना कषाय परिणाम कहलाता है। कषाय परिणाम के होने पर लेश्या अवश्य होती है किन्तु लेश्या के होने पर कषाय अवश्यम्भावी नहीं है। क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीव (सयोगी केवली) के शुक्ल लेश्या नौ वर्ष कम करोड़ पूर्व तक रह सकती है। इसका यह तात्पर्य है कि कषाय के सद्भाव में लेश्या की नियमा है और लेश्या के सद्भाव में कषाय की भजना है। आगे लेश्या परिणाम कहा जाता है।

४. लेश्या परिणाम - लेश्याएं छह हैं। कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या। इन लेश्याओं में से किसी भी लेश्या की प्राप्ति होना लेश्या परिणाम कहलाता है। योग के होने पर ही लेश्या होती है। अतः आगे योग परिणाम कहा जाता है।

५. योग परिणाम - मन, वचन, काया रूप योगों की प्राप्ति होना योग परिणाम कहलाता है।

संसारी प्राणियों के योग होने पर ही उपयोग होता है। अतः योग परिणाम के पश्चात् उपयोग परिणाम कहा गया है।

६. उपयोग परिणाम - साकार और अनाकार (निराकार) के भेद से उपयोग के दो भेद हैं। दर्शनोपयोग निराकार (निर्विकल्पक) कहलाता है और ज्ञानोपयोग साकार (सविकल्पक) होता है। इनके रूप में जीव की परिणति होना उपयोग परिणाम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपयोग परिणाम के होने पर ज्ञान परिणाम होता है। अतः आगे ज्ञान परिणाम बतलाया जाता है।

७. ज्ञान परिणाम - मति श्रुत आदि पाँच प्रकार के ज्ञान रूप में जीव की परिणति होना ज्ञान परिणाम कहलाता है। यही ज्ञान मिथ्यादृष्टि को अज्ञान स्वरूप होता है। अतः मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान विभङ्ग ज्ञान (अवधि अज्ञान) का भी इसी परिणाम में ग्रहण हो जाता है।

मतिज्ञान आदि के होने पर सम्यक्त्व रूप दर्शन परिणाम होता है। अतः आगे दर्शन (सम्यक्त्व) परिणाम का कथन है।

८. दर्शन परिणाम - सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और मिश्र (सम्यक् मिथ्यात्व) के भेद से दर्शन के तीन भेद हैं। इन में से किसी एक में जीव की परिणति होना दर्शन परिणाम है।

दर्शन के पश्चात् चारित्र होता है। अतः आगे चारित्र परिणाम का कथन किया जाता है -

९. चारित्र परिणाम - चारित्र के पाँच भेद है। सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापनीय चारित्र, परिहारविशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसंपराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र। इन पांचों चारित्रों में से जीव की किसी भी चारित्र में परिणति होना चारित्र परिणाम कहलाता है।

१०. वेद परिणाम - स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद में से जीव को किसी एक वेद की प्राप्ति होना वेद परिणाम कहलाता है।

अजीव अर्थात् जीव रहित वस्तुओं के परिवर्तन से होने वाली उनकी विविध अवस्थाओं को अजीव परिणाम कहते हैं। वे दस प्रकार के हैं। जिनका अर्थ भावार्थ में स्पष्ट कर दिया गया है। विशेष जानकारी के लिए प्रज्ञापना सूत्र का तेरहवां परिणाम पद देखना चाहिये।

अस्वाध्याय के भेद

दसविहे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते तंजहा - उक्कावाए, दिसिदाघे, गज्जिए, विज्जुए, णिग्घाए, जूयए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया, रयउग्घाए । दसविहे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते तंजहा - अट्ठि, मंसं, सोणिए, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए, सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवसयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे ।

पंचेन्द्रिय जीवों का संयम असंयम

पंचिंदियाणं जीवाणं असमारभमाणस्स दसविहे संजमे कज्जइ तंजहा - सोयामयाओ सुक्खाओ अववरोवित्ता भवइ, सोयामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ, एवं जाव फासामएणं दुक्खेणं असंजोइत्ता भवइ, एवं असंजमो वि भाणियव्वो ॥ ११८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतलिक्खए** - आन्तरिक्ष-आकाश सम्बन्धी, **असज्झाइए** - अस्वाध्याय,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कावाए - उल्कापात, **दिसिंदाघे** - दिग्दाह, **गज्जिए** - गर्जित, **विज्जुए** - विद्युत, **णिग्घाए** - निर्घात, **जूयए** - यूपक, **जक्खालित्ते** - यक्षादीप्त, **धूमिया** - धूमिका, **महिया** - महिका, **रयउग्घाए** - रज उद्‌घात, **असुइसामंते** - अशुचि सामन्त, **सुसाणसामंते** - श्मशान सामन्त, **चंदोवराए** - चन्द्रोपराग-चन्द्र ग्रहण, **सूरोवराए** - सूर्योपराग (सूर्य ग्रहण), **पडणे** - पतन-मरण, **रायवुग्गहे** - राजविग्रह ।

भावार्थ - वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, धर्मकथा और अनुप्रेक्षा रूप पांच प्रकार का स्वाध्याय है । जिस काल में अध्ययन रूप स्वाध्याय नहीं किया जा सकता हो उसे अस्वाध्याय कहते हैं । उनमें से आन्तरिक्ष - आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय दस प्रकार का कहा गया है यथा - १. उल्कापात - पूंछ वाले तारे आदि का टूटना । २. दिग्दाह - किसी दिशा में नगर जले जैसी लपटें उठने का दृश्य दिखाई दें। ३. गर्जित - आकाश में गर्जना का होना । ४. विद्युत् - बिजली चमकना । ५. निर्घात - कड़कना। ६. यूपक - सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रमा की प्रभा का जिस काल में सम्मिश्रण होता है वह यूपक कहलाता है । चन्द्र की प्रभा से आच्छादित सन्ध्या मालूम नहीं पड़ती है । शुक्लपक्ष की ◆ एकम, दूज और तीज को सन्ध्या का भान नहीं होता है । संध्या का यथावत् ज्ञान न होने के कारण इन तीन दिनों के अंदर प्रादोषिक काल का ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अतः इन तीन दिनों में सूत्रों का अस्वाध्याय होता है । ये तीन दिन अस्वाध्याय के हैं । ७. यक्षादीप्त - कभी कभी किसी दिशा में बिजली के समान जो प्रकाश होता है वह व्यन्तर देवकृत अग्नि दीपन यक्षादीप्त कहलाता है। ८. धूमिका - कोहरा या धुंवर जिससे अन्धेरा सा छा जाता है। ९. महिका - तुषार या बर्फ का गिरना। १०. रज उद्‌घात - स्वाभाविक परिणाम से धूल का गिरना रज उद्‌घात कहलाता है। अस्वाध्याय के समय को छोड़कर स्वाध्याय करना चाहिए क्योंकि अस्वाध्याय के समय में स्वाध्याय करने से कभी कभी व्यन्तर जाति आदि के देव कुछ उपद्रव कर सकते हैं। अतः अस्वाध्याय के समय में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। ऊपर लिखे हुए अस्वाध्यायों में से उल्कापात, दिग्दाह, विद्युत, यूपक और यक्षादीप्त इन पांच में एक पौरिसी तक अस्वाध्याय रहता है। गर्जित में दो पौरिसी तक। निर्घात में आठ प्रहर तक। धूमिका, महिका और रज उद्‌घात में जितने समय तक ये गिरते रहें तभी तक अस्वाध्याय काल रहता है ।

औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दस प्रकार का कहा गया है यथा - अस्थि - हड्डी, मांस, शोणित - खून, अशुचि सामन्त, श्मशान सामन्त, चन्द्रोपराग - चन्द्रग्रहण, सूर्योपराग - सूर्यग्रहण, पतन - मरण, राजविग्रह, उपाश्रय के समीप मृत औदारिक शरीर ।

हड्डी, मांस और खून ये तीनों चीजें मनुष्य और तिर्यञ्च के औदारिक शरीर में पाई जाती हैं ।

◆ व्यवहार भाष्य में शुक्ल पक्ष की दूज, तीज और चौथ ये तीन तिथियाँ यूपक मानी गई है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च की अपेक्षा द्रव्य क्षेत्र काल भाव से इस प्रकार अस्वाध्याय माना गया है । द्रव्य से - तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय की हड्डी, मांस और खून अस्वाध्याय के कारण हैं । क्षेत्र से - साठ हाथ की दूरी तक ये अस्वाध्याय के कारण हैं । काल से - उपरोक्त तीनों में से किसी के होने पर तीन पहर तक अस्वाध्याय काल माना गया है किन्तु बिल्ली आदि के द्वारा चूहे आदि को मार देने पर एक रात दिन तक अस्वाध्याय माना गया है । भाव से - नन्दीसूत्र आदि अस्वाध्याय काल में नहीं पढना चाहिए ।

मनुष्य सम्बन्धी हड्डी, मांस और खून के होने पर भी इसी तरह समझना चाहिए सिर्फ इतनी विशेषता है कि क्षेत्र की अपेक्षा एक सौ (१००) हाथ की दूरी तक । काल की अपेक्षा - एक दिन रात और समीप में किसी स्त्री के रजस्वला होने पर तीन दिन का अस्वाध्याय होता है । लड़की पैदा होने पर आठ दिन और लड़का पैदा होने पर सात दिन तक अस्वाध्याय रहता है । हड्डियों की अपेक्षा से ऐसा जानना चाहिए कि जीव द्वारा शरीर को छोड़ दिया जाने पर यानी मृत्यु हो जाने पर यदि उसकी हड्डियाँ न जली हों तो एक सौ (१००) हाथ के अन्दर बारह वर्ष तक अस्वाध्याय का कारण होती है । किन्तु अग्नि द्वारा दाह संस्कार कर दिया जाने पर या पानी में बह जाने पर हड्डियां अस्वाध्याय का कारण नहीं रहती है । हड्डियों को जमीन में गाड़ देने पर अस्वाध्याय माना गया है ।

४. अशुचि सामन्त - अशुचि रूप विष्टा आदि यदि नजदीक में पड़े हुए हों तो अस्वाध्याय होता है । इसके लिए ऐसा माना गया है कि जहाँ खून, विष्टा आदि अशुचि पदार्थ दृष्टि गोचर होते हों तथा उनकी दुर्गन्ध आती हों वहाँ तक अस्वाध्याय माना गया है ।

५. श्मशान सामन्त - श्मशान के नजदीक यानी जहाँ मनुष्य आदि का मृतक शरीर पडा हुआ हो, उसके आसपास कुछ दूरी तक यानी एक सौ (१००) हाथ तक अस्वाध्याय रहता है ।

६. चन्द्रग्रहण और ७. सूर्यग्रहण के समय भी अस्वाध्याय माना गया है । इसके लिए समय का परिमाण इस प्रकार माना गया है कि चन्द्र या सूर्य का ग्रहण होने पर यदि चन्द्र और सूर्य का सम्पूर्ण ग्रहण हो जाय तो ग्रसित होने के समय से लेकर चन्द्रग्रहण में उस रात्रि और दूसरा एक दिन रात छोड़कर तथा सूर्यग्रहण में वह दिन और दूसरा एक दिन रात छोड़ कर स्वाध्याय करना चाहिए किन्तु यदि उसी रात्रि अथवा उसी दिन में ग्रहण से छुटकारा हो जाय तो चन्द्रग्रहण में उसी रात्रि का शेष भाग और सूर्यग्रहण में उस दिन का शेष भाग और उस रात्रि तक अस्वाध्याय रहता है । चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का अस्वाध्याय आन्तरिक्ष यानी आकाश सम्बन्धी होने पर भी यहाँ पर इसकी विवक्षा नहीं की गई है । किन्तु चन्द्र और सूर्य का विमान पृथ्वीकायिक होने से इनकी गिनती औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्याय में की गई है।

८. पतन - पतन नाम मरण का है । राजा, मन्त्री, सेनापति या ग्राम के ठाकुर की मृत्यु हो जाने पर अस्वाध्याय माना गया है । राजा की मृत्यु होने पर जब तक दूसरा राजा गद्दी पर न बैठे तब तक

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

किसी प्रकार का भय होने पर अथवा निर्भय होने पर भी अस्वाध्याय माना गया है । दूसरे राजा के गद्दी पर बैठ जाने पर और शहर में निर्भय की घोषणा हो जाने पर भी एक दिन रात तक अस्वाध्याय रहता है । अतः उस समय तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । ग्राम के किसी प्रतिष्ठित पुरुष की या अधिकार सम्पन्न पुरुष की अथवा शय्यातर की और अन्य किसी पुरुष की भी उपाश्रय से सात घरों के अन्दर मृत्यु हो जाय तो एक दिन रात तक अस्वाध्याय रहता है । अर्थात् स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । यहाँ पर किसी किसी आचार्य का यह भी मत है कि ऐसे समय में स्वाध्याय बन्द करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु धीरे धीरे मन्द स्वर से स्वाध्याय करना चाहिए, उच्च स्वर से नहीं क्योंकि उच्च स्वर से स्वाध्याय करने पर लोक में निन्दा होने की सम्भावना रहती है ।

९. राजविग्रह – राजा, सेनापति, ग्राम का ठाकुर या किसी बड़े प्रतिष्ठित पुरुष के आपसी मल्लयुद्ध होने पर या दूसरे राजा के साथ संग्राम होने पर अस्वाध्याय माना गया है । जिस देश में जितने समय तक राजा आदि का संग्राम चलता रहे तब तक अस्वाध्याय काल माना गया है ।

१०. मृत औदारिक शरीर – उपाश्रय के समीप में अथवा उपाश्रय के अन्दर मनुष्य आदि का मृत औदारिक शरीर पड़ा हुआ हो तो एक सौ (१००) हाथ तक अस्वाध्याय माना गया है ।

पञ्चेन्द्रिय जीवों का समारम्भ यानी हिंसा नहीं करने वाले को दस प्रकार का संयम होता है यथा – वह उस जीव को श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है तथा उसे श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करवाता है। इसी तरह चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख से वञ्चित नहीं करता है और उसे इन इन्द्रियाँ सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करवाता है। इसी प्रकार असंयम भी कह देना चाहिए अर्थात् पञ्चेन्द्रिय जीवों का समारम्भ करने वाले पुरुष को दस प्रकार का असंयम होता है। वह उस जीव को पांचों इन्द्रियों सम्बन्धी सुख से वञ्चित करता है और उसे पांचों इन्द्रियाँ सम्बन्धी दुःख की प्राप्ति करवाता है ।

विवेचन – भगवती सूत्र शतक ३ उद्देशक ७ में '**गज्जिते**' के स्थान पर '**गह गज्जिअ**' पाठ है जिसका अर्थ है – ग्रहों की गति के कारण आकाश में होने वाली कड़कड़ाहट या गर्जना।

मेघों से आच्छादित या अनाच्छादित आकाश के अन्दर व्यन्तर देवता कृत महान् गर्जने की ध्वनि होना निर्घात कहलाता है।

अस्वाध्यायों का अधिक विस्तार व्यवहार सूत्र भाष्य और निर्युक्ति उद्देशक ७ से जानना चाहिए।

दस सूक्ष्म, महानदियाँ

दस सुहुमा पण्णत्ता तंजहा – पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरियसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लयणसुहुमे, सिणेहसुहुमे, गणियसुहुमे, भंगसुहुमे । जंबूमंदर दाहिणेणं गंगासिंधुमहाणईओ दस महाणईओ समप्पेंति तंजहा – जउणा, सरऊ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवी, कोसी, मही, सिंधू, विवच्छा, विभासा, एरावई, चंदभागा । जंबूमंदरउत्तरेणं रत्ता रत्तवईमहाणईओ दस महाणईओ समप्पेंति तंजहा - किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, तीरा, महातीरा, इंदा, इंदसेणा, वारिसेणा, महाभोगा ।

राजधानियाँ और दीक्षित राजा

जंबूद्दीवे दीवे भरहे वासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ तंजहा -

चंपा महुरा वाणारसी, य सावत्थी तह य साएयं ।
हत्थिणाउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबी रायगिहं ।। १ ॥

एयासु णं दस रायहाणीसु दस रायाणो मुंडे भवित्ता जाव पव्वइया तंजहा - भरहे, सगरो, मघवं, सणंकुमारो, संती, कुंथू, अरे, महापउमे, हरिसेणो, जयणामे॥११९।

कठिन शब्दार्थ - **सुहुमा** - सूक्ष्म, **पणगसुहुमे** - पनकसूक्ष्म, **सिणेह सुहुमे** - स्नेह सूक्ष्म, **गणिय सुहुमे** - गणित सूक्ष्म, **भंगसुहुमे** - भंग सूक्ष्म ।

भावार्थ - दस सूक्ष्म कहे गये हैं यथा - प्राण सूक्ष्म - कुन्थुआ आदि। पनक सूक्ष्म - लीलण फूलण, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म - हरी लीलोती, नवीन अंकुर, पुष्पसूक्ष्म - फूल, अण्ड सूक्ष्म - मक्खी छिपकली आदि के अण्डे, लयनसूक्ष्म - कीड़ी नगरा, स्नेहसूक्ष्म - ओस, बर्फ, ओले आदि का सूक्ष्म जल, गणितसूक्ष्म - गणित सम्बन्धी जोड़ बाकी आदि, भङ्गसूक्ष्म - विकल्प-भांगे आदि ।

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण में गङ्गा सिंधु महानदियों में दस महानदियाँ जाकर मिलती हैं अर्थात् पांच नदियाँ तो गङ्गा नदी के अन्दर जाकर मिलती है और पांच नदियाँ सिन्धु नदी में जाकर मिलती हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - यमुना, सरयू, आवी, कोसी, मही, सिन्धु, विवत्सा, विभाषा, ऐरावती, चन्द्रभागा । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के उत्तर में रक्ता और रक्तवती महानदियों में दस महानदियाँ जाकर मिलती हैं अर्थात् पांच नदियाँ रक्ता नदी में जाकर मिलती हैं और पांच नदियां रक्तवती नदी में जाकर मिलती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - कृष्णा, महाकृष्णा, नीला, महानीला, तीरा, महातीरा, इन्द्रा, इन्द्रसेना, वारिसेना और महाभोगा ।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में दस राजधानियाँ कही गई है उनके नाम इस प्रकार हैं - चम्पा, मथुरा, बनारस, श्रावस्ती, साकेत-अयोध्या, हस्तिनापुर, कम्पिलपुर, मिथिला, कोशाम्बी और राजगृह । इन दस राजधानियों में दस राजा मुण्डित होकर दीक्षित हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं - भरत, सगर, मघवान्, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, महापद्म, हरिसेन और जयनामा ।

विवेचन - सूक्ष्म दस प्रकार के होते हैं। वे ये हैं -

१. प्राण सूक्ष्म २. पनक सूक्ष्म ३. बीज सूक्ष्म ४. हरित सूक्ष्म ५. पुष्प सूक्ष्म ६. अण्ड सूक्ष्म ७. लयन सूक्ष्म (उत्तिंग सूक्ष्म) ८. स्नेह सूक्ष्म ९. गणित सूक्ष्म १०. भङ्ग सूक्ष्म।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन में से आठ की व्याख्या तो इसी भाग के आठवें स्थानक में दे दी गई है।

९. गणित सूक्ष्म - गणित यानि संख्या की जोड़ (संकलन) आदि को गणित सूक्ष्म कहते हैं, क्योंकि इसका ज्ञान भी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही होता है।

१०. भङ्ग सूक्ष्म - वस्तु विकल्प को भङ्ग कहते हैं। यह भङ्ग दो प्रकार का है। स्थान भङ्ग और क्रम भङ्ग। जैसे हिंसा के विषय में स्थान भङ्ग कल्पना इस प्रकार है -

(क) द्रव्य से हिंसा, भाव से नहीं।

(ख) भाव से हिंसा, द्रव्य से नहीं।

(ग) द्रव्य और भाव दोनों से हिंसा।

(घ) द्रव्य और भाव दोनों से हिंसा नहीं।

हिंसा के ही विषय में क्रम भङ्ग कल्पना इस प्रकार है -

(क) द्रव्य और भाव से हिंसा।

(ख) द्रव्य से हिंसा, भाव से नहीं।

(ग) भाव से हिंसा, द्रव्य से नहीं।

(घ) न द्रव्य से हिंसा, न भाव से हिंसा।

यह भङ्ग सूक्ष्म कहलाता है क्योंकि इसमें विकल्प विशेष होने के कारण इसके गहन (गूढ) भाव सूक्ष्म बुद्धि से ही जाने जा सकते हैं।

दीक्षा लेने वाले दस चक्रवर्ती राजा - दस चक्रवर्ती राजाओं ने दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण किया। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. भरत २. सगर ३. मघवान् ४. सनत्कुमार ५. शान्तिनाथ ६. कुन्थुनाथ ७. अरनाथ ८. महापद्म ९. हरिषेण १०. जयसेन। ये दस ही चक्रवर्ती मोक्ष में गये हैं।

दस दिशाएँ

जंबूद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं दसदसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते । जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु, एत्थ णं अट्ठ पएसिए रुयगे पण्णत्ते जओ णं इमाओ दस दिसाओ पवहंति तंजहा - पुरच्छिमा, पुरच्छिमदाहिणा, दाहिणा, दाहिणपच्चत्थिमा, पच्चत्थिमा, पच्चत्थिमुत्तरा, उत्तरा, उत्तरपुरच्छिमा, उड्ढा, अहो । एएसि णं दसण्हं दिसाणं दस णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इंदा अग्गीइ जमा णेरई, वारुणी य वायव्वा ।
सोमा ईसाणा वि य विमला य तमा य बोद्धव्वा ।। १ ।।

लवण समुद्र और पाताल कलश

लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं । गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते । लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते । सव्वे वि णं महापायाला दसदसाइं जोयणसहस्साइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभाए एगपएसियाए सेढीए दसदसाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, तेसि णं महापायालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थसमा दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं खुड्डा पायाला दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता-मूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभाए एगपएसियाए सेढीए दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । उवरिं मुहमूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । तेसि णं खुड्डापायालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थसमा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता। धायइसंडगा णं मंदरा दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं धरणियले देसूणाइं दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । पुक्खरवरदीवड्ढगा णं मंदरा दस जोयण एवं चेव । सव्वे वि णं वट्टवेयड्ढ पव्वया दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थसमा पल्लगसंठाणसंठिया पण्णत्ता, दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

दस क्षेत्र और पर्वत

जंबूद्दीवे दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता तंजहा - भरहे, एरवए, हेमवए, हिरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे, पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा। माणुस्सुत्तरे णं पव्वए मूले दस बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं अंजणपव्वया दसजोयणसयाइं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं दहिमुहपव्वया दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं सव्वत्थसमा पल्लगसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। सव्वे वि णं रइकरगपव्वया दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

सव्वत्थसमा झल्लरि संठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। रुयगवरे णं पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं उवरिं दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं उवरिं दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । एवं कुंडलवरे वि॥ १२०॥

कठिन शब्दार्थ - **धरणितले** - पृथ्वी पर, **विक्खंभेणं** - विष्कम्भ (चौडा), **सव्वग्गेणं** - सर्वाग्र-सब मिला कर, **खुड्डुगपयरेसु** - क्षुद्र प्रतर-सबसे छोटे प्रतर में, **रुयगे** - रुचक प्रदेश, **पवहंति** - निकलते हैं, **अग्गीइ** - आग्नेय, **गोतित्थविरहिए** - गोतीर्थ रहित, **खेत्ते** - क्षेत्र, **उदगमाले** - उदकमाला (उदक शिखा), **महापायाला** - महापाताल, **मुहमूले** - मुख मूल में, **कुड्डा** - कुड्य-दीवारें, **सव्ववइरामया** - सर्ववज्रमय, **पल्लगसंठाणसंठिया** - पर्यंक संस्थान संस्थित।

भावार्थ - जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत दस सौ योजन अर्थात् एक हजार योजन जमीन में है । पृथ्वी पर दस हजार योजन चौड़ा है, ऊपर यानी पण्डक वन में दस सौ योजन यानी एक हजार योजन चौड़ा है और सब मिला कर एक लाख योजन का है । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के बीच भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे का सबसे छोटा प्रतर है वहाँ आठ प्रदेश वाले रुचक प्रदेश कहे गये हैं । जिन से ये दस दिशाएं निकलती हैं यथा - १. पूर्व २. पूर्व और दक्षिण के बीच की यानी आग्नेय कोण, ३. दक्षिण, ४. दक्षिण पश्चिम के बीच की यानी नैऋत्य कोण, ५. पश्चिम, ६. पश्चिम उत्तर के बीच की यानी वायव्य कोण, ७. उत्तर, ८. उत्तर पूर्व के बीच की यानी ईशान कोण, ९. ऊँची दिशा, १०. नीची दिशा । इन दस दिशाओं के दस नाम कहे गये हैं उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं - इन्द्रा-पूर्व, आग्नेय, यमा-दक्षिण, नैऋत्य, वारुणी-पश्चिम, वायव्य, सोमा-उत्तर, ईशान, विमला-ऊंची दिशा और तमा-नीची दिशा । लवण समुद्र का गोतीर्थ रहित क्षेत्र यानी समतल भाग दस हजार योजन का कहा गया है। लवण समुद्र का उदगमाला यानी उदक शिखा दस हजार योजन की कही गयी है । सब यानी चारों महापाताल कलशे एक लाख योजन के ऊंडे कहे गये हैं, मूल भाग में दस हजार योजन के चौडे कहे गये हैं, बीच में एक प्रदेश की श्रेणी से बढते हुए एक लाख योजन के चौडे कहे गये हैं और ऊपर मुख मूल में दस हजार योजन चौडे कहे गये हैं । उन महापाताल कलशों की कुड्य यानी दीवारें सम्पूर्ण वज्र की बनी हुई हैं। वे सब जगह समान हैं। उनकी मोटाई दस सौ योजन यानी एक हजार योजन की कही गई है । सब यानी ७८८४ छोटे पाताल कलशे एक हजार योजन ऊंडे कहे गये हैं, मूल में एक सौ योजन चौडे कहे गये हैं। बीच में एक प्रदेश की श्रेणी से बढते हुए एक हजार योजन के चौडे कहे गये हैं और ऊपर मुखप्रदेश में एक सौ योजन चौड़े कहे गये हैं । उन छोटे पाताल कलशों की दीवारें सर्ववज्रमय बनी हुई हैं और सब जगह समान हैं, उनकी मोटाई दस योजन की कही गयी है । धातकीखण्ड के मेरुपर्वत एक हजार योजन ऊंडे हैं जमीन पर देशोन दस हजार योजन चौड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहे गये हैं और ऊपर एक हजार योजन के चौडे कहे गये हैं । अर्द्धपुष्करवर द्वीप के मेरुपर्वतों का वर्णन भी इसी प्रकार है ।

सब यानी बीस वृत्त (गोल) वैताढ्य पर्वत एक हजार योजन के ऊंचे हैं, एक हजार गाउ यानी कोस के ऊंडे हैं, सब जगह समान परिमाण वाले हैं, पर्यंक संस्थान वाले हैं और एक हजार योजन के चौड़े कहे गये हैं ।

जम्बूद्वीप में दस क्षेत्र कहे गये हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - भरत, एरवत, हेमवय, हिरण्णवय, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, पूर्वविदेह, अपर विदेह यानी पश्चिम विदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु। मानुष्योत्तर पर्वत मूल भाग में दस सौ बाईस (एक हजार बाईस) योजन चौड़ा कहा गया है। सब यानी चारों अंजन पर्वत एक हजार योजन ऊंडे हैं, मूल भाग में दस हजार योजन चौड़े हैं और ऊपर एक हजार योजन चौड़े हैं। सब यानी सोलह दधिमुख पर्वत एक हजार योजन ऊंडे हैं। ये सब जगह समान परिमाण वाले हैं। वे पाला के आकार संस्थान वाले हैं और दस हजार योजन के चौड़े कह गये हैं । सब यानी चार रतिकर पर्वत एक हजार योजन के ऊंचे हैं और एक हजार गाउ यानी कोस के ऊंडे हैं वे सब जगह समान परिमाण वाले हैं। वे झालर के आकार संस्थान वाले हैं और एक हजार योजन के चौड़े कहे गये हैं। रुचकवर पर्वत एक हजार योजन ऊंडा है। मूल भाग में दस हजार योजन चौड़ा है और ऊपर एक हजार योजन का चौड़ा है। इसी तरह रूचकवर पर्वत के समान ही कुण्डलवर पर्वत का वर्णन भी जानना चाहिए।

विवेचन - दिशाएं दस हैं। उनके नाम -

१. पूर्व २. दक्षिण ३. पश्चिम ४. उत्तर। ये चार मुख्य दिशाएं हैं। इन चार दिशाओं के अन्तराल में चार विदिशाएं हैं। यथा - ५. आग्नेयकोण ६. नैर्ऋत्य कोण ७. वायव्य कोण ८. ईशान कोण ९. ऊर्ध्व दिशा १०. अधो दिशा।

जिधर सूर्य उदय होता है वह पूर्व दिशा है। जिधर सूर्य अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। सूर्योदय की तरफ मुँह करके खड़े हुए पुरुष के सन्मुख पूर्व दिशा है। उसके पीठ पीछे की पश्चिम दिशा है। उस पुरुष के दाहिने हाथ की तरफ दक्षिण दिशा और बाएं हाथ की तरफ उत्तर दिशा है। पूर्व और दक्षिण के बीच की आग्नेय कोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच की नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम और उत्तर दिशा के बीच की वायव्य कोण, उत्तर और पूर्व दिशा के बीच की ईशान कोण कहलाती है। ऊपर की दिशा ऊर्ध्व दिशा और नीचे की दिशा अधो दिशा कहलाती है।

इन दस दिशाओं के गुण निष्पन्न नाम ये हैं -

१. ऐन्द्री २. आग्नेयी ३. याम्या ४. नैर्ऋती ५. वारुणी ६. वायव्य ७. सौम्या ८. ऐशानी ९. विमला १०. तमा।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पूर्व दिशा का अधिष्ठाता देव इन्द्र है। इसलिए इसको ऐन्द्री कहते हैं। इसी प्रकार अग्निकोण का स्वामी अग्नि देवता है। दक्षिण दिशा का अधिष्ठाता यम देवता है। नैर्ऋत्य कोण का स्वामी नैर्ऋति देव है। पश्चिम दिशा का अधिष्ठाता वरुण देव है। वायव्य कोण का स्वामी वायु देव है। उत्तर दिशा का स्वामी सोमदेव है। ईशान कोण का अधिष्ठाता ईशान देव है। अपने अपने अधिष्ठातृ देवों के नाम से ही उन दिशाओं और विदिशाओं के नाम हैं। अतएव ये गुणनिष्पन्न नाम कहलाते हैं। ऊर्ध्व दिशा को विमला कहते हैं क्योंकि ऊपर अन्धकार न होने से वह निर्मल है, अतएव विमला कहलाती है। अधो दिशा तमा कहलाती है। गाढ़ अन्धकार युक्त होने से वह रात्रि तुल्य है अतएव इसका गुण निष्पन्न नाम तमा है।

द्रव्यानुयोग

दसविहे दवियाणुओगे पण्णत्ते तंजहा - दवियाणुओगे, माउयाणुओगे, एगट्ठियाणुओगे, करणाणुओगे, अप्पियाणप्पियाणुओगे, भावियाभावियाणुओगे, बाहिराबाहिराणुओगे, सासयासासयाणुओगे, तहणाणाणुओगे, अतहणाणाणुओगे॥ १२१॥

कठिन शब्दार्थ - दवियाणुओगे (दव्वाणुओगे) - द्रव्यानुयोग, **एगट्ठियाणुओगे** - एकार्थिकानुयोग, **करणाणुओगे** - करणानुयोग, **अप्पियाणप्पियाणुओगे** - अर्पितानर्पितानुयोग, **भावियाभावियाणुओगे** - भाविताभावितानुयोग, **बाहिराबाहिराणुओगे** - बाह्याबाह्यानुयोग, **सासयासासयाणुओगे** - शाश्वताशाश्वतानुयोग, **तहणाणाणुओगे** - तथाज्ञानानुयोग ।

भावार्थ - सूत्र का अर्थ के साथ ठीक ठीक सम्बन्ध बैठाना अनुयोग कहलाता है । इसके चार भेद हैं - चरणकरणानुयोग , धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग । चरणसत्तरि करणसत्तरि अर्थात् साधुधर्म और श्रावक धर्म का प्रतिपादन करने वाले अनुयोग को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तीर्थंकर, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, चरमशरीरी आदि उत्तम पुरुषों का कथाविषयक अनुयोग धर्मकथानुयोग है । चन्द्र सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों की गति तथा गणित के दूसरे विषयों को बताने वाला अनुयोग गणितानुयोग कहलाता है । जिसमें जीव आदि द्रव्यों का विचार हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं । द्रव्यानुयोग दस प्रकार का कहा गया है । यथा - १. जिसमें जीवादि द्रव्यों का विचार किया गया हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं । २. मातृकानुयोग उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन पदों को मातृकापद कहते हैं। इन्हें जीवादि द्रव्यों में घटाना मातृकानुयोग है । ३. ऐकार्थिकानुयोग - एक अर्थ वाले शब्दों का अनुयोग करना अथवा समान अर्थ वाले शब्दों की व्युत्पत्ति द्वारा वाच्यार्थ में संगति बैठाना एकार्थिकानुयोग है । ४. करणानुयोग - करण अर्थात् क्रिया के प्रति साधक कारणों का विचार करना करणानुयोग है । ५. अर्पितानर्पितानुयोग - विशेषण सहित वस्तु को यानी विशेष को अर्पित कहते हैं और विशेषण रहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु को यानी सामान्य को अनर्पित कहते हैं । जिसमें सामान्य विशेष का विचार हो उसे अर्पितानर्पितानुयोग कहते हैं । ६. भाविताभावितानुयोग - संस्कार सहित और संस्कार रहित वस्तुओं का विचार करना भाविताभावितानुयोग है। ७. बाह्याबाह्यानुयोग-बाहरी और आभ्यन्तर पदार्थों का विचार करना बाह्याबाह्यानुयोग कहलाता है । ८. शाश्वताशाश्वतानुयोग - जिसमें शाश्वत यानी नित्य और अशाश्वत यानी अनित्य का विचार हो उसे शाश्वताशाश्वतानुयोग कहते हैं । ९. तथाज्ञानानुयोग - वस्तु के यथार्थ स्वरूप का विचार करना तथाज्ञानानुयोग है । १०. अतथाज्ञानानुयोग - मिथ्यादृष्टि जीव के विपरीत ज्ञान को अतथाज्ञानानुयोग कहते हैं ।

उत्पात पर्वतों के परिमाण

चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिंच्छिकूडे उप्पायपव्वए मूले दस बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं पण्णत्ते । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दसगाउयसयाइं उव्वेहेणं मूले दस जोयण सयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पायपव्वए एवं चेव । एवं वरुणस्स वि एवं वेसमणस्स वि । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पायपव्वए मूले दस बावीसे जोयणसए विक्खंभेणं पण्णत्ते । बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स एवं चेव जहा चमरस्स लोगपालाणं, तं चेव बलिस्स वि । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो धरणप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दसजोयण सयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते । धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो महाकालप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एवं चेव, एवं जाव संखवालस्स । एवं भूयाणंदस्स वि, एवं लोगपालाणं वि से जहा धरणस्स एवं जाव थणियकुमाराणं सलोगपालाणं भाणियव्वं, सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिसणामगा । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पायपव्वए दस जोयण सहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं दस गाउयसहस्साइं उव्वेहेणं मूले दस जोयण सहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते । सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो जहा सक्कस्स तहा सव्वेसिं लोगपालाणं सव्वेसिं च इंदाणं जाव अच्चुयत्ति सव्वेसिं पमाणमेगं ।। १२२ ।।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **उप्पायपव्वए** - उत्पात पर्वत, **पमाणं** - प्रमाण ।

भावार्थ - असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा, चरमेन्द्र के तिगिंच्छिकूट उत्पातपर्वत मूल भाग में एक हजार बाईस योजन चौड़ा है । असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र के सोम लोक-पाल के सोमप्रभ उत्पातपर्वत दस सौ योजन यानी एक हजार योजन ऊंचा है, दस सौ गाऊ ऊंडा है और मूल भाग में दस सौ योजन चौड़ा है । असुरकुमारों के इन्द्र असुरकुमारों के राजा चमरेन्द्र के यम लोकपाल के यमप्रभ उत्पात पर्वत का वर्णन भी इसी तरह कर देना चाहिए । इसी प्रकार वरुण और वैश्रमण का भी कथन कर देना चाहिए । वैरोचनेन्द्र वैरोचन राजा बलीन्द्र का रुचकेन्द्र उत्पातपर्वत मूल में एक हजार बाईस योजन चौड़ा है । बलीन्द्र के सोम लोकपाल का कथन चमरेन्द्र के लोकपाल के समान कह देना चाहिए । नागकुमारों के इन्द्र नागकुमारों के राजा धरणेन्द्र का धरणप्रभ उत्पातपर्वत दस सौ यौजन ऊंचा है । दस सौ गाऊ धरती में ऊंड़ा है और मूल में दस सौ योजन चौड़ा है । नाग कुमारों के इन्द्र नागकुमारों के राजा धरणेन्द्र के कालवास लोकपाल का महाकालप्रभ उत्पात पर्वत दस. सौ योजन ऊंचा है । दस सौ गाऊ धरती में ऊंडा है और दस सौ योजन मूल में चौड़ा है । इसी तरह शंखपाल तक का कथन कर देना चाहिए । जिस प्रकार धरणेन्द्र का कथन किया है उसी प्रकार भूतानन्द का और उसके लोकपालों का तथा यावत् स्तनितकुमार और उनके लोकपालों तक का कथन कर देना चाहिए । उन सब के उत्पात पर्वतों के नाम उनके नामों के समान ही कहने चाहिए । देवों के इन्द्र देवों के राजा शक्रेन्द्र का शक्रप्रभ उत्पात पर्वत दस हजार योजन ऊंचा है, दस हजार गाऊ धरती में ऊंडा है और मूल भाग में दस हजार योजन चौड़ा है। देवों के इन्द्र देवों के राजा शक्रेन्द्र के सोम लोकपाल का सोमप्रभ उत्पात पर्वत दस हजार योजन ऊंचा, दस हजार गाऊ ऊंडा और मूल में दस हजार योजन चौड़ा है । जिस प्रकार शक्रेन्द्र के उत्पात पर्वत का वर्णन किया है उसी प्रकार अच्युतेन्द्र तक सब इन्द्रों के और उनके सब लोकपालों के उत्पात पर्वतों का कथन कर देना चाहिए । सब के उत्पात पर्वतों का प्रमाण एक समान है ।

अवगाहना

बायर वणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दस जोयण सयाइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता। जलचर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं उक्कोसेणं दस जोयण सयाइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता । उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं उक्कोसेणं एवं चेव ।

तीर्थंकर अन्तर, दस अनन्तक

संभवाओ णं अरहाओ अभिणंदणे अरहा दसहिं सागरोवम कोडिसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे । दसविहे अणंतए पण्णत्ते तंजहा - णामाणंतए, ठवणाणंतए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दव्वाणंतए, गणणाणंतए, पएसाणंतए, एगओणंतए, दुहओणंतए, देसवित्थाराणंतए, सव्ववित्थाराणंतए, सासयाणंतए। उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता । अत्थिणत्थिप्पवायपुव्वस्स णं दस चूलवत्थू पण्णत्ता ।

प्रतिसेवना

दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता तंजहा -

दप्पपमायणाभोगे, आउरे आवईसु य ।
संकिए सहसक्कारे, भयप्पओसा य वीमंसा ॥ १॥

आलोचना और प्रायश्चित्त

दस आलोयणा दोसा पण्णत्ता तंजहा -

आकंपइत्ताणुमाणइत्ता, जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा ।
छण्णं सद्दाउलगं बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥ २॥

दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ अत्तदोसमालोइत्तए तंजहा - जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे एवं जहा अट्ठठाणे जाव खंते दंते अमायी अपच्छाणुतावी । दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहइ आलोयणं पडिच्छित्तए तंजहा - आयारवं, अवहारवं, जाव अवायदंसी, पियधम्मे, दढधम्मे । दसविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा - आलोयणारिहे जाव अणवठ्ठप्पारिहे पारंचियारिहे॥ १२३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णामाणंतए** - नाम अनन्तक, **दुहओणंतए** - द्विधा अनन्तक, **देसवित्थाराणंतए**- देश विस्तार अनन्तक, **चूलवत्थू** - चूलिका वस्तु, **वीमंसा** - विमर्श-परीक्षा, **दप्प** - दर्प, **आउरे** - आतुर, **सद्दाउलगं** - शब्दाकुल, **अत्तदोसमालोइत्तए** - अपने दोषों की आलोचना करने के लिये, **अपच्छाणुतावी**- अपश्चानुतापी।

भावार्थ - बादर वनस्पति कायिक जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दस सौ योजन की अर्थात् एक हजार योजन की कही कई है । जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दस सौ योजन की अर्थात् एक हजार योजन की कही गई है । उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्च पन्चेन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दस सौ योजन की अर्थात् एक हजार योजन की कही गई है ।

तीसरे तीर्थंकर भगवान् श्री सम्भवनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् दस लाख करोड़ सागरोपम बीतने पर चौथे तीर्थंकर भगवान् श्री अभिनन्दन स्वामी उत्पन्न हुए थे ।

दस प्रकार का अनन्तक कहा गया है यथा - १. नाम अनन्तक - सचेतन या अचेतन किसी वस्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का 'अनन्तक' ऐसा नाम देना २. स्थापना अनन्तक - किसी पदार्थ में 'अनन्तक' की स्थापना करना ३. द्रव्य अनन्तक - जीव और पुद्गल में रहने वाली अनन्तता ४. गणना अनन्तक - एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्यात, अनन्त इस प्रकार केवल गिनती करना गणनानन्तक है ५. प्रदेश अनन्तक - आकाश प्रदेशों की अनन्तता ६. एकतो अनन्तक - भूतकाल या भविष्य काल को एकतो अनन्तक कहते हैं क्योंकि भूत काल आदि की अपेक्षा अनन्त है और भविष्यत् काल समाप्ति की अपेक्षा अनन्त है ७. द्विधा अनन्तक - जो प्रारम्भ और समाप्ति यानी आदि और अन्त दोनों अपेक्षाओं से अनन्त हो, जैसे काल ८. देश विस्तारानन्तक - जो नीचे और ऊपर यानी मोटाई की अपेक्षा अन्त वाला होने पर भी विस्तार की अपेक्षा अनन्त हो, जैसे आकाश का एक प्रतर । आकाश के एक प्रतर की मोटाई एक प्रदेश जितनी होती है इसलिए मोटाई की अपेक्षा उसका दोनों तरफ से अन्त है। लम्बाई और चौड़ाई की अपेक्षा वह अनन्त है, इसलिये देश अर्थात् एक तरफ से विस्तार अनन्तक है ९. सर्व विस्तार अनन्तक - जो लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई सभी की अपेक्षा अनन्त हो, जैसे आकाशास्तिकाय १०. शाश्वत अनन्तक - जिसका कभी आदि और अन्त न हो, जैसे जीव आदि द्रव्य। उत्पाद पूर्व की दस वस्तुएं यानी अध्याय कहे गये हैं । अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व की दस चूलिका वस्तुएं कही गई हैं।

प्रतिसेवना - दोषों का सेवन करने से संयम की जो विराधना होती है उसे प्रतिसेवना कहते हैं, वह दस प्रकार की कही गई है यथा - १. दर्प प्रतिसेवना - अहंकार से होने वाली संयम की विराधना। २. प्रमाद प्रतिसेवना - मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा इन पांच प्रमादों के सेवन से होने वाली संयम की विराधना। ३. अनाभोग प्रतिसेवना - विस्मृति अनुपयोग से होने वाली संयम की विराधना । ४. आतुर प्रतिसेवना - किसी पीड़ा से व्याकुल होने पर की गई संयम की विराधना । ५. आपत्प्रतिसेवना - किसी आपत्ति के आने पर की गई संयम की विराधना । ६. शंकित प्रतिसेवना - ग्रहण करने योग्य आहार आदि में भी किसी दोष की शंका हो जाने पर उसको ले लेना शंकित प्रतिसेवना है । ७. सहसाकार प्रतिसेवना - पहले विचारे बिना अकस्मात् किसी दोष के लग जाने से होने वाली संयम की विराधना । ८. भय प्रतिसेवना - भय से संयम की विराधना करना । ९. प्रद्वेष प्रतिसेवना - क्रोधादि कषाय करने से एवं किसी पर द्वेष या ईर्ष्या से संयम की विराधना करना । १०. विमर्श प्रतिसेवना - शिष्य की परीक्षा आदि के लिए की गई संयम विराधना ।

आलोचना के दस दोष कहे गये हैं यथा - १. प्रसन्न होने पर गुरु महाराज थोड़ा प्रायश्चित्त देंगे यह सोच कर उन्हें सेवा आदि से प्रसन्न करके फिर उनके पास दोषों की आलोचना करना । २. ये आचार्य दोषों का थोड़ा दण्ड देते हैं ऐसा अनुमान लगा कर फिर उनके पास दोषों की आलोचना करना। ३. दृष्ट - जिस दोष को आचार्य आदि ने देख लिया हो उसी की आलोचना करना । ४. बादर - सिर्फ बड़े बड़े अपराधों की आलोचना करना। ५. सूक्ष्म - सिर्फ छोटे छोटे अपराधों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना करना । ६. प्रच्छन्न - गुरु महाराज अच्छी तरह सुन न सकें इस तरह धीरे धीरे आलोचना करना। ७. शब्दाकुल-दूसरों को सुनाने के लिए जोर जोर से बोल कर आलोचना करना । ८. बहुजन - एक ही दोष की बहुत से गुरुओं के पास आलोचना करना। ९. अव्यक्त - किस दोष में कैसा प्रायश्चित्त दिया जाता है इस बात का जिसको पूरा ज्ञान नहीं है ऐसे अगीतार्थ के पास आलोचना करना। १०. तत्सेवी - जिस दोष की आलोचना करनी हो, उसी दोष को सेवन करने वाले आचार्य के पास आलोचना करना । ये आलोचना के दस दोष हैं।

दस गुणों से युक्त अनगार-साधु अपने दोषों की आलोचना करने के योग्य होता है यथा - जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, विनय सम्पन्न, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, क्षान्त - क्षमा वाला, दान्त-इन्द्रियों को वश में रखने वाला, अमायी - कपट रहित, अपश्चानुतापी-आलोचना लेने के बाद जो पश्चात्ताप न करे। मैंने आलोचना व्यर्थ ही की क्योंकि इस दोष का गुरु महाराज को पता ही नहीं था।

दस गुणों से युक्त अनगार आलोचना देने के योग्य होता है यथा - आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, अपव्रीडक, प्रकुर्वक, अपरिस्रावी, निर्यापक, अपायदर्शी। इन आठ गुणों का खुलासा अर्थ आठवें ठाणे में दे दिया गया है । ९. प्रिय धर्मी - जिसे धर्म प्रिय हो १०. दृढ़ धर्मी, जो धर्म में दृढ़ हो। इन दस गुणों से युक्त अनगार आलोचना सुनने के योग्य होता है।

दस प्रकार का प्रायश्चित्त कहा गया है यथा - १. आलोचनार्ह - आलोचना के योग्य, २. प्रतिक्रमण के योग्य, ३. आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य, ४. विवेकार्ह - अशुद्ध आहार पानी आदि परिठवने योग्य, ५. कायोत्सर्ग के योग्य, ६. तप के योग्य, ७. दीक्षा पर्याय का छेद करने के योग्य ८. मूलार्ह अर्थात् फिर से महाव्रत लेने योग्य ९. अनवस्थाप्यार्ह - तप के बाद दुबारा दीक्षा देने के योग्य। जब तक अमुक प्रकार का विशेष तप न करे उसे दीक्षा नहीं दी जा सकती है । तप के बाद दुबारा दीक्षा लेने पर ही जिस प्रायश्चित्त की शुद्धि हो । १०. पारांचिकार्ह - गच्छ से बाहर करने योग्य। जिस प्रायश्चित्त में साधु को संघ से बाहर निकाल दिया जाय । साध्वी या रानी आदि का शील भङ्ग करने पर यह प्रायश्चित्त दिया जाता है । यह प्रायश्चित्त महापराक्रम वाले आचार्य को ही दिया जाता है। इसकी शुद्धि के लिए छह महीने से लेकर बारह वर्ष तक गच्छ छोड़ कर जिनकल्पी की तरह कठोर तपस्या करनी पड़ती है । उपाध्याय के लिए नवमें प्रायश्चित्त तक का विधान है और सामान्य साधु के लिए आठवें प्रायश्चित्त तक का ही विधान है। जहां तक चौदह पूर्वधारी और पहले संहनन वाले होते हैं वहीं तक दसों प्रायश्चित्त रहते हैं । उनका विच्छेद होने के बाद मूलार्ह तक आठ ही प्रायश्चित्त होते हैं ।

विवेचन - जिस वस्तु का संख्या आदि किसी प्रकार से अन्त न हो उसे अनन्तक कहते हैं। इसके दस भेद भावार्थ में बता दिये गये हैं।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

दस प्रतिसेवना में 'संकिए' शब्द आया है जिसके दो अर्थ किये हैं - १. शंकित प्रतिसेवना जिसका भावार्थ में अर्थ दे दिया है २. संकीर्ण प्रतिसेवना जिसका अर्थ है - स्वपक्ष और पर पक्ष से होने वाली जगह की तंगी के कारण संयम का उल्लंघन करना।

आलोचना के दस दोष - जानते या अजानते लगे हुए दोष को आचार्य या बड़े साधु के सामने निवेदन करके उसके लिये उचित प्रायश्चित्त लेना आलोचना है। आलोचना का शब्दार्थ है, अपने दोषों को अच्छी तरह देखना। आलोचना के दस दोष हैं। इन्हें छोड़ते हुए शुद्ध हृदय से आलोचना करनी चाहिए। वे इस प्रकार हैं -

आकंपयित्ता अणुमाणइत्ता, जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा॥
छण्णं सद्दालुअयं, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी॥

१. **आकंपयित्ता** - प्रसन्न होने पर गुरु थोड़ा प्रायश्चित्त देंगे यह सोच कर उन्हें सेवा आदि से प्रसन्न करके फिर उनके पास दोषों की आलोचना करना।

२. **अणुमाणइत्ता** - अनुमान करके अर्थात् ये आचार्य थोड़ा दण्ड देते हैं या कठोर दण्ड देते हैं पहले ऐसा अनुमान करके जो मृदु कोमल दण्ड देने वाले है उन आचार्यों के पास आलोचना करना।

३. **दिट्ठं** - जिस अपराध को आचार्य आदि ने देख लिया हो, उसी की आलोचना करना।

४. **बायरं** - सिर्फ बड़े बड़े अपराधों की आलोचना करना।

५. **सुहुमं** - जो अपने छोटे छोटे अपराधों की भी आलोचना कर लेता है वह बड़े अपराधों को कैसे छोड़ सकता है, यह विश्वास उत्पन्न कराने के लिए सिर्फ छोटे छोटे पापों की आलोचना करना।

६. **छण्णं** - गुरु महाराज अच्छी तरह से सुन न सके इस तरह धीरे-धीरे आलोचना करना।

७. **सद्दालुअयं** - दूसरों को सुनाने के लिए जोर जोर से बोल कर आलोचना करना।

८. **बहुजण** - एक ही अतिचार की बहुत से गुरुओं के पास आलोचना करना।

९. **अव्वत्त** - अगीतार्थ अर्थात् जिस साधु को किस अतिचार के लिए कैसा प्रायश्चित्त दिया जाता है, इसका पूरा ज्ञान नहीं है, उसके सामने आलोचना करना।

१०. **तस्सेवी** - जिस दोष की आलोचना करनी हो, उसी दोष को सेवन करने वाले आचार्य आदि के पास आलोचना करना।

आलोचना करने योग्य साधु के दस गुण - दस गुणों से युक्त अनगार अपने दोषों की आलोचना करने योग्य होता है। वे इस प्रकार हैं -

१. **जाति सम्पन्न** - मातृ पक्ष को जाति कहते हैं। उत्तम जाति वाला। उत्तम जाति वाला बुरा काम करता ही नहीं। अगर कभी उससे भूल हो भी जाती है तो वह शुद्ध हृदय से आलोचना कर लेता है।

२. **कुल सम्पन्न** - पितृपक्ष को कुल कहते हैं उत्तम कुल वाला। उत्तम कुल में पैदा हुआ व्यक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपराध करता ही नहीं यदि कदाचित्त भूल से कोई अपराध हो जाय तो वह शुद्ध हृदय से आलोचना कर लेता है।

३. विनय सम्पन्न – विनयवान्। विनयवान् साधु बड़ों की बात मान कर हृदय से आलोचना कर लेता है।

४. ज्ञान सम्पन्न – ज्ञानवान् मोक्ष की आराधना के लिये क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इस बात को भली प्रकार समझ कर वह आलोचना कर लेता है।

५. दर्शन सम्पन्न – श्रद्धालु। भगवान् के वचनों पर श्रद्धा होने के कारण वह शास्त्रों में बताई हुई प्रायश्चित्त से होने वाली शुद्धि को मानता है और आलोचना कर लेता है।

६. चारित्र सम्पन्न – उत्तम चारित्र वाला। अपने चारित्र को शुद्ध रखने के लिए वह दोषों की आलोचना करता है।

७. क्षान्त – क्षमा वाला। किसी दोष के कारण गुरु से भर्त्सना या फटकार आदि मिलने पर वह क्रोध नहीं करता। अपना द्रोष स्वीकार करके आलोचना कर लेता है।

८. दान्त – इन्द्रियों को वश में रखने वाला। इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त व्यक्ति कठोर से कठोर प्रायश्चित्त को भी शीघ्र स्वीकार कर लेता है। वह पापों की आलोचना भी शुद्ध हृदय से करता है।

९. अमायी – कपट रहित। अपने पापों को बिना छिपाए खुले दिल से आलोचना करने वाला सरल व्यक्ति।

१०. अपश्चात्तापी – आलोचना लेने के बाद जो पश्चात्ताप न करे। अर्थात् मन में ऐसा विचार न करे कि इस दोष का गुरुमहाराज को तो पता ही नहीं था इसलिये मैंने व्यर्थ में आलोचना की।

आलोचना देने योग्य साधु के दस गुण – दस गुणों से युक्त साधु आलोचना देने योग्य होता है। 'आचारवान्' आदि आठ गुण इसी भाग के आठवें स्थानक में दे दिये गए हैं।

९. प्रियधर्मी – जिस को धर्म प्यारा हो।

१०. दृढधर्मी – जो धर्म में दृढ हो।

दस प्रायश्चित्त – अतिचार की विशुद्धि के लिए आलोचना करना या उस के लिए गुरु के कहे अनुसार तपस्या आदि करना प्रायश्चित्त है। इसके दस भेद हैं –

१. आलोचनार्ह – संयम में लगे हुए दोष को गुरु के समक्ष स्पष्ट वचनों से सरलता पूर्वक प्रकट करना आलोचना है। जो प्रायश्चित्त आलोचना मात्र से शुद्ध हो जाय उसे आलोचनार्ह या आलोचना प्रायश्चित्त कहते हैं।

२. प्रतिक्रमणार्ह – प्रतिक्रमण के योग्य। प्रतिक्रमण अर्थात् दोष से पीछे हटना तथा लगे हुए दोष के लिये "मिच्छामि दुक्कडं" देना और भविष्य में न करने की प्रतिज्ञा करना। जो प्रायश्चित्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमण से ही शुद्ध हो जाय गुरु के समीप कह कर आलोचना करने की भी आवश्यकता न पड़े उसे प्रतिक्रमणार्ह कहते हैं।

३. तदुभयार्ह - आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य। जो प्रायश्चित्त दोनों से शुद्ध हो। इसे मिश्र प्रायश्चित्त भी कहते हैं।

४. विवेकार्ह - अशुद्ध भक्तादि को त्यागने योग्य। जो प्रायश्चित्त आधाकर्म आदि आहार का विवेक अर्थात् त्याग करने से शुद्ध हो जाय उसे विवेकार्ह कहते हैं।

५. व्युत्सर्गार्ह - कायोत्सर्ग के योग्य। शरीर के व्यापार को रोक कर ध्येय वस्तु में उपयोग लगाने से जिस प्रायश्चित्त की शुद्धि होती है उसे व्युत्सर्गार्ह कहते हैं।

६. तपार्ह - जिस प्रायश्चित्त की शुद्धि तप से हो।

७. छेदार्ह - दीक्षा पर्याय छेद के योग्य। जो प्रायश्चित्त दीक्षा पर्याय का छेद करने पर ही शुद्ध हो।

८. मूलार्ह - मूल अर्थात् दुबारा संयम लेने से शुद्ध होने योग्य। ऐसा प्रायश्चित्त जिसके करने पर साधु को एक बार लिया हुआ संयम छोड़ कर दुबारा दीक्षा लेनी पड़े।

नोट - छेदार्ह में चार महीने, छह महीने या कुछ समय की दीक्षा कम करदी जाती है। ऐसा होने पर दोषी साधु उन सब साधुओं को वन्दना करता है, जिनसे पहले दीक्षित होने पर भी पर्याय कम कर देने से वह छोटा हो गया है। मूलार्ह में उसका संयम बिल्कुल नहीं गिना जाता। दोषी को दुबारा दीक्षा लेनी पड़ती है और अपने से पहले दीक्षित सभी साधुओं को वन्दना करनी पड़ती है।

९. अनवस्थाप्यार्ह - तप के बाद दुबारा दीक्षा देने के योग्य। जब तक अमुक प्रकार का विशेष तप न करे, उसे संयम या दीक्षा नहीं दी जा सकती। तप के बाद दुबारा दीक्षा लेने पर ही जिस दोष की शुद्धि हो।

१०. पारांचिकार्ह - गच्छ से बाहर करने योग्य। जिस प्रायश्चित्त में साधु को संघ से निकाल दिया जाय।

साध्वी या रानी आदि का शील भंग करने पर यह प्रायश्चित्त दिया जाता है। यह महापराक्रम वाले आचार्य को ही दिया जाता है। इसकी शुद्धि के लिए छह महीने से लेकर बारह वर्ष तक गच्छ छोड़ कर जिनकल्पी की तरह कठोर तपस्या करनी पड़ती है। उपाध्याय के लिए नववें प्रायश्चित्त तक का विधान है। सामान्य साधु के लिये मूल प्रायश्चित्त अर्थात् आठवें तक का विधान है।

जहाँ तक चौदह पूर्वधारी और पहले संहनन वाले होते हैं, वहीं तक दसों प्रायश्चित्त रहते हैं। उनका विच्छेद होने के बाद मूलार्ह तक आठ ही प्रायश्चित्त होते हैं।

मिथ्यात्व के भेद

दसविहे मिच्छत्ते पण्णत्ते तंजहा - अधम्मे धम्मसण्णा, धम्मे अधम्मसण्णा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमग्गे मग्गसण्णा, मग्गे उमग्गसण्णा, अजीवेसु जीवसण्णा, जीवेसु अजीवसण्णा, असाहुसु साहुसण्णा, साहुसु असाहुसण्णा, अमुत्तेसु मुत्तसण्णा, मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

स्थिति और भवनवासीदेव

चंदप्पभे णं अरहा दस पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे । धम्मे णं अरहा दसवास सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे । णमी णं अरहा दसवाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे । पुरिससीहे णं वासुदेवे दसवास सयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे। णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जाव पहीणे । कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे । दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता तंजहा - असुरकुमारा जाव थणियकुमारा । एएसि णं दसविहाणं भवणवासी णं देवाणं दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता तंजहा -

आसत्थ सत्तिवण्णे सामली उंबर सिरीस दहिवण्णे ।
वंजुल पलास वप्पे तते य, कणियार रुक्खे ।। १ ।।

सुख के भेद

दसविहे सोक्खे पण्णत्ते तंजहा -

आरोग्ग दीहमाउं अड्ढेज्जं कामभोग संतोसे ।
अत्थिसुहभोग णिक्खम्ममेव तओ अणाबाहे ।। २ ।।

उपघात और विशुद्धि

दसविहे उवघाए पण्णत्ते तंजहा - उग्गमोवघाए उप्पायणोवघाए जह पंच ठाणे जाव पहिरणोवघाए णाणोवघाए, दंसणोवघाए, चरित्तोवघाए, अचियत्तोवघाए, सारक्खणोवघाए । दसविहा विसोही पण्णत्ता तंजहा - उग्गमविसोही उप्पायणविसोही जाव सारक्खण विसोही॥ १२४ ॥

कठिन शब्दार्थ - **मिच्छत्ते** - मिथ्यात्व, **धम्मसण्णा** - धर्मसंज्ञा, **सव्वाउयं** - सर्वायुष्य - सम्पूर्ण आयुष्य, **पालइत्ता** - भोग कर, **चेइयरुक्खा** - चैत्य वृक्ष, **दीहमाउं** - दीर्घ आयु, **अड्ढेज्जं** - आढ्यत्व, **अत्थि** - अस्ति, **णिक्खम्मं** - निष्क्रमण, **अणाबाहे** - अनाबाध, **णाणोवघाए** - ज्ञानोपघात, **अचियत्तोवघाए** - अप्रीतिकोपघात, **सारक्खणोवघाए** - संरक्षणोपघात, **विसोही** - विशुद्धि ।

Jain Education International		For Personal & Private Use Only		www.jainelibrary.org

भावार्थ - दस प्रकार का मिथ्यात्व कहा गया है यथा - अधर्म को धर्म समझना । वास्तविक धर्म को अधर्म समझना । संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग समझना । मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग समझना। अजीव को जीव समझना । जीव को अजीव समझना । असाधु को साधु समझना । साधु को असाधु समझना । जो व्यक्ति रागद्वेष रूप संसार से मुक्त नहीं हुआ है उसे मुक्त समझना । जो महापुरुष संसार से मुक्त हो चुका है उसे अमुक्त यानी संसार में लिप्त समझना ।

आठवें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रप्रभ स्वामी दस लाख पूर्व वर्ष की सम्पूर्ण आयुष्य को भोग कर सिद्ध हुए यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए । पन्द्रहवें तीर्थङ्कर श्री धर्मनाथ-स्वामी दस लाख वर्ष का सम्पूर्ण आयुष्य भोग कर सिद्ध हुए यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए । इक्कीसवें तीर्थङ्कर श्री नमिनाथ स्वामी दस हजार वर्ष की सम्पूर्ण आयुष्य को भोग कर सिद्ध हुए यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए । पांचवाँ पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्ष की सम्पूर्ण आयु को भोग कर छठी तमप्रभा नरक में नैरयिकपने उत्पन्न हुआ । बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथस्वामी के शरीर की ऊंचाई दस धनुष थी, वे दस सौ वर्ष (अर्थात् एक हजार वर्ष) की सम्पूर्ण आयुष्य को भोग कर सिद्ध हुए यावत् सब दुःखों से मुक्त हुए ।

कृष्ण वासुदेव के शरीर की ऊंचाई दस धनुष थी और वे दस सौ वर्ष (अर्थात् एक हजार वर्ष) की सम्पूर्ण आयु को भोग कर तीसरी वालुप्रभा नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुए ।

दस प्रकार के भवनवासी देव कहे गये हैं यथा - असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विदयुत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार । इन दस प्रकार के भवनवासी देवों के दस चैत्य वृक्ष कहे गये हैं यथा - अश्वस्थ, सप्तपर्ण, शाल्मली, उम्बर, शिरीष, दधिपर्ण, वञ्जुल, पलास,, वप्र और कर्णिकार ।

दस प्रकार का सुख कहा गया है यथा - आरोग्य - शरीर का स्वस्थ रहना, उसमें किसी प्रकार का रोग या पीड़ा का न होना आरोग्य कहलाता है । शरीर का नीरोग रहना सब सुखों में श्रेष्ठ कहा गया है । शुभ दीर्घ आयु आढ्यत्व - विपुल धन सम्पत्ति का होना । काम यानी शुभ शब्द और सुन्दर रूप की प्राप्ति होना । भोग यानी शुभ गन्ध, रस और स्पर्श की प्राप्ति होना । सन्तोष यानी अल्प इच्छा। अस्तिसुख - जिस समय जिस पदार्थ की आवश्यकता हो उस समय उसी पदार्थ की प्राप्ति होना । शुभ भोग - प्राप्त हुए कामभोगों को भोगना । निष्क्रमण - अविरति रूप जंजाल से निकल कर भागवती दीक्षा अङ्गीकार करना वास्तविक सुख है । अनाबाध सुख - आबाधा अर्थात् जन्म, जरा, मरण, भूख प्यास आदि जहां न हो उसे अनाबाध सुख कहते हैं । ऐसा सुख मोक्ष सुख है । यही सुख वास्तविक एवं सर्वोत्तम सुख है । इससे बढ़ कर कोई सुख नहीं है ।

दस प्रकार का उपघात कहा गया है यथा - उद्गमोपघात, उत्पादनोपघात, एषणोपघात, परिकर्मोपघात, परिहरणोपघात। इनका विशेष खुलासा पांचवें ठाणे में किया गया है । ज्ञानोपघात - ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीखने में प्रमाद करना। दर्शनोपघात – समकित में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा करना। चारित्रोपघात – पांच समिति, तीन गुप्ति में किसी प्रकार का दोष लगाना। अप्रीतिकोपघात – गुरु आदि में पूज्य भाव न रखना तथा उनकी विनय भक्ति न करना। संरक्षणोपघात – परिग्रह से निवृत्त साधु को वस्त्र, पात्र तथा शरीरादि में ममत्व रखना संरक्षणोपघात कहलाता है। दस प्रकार की विशुद्धि कही गई है यथा – उद्गम विशुद्धि, उत्पादना विशुद्धि यावत् संरक्षण विशुद्धि।

विवेचन – जो बात जैसी हो उसे वैसा न मानना या विपरीत मानना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के दस भेद भावार्थ में बताये गये हैं।

भवनवासी देव दस – भवनवासी देवों के नाम – १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार ४. विद्युतकुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. वायुकुमार १०. स्तनितकुमार।

ये देव प्रायः भवनों में रहते हैं इसलिए भवनवासी कहलाते हैं। इस प्रकार की व्युत्पत्ति असुरकुमारों की अपेक्षा समझनी चाहिए, क्योंकि विशेषतः ये ही भवनों में रहते हैं। नागकुमार आदि देव तो आवासों में रहते हैं।

भवनवासी देवों के भवन और आवासों में यह फरक होता है कि भवन तो बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है।

शरीर प्रमाण बड़े, मणि तथा रत्नों के दीपकों से चारों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले मंडप आवास कहलाते हैं।

भवनवासी देव भवनों तथा आवासों दोनों में रहते हैं।

दस सुख – सुख दस प्रकार के कहे गये हैं। वे ये हैं –

१. आरोग्य – शरीर का स्वस्थ रहना, उस में किसी प्रकार के रोग या पीड़ा का न होना आरोग्य कहलाता है। शरीर का नीरोग (स्वस्थ) रहना सब सुखों में श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि जब शरीर नीरोग होगा तब ही आगे के नौ सुख प्राप्त किये जा सकते हैं। शरीर के आरोग्य बिना दीर्घ आयु, विपुल धन सम्पत्ति, तथा विपुल काम भोग आदि सुख रूप प्रतीत नहीं होते। सुख के साधन होने पर भी ये रोगी को दुःख रूप प्रतीत होते हैं। शरीर के आरोग्य बिना धर्म ध्यान होना तथा संयम सुख और मोक्ष सुख का प्राप्त होना तो असम्भव ही है। इसलिए शास्त्रकारों ने दस सुखों में शरीर की नीरोगता रूप सुख को प्रथम स्थान दिया है। व्यवहार में भी ऐसा कहा जाता है –

'पहला सुख नीरोगी काया'

अतः सब सुखों में 'आरोग्य' सुख प्रधान है।

२. दीर्घ आयु – दीर्घ आयु के साथ यहाँ पर 'शुभ' यह विशेषण और समझना चाहिए। शुभ दीर्घ

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

आयु ही सुखस्वरूप है। अशुभ दीर्घायु तो सुखरूप न होकर दुःख रूप ही होती है। सब सुखों का सामग्री प्राप्त हो किन्तु यदि दीर्घायु न हो तो उन सुखों का इच्छानुसार अनुभव नहीं किया जा सकता। इसलिए शुभ दीर्घायु का होना द्वितीय सुख है।

३. आढ्यत्व - आढ्यत्व नाम है विपुल धन सम्पत्ति का होना। धन सम्पत्ति भी सुख का कारण है। इसलिए धन सम्पत्ति का होना तीसरा सुख माना गया है।

४. काम - पाँच इन्द्रियों के विषयों में से शब्द और रूप काम कहे जाते हैं। यहाँ पर भी शुभ विशेषण समझना चाहिए अर्थात् शुभ शब्द और शुभ रूप ये दोनों सुख का कारण होने से सुख माने गए हैं।

५. भोग - पाँच इन्द्रियों के विषयों में से गन्ध, रस और स्पर्श भोग कहे जाते हैं। यहाँ भी शुभ गन्ध शुभ रस और शुभ स्पर्श का ही ग्रहण किया गया है। इन तीनों चीजों का भोग किया जाता है इसलिए ये भोग कहलाते हैं। ये भी सुख के कारण हैं। कारण में कार्य्य का उपचार करके इन को सुख रूप माना है।

६. सन्तोष - अल्प इच्छा को सन्तोष कहा जाता है। चित्त की शान्ति और आनन्द का कारण होने से सन्तोष वास्तव में सुख है। जैसे कहा है कि -

आरोग्गसारिअं माणुसत्तणं, सच्चसारिओ धम्मो।
विज्जा निच्छयसारा सुहाइं संतोससाराइं॥

अर्थात् - मनुष्य जन्म का सार आरोग्यता है अर्थात् शरीर की नीरोगता होने पर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टयों में से किसी भी पुरुषार्थ की साधना की जा सकती है। धर्म का सार सत्य है। वस्तु का निश्चय होना ही विद्या का सार है और सन्तोष ही सब सुखों का सार है।

७. अस्ति सुख - जिस समय जिस पदार्थ की आवश्यकता हो उस समय उसी पदार्थ की प्राप्ति होना यह भी एक सुख है क्योंकि आवश्यकता के समय उसी पदार्थ की प्राप्ति हो जाना बहुत बड़ा सुख है।

८. शुभ भोग - अनिन्दित (प्रशस्त) भोग शुभ भोग कहलाते हैं। ऐसे शुभ भोगों की प्राप्ति और उन काम भोगादि विषयों में भोग क्रिया का होना भी सुख है। यह सातावेदनीय के उदय से होता है इसलिए सुख माना गया है।

९. निष्क्रमण - निष्क्रमण नाम दीक्षा (संयम) का है। अविरति रूप जंजाल से निकल कर भागवती दीक्षा को अंगीकार करना ही वास्तविक सुख है, क्योंकि सांसारिक झंझटों में फंसा हुआ प्राणी स्वात्म कल्याणार्थ धर्म ध्यान के लिए पूरा समय नहीं निकाल सकता तथा पूर्ण आत्मशान्ति भी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः संयम स्वीकार करना ही वास्तविक सुख है क्योंकि दूसरे सुख तो कभी किसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामग्री आदि की प्रतिकूलता के कारण दुःख रूप भी हो सकते हैं किन्तु संयम तो सदा सुखकारी ही है। अतः यह सच्चा सुख है। कहा भी है -

नैवास्ति राजराज्यस्य, तत्सुखं नैव देवराजस्य।
यत्सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य॥

अर्थात् - इन्द्र और नरेन्द्र को जो सुख नहीं है वह सांसारिक झंझटों से रहित निर्ग्रन्थ साधु को है। एक वर्ष के दीक्षित साधु को जो सुख है वह सुख अनुत्तर विमानवासी देवताओं को भी नहीं है। संयम के अतिरिक्त दूसरे आठों सुख केवल दुःख के प्रतीकार मात्र है और वे सुख अभिमान के उत्पन्न करने वाले होने से वास्तविक सुख नहीं हैं। वास्तविक सच्चा सुख तो संयम ही है।

१०. अनाबाध सुख - आबाधा अर्थात् जन्म, जरा (बुढ़ापा), मरण, भूख, प्यास आदि जहाँ न हों उसे अनाबाध सुख कहते हैं। ऐसा सुख मोक्षसुख है। यही सुख वास्तविक एवं सर्वोत्तम सुख है। इससे अधिक कोई सुख नहीं है। जैसा कि कहा है -

न वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं न वि य सव्व देवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं; अव्वाबाहं उवगयाणं॥

अर्थात् - जो सुख अव्याबाध स्थान (मोक्ष) को प्राप्त सिद्ध भगवान् को है वह सुख देव या मनुष्य किसी को भी नहीं है। अतः मोक्ष सुख सब सुखों में श्रेष्ठ है और चारित्र सुख (संयम सुख) सर्वोत्कृष्ट मोक्ष सुख का साधक है। इसलिए दूसरे आठ सुखों की अपेक्षा चारित्र सुख श्रेष्ठ है किन्तु मोक्ष सुख तो चारित्र सुख से भी बढ़ कर है। अतः सर्व सुखों में मोक्ष सुख ही सर्वोत्कृष्ट एवं परम सुख है।

उपघात दस - संयम के लिए साधु द्वारा ग्रहण की जाने वाली अशन, पान, वस्त्र, आदि वस्तुओं में किसी प्रकार का दोष होना उपघात कहलाता है। इसके दस भेद हैं -

१. उद्गमोपघात - उद्गम के आधाकर्मादि सोलह दोषों से अशन (आहार), पान तथा स्थान आदि की अशुद्धता उद्गमोपघात कहलाती है। आधाकर्मादि सोलह दोषों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

२. उत्पादनोपघात - उत्पादना के धात्री आदि सोलह दोषों से आहार पानी आदि की अशुद्धता उत्पादनोपघात कहलाती है। धात्र्यादि दोषों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

३. एषणोपघात - एषणा के शङ्कितादि दस दोषों से आहार पानी आदि की अशुद्धता (अकल्पनीयता) एषणोपघात कहलाती है। एषणा के दस दोषों का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

४. परिकर्मोपघात - वस्त्र, पात्रादि के छेदन और सीवन से होने वाली अशुद्धता परिकर्मोपघात कहलाती है। वस्त्र का परिकर्मोपघात इस प्रकार कहा गया है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र के फट जाने पर जो कारी लगाई जाती है वह थेगलिका कहलाती है। एक ही फटी हुई जगह पर क्रमशः तीन थेगलिका के ऊपर चौथी थेगलिका लगाना वस्त्र परिकर्म कहलाता है।

पात्र परिकर्मोपघात - ऐसा पात्र जो टेढा मेढा हो और अच्छी तरह साफ न किया जा सकता हो वह अपलक्षण पात्र कहा जाता है। ऐसे अपलक्षण पात्र तथा जिस पात्र में एक, दो, तीन या अधिक बन्ध (थेगलिका) लगे हुए हों, ऐसे पात्र में अर्ध मास (पन्द्रह दिन) से अधिक दिनों तक भोजन करना पात्र परिकर्मोपघात कहलाता है।

वसति परिकर्मोपघात - रहने के स्थान को वसति कहते हैं। साधु के लिए जिस स्थान में सफेदी कराई गई हो, अगर, चन्दन आदि का धूप देकर सुगन्धित किया गया हो, दीपक आदि से प्रकाशित किया गया हो, सिक्त (जल आदि का छिड़कना) किया गया हो, गोबर आदि से लीपा गया हो, ऐसा स्थान वसति परिकर्मोपघात कहलाता है।

५. परिहरणोपघात - परिहरण नाम है सेवन करना, अर्थात् अकल्पनीय उपकरणादि को ग्रहण करना परिहरणोपघात कहलाता है। यथा - एकलविहारी एवं स्वच्छन्दाचारी साधु से सेवित उपकरण सदोष माने जाते हैं। शास्त्रों में इस प्रकार की व्यवस्था है कि गच्छ से निकल कर के यदि कोई साधु अकेला विचरता है और अपने चारित्र में दृढ़ रहता हुआ दूध, दही आदि विगयों में आसक्त नहीं होता ऐसा साधु यदि बहुत समय के बाद भी वापिस गच्छ में आकर मिल जाता है तो उसके उपकरण दूषित नहीं माने जाते हैं, किन्तु शिथिलाचारी एकलविहारी जो विगय आदि में आसक्त है उसके वस्त्रादि दूषित माने जाते हैं।

स्थान (वसति) परिहरणोपघात - एक ही स्थान पर चातुर्मास में चार महीने और शेष काल में एक महीना ठहरने के पश्चात् वह स्थान कालातिक्रान्त कहलाता है। अर्थात् निर्ग्रन्थ साधु को चातुर्मास में चार मास और शेष काल में एक महीने से अधिक एक ही स्थान पर रहना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार जिस स्थान या शहर और ग्राम में चातुर्मास किया है, उसी जगह दो चातुर्मास दूसरी जगह करने से पहिले वापिस चातुर्मास करना नहीं कल्पता है और शेष काल में जहाँ एक महीना ठहरे हैं, उसी जगह (स्थान) पर दो महीने से पहिले आना साधु को नहीं कल्पता। यदि उपरोक्त मर्यादित समय से पहिले उसी स्थान पर फिर आ जावे तो उपस्थापना दोष होता है। इसका यह अभिप्राय है कि जिस जगह जितने समय तक साधु ठहरे हैं, उससे दुगुना काल दूसरे गांव में व्यतीत कर फिर उसी स्थान पर आ सकते हैं। इससे पहिले आने पर स्थान परिहरणोपघात दोष लगता है।

आहार के विषय में चार भङ्ग (भांगे) होते हैं। यथा -

(क) विधिगृहीत, विधिभुक्त (जो आहार विधिपूर्वक लाया गया हो और विधिपूर्वक ही भोगा गया हो)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ख) विधिगृहीत, अविधिभुक्त।

(ग) अविधिगृहीत, विधिभुक्त।

(घ) अविधिगृहीत, अविधिभुक्त।

इन चारों भङ्गों में प्रथम भङ्ग ही शुद्ध है। आगे के तीनों भङ्ग अशुद्ध हैं। इन तीनों भङ्गों से किया गया आहार आहार परिहरणोपघात कहलाता है।

६. ज्ञानोपघात – ज्ञान सीखने में प्रमाद करना ज्ञानोपघात है।

७. दर्शनोपघात – दर्शन (समकित) में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा करना दर्शनोपघात कहलाता है। शंकादि से समकित मलीन हो जाती है। शंकादि समकित के पाँच दूषण हैं। इनकी विस्तृत व्याख्या पांचवें ठाणे में पूर्व में दे दी गई है।

८. चारित्रोपघात – आठ प्रवचन माता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति में किसी प्रकार का दोष लगाने से संयम रूप चारित्र का उपघात होता है। अतः यह चारित्रोपघात कहलाता है।

९. अचियत्तोपघात (अप्रीतिकोपघात) – गुरु आदि में पूज्य भाव न रखना तथा उनकी विनय भक्ति न करना अचियत्तोपघात (अप्रीतिकोपघात) कहलाता है।

१०. संरक्षणोपघात – परिग्रह से निवृत्त साधु को वस्त्र, पात्र तथा शरीरादि में मूर्च्छा (ममत्व) भाव रखना संरक्षणोपघात कहलाता है।

विशुद्धि दस – संयम में किसी प्रकार का दोष न लगाना विशुद्धि है। उपरोक्त दोषों के लगने से जितने प्रकार का उपघात बताया गया है, दोष रहित होने से उतने ही प्रकार की विशुद्धि है। उसके नाम इस प्रकार हैं – १. उद्गम विशुद्धि २. उत्पादना विशुद्धि ३. एषणा विशुद्धि ४. परिकर्म विशुद्धि ५. परिहरणा विशुद्धि ६. ज्ञान विशुद्धि ७. दर्शन विशुद्धि ८. चारित्र विशुद्धि ९. अचियत्त विशुद्धि १०. संरक्षण विशुद्धि। इनका स्वरूप उपघात से उल्टा समझना चाहिए।

संक्लेश और असंक्लेश

दसविहे संकिलेसे पण्णत्ते तंजहा – उवहि संकिलेसे, उवस्सयसंकिलेसे, कसायसंकिलेसे, भत्तपाणसंकिलेसे, मणसंकिलेसे, वयसंकिलेसे, कायसंकिलेसे, णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे । दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते तंजहा- उवहि असंकिलेसे जाव चरित्त असंकिलेसे ।

बल

दसविहे बले पण्णत्ते तंजहा – सोइंदियबले जाव फासिंदियबले, णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले।। १२५ ॥

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

भावार्थ - संक्लेश - समाधिपूर्वक संयम का पालन करते हुए मुनियों के चित्त में जिन कारणों संक्षोभ यानी अशान्ति पैदा हो जाती है उसे संक्लेश कहते हैं । संक्लेश के दस कारण हैं यथा - १. उपधिसंक्लेश - वस्त्र पात्र आदि संयमोपकरणों के विषय में संक्लेश होना । २. उपाश्रय संक्लेश - स्थान के विषय में संक्लेश होना । ३. कषाय संक्लेश - क्रोध, मान, माया, लोभ से चित्त में अशान्ति पैदा होना। ४. भक्तपान संक्लेश - आहार पानी आदि के विषय में होने वाला संक्लेश । ५-६-७. मन, वचन और काया से किसी प्रकार चित्त में अशान्ति का होना मन संक्लेश, वचन संक्लेश और काया संक्लेश कहलाता है । ८-९-१०. ज्ञान दर्शन और चारित्र में किसी तरह की अशुद्धता का आना ज्ञान संक्लेश, दर्शन संक्लेश और चारित्र संक्लेश कहलाता है । असंक्लेश - संयम का पालन करते हुए मुनियों के चित्त में किसी प्रकार की अशान्ति एवं असमाधि का न होना असंक्लेश कहलाता है । यह दस प्रकार का है यथा - उपधि असंक्लेश, उपाश्रय असंक्लेश, कषाय असंक्लेश, भक्तपान असंक्लेश, मन असंक्लेश, वचन असंक्लेश, काया असंक्लेश, ज्ञान असंक्लेश, दर्शन असंक्लेश, चारित्र असंक्लेश।

दस प्रकार का बल कहा गया है यथा - श्रोत्रेन्द्रिय बल, चक्षुरिन्द्रिय बल, घ्राणेन्द्रिय बल, रसनेन्द्रिय बल, स्पर्शनेन्द्रिय बल, ज्ञान बल - ज्ञान, अतीत, अनागत और वर्तमान काल के पदार्थों को जानता है । ज्ञान से ही चारित्र की आराधना भली प्रकार हो सकती है इसलिए ज्ञान को बल कहा गया है । दर्शन बल - अतीन्द्रिय एवं युक्ति से अगम्य पदार्थों को विषय करने के कारण दर्शन बल कहा गया है । चारित्र बल - चारित्र के द्वारा आत्मा सब संगों का त्याग कर अनन्त, अव्याबाध, एकान्तिक और आत्यन्तिक आत्मीय आनन्द का अनुभव करता है अतः चारित्र को भी बल कहा गया है । तप बल - तप के द्वारा आत्मा अनेक भवों में उपार्जित कर्मों को क्षय कर डालता है अतः तप भी बल माना गया है । वीर्य बल - जिससे गमनागमनादि विचित्र क्रियाएं की जाती है उसे वीर्य बल कहते हैं ।

विवेचन - पाँच इन्द्रियों के पाँच बल कहे गये हैं। यथा - १. स्पर्शनेन्द्रिय बल २. रसनेन्द्रिय बल ३. घ्राणेन्द्रिय बल ४. चक्षुरिन्द्रिय बल ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल। इन पाँच इन्द्रियों को बल इसलिए माना गया है क्योंकि ये अपने अपने अर्थ (विषय) को ग्रहण करने में समर्थ हैं।

६. ज्ञान बल - ज्ञान अतीत, अनागत और वर्तमान काल के पदार्थ को जानता है। अथवा ज्ञान से ही चारित्र की आराधना भली प्रकार से हो सकती है, इसलिए ज्ञान को बल कहा गया है।

७. दर्शन बल - अतीन्द्रिय एवं युक्ति से अगम्य पदार्थों को विषय करने के कारण दर्शन बल कहा गया है।

८. चारित्र बल - चारित्र के द्वारा आत्मा सम्पूर्ण संगों का त्याग कर अनन्त, अव्याबाध, ऐकान्तिक और आत्यन्तिक आत्मीय आनन्द का अनुभव करता है। अर्थात् मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है। अतः चारित्र को भी बल कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९. तप बल - तप के द्वारा आत्मा अनेक भवों में उपार्जित अनेक दुःखों के कारणभूत अष्ट कर्मों की निकाचित कर्मग्रन्थि को भी क्षय कर डालता है। अतः तप भी बल माना गया है।

१०. वीर्य बल - जिससे गमनागमनादि विचित्र क्रियाएं की जाती हैं, एवं जिसके प्रयोग से सम्पूर्ण, निराबाध सुख की प्राप्ति हो जाती है उसे वीर्य बल कहते हैं। यह आत्म शक्ति है।

सत्य, मृषा और मिश्र भाषा

दसविहे सच्चे पण्णत्ते तंजहा -

जणवय सम्मय ठवणा, णामे रूवे पडुच्च सच्चे य ।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्म सच्चे य ॥ १॥

दसविहे मोसे पण्णत्ते तंजहा -

कोहे माणे माया लोभे पिज्जे तहेव दोसे य ।
हास भए अक्खाइय, उवघायणिस्सिए दसमे ॥ २॥

दसविहे सच्चामोसे पण्णत्ते तंजहा - उप्पण्णमीसए, विगयमीसए, उप्पण्णविगयमीसए, जीवमीसए, अजीवमीसए, जीवाजीवमीसए, अणंतमीसए, परित्तमीसए, अद्धामीसए, अद्धद्धामीसए॥ १२६ ॥

कठिन शब्दार्थ - पडुच्च सच्चे - प्रतीत्य सत्य, **ओवम्म सच्चे** - उपमा सत्य, **अक्खाइय** - आख्यायिका, **उप्पण्ण विगयमीसए** - उत्पन्न विगत मिश्रित, **अद्धद्धामीसए** - अद्धाद्धा मिश्रित ।

भावार्थ - सत्य - जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही बताना सत्य है । एक जगह एक शब्द किसी अर्थ को बताता है और दूसरी जगह दूसरे अर्थ को । ऐसी हालत में अगर वक्ता की विवक्षा ठीक है तो दोनों ही अर्थों में वह शब्द ठीक है । इस प्रकार सत्य वचन दस प्रकार का है यथा - १. जनपद सत्य- जिस देश में जिस वस्तु का जो नाम हो, उस देश में वह नाम सत्य है, जैसे कोंकण देश में पानी को पिच्छ कहते हैं । २. सम्मत सत्य - प्राचीन आचार्यों ने और विद्वानों ने जिस शब्द का जो अर्थ मान लिया है उस अर्थ में वह शब्द सम्मत सत्य है । जैसे पङ्कज का यौगिक अर्थ है कीचड़ से पैदा होने वाली वस्तु । कीचड़ से मेढ़क, शैवाल, कमल आदि बहुत सी वस्तुएं पैदा होती हैं, फिर भी शब्दशास्त्र के विद्वानों ने पङ्कज शब्द का अर्थ सिर्फ कमल मान लिया है । इसलिए पङ्कज शब्द से कमल ही लिया जाता है, मेंढ़क आदि नहीं । यह सम्मत सत्य है । ३. स्थापना सत्य - समान और असमान आकार वाली वस्तु में किसी की स्थापना करके उसको उस नाम से कहना स्थापना सत्य है । जैसे शतरंज के मोहरों को हाथी, घोड़ा, आदि कहना, जम्बूद्वीप के नक्शे को जम्बूद्वीप कहना। ४. नाम सत्य - गुण न

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

होने पर भी किसी व्यक्ति का या किसी वस्तु का वैसा नाम रख कर उस नाम से पुकारना नाम सत्य है। जैसे किसी ने अपने लड़के का नाम कुलवर्द्धन रखा, लेकिन उसके पैदा होने के बाद कुल का ह्रास होने लगा, फिर भी उसे कुलवर्धन कहना नाम सत्य है । अमरावती देवों की नगरी का नाम है, वैसी बातें न होने पर भी किसी गांव को अमरावती कहना नाम सत्य है । ५. रूप सत्य – वास्तविकता न होने पर भी रूप विशेष को धारण करने से किसी व्यक्ति को उस नाम से पुकारना रूप सत्य है, जैसे साधु के गुण न होने पर भी साधु वेश वाले पुरुष को साधु कहना । ६. प्रतीत्य सत्य अर्थात् अपेक्षा सत्य – किसी अपेक्षा से दूसरी वस्तु को छोटी बड़ी आदि कहना अपेक्षा सत्य या प्रतीत्य सत्य है । जैसे मध्यमा अंगुली की अपेक्षा अनामिका को छोटी कहना और कनिष्ठा की अपेक्षा अनामिका को बड़ी कहना । ७. व्यवहार सत्य – जो बात व्यवहार में बोली जाती है वह व्यवहार सत्य है, जैसे – पर्वत पर पड़ी हुई लकड़ियों के जलने पर भी पर्वत जलता है, यह कहना । रास्ते के स्थिर होने पर भी कहना कि यह मार्ग अमुक नगर को जाता है । गाडी के पहुँचने पर भी यह कहना कि 'गांव आ गया।' ८. भाव सत्य – निश्चय की अपेक्षा कई बातें होने पर भी किसी एक की अपेक्षा से उसमें वही बताना, जैसे निश्चय की अपेक्षा बगुले में पांचों वर्ण होने पर भी उसे सफेद कहना । ९. योग सत्य – किसी चीज के सम्बन्ध से उस व्यक्ति को उस नाम से पुकारना, जैसे लकड़ी ढोने वाले को लकडी के नाम से पुकारना । १०. उपमा सत्य – किसी बात के समान होने पर एक वस्तु की दूसरी से तुलना करना, जैसे जल से लबालब भरे हुए तालाब को समुद्र कहना, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली स्त्री को चन्द्रमुखी कहना, उपमा सत्य है।

मृषावाद यानी असत्य वचन दस प्रकार का कहा गया है यथा – १. क्रोधनिसृत – जो असत्य क्रोध में बोला जाय, जैसे क्रोध में कोई दूसरे को दास न होने पर भी दास कह देता है । २. मान निसृत – मान अर्थात् घमण्ड में बोला हुआ वचन । जैसे घमण्ड में आकर कोई गरीब भी अपने को धनवान् कहने लगता है । ३. माया निसृत – कपट से अर्थात् दूसरे को धोखा देने के लिए बोला हुआ झूठ । ४. लोभनिसृत – लोभ में आकर बोला हुआ वचन, जैसे कोई व्यापारी थोड़ी कीमत में खरीदी हुई वस्तु को अधिक कीमत की बता देता है । ५. प्रेमनिसृत – अत्यन्त प्रेम में निकला हुआ असत्य वचन, जैसे प्रेम में आकर कोई कहता है कि मैं तो आपका दास हूँ । ६. द्वेषनिसृत – द्वेष से निकला हुआ असत्य वचन, जैसे द्वेष के वश कोई किसी गुणी पुरुष को भी निर्गुणी कह देता है। ७. हास्यनिसृत – हँसी में झूठ बोलना । ८. भयनिसृत – चोर आदि से डर कर असत्य वचन बोलना । ९. आख्यायिका निसृत – कहानी आदि कहते समय उसमें झूठ वचन कहना या उसमें गप्प मारना । १०. उपघातनिसृत – प्राणियों की हिंसा के लिए बोला गया असत्य वचन, जैसे भले आदमी को भी चोर कह देना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्यामृषा - जिस भाषा में कुछ अंश सत्य और कुछ असत्य हो उसे सत्यामृषा यानी मिश्र भाषा कहते हैं । उसके दस भेद हैं यथा - १. उत्पन्नमिश्रित - संख्या पूरी करने के लिए नहीं उत्पन्न हुओं के साथ उत्पन्न हुओं को मिला देना, जैसे किसी गाँव में कम या अधिक बालक उत्पन्न होने पर भी यह कहना कि आज इस गांव में दस बालक उत्पन्न हुए हैं । २. विगतमिश्रित - मरण के विषय में इसी प्रकार कहना कि आज दस आदमी मरे हैं । ३. उत्पन्नविगतमिश्रित - जन्म और मृत्यु दोनों के विषय में अयथार्थ कहना, जैसे कि आज इस गांव में दस बालक जन्मे हैं और दस ही आदमी मरे हैं । ४. जीव मिश्रित - जीवित तथा मरे हुए बहुत से शंख आदि के ढेर को देख कर यह कहना कि - अहो ! यह कितना बड़ा जीवों का ढेर है । जीवितों को लेने से यह वचन सत्य है और मरे हुओं को लेने से असत्य है । इसलिए यह भाषा जीवमिश्रित सत्यामृषा है । ५. अजीवमिश्रित - उपरोक्त शंखों के ढेर को अजीवों का ढेर बताना । जीवाजीवमिश्रित - उपरोक्त शंखों के ढेर में अयथार्थ रूप से यह बताना कि इस ढेर में इतने जीव हैं और इतने अजीव हैं । ६. अनन्त मिश्रित - अनन्तकायिक तथा प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकाय के ढेर को देख कर कहना कि 'यह अनन्तकाय का ढेर है ।' प्रत्येक मिश्रित - अनन्तकायिक तथा प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकाय के ढेर को देख कर कहना कि - 'यह प्रत्येक वनस्पति काय का ढेर हैं ।' अद्धा मिश्रित - दिन या रात आदि काल के विषय में मिश्रित वाक्य बोलना जैसे जल्दी के कारण कोई दिन रहते कहे - उठो, चलो रात हो गई । अथवा रात रहते कहे-उठो-सूरज निकल आया । अद्धाद्धामिश्रित-दिन या रात के एक भाग को अद्धाद्धा कहते हैं । उन दोनों के लिए मिश्रित वचन बोलना अद्धाद्धा मिश्रित है, जैसे - जल्दी करने वाला कोई मनुष्य दिन के पहले पहर में भी कहे कि - दो पहर हो गया । अथवा रात के पहले पहर में भी कहे कि - 'आधी रात हो गई' इत्यादि अद्धाद्धा मिश्रित सत्यामृषा वचन है ।

दृष्टिवाद के नाम

दिट्ठिवायस्स णं दस णामधिज्जा पण्णत्ता तंजहा - दिट्ठिवाए इ वा, हेउवाए इ वा, भूयवाए इ वा, तच्चावाए इ वा, सम्मावाए इ वा, धम्मावाए इ वा, भासाविजए इ वा, पुव्वगए इ वा, अणुजोगगए इ वा, सव्वपाणभूयजीव सत्तसुहावहे इ वा ।

शस्त्र

दसविहे सत्थे पण्णत्ते तंजहा -

सत्थमग्गी विसं लोणं, सिणेहो खारमंबिलं ।
दुप्पउत्तो मणो वाया, काया भावो य अविरई ।। १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोष

दसविहे दोसे पण्णत्ते तंजहा -

तज्जाय दोसे मतिभंग दोसे, पत्थार दोसे परिहरण दोसे ।
सलक्खण कारण हेउ दोसे, संकामणं णिग्गह वत्थु दोसे ।। २॥

विशेष

दसविहे विसेसे पण्णत्ते तंजहा -

वत्थुतज्जाय दोसे य, दोसे एगट्ठिए इ य ।
कारणे य पडुप्पण्णे, दोसे णिच्चे हिय टुमे ।। ३॥
अत्तणा उवणीए य, विसेसे इ य ते दस ।। १२७॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुजोग गए** - अनुयोग गत, **सव्वपाणभूय जीवसत्तसुहावहे** - सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व सुखावह, **सत्थे** - शस्त्र, **लोणं** - लवण (नमक), **सिणेहो** - स्नेह, **अंबिलं** - अम्ल, **दुप्पउत्तो**- दुष्प्रयुक्त, **तज्जाय दोसे** - तज्जात दोष, **सलक्खण** - सलक्षण, **संकामणं** - संक्रामणं, **पत्थार दोसे** - प्रशास्तृ दोष ।

भावार्थ - दृष्टिवाद के दस नाम कहे गये हैं यथा - १. दृष्टिवाद - जिसमें भिन्न भिन्न दर्शनों का स्वरूप बताया गया हो, २. हेतुवाद - जिसमें अनुमान के पांच अवयवों का स्वरूप बताया गया हो । ३. भूतवाद - जिसमें सद्भूत पदार्थों का वर्णन किया गया हो। ४. तत्त्ववाद - जिसमें तत्त्वों का वर्णन हो अथवा तथ्यवाद - जिसमें तथ्य यानी सत्य पदार्थों का वर्णन हो । ५. सम्यग्वाद - जिसमें वस्तुओं का सम्यग् स्वरूप बतलाया गया हो । ६. धर्मवाद - जिसमें वस्तु के पर्यायों का अथवा चारित्र का वर्णन किया गया हो । ७. भाषाविजयवाद - जिसमें सत्य, असत्य आदि भाषाओं का वर्णन किया गया हो । ८. पूर्वगत वाद - जिसमें उत्पाद आदि चौदह पूर्वों का वर्णन किया गया हो । ९. अनुयोगगतवाद - अनुयोग दो तरह का है - प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग । तीर्थङ्करों के पूर्वभव आदि का जिसमें वर्णन किया गया हो उसे प्रथमानुयोग कहते हैं । भरत चक्रवर्ती आदि वंशजों के मोक्षगमन का और अनुत्तर विमान आदि का वर्णन जिसमें हों उसे गण्डिकानुयोग कहते हैं। इन दोनों अनुयोगों का जिसमें वर्णन हो उसे अनुयोगगतवाद कहते हैं । १०. सर्व प्राणभूतजीव सत्त्व सुखावह - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय को प्राण कहते हैं । वनस्पति को भूत कहते हैं। पञ्चेन्द्रिय प्राणियों को जीव कहते हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय को सत्त्व कहते हैं। इन सब प्राणियों को सुख का देने वाला वाद सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व सुखावह वाद कहते हैं ।

शस्त्र - जिससे प्राणियों की हिंसा हो उसे शस्त्र कहते हैं वह शस्त्र दस प्रकार का कहा गया है यथा - १. अग्नि - अपनी जाति से भिन्न विजातीय अग्नि की अपेक्षा स्वकाय शस्त्र है । पृथ्वीकाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्काय आदि की अपेक्षा परकाय शस्त्र है । २. विष - स्थावर और जंगम के भेद से विष दो प्रकार का है । ३. लवण - नमक। ४. स्नेह - घी, तेल आदि । ५. खार-खारा ६. अम्ल - काञ्जी अर्थात् एक प्रकार का खट्टा रस जिसे हरे शाक आदि में डालने से वह अचित्त हो जाता है । ये छह द्रव्य शस्त्र हैं । आगे के चार भाव शस्त्र हैं । वे इस प्रकार हैं - ७. दुष्प्रयुक्त मन, ८. दुष्प्रयुक्त वचन, ९. दुष्प्रयुक्त शरीर और १०. अविरति - किसी प्रकार का प्रत्याख्यान न करना अप्रत्याख्यान या अविरति कहलाता है। यह भी एक प्रकार का शस्त्र है ।

गुरु शिष्य या वादी प्रतिवादी के आपस में शास्त्रार्थ करने को वाद कहते हैं । वाद के दस दोष कहे गये हैं यथा - १. तज्जात दोष - गुरु या प्रतिवादी के जन्म, कुल, जाति किसी निजी बात में दोष निकालना अर्थात् व्यक्तिगत आक्षेप करना । २. मतिभंग दोष - बुद्धि का भङ्ग हो जाना, अर्थात् जानी हुई बात को भूल जाना या समय पर उसका याद न आना । ३. प्रशास्तृ दोष - सभा की व्यवस्था करने वाले सभापति या किसी प्रभावशाली सभ्य द्वारा पक्षपात के कारण प्रतिवादी को विजयी बना देना अथवा प्रतिवादी के किसी बात को भूल जाने पर उसे बता देना । ४. परिहरण दोष - अपने सिद्धान्त के अनुसार अथवा लोकरूढ़ि के कारण जिस बात को नहीं कहना चाहिए, उसी को कहना परिहरण दोष है । अथवा सभा के नियमानुसार जिस बात को कहना चाहिए उसे न कहना या वादी के द्वारा दिये गये दोष का ठीक ठीक परिहार किये बिना जात्युत्तर देना परिहरण दोष है । ५. लक्षण दोष - बहुत से पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को अलग करने वाला धर्म लक्षण कहलाता है । जैसे जीव का लक्षण उपयोग है । लक्षण के तीन दोष हैं :- अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव । ६. कारण दोष - जिस हेतु के लिए कोई दृष्टान्त न हो । परोक्ष अर्थ का निर्णय करने के लिए सिर्फ उपपत्ति अर्थात् युक्ति को कारण कहते हैं । साध्य के बिना भी कारण का रह जाना कारण दोष है । ७. हेतु दोष - जो साध्य के होने पर हो और उसके बिना न हो तथा जो साध्य का ज्ञान करावे उसे हेतु कहते हैं । हेतु के तीन दोष हैं :- असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक । ८. संक्रामण दोष - प्रस्तुत विषय को छोड़ कर अप्रस्तुत विषय में चले जाना अथवा अपना मत कहते कहते उसे छोड़ कर प्रतिवादी के मत को स्वीकार कर लेना तथा उसका प्रतिपादन करने लगना संक्रामण दोष है । ९. निग्रह दोष - छल आदि से दूसरे को पराजित करना निग्रह दोष है । १०. वस्तु दोष - जहाँ साधन और साध्य रहें ऐसे पक्ष को वस्तु कहते हैं । पक्ष के दोषों को वस्तु दोष कहते हैं । प्रत्यक्षनिराकृत, आगमनिराकृत, लोकनिराकृत आदि इसके कई भेद हैं। जिसके कारण वस्तुओं में भेद हो अर्थात् सामान्य रूप से ग्रहण की हुई बहुत सी वस्तुओं में से किसी व्यक्ति विशेष को पहिचाना जाय उसे विशेष कहते हैं । विशेष का अर्थ हैं व्यक्ति या भेद । पहले सामान्य रूप से वाद के दस दोष बताये गये हैं । यहाँ उन्हीं के विशेष दोष दस कहे गये हैं यथा - वस्तुदोष - पक्ष के दोष को वस्तु दोष कहते हैं । सामान्य दोष की अपेक्षा वस्तुदोष विशेष है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुदोष में भी प्रत्यक्ष निराकृत आदि कई विशेष है । तज्जात दोष - प्रतिवादी की जाति, कुल आदि को लेकर दोष देना तज्जात दोष है । यह भी सामान्य दोष की अपेक्षा विशेष है । जन्म, कर्म, मर्म आदि से इसके अनेक भेद हैं । दोष - पहले कहे हुए मति भंग आदि आठ दोषों को सामान्य रूप से न लेकर आठ भेद लेने से यह भी विशेष दोष है । अथवा अनेक प्रकार के दोष यहाँ दोष शब्द से लिये गये हैं । एकार्थिक - एकार्थक शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थ करना । कारण दोष - कार्य कारण का यथार्थ भेद न करना । प्रत्युत्पन्न दोष - अतीत और भविष्यत्काल को छोड़ कर वर्तमान काल में लगने वाला दोष । नित्य दोष - जिस दोष के आदि और अन्त न हो अथवा वस्तु को एकान्त नित्य मानने पर जो दोष लगते हैं उन्हें नित्यदोष कहते हैं । अधिक दोष - दूसरों को ज्ञान कराने के लिए प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त आदि जितनी बातों की आवश्यकता है उससे अधिक कहना अधिकदोष है । आत्मकृत दोष - जो दोष स्वयं किया हो उसे आत्मकृतदोष कहते हैं । उपनीत दोष - जो दोष दूसरे द्वारा लगाया गया हो उसे उपनीतदोष कहते हैं ।

शुद्ध वागनुयोग

दसविहे सुद्ध वायाणुओगे पण्णत्ते तंजहा - चंकारे, मंकारे, पिंकारे, सेयंकरे, सायंकरे, एगत्ते, पुहत्ते, संजूहे, संकामिए, भिण्णे ।

दान

दसविहे दाणे पण्णत्ते तंजहा -

अणुकंपा संगहे चेव, भए कालुणिए इ वा ।
लज्जाए गारवेणं च, अहम्मे पुण सत्तमे ।।
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काही इ य कतंति य ।

गति दस

दसविहा गई पण्णत्ता तंजहा - णिरयगई, णिरयविग्गहगई, तिरियगई, तिरिय विग्गहगई एवं जाव सिद्धिगई, सिद्धि विग्गहगई ।

दस मुंडा पण्णत्ता तंजहा - सोइंदियमुंडे, जाव फासिंदियमुंडे, कोहमुंडे जाव लोभमुंडे, दसमे सिरमुंडे ।

दस संख्यान

दसविहे संखाणे पण्णत्ते तंजहा -

परिकम्मं ववहारो रज्जू रासी कलासवण्णे य ।
जावं ताव इ वग्गो घणो य तह वग्गवग्गो वि कप्पो य॥ १२८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - वायाणुओगे - वागनुयोग, **संजूहे** - संयूथ, **कालुणिए** - कारुण्य, **अहम्मे** - अधर्म, **कयं** - कृत, **विग्गहगई** - विग्रह गति, **सिरमुंडे** - शिर मुण्ड, **संखाणे** - संख्यान, **कलासवण्णे**- कलासवर्ण, **वग्गवग्गो** - वर्ग वर्ग ।

भावार्थ - वाक्य में आये हुए जिन पदों का वाक्यार्थ से कोई सम्बन्ध न हो उसे शुद्ध वाक् कहते हैं । उसका अनुयोग अर्थात् वाक्यार्थ के साथ सम्बन्ध का विचार दस प्रकार से होता है । यद्यपि उनके बिना वाक्य का अर्थ करने में कोई बाधा नहीं पड़ती है किन्तु वे वाक्य के अर्थ को व्यवस्थित करते हैं। वह शुद्ध वागनुयोग दस प्रकार का है यथा - १. चकार - संस्कृत में 'च' क अर्थ होता है 'और'। प्राकृत में भी 'च' का अर्थ 'और' होता है। प्राकृत व्याकरण का नियम है कि - 'क, ग, च, ज, त, द, प, य, वांम प्रायोलुक। इस सूत्र के अनुसार 'च' का लोप हो जाता है और 'च' के अन्दर रहा हुआ 'अ' शेष रहता है। फिर दूसरा सूत्र लगता है 'अवर्णो य श्रुतिः' इस सूत्र के अनुसार अकार का यकार हो जाता है। स्वर के आगे तो अकार का यकार होता है। जैसे कि - 'इत्थिओ सयणाणियं' किन्तु पहले व्यञ्जन हो या अनुस्वार हो तो 'च' का 'च' ही रहता है जैसे कि 'अहं च भोगरायस्स' 'कोहं च माणं च तहेव मायं' इस तरह 'च' के विषय में सब जगह समझना चाहिए। २. मकार - 'मा' का अर्थ है 'निषेध' । ३. अपि - इसका प्राकृत में 'पि' और 'वि' हो जाता है । इसका अर्थ है 'भी' । 'एवं वि' अर्थात् 'इस प्रकार भी और दूसरी तरह से भी' । ४. सेयंकार - 'से' शब्द का प्रयोग 'अथ' के लिए किया जाता है । इसका प्रयोग 'वह' और 'उसके' अर्थ में भी होता है । अथवा 'सेयंकरे' की संस्कृत छाया 'श्रेयस्कर' है । इसका अर्थ है 'कल्याण' । जैसे 'सेयं मे अहिज्झिउं अज्झयणं' । 'सेय' शब्द का अर्थ 'भविष्यत्काल' भी है । ५. सायंकार - 'सायं' शब्द के तीन अर्थ होते हैं तथावचन, सद्भाव और प्रश्न । ६. एकत्व बहुत सी बातें मिल कर जहाँ किसी एक वस्तु के प्रति कारण हों वहाँ एक वचन का प्रयोग होता है । जैसे 'सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्षमार्गः' । यहाँ अगर 'मार्गाः' बहुवचन कर दिया जाता तो इसका अर्थ हो जाता कि 'ज्ञान दर्शन और चारित्र अलग अलग मोक्ष के मार्ग हैं । 'मार्गः' यहाँ एक वचन करने से यह अर्थ होता है कि - ये तीनों मिल कर मोक्ष का मार्ग है, अलग अलग नहीं । ७. पृथक्त्व - भेद अर्थात् द्विवचन और बहुवचन। जैसे 'धम्मत्थिकायपएसा' यहाँ बहुवचन उन्हें असंख्यात बताने के लिए दिया गया है । ८. संयूथ - इकट्ठे किये हुए या समस्त पदों को संयूथ कहते हैं । जैसे - 'सम्यग्दर्शनशुद्धं' यहाँ पर सम्यग्दर्शन के द्वारा शुद्ध, सम्यग्दर्शन के लिए शुद्ध, सम्यग्दर्शन से शुद्ध, इत्यादि अनेक अर्थ मिले हुए हैं । ९. संक्रामित - जहाँ विभक्ति या वचन को बदल कर वाक्य का अर्थ किया जाता है । १०. भिन्न - जहाँ क्रम और काल आदि के भेद से भिन्न अर्थ किया जाता है ।

दान - अपने अधिकार में रही हुई वस्तु दूसरे को देना दान कहलाता है अर्थात् उस वस्तु पर से

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

अपना अधिकार हटा कर दूसरे का अधिकार कर देना दान है । दान के दस भेद कहे गये हैं यथा - १. अनुकम्पादान - किसी दीन दुःखी, अनाथ प्राणी पर अनुकम्पा-दया करके जो दान दिया जाता है वह अनुकम्पादान है । २. संग्रहदान - अपने पर आपत्ति आदि आने पर सहायता प्राप्त करने के लिए किसी को कुछ देना संग्रह दान है । यह दान अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए दिया जाता है इसलिए मोक्ष का कारण नहीं होता है । ३. भयदान - राजा, मंत्री, पुरोहित आदि के भय से अथवा राक्षस, पिशाच आदि के डर से दिया जाने वाला दान भयदान कहलाता है । ४. कारुण्यदान - पुत्र आदि के वियोग के कारण होने वाला शोक कारुण्य कहलाता है । शोक के समय पुत्र आदि के नाम से दान देना कारुण्यदान है । ५. लज्जादान - लज्जा के कारण जो दान दिया जाता है वह लज्जादान है । अर्थात् बहुत से आदमियों के बीच बैठे हुए किसी व्यक्ति से जब कोई आकर मांगने लगता है तब लोकलज्जा के कारण कुछ देना लज्जादान है। ६. गारवदान या गौरवदान - यश कीर्ति एवं प्रशंसा प्राप्त करने के लिए गर्वपूर्वक देना गौरवदान है । ७. अधर्मदान - हिंसा, झूठ चोरी आदि कार्यों को पुष्ट करने की बुद्धि से दिया जाने वाला दान अधर्मदान कहलाता है । ८. धर्मदान - धर्म कार्यों को पुष्ट करने के लिए दिया जाने वाला दान धर्मदान है । ९. करिष्यतिदान - भविष्य में प्रत्युपकार की आशा से जो दिया जाता है वह करिष्यतिदान है। १०. कृतदान - पहले किये हुए उपकार के बदले में जो कुछ दिया जाता है वह कृतदान कहलाता है ।

दस प्रकार की गति कही गई है यथा - नरकगति, नरकविग्रह गति, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्च विग्रहगति, मनुष्यगति, मनुष्यविग्रह गति, देवगति, देव विग्रहगति, सिद्धिगति, सिद्धि विग्रहगति ।

मुण्ड - जो किसी वस्तु को छोड़े उसे मुण्ड कहते हैं । इसके दस भेद हैं यथा - श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड यावत् स्पर्शनेन्द्रिय मुण्ड अर्थात् पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला । क्रोधमुण्ड यावत् लोभमुण्ड अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषाय का त्याग करने वाला । शिरमुण्ड - शिर मुंडाने वाला अर्थात् दीक्षा लेने वाला ।

संख्यान - जिस उपाय से किसी वस्तु की संख्या या परिमाण का पता लगे उसे संख्यान कहते हैं। इसके दस भेद कहे गये हैं यथा - १. परिकर्म - जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि को परिकर्म कहते हैं । २. व्यवहार - श्रेणी व्यवहार आदि पाटी गणित में प्रसिद्ध अनेक प्रकार का गणित व्यवहार संख्यान है । ३. रज्जू - रस्सी से नाप कर लम्बाई चौड़ाई आदि का पता लगाना रज्जुसंख्यान है । इसी को क्षेत्रगणित कहते हैं । ४. राशि - धान आदि के ढेर का माप कर या तोल कर परिमाण जानना राशि संख्यान है । इसी को राशि व्यवहार भी कहते हैं । ५. कलासवर्ण - वस्तु के अंशों को बराबर करके जो गणित किया जाता है वह कलासवर्ण संख्यान है । ६. यावततावत् - एक संख्या को उसी से गुणा करना अथवा किसी संख्या का एक से लेकर जोड़ *निकालने* लिए गुणा आदि करना यावत्तावत् संख्यान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाता है । जैसे १० तक का योगफल निकालने के लिए दस संख्या को एक अधिक अर्थात् ११ से गुणा किया जाय तो, गुणनफल ११० हुआ । उसको दो से भाग देने पर ५५ निकल आये । यह १० तक की संख्या का योगफल है । ७. वर्ग - किसी संख्या को उसी से गुणा करना वर्गसंख्यान है । जैसे २ को २ से गुणा करने पर ४ हुए । यह २ का वर्गसंख्यान है । ८. घन - एक सरीखी तीन संख्याएं रख कर उन्हें उत्तरोत्तर गुणा करना घन संख्यान है । जैसे - २,२,२ । यहाँ २ को २ से गुणा करने पर ४ हुए। ४ को २ से गुणा करने पर ८ हुए । यह २ का घनसंख्यान है । ९. वर्गवर्ग - वर्ग अर्थात् प्रथम संख्या के गुणनफल को उसी वर्ग से गुणा करना वर्गवर्गसंख्यान है । जैसे २ का वर्ग हुआ ४ । ४ का वर्ग हुआ १६ । १६ संख्या २ का वर्गवर्ग है । १०. कल्प - आरी से लकड़ी को काट कर उसका परिमाण जानना कल्पसंख्यान कहलाता है ।

विवेचन - दान - अपने अधिकार में रही हुई वस्तु दूसरे को देना दान कहलाता है, अर्थात् उस वस्तु पर से अपना अधिकार हटा कर दूसरे का अधिकार कर देना दान है। दान के दस भेद हैं -

१. अनुकम्पा दान - किसी दुःखी, दीन, अनाथ प्राणी पर अनुकम्पा (दया) करके जो दान दिया जाता है, वह अनुकम्पा दान है। वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने अनुकम्पा दान का लक्षण करते हुए कहा है -

कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहर्ते।
यद्दीयते कृपार्थात् अनुकम्प तद्भवेद्दानम्॥

अर्थात् - कृपण (दीन), अनाथ, दरिद्र, दुखी, रोगी, शोकग्रस्त आदि प्राणियों पर अनुकम्पा करके जो दान दिया जाता है वह अनुकम्पा दान है।

२. संग्रह दान - संग्रह अर्थात् सहायता प्राप्त करना। आपत्ति आदि आने पर सहायता प्राप्त करने के लिए किसी को कुछ देना संग्रह दान है। यह दान अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए होता है, इसलिए मोक्ष का कारण नहीं होता है।

अभ्युदये व्यसने वा यत् किञ्चिद्दीयते सहायतार्थम्।
तत्संग्रहतोऽभिमतं मुनिभिर्दानं न मोक्षाय॥

अर्थात् - अभ्युदय में या आपत्ति आने पर दूसरे की सहायता प्राप्त करने के लिये जो दान दिया जाता है वह संग्रह (सहायता प्राप्ति) रूप होने से संग्रह दान है। ऐसा दान मोक्ष के लिए नहीं होता है।

३. भयदान - राजा, मंत्री, पुरोहित आदि के भय से अथवा राक्षस एवं पिशाच आदि के डर से दिया जाने वाला दान भय दान है।

राजारक्षपुरोहितमधुमुखमाविल्लदण्डपाशिषु च।
यद्दीयते भयार्थात्तद्भयदानं बुधैर्ज्ञेयम्॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् - राजा, राक्षस या रक्षा करने वाले, पुरोहित, मधु मुख अर्थात् दुष्ट पुरुष जो मुँह का मीठा और दिल का काला हो, मायावी, दण्ड अर्थात् सजा वगैरह देने वाले राजपुरुष इत्यादि को भय से बचने के लिये कुछ देना भय दान है।

४. कारुण्य दान - पुत्र आदि के वियोग के कारण होने वाला शोक कारुण्य कहलाता है। शोक के समय पुत्र आदि के नाम से दान देना कारुण्य दान है। इसको आगम में 'कालुणिए' दान कहा है।

५. लज्जा दान - लज्जा के कारण जो दान दिया जाता है वह लज्जा दान है।

अभ्यर्थितः परेण तु यद्दानं जनसमूहगतः।

परचित्तरक्षणार्थं लज्जायास्तद्भवेद्दानम्॥

अर्थात् - जनसमूह के अन्दर बैठे हुए किसी व्यक्ति से जब कोई आकर मांगने लगता है उस समय लज्जा के वश होकर मांगने वाले को कुछ दे देना लज्जादान कहलाता है।

६. गौरव दान - यश कीर्ति या प्रशंसा प्राप्त करने के लिए गर्व पूर्वक दान देना गौरवदान है।

नटनर्त्तमुष्टिकेभ्यो दानं सम्बन्धिबन्धुमित्रेभ्यः।

यद्दीयते यशोऽर्थं गर्वेण तु तद्भवेद्दानम्॥

अर्थात् - नट, नाचने वाले, पहलवान्, सगे सम्बन्धी या मित्रों को यश प्राप्ति के लिये गर्वपूर्वक जो दान दिया जाता है उसे गौरव दान कहते हैं।

७. अधर्मदान - अधर्म की पुष्टि करने वाला अथवा जो दान अधर्म का कारण है वह अधर्मदान है-

हिंसानृतचौर्योद्यतपरदारपरिग्रहप्रसक्तेभ्यः।

यद्दीयते हि तेषां तज्जानीयादधर्माय॥

हिंसा, झूठ, चोरी, परदारगमन और आरम्भ समारम्भ रूप परिग्रह में आसक्त लोगों को जो कुछ दिया जाता है वह अधर्मदान है।

८. धर्मदान - धर्मकार्यों में दिया गया अथवा धर्म का कारणभूत दान धर्मदान कहलाता है।

समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दानं दीयते सुपात्रेभ्यः।

अक्षयमतुलमनन्तं तद्दानं भवति धर्माय॥

जिन के लिए तृण, मणि और मोती एक समान हैं ऐसे सुपात्रों को जो दान दिया जाता है वह दान धर्मदान होता है। ऐसा दान कभी व्यर्थ नहीं होता। उसके बराबर कोई दूसरा दान नहीं है। वह दान अनन्त सुख का कारण होता है।

९. करिष्यतिदान - भविष्य में प्रत्युपकार की आशा से जो कुछ दिया जाता है वह करिष्यतिदान है। प्राकृत में इसका नाम 'काही' दान है।

१०. कृतदान - पहले किए हुए उपकार के बदले में जो कुछ किया जाता है उसे कृतदान कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतशः कृतोपकारो दत्तं च सहस्रशो ममानेन।

अहमपि ददामि किंचित्प्रत्युपकाराय तद्दानम्।

भावार्थ - इसने मेरा सैकड़ों बार उपकार किया है। मुझे हजारों बार दान दिया है। इसके उपकार का बदला चुकाने के लिए मैं भी कुछ देता हूँ। इस भावना से दिये गये दान को कृतदान या प्रत्युपकार दान कहते हैं।

यहाँ पर चौथे दान का नाम 'कारुण्य दान' कहा है, प्राकृत भाषा में आगम में इसको 'कालुणिए दान' कहा है। यह मोक्ष के वशीभूत होकर आर्तध्यान करते हुए इष्ट के वियोग और अनिष्ट के संयोग में जो दान दिया जाता है उसे 'कारुण्य दान' कहा है। अनुकम्पा का दूसरा नाम करुणा है इसलिए अनुकम्पा दान या करुणा दान से यह भिन्न है इसका नाम कारुण्य है अनुकम्पा (करुणा) दान दीन दुःखी को दिया जाता है अनुकम्पा आत्मा का गुण है एवं समकित का लक्षण है। अनुकम्पा एकान्त निरवद्य है अनुकम्पा कभी सावद्य नहीं होती। दुःखी को देख कर-हृदय में जो करुणा के भाव पैदा होते हैं वह अनुकम्पा है। मेरी भावना में कहा है - **'दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे।'** दुःखी के दुःख को दूर करने के उपाय सावद्य और निरवद्य दोनों तरह के हो सकते हैं - जैसे कि भूख प्यास से पीड़ित व्यक्ति को अपने पास की रोटी दे दी और अचित्त पानी (धोवन या गरम पानी) या छाछ पिला दी तो यह उपाय भी निरवद्य है किन्तु किसी ने कच्चा पानी पिला दिया तो यह उपाय सावद्य है परन्तु इससे अनुकम्पा सावद्य नहीं हो जाती क्योंकि अनुकम्पा तो आत्मा का गुण है। ज्ञाता सूत्र में जिनपालित और जिन रक्षित का वर्णन आता है-वहाँ रयणा देवी के विलाप को सुन कर जिनरक्षित को मोहवश यह कालुणिए भाव आया था इसको करुणा भाव कहना मिथ्या है। निष्कर्ष यह निकला कि अनुकम्पा दान (करुणा दान) और यह कालुणिए दान ये दोनों भिन्न है। क्योंकि अनुकम्पा दान तो धर्मदान में समाविष्ट होता है और कालुणिए (कारुण्य) दान अधर्म दान में समाविष्ट होता है।

धर्मदान में तीन दानों का समावेश होता है १. अभयदान २. ज्ञान दान और ३. सुपात्र दान। अभयदान की विशेषता बतलाते हुए सूयगडाङ्ग सूत्र के छठे अध्ययन में कहा है -

'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं' ॥ २३ ॥

अर्थात् दानों में श्रेष्ठ अभयदान है।

भय से भयभीत बने हुए प्राणी के प्राणों की रक्षा करना अभय दान है। जिस ज्ञान से आत्मा का कल्याण सधे वैसा धार्मिक ज्ञान धर्मदान में जाता है। अभयदान का दूसरा पर्यायवाची नाम अनुकम्पा दान है जो दस दानों में अलग बतला दिया गया है। जिसका पहला नम्बर है। यह समकित का लक्षण होने से इसे प्रथम नम्बर दिया गया है।

गति दस - गतियाँ दस बतलाई गई हैं। वे निम्न प्रकार हैं -

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

१. **नरक गति** – नरक गति नाम कर्म के उदय से नरक पर्याय की प्राप्ति होना नरकगति कहलाती है। नरक गति को निरय गति भी कहते हैं। अय नाम शुभ, उससे रहित जो गति हो वह निरय गति कहलाती है।

"निर्गतं अयः शुभं कर्म येभ्यः ते निरयाः"

अर्थ – जिन स्थान में रहने वाले प्राणियों का शुभ कर्म निकल गया है अथवा अल्प रह गया है उनको निरय कहते हैं। नरक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है –

"नगन् प्राणिन कायन्ति, रुदनं कारयन्ति इति नरकाः"

– जहाँ प्राणियों को परमाधार्मिक देव रुदन करवाते हैं तथा दुःख से पीड़ित होकर प्राणी स्वयं रुदन करते हैं उन स्थानों को नरक कहते हैं।

२. **नरक विग्रह गति** – नरक में जाने वाले जीवों की जो विग्रह गति ऋजु (सरल-सीधे) रूप से या वक्र (टेढ़े) रूप से होती है, उसे नरक विग्रह गति कहते हैं।

इसी तरह ३. तिर्यंच गति ४. तिर्यंच विग्रह गति ५. मनुष्य गति ६. मनुष्य विग्रह गति ७. देव गति ८. देव विग्रह गति समझनी चाहिए। इन सब की विग्रह गति ऋजु रूप से या वक्र रूप से होती है।

९. **सिद्धि गति** – आठ कर्मों का सर्वथा क्षय करके लोकाग्र पर स्थित सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त करना सिद्धिगति कहलाती है।

१०. **सिद्धि विग्रह गति** – अष्ट कर्म से विमुक्त प्राणी की आकाश प्रदेशों का अतिक्रमण (उल्लंघन) रूप जो गति अर्थात् लोकान्त प्राप्ति वह सिद्धि विग्रह गति कहलाती है।

कहीं कहीं पर विग्रह गति का अपरनाम वक्र गति कहा गया है। यह नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के लिए तो उपयुक्त है, क्योंकि उन की विग्रह गति ऋजु रूप से और वक्र रूप से दोनों तरह होती है किन्तु अष्ट कर्म से विमुक्त जीवों की विग्रह गति वक्र नहीं होती। अथवा इस प्रकार व्याख्या करनी चाहिए कि पहले जो सिद्धि गति बतलाई गई है वह सामान्य सिद्धि गति कही गई है और दूसरी सिद्धि अविग्रह गति अर्थात् सिद्धों की अविग्रह-अवक्र (सरल-सीधी) गति होती है। यह विशेष की अपेक्षा से कथित सिद्धि अविग्रह गति है। अतः सिद्धि गति और सिद्धि अविग्रह गति सामान्य और विशेष की अपेक्षा से कही गई है।

मुण्ड दस – जो मुण्डन अर्थात् अपनयन (हटाना) करे, किसी वस्तु को छोड़े उसे मुण्ड कहते हैं। इसके दस भेद हैं –

१. **श्रोत्रेन्द्रिय मुण्ड** – श्रोत्रेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला।

२. **चक्षुरिन्द्रिय मुण्ड** – चक्षुरिन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला।

३. **घ्राणेन्द्रिय मुण्ड** – घ्राणेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. **रसनेन्द्रिय मुण्ड** - रसनेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला।

५. **स्पर्शनेन्द्रिय मुण्ड** - स्पर्शनेन्द्रिय के विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला।

६. **क्रोध मुण्ड** - क्रोध छोड़ने वाला।

७. **मान मुण्ड** - मान का त्याग करने वाला।

८. **माया मुण्ड** - माया अर्थात् कपटाई छोड़ने वाला।

९. **लोभ मुण्ड** - लोभ का त्याग करने वाला।

१०. **सिर मुण्ड** - सिर मुँडाने वाला अर्थात् दीक्षा लेने वाला।

दशविध प्रत्याख्यान

दसविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते तंजहा -

अणागयमइक्कंतं कोडीसहियं णियंटियं चेव ।
सागारमणागारं परिमाणकडं णिरवसेसं ।।
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं दसविहं तु ।

सामाचारी भेद

दसविहा सामायारी पण्णत्ता तंजहा -

इच्छा, मिच्छा, तहक्कारो, आवस्सिया, णिसीहिया ।
आपुच्छणा, य पडिपुच्छणा, छंदणा, य णिमंतणा ।।
उवसंपया, य काले सामायारी भवे दसविहा उ॥ १२९॥

कठिन शब्दार्थ - **पच्चक्खाणे** - पच्चक्खाण-प्रत्याख्यान, **अइक्कंतं** - अतिक्रान्त, **कोडीसहियं**- कोटि सहित, **णियंटियं** - नियन्त्रित, **परिमाणकडं** - परिमाणकृत, **णिरवसेसं** - निरवशेष, **संकेयं** - संकेत, **सामायारी** - सामाचारी, **तहक्कारो** - तथाकार, **आवस्सिया** - आवश्यिकी, **णिसीहिया** - नैषेधिकी, **छंदणा** - छन्दना, **णिमंतणा** - निमंत्रणा ।

भावार्थ - दस प्रकार का पच्चक्खाण-प्रत्याख्यान कहा गया है यथा - १. अनागत - किसी आने वाले पर्व पर निश्चित किये हुए पच्चक्खाण को उस समय बाधा पड़ती देख कर पहले ही कर लेना । जैसे पर्युषण में आचार्य या ग्लान, तपस्वी की सेवा शुश्रूषा करने के कारण तपस्या में होने वाली अन्तराय को जान कर पहले ही उपवास आदि कर लेना । २. अतिक्रान्त - पर्युषण आदि के समय कोई कारण उपस्थित होने पर बाद में तपस्या आदि करना अर्थात् गुरु, तपस्वी, ग्लान की वैयावृत्य आदि कारणों से जो साधु पर्युषण आदि पर्वों पर तपस्या नहीं कर सकता, वह यदि बाद में उसी तप को करे तो उसे अतिक्रान्त तप कहते हैं । ३. कोटिसहित - जहाँ एक पच्चक्खाण की समाप्ति तथा दूसरे का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रारम्भ उसी दिन हो जाय उसे कोटिसहित कहते हैं । ४. नियन्त्रित - जिस दिन जिस पच्चक्खाण को करने का निश्चय किया है उस दिन उसे नियम पूर्वक करना, बीमारी आदि की बाधा आने पर भी उसे नहीं छोड़ना नियन्त्रित पच्चक्खाण है । यह पच्चक्खाण चौदह पूर्वधर, जिनकल्पी, वज्रऋषभनाराच संहनन वालों के लिए ही होता है । पहले स्थविरकल्पी भी इसे करते थे किन्तु अब यह विच्छिन्न हो गया है । ५. सागार पच्चक्खाण - जिस पच्चक्खाण में कुछ आगार अर्थात् अपवाद रखा जाय, उन आगारों में से किसी के उपस्थित होने पर त्याग का समय पूरा न होने पर पहले भी त्यागी हुई वस्तु काम में ले ली जाय तो पच्चक्खाण नहीं टूटता है, जैसे नवकारसी, पोरिसी आदि पच्चक्खाणों में अनाभोग आदि आगार है । ६. अनागार पच्चक्खाण - जिस पच्चक्खाण में महत्तरागार आदि आगार न हों । अनाभोग और सहसाकार तो उसमें भी होते हैं क्योंकि अनुपयोग से मुंह में अंगुली आदि पड़ जाने से या भूल से कुछ चीज मुंह में पड़ जाने से आगार न होने पर पच्चक्खाण के टूटने का डर रहता है । ७. परिमाणकृत - आहार पानी की दत्ति, घर, भिक्षा या भोजन के द्रव्यों की मर्यादा करना परिमाणकृत पच्चक्खाण है । ८. निरवशेष पच्चक्खाण - अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारों प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना निरवशेष पच्चक्खाण है । ९. संकेत पच्चक्खाण - गांठ, अंगुठी, मुट्ठी आदि के चिह्न को लेकर जो त्याग किया जाता है उसे संकेत पच्चक्खाण कहते हैं । १०. अद्धा पच्चक्खाण - काल को लेकर जो पच्चक्खाण किया जाता है, जैसे पोरिसी दो पोरिसी आदि ।

समाचारी - साधु के आचरण को अथवा भले आचरण को समाचारी कहते हैं । इसके दस भेद कहे गये हैं यथा - १. इच्छाकार - 'अगर आपकी इच्छा हो तो मैं अपना अमुक कार्य करूँ अथवा आपकी इच्छा हो तो मैं आपका यह कार्य करूँ' इस प्रकार गुरु महाराज से पूछना इच्छाकार कहलाता है। २. मिथ्याकार - संयम का पालन करते हुए कोई विपरीत आचरण हो गया हो तो उस पाप के लिए पश्चात्ताप करते हुए 'मिच्छामि दुक्कडं' अर्थात् मेरा पाप निष्फल हो, ऐसा कहना मिथ्याकार है । ३. तथाकार - सूत्रादि आगम के विषय में गुरु महाराज को कुछ पूछने पर जब गुरु महाराज उत्तर दें उस समय तथा कथा वार्ता एवं व्याख्यान के समय 'तहत्ति - जैसा आप फरमाते हैं वह ठीक है' ऐसा कहना तथाकार है । ४. आवश्यिकी - आवश्यक कार्य के लिए उपाश्रय से बाहर निकलते समय 'आवस्सिया आवस्सिया' अर्थात् आवश्यक कार्य के लिए मैं बाहर जाता हूँ' ऐसा कहना आवस्सिया समाचारी है । ५. नैषेधिकी - बाहर से वापिस आकर उपाश्रय में प्रवेश करते समय 'निसीहिया निसीहिया' अर्थात् जिस आवश्यक कार्य के लिए मैं बाहर गया था वह कार्य करके मैं वापिस आ गया हूँ ' ऐसा कहना निसीहिया समाचारी है । ६. आपृच्छना - किसी कार्य में प्रवृत्ति करने से पहले 'क्या मैं यह कार्य करूँ ' ऐसा गुरु महाराज से पूछना पृच्छना समाचारी है । ७. प्रतिपृच्छना - गुरु महाराज ने पहले जिस काम के लिए निषेध कर दिया है उसी कार्य में आवश्यकतानुसार फिर प्रवृत्त होना हो तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरु महाराज से पूछना कि 'भगवन् ! आपने पहले इस कार्य के लिए मना किया था किन्तु यह कार्य जरूरी है, आप फरमावें तो करूँ' ऐसा पूछना प्रति पृच्छना समाचारी है । ८. छन्दना - लाये हुए आहार आदि के लिए साधु को आमन्त्रण देना । जैसें - यदि आपके उपयोग में आ सके तो यह वस्तु आप ग्रहण कीजिये । ऐसा कहना छन्दना समाचारी है । ९. निमन्त्रणा - आहार लाने के लिए साधु को पूछना । जैसे 'क्या आपके लिए आहार आदि लाऊँ ?' ऐसा पूछना निमंत्रणा समाचारी है । १०. उपसंपद् - ज्ञानादि प्राप्त करने के लिए अपना गच्छ छोड़ कर किसी विशेष ज्ञान वाले साधु के पास जाना उपसंपद् समाचारी है।

विवेचन - अमुक समय के लिये पहले से ही किसी वस्तु के त्याग कर देने को प्रत्याख्यान कहते हैं। प्रत्याख्यान के दस भेदों का स्वरूप भावार्थ में स्पष्ट कर दिया है। भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक २ में इनका वर्णन आया है।

समाचारी के दस भेदों का वर्णन भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ७ एवं उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ गाथा २ से ७ में भी विस्तार से आया है।

भगवान् महावीर स्वामी के दस महा स्वप्न

समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिम राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तंजहा - एगं च णं महाघोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महासागरं उम्मिवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णे सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं दिणायरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे । एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं णियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे । एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाओ उवरिं सीहासणवरगयं अत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

तएणं समणे भगवं महावीरे एगं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराइयं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलाओ

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

उग्घाइए । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्त पक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमयपरसमइयं चित्तविचित्तं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ, दंसेइ, णिदंसेइ, उवदंसेइ तंजहा - आयारं जाव दिट्ठिवायं । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेइ तंजहा - अगारधम्मं च अणगारधम्मं च । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे संघे तंजहा - समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ ।

जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेइ तंजहा - भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसवासी, वेमाणवासी । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं उम्मिवीइसहस्सकलियं महासागरं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंत संसार कंतारे तिण्णे । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे । जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं णिययेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सदेवमणुयासुरे लोए उराला कित्तिवण्णसद्दसिलोगा परिगुव्वंति इइ खलु समणे भगवं महावीरे इइ । जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अत्ताणं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेइ, पण्णवेइ जाव उवदंसेइ॥ १३० ॥

कठिन शब्दार्थ - छउमत्थकालियाए - छद्मस्थ अवस्था की, अंतिमराइयंसि - अन्तिम रात्रि में,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महासुमिणे - महास्वप्न, **पडिबुद्धे** - प्रतिबुद्ध (जागृत), **महाघोररूवदित्तधरं** - महाभयंकर रूप वाले, **तालपिसायं** - ताड वृक्ष के समान पिशाच को, **सुक्किल पक्खगं** - श्वेत पंख वाले, **पुंसकोइलगं** - पुंस्कोकिल को, **दामदुगं**- माला युगल को, **गोवग्गं** - गो वर्ग-गायों के झुण्ड को, **उम्मवीइसहस्सकलियं**- हजारों लहरों और कल्लोलों से युक्त, **हरिवेरुलिय वण्णाभेणं** - नील वैडूर्य मणि के समान, **आवेढियं**- आवेष्टित, **परिवेढियं** - परिवेष्टित, **चित्तविचित्तं** - चित्रविचित्र।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में इन दस महास्वप्नों को देखकर जागृत हुए ।

वे इस प्रकार हैं - १. पहले स्वप्न में एक महा भयंकर रूप वाले ताड़वृक्ष के समान पिशाच को पराजित किया हुआ देखा । २. दूसरे स्वप्न में एक महान् सफेद पंख वाले पुंस्कोकिल अर्थात् पुरुष जाति के कोयल को देखा । साधारणतया कोयल के पंख काले होते हैं किन्तु भगवान् ने स्वप्न में सफेद पंख वाले कोयल को देखा । ३. तीसरे स्वप्न में एक महान् विचित्र रंगों के पंख वाले पुंस्कोयल को देखा । ४. चौथे स्वप्न में एक महान् सर्वरत्नमय मालायुगल अर्थात् दो मालाओं को देखा । ५. पांचवें स्वप्न में एक विशाल श्वेत गायों के झुण्ड को देखा । ६. छठे स्वप्न में चारों तरफ से खिले हुए फूलों वाले एक विशाल पद्मसरोवर को देखा । ७. सातवें स्वप्न में हजारों लहरों और कल्लोलों से युक्त एक महान् सागर को भुजाओं से तिर कर पार पहुंचे । ८. आठवें स्वप्न में अत्यन्त तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को देखा । ९. नवमें स्वप्न में मानुष्योत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपने अन्तर भाग से चारों तरफ से आवेष्टित और परिवेष्टित देखा । १०. दसवें स्वप्न में सुमेरु पर्वत की मंदर चूलिका नाम की चोटी पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने आपको देखा । उपरोक्त दस स्वप्न देख कर भगवान् महावीर स्वामी जागृत हुए ।

इन दस स्वप्नों का फल इस प्रकार है - १. प्रथम स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान् भयङ्कर रूप वाले पिशाच को पराजित किया । इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट कर दिया । २. दूसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान् सफेद पंख वाले पुंस्कोयल को देखा । इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने शीघ्र ही शुक्लध्यान प्राप्त किया । ३. तीसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विचित्र पांखों वाले एक महान् पुंस्कोयल को देखा । इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विचित्र यानी विविध विचार युक्त स्वसमय और परसमय को बतलाने वाली द्वादशाङ्गी रूप गणिपिटक का कथन किया, सामान्य रूप से प्रतिपादन किया, प्ररूपणा की, दर्शित किया, प्रदर्शित किया, भली प्रकार प्रदर्शित किया । द्वादशाङ्ग के नाम इस प्रकार हैं - आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग,-सूयगडांग, ठाणांग-स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवती सूत्र, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, उपासकदशाङ्ग, अन्तकृद्दशाङ्ग-

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

अन्तगडदसांग, अनुत्तरौपपातिक-अणुत्तरोववाई, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद। ४. चौथे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सर्वरत्नमय एक महान् मालायुगल यानी दो मालाओं को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर अगार धर्म-श्रावकधर्म और अनगार धर्म-साधुधर्म यह दो प्रकार का धर्म फरमाया। ५. पांचवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सफेद गायों के झुण्ड को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार प्रकार का संघ हुआ। ६. छठे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चारों तरफ से खिले हुए फूलों वाले एक विशाल पद्म सरोवर को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चार प्रकार के देवों का कथन किया। ७. सातवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हजारों लहरों और कल्लोलों से युक्त महासागर को भुजाओं से तैर कर पार पहुंचे । इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चार गति का अन्त करके अनादि और अनन्त संसार समुद्र को पार कर मोक्ष को प्राप्त हुए । ८. आठवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तेज से जाज्वल्यमान - तेजस्वी सूर्य को देखा । इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, प्रधान, अनन्त, केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त किया। ९. नवमें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नील वैडूर्यमणि के समान अपने अन्तरभाग से मानुष्योत्तर पर्वत को चारों तरफ से आवेष्टित परिवेष्टित देखा। इसका फल यह है कि देवलोक, मनुष्यलोक और असुरलोक इन तीनों लोकों में 'ये केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं' इस तरह की उदार कीर्ति, स्तुति, सन्मान और यश को प्राप्त हुए। १०. दसवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने आप को सुमेरु पर्वत की मंदर चूलिका के ऊपर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान्महावीरस्वामी ने वैमानिक और ज्योतिषी देव, मनुष्य और असुर यानी भवनपति और वाणव्यन्तर देवों से युक्त परिषद् में विराज कर केवलिप्ररूपित धर्म फरमाया एवं भली प्रकार प्रतिपादन किया।

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ये दस स्वप्न किस रात्रि में देखे थे ? इस विषय में कुछ की ऐसी मान्यता है कि **'अंतिम राइयंसि'** अर्थात् छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में ये स्वप्न देखे थे अर्थात् जिस रात्रि में स्वप्न देखे उसके दूसरे दिन ही भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था । कुछ का कथन है कि **'अंतिम राइयंसि'** अर्थात् 'रात्रि के अन्तिम भाग में' । यहाँ पर किसी रात्रि विशेष का निर्देश नहीं किया गया है । इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि स्वप्न देखने के कितने समय बाद भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । इस विषय में भिन्न भिन्न प्रतियों में जो अर्थ दिये गये हैं वे ज्यों के त्यों यहां उद्धृत किये जाते हैं -

'समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिम राइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. अर्थ - ज्यां रे श्रमण भगवन्त महावीर छद्मस्थपणां मां हता त्यारे तेओ एक रात्रि ना छेल्ला प्रहर मां आ दस स्वप्नो जोई ने जाग्या ।

(भगवती शतक १६ उद्देशा ६, जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट अहमदाबाद द्वारा विक्रम संवत् १९९० में प्रकाशित, पं. भगवानदास हरखचंद दोशी कृत गुजराती अनुवाद चतुर्थखण्ड पृष्ठ १९)

२. श्रमण भगवन्त श्री महावीर देव छद्मस्थकालपणा नी रात्रिइनइ अन्तिमभागे एह दस वक्ष्यमाण मोटा स्वप्न देखीने जागइ ।

(हस्तलिखित भगवती ५७० पानों वाली का टब्बा अर्थ पृष्ठ ३८९, सेठिया जैन ग्रन्थालय बीकानेर की प्रति)

३. **'अंतिम राइयंसि'** - रात्रेरन्तिमे भागे - अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में ।

(भगवती, आगमोदय समिति द्वारा वि. सं. १९७७ में प्रकाशित संस्कृत टीका पृष्ठ ७१०)

४. **'अंतिम राइयंसि'** - अन्तिमा अन्तिमभागरूपा अवयवे समुदायोपचारात् । सा चासौ रात्रिका च अन्तिम रात्रिका तस्या रात्रेरवसाने इत्यर्थः' ।

अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में । (ठाणांग सूत्र ठाणा १० सूत्र ७५० पृष्ठ ५०१ संस्कृत टीका आगमोदय समिति का)

५. **अंतिमराइया** - अन्तिम रात्रिका, अन्तिमा अन्तिम भागरूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिमरात्रिका, रात्रेरवसाने इत्यर्थः ।

अर्थात् - अन्तिम भाग रूप जो रात्रि वह अन्तिमरात्रि है । यहाँ रात्रि के एक भाग को रात्रि शब्द से कहा गया है । इस प्रकार अन्तिम भागरूप रात्रि अर्थ निकलता है अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग में ।

(अभिधान राजेन्द्रकोष प्रथम भाग पृष्ठ १०१)

६. **अंतिम राइ** - रात्रि नो छेड़ो (छेल्लो) भाग, पिछली रात ।

(शतावधानी पं. रत्नचन्द्रजी म. कृत अर्द्धमागधी कोष प्रथम भाग पृष्ठ ३४)

७. **'अंतिम राइयंसि'** अर्थात् श्रमण भगवन्त श्री महावीर छद्मस्थाए छेल्ली रात्रि ना अन्ते ।

(वि. सं. १८८४ में हस्तलिखित सवालखी भगवती श. १६ उ. ६)

८. श्री श्रमण भगवन्त महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि में दस स्वप्नों को देख कर जागृत हुए ।

(भगवती सूत्र पृष्ठ २२२४ तथा ठाणांग सूत्र पृष्ठ ८६४ श्री अमोलखऋषिजी कृत हिन्दी अनुवाद)

उपरोक्त सब उद्धरणों का निष्कर्ष यह है कि 'छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि' लेना उचित लगता है क्योंकि यथातथ्य स्वप्नों का फल तत्काल मिलता है अतः वैसाख सुदी नवमी की रात्रि में ये स्वप्न देखे थे और उसके दूसरे दिन वैसाख सुदी दशमी को भगवान् को केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हो गये थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सराग सम्यग्-दर्शन,संज्ञाएँ, नैरयिक वेदना

दसविहे सराग सम्मदंसणे पण्णत्ते तंजहा -

णिसग्गुवएसरुई आणारुई सुत्त बीयरुइमेव य ।
अभिगम वित्थाररुई किरिया संखेव धम्म रुई ॥ १॥

दस सण्णाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा, कोहसण्णा, माणसण्णा, मायासण्णा, लोभसण्णा, लोगसण्णा, ओहसण्णा। णेरइया णं दस सण्णाओ एवं चेव । एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ।

णेरइयाणं दसविहं वेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति तंजहा - सीयं, उसिणं, खुहं, पिवासं, कंडुं, परज्झं, भयं, सोगं, जरं, वाहिं॥ १३१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सराग सम्मदंसणे** - सराग सम्यग्दर्शन, **उवएसरुई** - उपदेश रुचि, **वित्थाररुई**- विस्तार रुचि, **संखेवरुई** - संक्षेप रुचि, **ओहसण्णा** - ओघ संज्ञा, **कंडु** - खुजली, **परज्झं** - परतंत्रता, **वाहिं** - व्याधि ।

भावार्थ - सरागसम्यग् दर्शन दस प्रकार का कहा गया है यथा - १. निसर्ग रुचि - गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वयमेव अपनी बुद्धि से तथा जातिस्मरण आदि ज्ञान द्वारा जीवादि तत्त्वों का स्वरूप जान कर उन पर श्रद्धा करना निसर्ग सम्यक्त्व है । २. उपदेश रुचि - केवली भगवान् का अथवा छद्मस्थ गुरु महाराज का उपदेश सुन कर जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना उपदेश रुचि है । ३. आज्ञा रुचि - मिथ्यात्व और कषायों की मन्दता के कारण गुरु महाराज की आज्ञा से जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा होना आज्ञा रुचि है। ४. सूत्र रुचि - अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य सूत्रों को पढ़ कर जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना सूत्र रुचि है। ५. बीज रुचि - जिस तरह जल पर तेल की बूंद फैल जाती है, एक बीज बोने से सैकड़ों बीजों की प्राप्ति हो जाती है उसी तरह क्षयोपशम के बल से एक पद, हेतु या दृष्टान्त को सुन कर अपने आप बहुत पद, हेतु तथा दृष्टान्तों को समझ कर श्रद्धा करना बीजरुचि है । ६. अभिगम रुचि - आचाराङ्ग से लेकर दृष्टिवाद तथा दूसरे सभी सिद्धान्तों को अर्थ सहित पढ़ कर श्रद्धा करना अभिगम रुचि है । ७. विस्तार रुचि - द्रव्यों के सभी भावों को प्रमाणों तथा नयों द्वारा जान कर श्रद्धा करना विस्ताररुचि है । ८. क्रिया रुचि - चारित्र, तप, विनय, पांच समिति, तीन गुप्ति आदि क्रियाओं का शुद्ध रूप से पालन करते हुए समकित की प्राप्ति होना क्रिया रुचि है । ९. संक्षेप रुचि - जिनवचनों का विस्तार पूर्वक ज्ञान न होने पर भी थोड़े से पदों को सुन कर श्रद्धा होना संक्षेप रुचि है । १०. धर्म रुचि - वीतराग द्वारा प्रतिपादित द्रव्य और शास्त्र का ज्ञान होने पर श्रद्धा होना धर्मरुचि है ।

दस संज्ञाएं कही गई हैं यथा - आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, लोकसंज्ञा - सामान्यज्ञान, ओघसंज्ञा - विशेष ज्ञान ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारकी जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक में ये दस संज्ञाएं पाई जाती हैं । नारकी जीव दस प्रकार की वेदना-पीड़ा भोगते हैं यथा - शीत, उष्ण, क्षुधा - भूख, प्यास, खुजली, परतन्त्रता, भय, शोक, ज्वर या जरा और व्याधि ।

विवेचन - जिस जीव के मोहनीय कर्म उपशान्त या क्षीण नहीं हुआ है उसकी तत्त्वार्थ श्रद्धा को सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसके निसर्ग रुचि से लेकर धर्म रुचि तक ऊपर लिखे अनुसार दस भेद हैं।

संज्ञा - वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होने वाली आहारादि की प्राप्ति के लिये आत्मा की क्रिया विशेष को संज्ञा कहते हैं। अथवा जिन बातों से यह जाना जाय कि जीव आहार आदि को चाहता है उसे संज्ञा कहते हैं। किसी के मत से मानसिक ज्ञान ही संज्ञा है अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन संज्ञा है। इसके दस भेद हैं-

१. आहार संज्ञा - क्षुधावेदनीय के उदय से कवलादि आहार के लिए पुद्गल ग्रहण करने की इच्छा को आहार संज्ञा कहते हैं।

२. भय संज्ञा - भयवेदनीय के उदय से व्याकुल चित्त वाले पुरुष का भयभीत होना, घबराना, रोमाञ्च, शरीर का काँपना आदि क्रियाएं भय संज्ञा है।

३. मैथुन संज्ञा - पुरुषवेद के उदय से स्त्री के अंगों को देखने, छूने आदि की इच्छा एवं स्त्री वेद के उदय से पुरुष के अङ्गों को देखने छूने आदि इच्छा तथा नपुंसक वेद के उदय से उभय (पुरुष और स्त्री दोनों) के अङ्गादि को देखने छूने की इच्छा तथा उससे होने वाले शरीर में कम्पन आदि को, जिन से मैथुन की इच्छा जानी जाय, मैथुन संज्ञा कहते हैं।

४. परिग्रह संज्ञा - लोभरूप कषाय मोहनीय के उदय से संसार बन्ध के कारणों में आसक्ति पूर्वक सचित्त और अचित्त द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा परिग्रह संज्ञा कहलाती है।

५. क्रोध संज्ञा - क्रोध रूप कषाय मोहनीय के उदय से आवेश में भर जाना, मुँह का सूखना, आँखें लाल हो जाना और काँपना आदि क्रियाएं क्रोध संज्ञा हैं।

६. मान संज्ञा - मान रूप कषाय मोहनीय के उदय से आत्मा के अहङ्कारादिरूप परिणामों को मान संज्ञा कहते हैं।

७. माया संज्ञा - माया रूप कषाय मोहनीय के उदय से बुरे भाव लेकर दूसरे को ठगना, झूठ बोलना आदि माया संज्ञा है।

८. लोभ संज्ञा - लोभ रूप कषाय मोहनीय के उदय से सचित्त या अचित्त पदार्थों को प्राप्त करने की लालसा करना लोभ संज्ञा है।

९. ओघ संज्ञा - मतिज्ञानावरण आदि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ के सामान्य ज्ञान को ओघ संज्ञा कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. लोक संज्ञा - सामान्यरूप से जानी हुई बात को विशेष रूप से जानना लोकसंज्ञा है। अर्थात् दर्शनोपयोग को ओघ संज्ञा तथा ज्ञानोपयोग को लोकसंज्ञा कहते हैं। किसी के मत से ज्ञानोपयोग ओघ संज्ञा है और दर्शनोपयोग लोकसंज्ञा। सामान्य प्रवृत्ति को ओघसंज्ञा कहते हैं तथा लोक दृष्टि को लोकसंज्ञा कहते हैं, यह भी एक मत है। (भगवती शतक ७ उद्देशा ८)

नारकी जीवों के वेदना दस -

१. शीत - नरक में अत्यन्त शीत (ठण्ड) होती है।

२. उष्ण (गरमी) ३. क्षुधा (भूख) ४. पिपासा (प्यास) ५. कण्डू (खुजली) ६. परतन्त्रता (परवशता) ७. भय (डर) ८. शोक (दीनता) ९. जरा (बुढ़ापा) १०. व्याधि (रोग)।

उपरोक्त दस वेदनाएं नरकों के अन्दर अत्यन्त अर्थात् उत्कृष्ट रूप से होती हैं।

छद्मस्थ और केवली का विषय

दस ठाणाइं छउमत्थे णं सव्वंभावेणं ण जाणइ ण पासइ तंजहा - धम्मत्थिकायं जाव वायं अयं जिणे भविस्सइ वा ण वा भविस्सइ, अयं सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सइ वा ण वा करिस्सइ । एयाणि चेव उप्पण्ण णाणदंसण धरे अरहा सव्वभावेणं जाणइ पासइ जाव अयं सव्वदुक्खाणमंतं करिस्सइ वा ण वा करिस्सइ ।

दस अध्ययनों वाले आगम

दस दसाओ पण्णत्ताओ तंजहा - कम्मविराग दसाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइय दसाओ, आयारदसाओ, पण्हावागरणदसाओ, बंधदसाओ, दोगिद्धिदसाओ, दीहदसाओ, संखेवियदसाओ ।

कम्मविवागदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा -

मियापुत्ते य गोत्तासे, अंडे सगडे इ यावरे ।
माहणे णंदिसेणे य, सोरियत्ति उदुंबरे ॥ १॥
सहसुद्दाहे आमलए कुमारे लेच्छइ ।

उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा -

आणंदे कामदेवे य, गाहावई चूलणीपिया ॥ २॥
सुरादेवे चुल्लसयए, गाहावई कुंडकोलिए ।
सद्दालपुत्ते महासयए णंदिणीपिया सालइयापिया ॥ ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा –

णमि मातंगे सोमिले, रामगुत्ते सुदंसणे चेव ।
जमाली य भगाली य, किंकम्मे पल्लएइ य ॥ ४॥
फाले अंबडपुत्ते य, एवमेए दस आहिया ।

अणुत्तरोववाइयदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा –

इसिदासे य धण्णे य, सुणक्खत्ते य काइए ॥ ५॥
सट्ठाणे सालिभद्दे य, आणंदे तेयली इय ।
दसण्णभद्दे अइमुत्ते, एमेए दस आहिया ॥ ६॥

आयार दसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा –

बीसं असमाहि ठाणा, एगवीसं सबला, तेत्तीसं आसायणाओ, अट्ठविहा गणिसंपया, दस चित्तसमाहि ठाणा।

एगारस उवासग पडिमाओ, बारस भिक्खुपडिमाओ, पज्जोसवणा कप्पो, तीसं मोहणिज्ज ठाणा, आजाइय ट्ठाणं ।

पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – उवमा संखा इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं, महावीरभासियाइं, खोमग पसिणाइं, कोमल पसिणाइं, अद्दाग पसिणाइं, अंगुट्ठ पसिणाइं बाहु पसिणाइं ।

बंधदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – बंधे य, मोक्खे य, देवड्ढि, दसारमंडले, वि य आयरिय विप्पडिवत्ती, उवज्झाय विप्पडिवत्ती, भावणा, विमुत्ती साओ कम्मे ।

दोगिद्धि दसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – वाए, विवाए, उववाए, सुक्खित्ते, कसिणे, बायालीसं सुमिणे, तीसं महासुमिणा, बावत्तरिं सव्वसुमिणा हारे, रामे, गुत्ते, एमेए दस आहिया । दीहदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – चंदे, सूरे, सुक्के, सिरिदेवी, पभावई, दीवसमुद्दोववत्ती, बहुपुत्ती, मंदरे इय थेरे संभूयविजए थेरेपम्ह, उस्सासणिस्सासे ।

संखेविय दसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा – खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया अरुणोववाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वरुणोववाए, गरुलोववाए, वेलंधरोववाए, वेसमणोववाए । दस सागरोवम कोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणीए, दस सागरोवम कोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीए॥ १३२॥

कठिन शब्दार्थ - **दसाओ** - दस दस अध्ययन वाले, **कम्मविवागदसाओ** - कर्मविपाक दशा, **दो गिद्धिदसाओ** - द्विगृद्धिदशा, **दीहदसाओ** - दीर्घदशा, **संखेवियदसाओ** - संक्षेपिक दशा, **पज्जोसवणाकप्पो** - पर्युषणा कल्प, **आजाइयट्ठाणं** - आजाति स्थान, **खोमगपसिणाइं** - क्षोमक प्रश्न, **अद्दागपसिणाइं** - आदर्श प्रश्न, **खुड्डियाविमाणपविभत्ती** - क्षुद्र विमान प्रविभक्ति ।

भावार्थ - छद्मस्थ जीव दस बातों को सब पर्यायों सहित न जान सकता है और न देख सकता है यथा - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर रहित जीव, परमाणु पुद्गल, शब्द,गन्ध, वायु, यह पुरुष केवलज्ञानी होगा या नहीं ?, यह पुरुष सब दुःखों का अन्त करके सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होगा या नहीं ? इन दस बातों को निरतिशय ज्ञानी छद्मस्थ सर्वभाव से न जान सकता है और न देख सकता है किन्तु केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली उपरोक्त दस ही बातों को सर्वभाव से जानते हैं और देखते हैं ।

दस शास्त्र दस दस अध्ययन वाले कहे गये हैं । यथा - कर्मविपाकदशा अर्थात् विपाक सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध, उपासकदशाङ्ग, अन्तगडदशाङ्ग सूत्र का प्रथम वर्ग, अनुत्तरौपपातिकदशा, आचारदशा अर्थात् दशाश्रुतस्कन्ध, प्रश्नव्याकरणदशा, बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा, संक्षेपिकदशा ।

कर्मविपाक दशा अर्थात् विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध दुःख विपाक के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - मृगापुत्र, गोत्रास, अण्ड-अभग्नसेन, शकट, ब्राह्मण-बृहस्पतिदत्त, नन्दिसेन-नन्दिवर्द्धन शोरिकदत्त, उम्बरदत्त, सहसोद्दाह, आमलक - देवदत्त, कुमारलच्छी-अन्जूकुमारी। दुखविपाक सूत्र के गाथा में जो दस नाम गिनाये गये हैं किन्तु इन नामों में और वर्तमान में उपलब्ध नामों में कुछ को छोड़कर भिन्नता पाई जाती है। संभवतः ये भिन्न वाचना के नाम हों।

उपासकदशाङ्ग सूत्र के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता गाथापति, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकोलिक गाथापति, सकडालपुत्र, महाशतक नन्दिनीपिता शालेयिका पिता । अन्तगडदशाङ्ग सूत्र के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - नमिराज, मातङ्ग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमाली, भगाली, किंकर्मपल्लक, फालित और अम्बडपुत्र।

अनुत्तरौपपातिक दशा के तीसरे वर्ग के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा -ऋषिदास, धन्ना, सुनक्षत्र, कार्तिक स्व स्थान, शालिभद्र, आनन्द, तेतली, दशार्णभद्र, अतिमुक्त । आचारदशा अर्थात् दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - बीस असमाधिस्थान, इक्कीस शबल दोष, तेतीस आशातना, आठ प्रकार की गणि सम्पदा, चित्तसमाधि के दस स्थान, श्रावक की ग्यारह पडिमा, साधु की बारह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिमा, पर्युषणा कल्प, मोहनीय कर्म के तीस स्थान, आजाति स्थान - सम्मूर्च्छिम और गर्भज के उत्पत्ति स्थान ।

प्रश्नव्याकरण दशा के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा- उपमा, संख्या, ऋषिभाषित, आचार्य भाषित, महावीर भाषित, क्षोमक प्रश्न, कोमल प्रश्न, आदर्श प्रश्न, अंगुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न । बन्धदशा के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - बन्ध, मोक्ष,, देवर्द्धि, दशारमण्डल, आचार्य विप्रतिपत्ति, उपाध्याय विप्रतिपत्ति, भावना, विमुक्ति, शाश्वत कर्म ।

द्विगृद्धिदशा के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - वाद, विवाद, उपपात, सुक्षेत्र, कृत्स्न, बयालीस स्वप्न, तीस महास्वप्न, सब बहत्तर स्वप्न, हार, राम, गुप्त।

दीर्घदशा के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - चन्द्र, सूर्य, शुक्र, श्री देवी, प्रभावती, द्वीप समुद्रोपपत्ति, बहुपुत्री, मन्दर, स्थविर सम्भूत विजय, स्थविर पद्म, उच्छ्वास निःश्वास।

संक्षेपिकदशा के दस अध्ययन कहे गये हैं यथा - क्षुद्रविमान प्रविभक्ति, महत् विमान प्रविभक्ति, अङ्ग चूलिका वर्गचूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति चूलिका अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुड़ोपपात, वेलंधरोपपात, वैश्रमणोपपात ।

उत्सर्पिणी काल दस कोडाकोडी सागरोपम का होता है और अवसर्पिणी काल दस कोडाकोडी सागरोपम का होता है ।

विवेचन - छद्मस्थ मनुष्य दस बातों को सर्व भाव से न ही देख सकता और न ही जानता है। अर्थात् अतिशय ज्ञान रहित छद्मस्थ सर्व भाव से इन बातों को जानता और देखता नहीं है। यहाँ पर अतिशय ज्ञान रहित विशेषण देने का यह अभिप्राय है कि अवधि ज्ञानी छद्मस्थ होते हुए भी अतिशय ज्ञानी होने के कारण परमाणु आदि को यथार्थ रूप से जानता और देखता है किन्तु अतिशय ज्ञान रहित छद्मस्थ नहीं जान या देख सकता है। वे दस बोल ये हैं -

१. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. वायु ५. शरीर रहित जीव ६. परमाणु पुद्गल ७. शब्द ८. गन्ध ९. यह पुरुष प्रत्यक्ष ज्ञानशाली केवली होगा या नहीं १०. यह पुरुष सर्व दुःखों का अन्त कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होगा या नहीं।

इन दस बातों को निरतिशय ज्ञानी छद्मस्थ सर्व भाव से न जानता और न देख सकता है किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली उपरोक्त दस ही बातों को सर्व भाव से जानते और देखते हैं।.

यहाँ मूल गाथा में दिये गये नाम पाठान्तर के मालूम होते हैं क्योंकि वर्तमान में उपलब्ध अन्तगडदशाङ्ग सूत्र के प्रथम वर्ग में तो ये नाम हैं - गौतम, समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कम्पिल, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल गाथा में दिये गये नाम वर्तमान में उपलब्ध अनुत्तरौपपातिक दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के नामों के साथ कुछ मिलते हैं और कुछ नहीं। वहाँ पर ये नाम हैं - धन्य, सुनक्षत्र, ऋषिदास, पैल्लक, रामपुत्र, चन्द्रमा, पोट्टिक, पेढालपुत्र, पोट्टिल और विहल्लकुमार ।

वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र में ये उपरोक्त गाथा में दिये गये अध्ययन नहीं पाये जाते हैं। किन्तु प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन पांच आस्रवों को बताने वाले पांच आस्रव द्वार हैं और इन आस्रवों से निवृत्ति रूप पांच संवर द्वार हैं । इस प्रकार आस्रव और संवर के दस द्वार हैं ।

टीकाकार ने लिखा है कि बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा, संक्षेपिकदशा इन चार सूत्रों का विच्छेद हो चुका है वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। परन्तु दीर्घदशा के कुछ अध्ययनों के नाम निरयावलिका सूत्र के अध्ययनों के साथ मिलते हैं ।

दस प्रकार के नैरयिक और स्थिति

दसविहा णेरइया पण्णत्ता तंजहा - अणंतरोववण्णगा, परंपरोववण्णगा, अणंतरावगाढा, परंपरावगाढा, अणंतराहारगा, परंपराहारगा, अणंतरपज्जत्तगा, परंपरपज्जत्तगा, चरिमा, अचरिमा, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया । चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए दस णिरयावास सयसहस्सा पण्णत्ता । रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता । चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । पंचमीए णं धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । असुरकुमाराणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता एवं जाव थणियकुमाराणं । बायर वणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता । वाणमंतरदेवाणं जहण्णेणं दस वास सहस्साइं ठिई पण्णत्ता । बंभलोए कप्पे उक्कोसेण देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । लंतए कप्पे देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ॥ १३३ ॥

कठिन शब्दार्थ - अणंतर पज्जत्तगा - अनन्तर पर्याप्तक, **परंपरपज्जत्तगा** - परम्पर पर्याप्तक ।

भावार्थ - नारकी जीव दस प्रकार के कहे गये हैं यथा - अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, अनन्तरावगाढ, परम्परावगाढ, अनन्तराहारक, परम्पराहारक, अनन्तर पर्याप्तक, परम्परा पर्याप्तक, चरम और अचरम । इसी प्रकार वैमानिक देवों तक चौबीस ही दण्डक के जीवों के दस दस भेद होते हैं ।

चौथी पङ्कप्रभा नरक में दस लाख नरकावास कहे गये हैं । रत्नप्रभा नरक में नारकी जीवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है । चौथी पङ्कप्रभा नरक में नारकी जीवों की उत्कृष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति दस सागरोपम की कही गई है । पांचवीं धूमप्रभा नरक में नारकी जीवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की कही गई है । असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमार तक भवनपति देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है । बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है। वाणव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है । पांचवें ब्रह्मदेवलोक में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही गई है । छठे लान्तक देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की कही गई है ।

विवेचन - दस प्रकार के नैरयिक जीव - समय के व्यवधान (अन्तर) और अव्यवधान आदि की अपेक्षा नारकी जीवों के दस भेद कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं -

१. अनन्तरोपपन्नक - अन्तर व्यवधान को कहते हैं। जिन नारकी जीवों को उत्पन्न हुए अभी एक समय भी नहीं बीता है अर्थात् जिनकी उत्पत्ति में अभी एक समय का भी अन्तर नहीं पड़ा है वे अनन्तरोपपन्नक नारकी कहलाते हैं।

२. परम्परोपपन्नक - जिन नारकी जीवों को उत्पन्न हुए दो तीन आदि समय बीत गये हैं। उनको परम्परोपपन्नक नारकी कहते हैं। ये दोनों भेद काल की अपेक्षा से हैं।

३. अनन्तरावगाढ - विवक्षित प्रदेश (स्थान) की अपेक्षा से अनन्तर अर्थात् अव्यवहित प्रदेशों के अन्दर उत्पन्न होने वाले अथवा प्रथम समय में क्षेत्र का अवगाहन करने वाले नारक जीव अनन्तरावगाढ कहलाते हैं।

४. परम्परावगाढ - विवक्षित प्रदेश की अपेक्षा व्यवधान से पैदा होने वाले अथवा दो तीन समय के पश्चात् उत्पन्न होने वाले नारकी परम्परावगाढ कहलाते हैं।

ये दोनों भेद क्षेत्र की अपेक्षा से समझने चाहिए।

५. अनन्तराहारक - अनन्तर (अव्यवहित) अर्थात् व्यवधान रहित जीव प्रदेशों से आक्रान्त अथवा जीव प्रदेशों का स्पर्श करने वाले पुद्गलों का आहार करने वाले नारकी जीव अनन्तराहारक कहलाते हैं। अथवा उत्पत्ति के प्रथम समय में आहार ग्रहण करने वाले जीवों को अनन्तराहारक कहते हैं।

६. परम्पराहारक - जो नारकी जीव अपने क्षेत्र में आए हुए पहले व्यवधान वाले पुद्गलों का आहार करते हैं या जो प्रथम समय में आहार ग्रहण नहीं करते हैं वे परम्पराहारक कहलाते हैं। उपरोक्त दोनों भेद द्रव्य की अपेक्षा से हैं।

७. अनन्तर पर्याप्तक - जिनके पर्याप्त होने में एक समय का भी अन्तर नहीं पड़ा है, वे अनन्तर पर्याप्तक या प्रथम समय पर्याप्तक कहलाते हैं।

८. परम्परा पर्याप्तक - अनन्तर पर्याप्तक से विपरीत लक्षण वाले अर्थात् उत्पत्ति काल से दो तीन समय पश्चात् पर्याप्तक होने वाले परम्परा पर्याप्तक कहलाते हैं।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

ये दोनों भेद भाव की अपेक्षा से हैं।

९. चरम - वर्तमान नारकी का भव समाप्त करने के पश्चात् जो जीव फिर नारकी का भव प्राप्त नहीं करेंगे वे चरम अर्थात् अन्तिम भव नारक कहलाते हैं।

१०. अचरम - वर्तमान नारकी के भव को समाप्त करके जो फिर भी नरक में उत्पन्न होवेंगे वे अचरम नारक कहलाते हैं।

ये दोनों भेद भी भाव की अपेक्षा से हैं क्योंकि चरम और अचरम ये दोनों पर्याय जीव के ही होते हैं।

जिस प्रकार नारकी जीवों के ये दस भेद बतलाए गए हैं वैसे ही दस दस भेद चौवीस ही दण्डकों के जीवों के होते हैं।

भद्र कर्म बांधने के स्थान, आशंसा प्रयोग

दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पगरेंति तंजहा - अणियाणयाए, दिट्ठिसंपण्णयाए, जोगवाहियत्ताए, खंतिखमणयाए, जिइंदियत्ताए, अमाइल्लयाए, अपासत्थयाए, सुसामण्णयाए, पवयणवच्छलयाए, पवयणउब्भावणयाए। दसविहे आसंसप्पओगे पण्णत्ते तंजहा - इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, दुहओलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामासंसप्पओगे, भोगासंसप्पओगे, लाभासंसप्पओगे, पूयासंसप्पओगे, सक्कारासंसप्पओगे॥ १३४॥

कठिन शब्दार्थ - **आगमेसिभद्दत्ताए** - आगामी काल में सुख देने वाले, **अणियाणयाए** - अनिदानता, **दिट्ठिसंपण्णयाए** - दृष्टि संपन्नता, **जोगवाहियत्ताए** - योग वाहिता, **खंति खमणयाए** - क्षान्ति क्षमणता, **जिइंदियत्ताए** - जितेन्द्रियता, **अमाइल्लयाए** - अमायाविता, **अपासत्थयाए** - अपार्श्वस्थता, **सुसामण्णयाए** - सुश्रामण्यता, **पवयणवच्छलाए** - प्रवचन वत्सलता, **पवयण उब्भावणयाए**- प्रवचन उद्भावनता, **आसंसप्पओगे** - आशंसा प्रयोग।

भावार्थ - जीव आगामी काल में सुख देने वाले कर्म दस कारणों से बांधते हैं। यहाँ पर शुभकर्म करने से देवगति प्राप्त होती है। वहाँ से चवने के बाद मनुष्यभव में उत्तम कुल की प्राप्ति होती है और फिर मोक्ष सुख की प्राप्ति हो जाती है। वे दस कारण ये हैं - १. अनिदानता - मनुष्यभव में संयम, तप आदि क्रियाओं के फल स्वरूप देवेन्द्र आदि की ऋद्धि की इच्छा न करना। २. दृष्टिसंपन्नता - सम्यग्दृष्टि होना अर्थात् सच्चे देव, गुरु, धर्म पर पूर्ण श्रद्धा होना। ३. योगवाहिता - सांसारिक पदार्थों में आसक्ति न होना या शास्त्रों का विशेष पठन पाठन करना। ४. क्षान्तिक्षमणता - बदला लेने की शक्ति होते हुए भी दूसरे के द्वारा दिये हुए परीषह उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन कर लेना। ५. जितेन्द्रियता - अपनी पांचों इन्द्रियों को वश में करना। ६. अमायाविता - माया कपटाई को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ कर सरलभाव रखना । ७. अपार्श्वस्थता - ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विराधना न करना । ८. सुश्रामण्यता - साधु के मूलगुण और उत्तरगुणों का निर्दोष पालन करना । ९. प्रवचन वत्सलता - द्वादशाङ्गीरूप प्रवचन की वत्सलता और प्रवचन के आधारभूत साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ की वत्सलता करना । १०. प्रवचन उद्भावनता - द्वादशाङ्गी रूप प्रवचन का वर्णवाद करना अर्थात् गुण कीर्तन करना ।

आशंसाप्रयोग - इस लोक या परलोक में सुख आदि की इच्छा करना आशंसा प्रयोग कहलाता है। वह दस प्रकार का कहा गया है यथा - १. इहलोकाशंसा प्रयोग - तप संयम आदि के फल स्वरूप इस लोक में चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि की इच्छा करना । २. परलोकाशंसा प्रयोग - तप संयम आदि के फल स्वरूप परलोक में देवेन्द्रादि के पद की इच्छा करना । ३. द्विधालोकाशंसा प्रयोग - इसलोक और परलोक दोनों में चक्रवर्ती और इन्द्रादि पद की इच्छा करना । ४. जीविताशंसाप्रयोग - सुख आने पर बहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा करना । ५. मरणाशंसाप्रयोग - दुःख आने पर दुःखों से छुटकारा पाने के लिए शीघ्र मरने की इच्छा करना । ६. कामाशंसाप्रयोग - मनोज्ञ ✪ शब्द और मनोज्ञ रूप की प्राप्ति की इच्छा करना । ७. भोगाशंसाप्रयोग - मनोज्ञ गन्ध, मनोज्ञ रस और मनोज्ञ स्पर्श की प्राप्ति की इच्छा करना । ८. लाभाशंसाप्रयोग - तप संयम के फल स्वरूप यश कीर्ति आदि के लाभ की इच्छा करना । ९. पूजाआशंसाप्रयोग - पूजा प्रतिष्ठा की इच्छा करना । १०. सत्काराशंसाप्रयोग - आदर सत्कार की इच्छा करना ।

विवेचन - भद्र कर्म बाँधने के दस स्थान - *आगामी काल में सुख देने वाले कर्म दस कारणों* से बाँधे जाते हैं। यहाँ शुभ कर्म करने से श्रेष्ठ देवगति प्राप्त होती है। वहाँ से चवने के बाद मनुष्य भव में उत्तम कुल की प्राप्ति होती है और फिर मोक्ष सुख की प्राप्ति हो जाती है। वे दस कारण ये हैं -

१. अनिदानता - मनुष्य भव में संयम तप आदि क्रियाओं के फलस्वरूप देवेन्द्रादि की ऋद्धि की इच्छा करना निदान (नियाणा) है। निदान करने से मोक्षफल दायक ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना रूपी लता (बेल) का विनाश हो जाता है। तपस्या आदि करके इस प्रकार का निदान न करने से आगामी भव में सुख देने वाले शुभ प्रकृति रूप कर्म बंधते हैं।

२. दृष्टि सम्पन्नता - सम्यग्दृष्टि होना अर्थात् सच्चे देव, गुरु, और धर्म पर पूर्ण श्रद्धा होना। इससे भी आगामी भव के लिए शुभ कर्म बंधते हैं।

३. योग वाहिता - योग नाम है समाधि अर्थात् सांसारिक पदार्थों में उत्कण्ठा (राग) का न होना या शास्त्रों का विशेष पठन पाठन करना। इससे शुभ कर्मों का बन्ध होता है।

४. क्षान्तिक्षमणता - दूसरे के द्वारा दिये गये परीषह, उपसर्ग आदि को समभाव पूर्वक सहन कर

✪ शब्द और रूप काम कहलाते हैं । गन्ध, रस और स्पर्श ये भोग कहलाते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेना। अपने में उसका प्रतीकार करने की अर्थात् बदला लेने की शक्ति होते हुए भी शान्तिपूर्वक उसको सहन कर लेना क्षान्तिक्षमणता कहलाती है। इस से आगामी भव में शुभ कर्मों का बन्ध होता है।

५. जितेन्द्रियता - अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में करने से आगामी भव में सुखकारी कर्म बंधते हैं।

६. अमायाविता - माया कपटाई को छोड़ कर सरल भाव रखना अमायावीपन है। इससे शुभ प्रकृति रूप कर्म का बन्ध होता है।

७. अपार्श्वस्थता - ज्ञान, दर्शन, चारित्र की विराधना करने वाला पार्श्वस्थ (पासत्था) कहलाता है। इसके दो भेद हैं - सर्व पार्श्वस्थ और देश पार्श्वस्थ।

(क) ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय की विराधना करने वाला सर्व पार्श्वस्थ है।

(ख) बिना कारण ही १. शय्यातरपिण्ड २. अभिहृतपिण्ड ३. नित्यपिण्ड ४. नियतपिण्ड और ५. अग्रपिण्ड को भोगने वाला साधु देशपार्श्वस्थ कहलाता है।

जिस मकान में साधु ठहरे हुए हों उस मकान का स्वामी शय्यातर कहलाता है। उसके घर से आहार पानी आदि लाना शय्यातरपिण्ड है।

साधु के निमित्त से उनके सामने लाया हुआ आहार अभिहृतपिण्ड कहलाता है।

एक घर से रोजाना गोचरी लाना नित्यपिण्ड कहलाता है।

भिक्षा देने के लिए पहले से निकाला हुआ भोजन अग्रपिण्ड कहलाता है।

'मैं इतना आहार आदि आपको प्रतिदिन देता रहूँगा।' दाता के ऐसा कहने पर उसके घर से रोजाना उतना आहार आदि ले आना नियतपिण्ड कहलाता है।

उपरोक्त पाँचों प्रकार का आहार ग्रहण करना साधु के लिए निषिद्ध है। इस प्रकार का आहार ग्रहण करने वाला साधु देशपार्श्वस्थ कहलाता है।

८. सुश्रामण्यता - मूलगुण और उत्तरगुण से सम्पन्न और पार्श्वस्थता (पासत्थापन) आदि दोषों से रहित संयम का पालन करने वाले साधु श्रमण कहलाते हैं। ऐसे निर्दोष श्रमणत्व से आगामी भव में सुखकारी भद्र कर्म बांधे जाते हैं।

९. प्रवचन वत्सलता - द्वादशांग रूप वाणी आगम या प्रवचन कहलाती है। उन प्रवचनों का धारक चतुर्विध संघ होता है। उसका हित करना वत्सलता कहलाती है। इस प्रकार प्रवचन की वत्सलता और प्रवचन के आधार भूत चतुर्विध संघ की वत्सलता करने से जीव आगामी भव में शुभ प्रकृति का बन्ध करता है।

१०. प्रवचन उद्भावनता - द्वादशांग रूपी प्रवचन का वर्णवाद करना अर्थात् गुण कीर्तन करना प्रवचन उद्भावनता कहलाती है।

उपरोक्त दस बातों से जीव आगामी भव में भद्रकारी, सुखकारी शुभ प्रकृति रूप कर्म का बन्ध करता है। अतः प्रत्येक प्राणी को इन बोलों की आराधना शुद्ध भाव से करनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशंसा प्रयोग दस – आशंसा नाम है इच्छा। इस लोक या परलोकादि में सुख आदि की इच्छा करना या चक्रवर्ती आदि पदवी की इच्छा करना आसंशा प्रयोग है। इसके दस भेद हैं –

१. इहलोकाशंसा प्रयोग – मेरी तपस्या आदि के फल स्वरूप मैं इसलोक में चक्रवर्ती राजा बनूँ, इस प्रकार की इच्छा करना इहलोकाशंसा प्रयोग है।

२. परलोकाशंसा प्रयोग – इस लोक में तपस्या आदि करने के फल स्वरूप मैं इन्द्र या इन्द्र सामानिक देव बनूँ, इस प्रकार परलोक में इन्द्रादि पद की इच्छा करना परलोकाशंसा प्रयोग है।

३. द्विधा लोकाशंसा प्रयोग – इस लोक में किये गये तपश्चरणादि के फल स्वरूप परलोक में मैं देवेन्द्र बनूँ और वहाँ से चव कर फिर इस लोक में चक्रवर्ती आदि बनूँ, इस प्रकार इहलोक और परलोक दोनों में इन्द्रादि पद की इच्छा करना द्विधालोकाशंसा प्रयोग है। इसे उभयलोकाशंसा प्रयोग भी कहते हैं।

सामान्य रूप से ये तीन ही आशंसा प्रयोग हैं, किन्तु विशेष विवक्षा से सात भेद और होते हैं। वे इस प्रकार हैं –

४. जीविताशंसा प्रयोग – सुख के आने पर ऐसी इच्छा करना कि मैं बहुत काल तक जीवित रहूँ, यह जीविताशंसा प्रयोग है।

५. मरणाशंसा प्रयोग – दुःख के आने पर ऐसी इच्छा करना कि मेरा शीघ्र ही मरण हो जाय और मैं इन दुःखों से छुटकारा पा जाऊँ, यह मरणाशंसा प्रयोग है।

६. कामाशंसा प्रयोग – मुझे मनोज्ञ शब्द और मनोज्ञ रूप प्राप्त हों ऐसा विचार करना कामाशंसा प्रयोग है।

७. भोगाशंसा प्रयोग – मनोज्ञ गन्ध, मनोज्ञ रस और मनोज्ञ स्पर्श की मुझे प्राप्ति हो ऐसी इच्छा करना भोगाशंसा प्रयोग है। शब्द और रूप काम कहलाते हैं। गन्ध, रस और स्पर्श ये भोग कहलाते हैं।

८. लाभाशंसा प्रयोग – अपने तपश्चरण आदि के फल स्वरूप यह इच्छा करना कि मुझे यश, कीर्ति और श्रुतआदि का लाभ हो, लाभाशंसा प्रयोग कहलाता है।

९. पूजाशंसा प्रयोग – इहलोक में मेरी खूब पूजा और प्रतिष्ठा हो ऐसी इच्छा करना पूजाशंसा प्रयोग है।

१०. सत्काराशंसा प्रयोग – इहलोक में वस्त्र, आभूषण आदि से मेरा आदर सत्कार हो ऐसी इच्छा करना सत्काराशंसा प्रयोग है।

दशविध धर्म, स्थविर पुत्र

दसविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा – गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे ।

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

दस थेरा पण्णत्ता तंजहा - गाम थेरा, णगर थेरा, रट्ठ थेरा, पसत्थार थेरा, कुल थेरा, गण थेरा, संघ थेरा, जाइ थेरा, सुय थेरा, परियाय थेरा ।

दस पुत्ता पण्णत्ता तंजहा - अत्तए, खेत्तए, दिण्णए, विण्णए, उरसे, मोहरे, सोंडीरे, संवुड्ढे, उवयाइए, धम्मंतेवासी॥ १३५ ॥

कठिन शब्दार्थ - रट्ठ धम्मे - राष्ट्रधर्म, **पासंड धम्मे** - पाषण्ड धर्म, **पसत्थार थेरा** - प्रशास्तृ स्थविर, **अत्तए** - आत्मज, **दिण्णए** - दत्तक, **विण्णए** - विनयित, **उरसे** - औरस, **मोहरे** - मौखर, **सोंडीरे** - शौंडीर, **संवुड्ढे** - संवर्द्धित, **उवयाइए** - उपयाचित, **धम्मंतेवासी** - धर्मान्तेवासी ।

भावार्थ - दस प्रकार का धर्म कहा गया है यथा - ग्राम धर्म - हर एक गांव के रीति रिवाज और उनकी अलग अलग व्यवस्था । नगरधर्म - शहरों के रीति रिवाज तथा उनकी अलग अलग व्यवस्था । राष्ट्रधर्म - देश का रीति रिवाज । पाषण्डधर्म - पाषण्डी अर्थात् परिव्राजक आदि विविध सम्प्रदाय वालों का धर्म । कुल धर्म - उग्रकुल, भोगकुल आदि कुलों के रीति रिवाज अथवा भिन्न भिन्न गच्छों की समाचारी । गणधर्म - मल्ल आदि गणों की व्यवस्था अथवा जैनियों के गणों की समाचारी । संघ धर्म - मेले आदि की व्यवस्था या बहुत से आदमियों के समूह द्वारा बांधी हुई व्यवस्था अथवा जैन सम्प्रदाय के साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की व्यवस्था । श्रुतधर्म - श्रुत अर्थात् आचाराङ्ग आदि शास्त्र दुर्गति में पड़ते हुए प्राणी को ऊपर उठाने वाले होने से धर्म है । चारित्र धर्म - सञ्चित कर्मों को जिन उपायों से रिक्त अर्थात् खाली किया जाय उसे चारित्र धर्म कहते हैं । अस्तिकाय धर्म - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय इन पांच अस्तिकायों के स्वभाव को अस्तिकायधर्म कहते हैं ।

स्थविर - बुरे मार्ग में प्रवृत्त मनुष्य को जो सन्मार्ग में स्थिर करे उसे स्थविर कहते हैं। वे दस कहे गये हैं यथा - ग्राम स्थविर - गांव में व्यवस्था करने वाला बुद्धिमान् तथा प्रभावशाली व्यक्ति। नगरस्थविर - नगर में व्यवस्था करने वाला, वहाँ का माननीय व्यक्ति । राष्ट्र स्थविर - देश का माननीय तथा प्रभावशाली नेता। प्रशास्तृस्थविर - प्रशास्ता अर्थात् धर्मोपदेश देने वाला । कुलस्थविर - लौकिक तथा लोकोत्तर कुल की व्यवस्था करने वाला और व्यवस्था तोड़ने वाले को दण्ड देने वाला। गणस्थविर-गण की व्यवस्था करने वाला। संघस्थविर - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की व्यवस्था करने वाला। जाति स्थविर - जिस व्यक्ति की आयु साठ वर्ष से अधिक हो वह जाति स्थविर कहलाता है। इसे वयस्थविर भी कहते हैं। श्रुतस्थविर - स्थानाङ्ग और समवायांग इन सूत्रों को जानने वाला । पर्यायस्थविर - बीस वर्ष से अधिक दीक्षा पर्याय वाले को पर्याय स्थविर कहते हैं।

पुत्र - जो अपने वंश की मर्यादा का पालन करे उसे पुत्र कहते हैं । पुत्र के दस भेद कहे गये हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा - आत्मज - अपनी स्त्री में उत्पन्न हुआ पुत्र आत्मज कहलाता है, जैसे भरत चक्रवर्ती का पुत्र आदित्य यश । क्षेत्रज - सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री क्षेत्र रूप मानी गई है । अतः उसकी अपेक्षा से पुत्र को क्षेत्रज भी कहते हैं, जैसे पाण्डुराजा की पत्नी कुन्ती के पुत्र कौन्तेय कहलाते हैं । दत्तक - जो पुत्र दूसरे को गोद दे दिया जाता है वह दत्तक पुत्र कहलाता है, जैसे बाहुबली के अनिलवेग पुत्र दत्तक पुत्र कहा जाता है । विनयित - अपने पास रख कर जिसको अक्षर ज्ञान एवं धार्मिक शिक्षा दी जाय वह पुत्र विनयित कहलाता है । औरस - जिस बच्चे पर अपने पुत्र के समान स्नेह उत्पन्न हो गया है अथवा जिस बच्चे को किसी व्यक्ति पर अपने पिता के समान स्नेह पैदा हो गया है वह बच्चा औरस कहलाता है । मौखर - जो पुरुष किसी व्यक्ति की चापलूसी और खुशामद करके अपने आपको उसका पुत्र बतलाता है । शौंडीर - युद्ध के अन्दर कोई शूरवीर पुरुष दूसरे किसी वीरपुरुष को जीत कर अपने अधीन कर ले और फिर वह अधीन किया हुआ पुरुष अपने आपको उसका पुत्र मानने लग जाय । संवर्द्धित - भोजन आदि देकर जिसे पाला पोसा हो । उपयाचित - देवता आदि की आराधना करने से जो पुत्र उत्पन्न हुआ हो । धर्मान्तेवासी - धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो धर्मगुरु के पास रहे उसे धर्मान्तेवासी कहते हैं । धर्म शिक्षा की अपेक्षा से शिष्य अन्तेवासी पुत्र कहलाता है ।

विवेचन - वस्तु के स्वभाव, ग्राम नगर आदि के रीति रिवाज तथा साधु आदि के कर्त्तव्य को धर्म कहते हैं। धर्म दस प्रकार का कहा है जो भावार्थ से स्पष्ट है।

पुत्र के जो दस भेद बताये हैं। उसमें से प्रथम के सात भेद किसी अपेक्षा से अर्थात् उस उस प्रकार के गुणों की अपेक्षा से 'आत्मज' के ही बन जाते हैं। जैसे कि - माता की अपेक्षा से क्षेत्रज कहलाता है। वास्तव में तो वह आत्मज ही है। दत्तक पुत्र तो आत्मज ही है किन्तु वह अपने परिवार में दूसरे व्यक्ति के गोद दे दिया गया है इसलिये दत्तक कहलाता है। इसी तरह विनयित, औरस, मौखर और शौंडीर भी उस उस प्रकार के गुणों की अपेक्षा से आत्मज पुत्र के ही भेद हैं। यथा - विनयित अर्थात् पण्डित अभयकुमार के समान। औरस - उरस बल को कहते हैं। बलशाली पुत्र औरस कहलाता है, यथा - बाहुबली। मुखर अर्थात् वाचाल पुत्र को मौखर कहते हैं। शौंडीर अर्थात् शूरवीर या गर्वित (अभिमानी) जो हो उसे शौण्डीर पुत्र कहते हैं। यथा - वासुदेव। इस प्रकार भिन्न गुणों की अपेक्षा से आत्मज पुत्र के ही ये सात भेद हो जाते हैं।

केवली के दस अनुत्तर, कुरुक्षेत्र, महर्द्धिक देव

केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता तंजहा - अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे, अणुत्तरे मद्दवे, अणुत्तरे लाघवे । समय खेत्ते णं दस कुराओ पण्णत्ताओ तंजहा - पंच देवकुराओ पंच उत्तरकुराओ, तत्थणं दस महतिमहालया

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

महादुमा पण्णत्ता तंजहा - जंबू सुदंसणा, धायइरुक्खे, महाधायइरुक्खे, पउमरुक्खे, महापउमरुक्खे, पंच कूडसामलीओ । तत्थ णं दस देवा महिड्डिया जाव परिवसंति तंजहा - अणाढिए जंबूदीवाहिवई, सुदंसणे पियदंसणे पोंडरीए महापोंडरीए पंच गरुला वेणुदेवा ।

दुषम और सुषम काल के लक्षण, दस प्रकार के वृक्ष

दसहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा तंजहा - अकाले वरिसइ काले ण वरिसइ, असाहू पूइज्जंति साहू ण पूइज्जंति, गुरुसु जणो मिच्छं पडिवण्णो, अमणुण्णा सद्दा जाव फासा । दसहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा तंजहा - अकाले ण वरिसइ तं चेव विवरीयं जाव मणुण्णा फासा । सुसमसुसमाए णं समाए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छंति तंजहा -

मत्तंगया य भिंगा तुडियंगा दीव जोइ चित्तंगा ।
चित्तरसा मणियंगा गेहागारा अणियणा य ।। १ ।। १३६ ।।

कठिन शब्दार्थ - **अणुत्तरा** - अनुत्तर, **महादुमा** - महाद्रुम ।

भावार्थ - दूसरी कोई वस्तु जिससे बढ़ कर न हो अर्थात् जो सब से बढ़ कर हो उसे अनुत्तर कहते हैं। केवली भगवान् के दस बातें अनुत्तर होती है यथा - १. अनुत्तर ज्ञान - ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वथा क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। २. केवलज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं हैं। इसलिए केवली भगवान् का ज्ञान अनुत्तर कहलाता है। ३. अनुत्तर दर्शन - दर्शनावरणीय अथवा दर्शन मोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से केवलदर्शन उत्पन्न होता है। ४. अनुत्तर चारित्र - चारित्र मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय से अनुत्तर चारित्र उत्पन्न होता है। ५. अनुत्तर तप - केवली के शुक्ल ध्यानादि रूप अनुत्तर तप होता है। ६. अनुत्तर वीर्य - वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा क्षय से अनन्त वीर्य पैदा होता है। अनुत्तर क्षान्ति-क्षमा। ७. अनुत्तर मुक्ति - निर्लोभता। ८. अनुत्तर आर्जव - सरलता। ९. अनुत्तर मार्दव-मान का त्याग। १०. अनुत्तर लाघव - घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने से उनके ऊपर संसार का बोझ नहीं रहता है। क्षान्ति आदि पांच बातें चारित्र के भेद हैं और चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है।

समय क्षेत्र यानी अढाई द्वीप में दस कुरु कहे गये हैं यथा - पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु । उन दस क्षेत्रों में दस बहुत बड़े महाद्रुम कहे गये हैं यथा - जम्बू सुदर्शन, धातकी वृक्ष, महाधातकी वृक्ष, पद्मवृक्ष, महापद्मवृक्ष और पांच कूटशाल्मली वृक्ष । उन दस वृक्षों पर दस महर्द्धिक यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं यथा - जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत देव सुदर्शन प्रियदर्शन पुण्डरीक महापुण्डरीक और पांच गरुड़ वेणुदेवता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दस कारणों से दुषमा काल आया हुआ जाना जाता है यथा - अकाल में वर्षा होती है, समय पर वर्षा नहीं होती है असाधु यानी पाखण्डी मिथ्यात्वी पूजे जाते हैं साधु अर्थात् सज्जन पुरुषों की पूजा नहीं होती है । मनुष्य गुरुजनों के प्रति दुष्ट भाव रखते हैं । शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श अमनोज्ञ होते हैं । दस कारणों से सुषमा काल आया हुआ जाना जाता है यथा - अकाल में वर्षा नहीं होती हैं इत्यादि दस बातें दुषमा काल से विपरीत होती है यावत् शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श मनोज्ञ होते हैं। सुषमसुषमा आरे में दस प्रकार के वृक्ष युगलियों के उपभोग में आते हैं यथा - मत्तङ्गा - शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले । भृताङ्गा - बर्तन आदि का काम देने वाले । त्रुटिताङ्गा - वादिंत्र का काम देने वाले । दीपाङ्गा - दीपक का काम देने वाले । ज्योतिरङ्गा - अग्नि का काम देने वाले तथा सूर्य के समान प्रकाश देने वाले । चित्राङ्गा - विविध प्रकार के फूल देने वाले । चित्ररसा - विविध प्रकार का रस एवं भोजन देने वाले । मण्यङ्गा - आभूषण देने वाले । गेहाकारा - मकान के आकार परिणत हो जाने वाले अर्थात् मकान की तरह आश्रय देने वाले । अनग्ना - वस्त्र आदि का काम देने वाले । इन दस प्रकार के वृक्षों से युगलियों की आवश्यकताएं पूरी होती रहती है ।

विवेचन - कुरुक्षेत्र दस - जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से उत्तर और दक्षिण में दो कुरु हैं। दक्षिण दिशा के अन्दर देवकुरु है और उत्तर दिशा में उत्तरकुरु है। देवकुरु पाँच हैं और उत्तरकुरु भी पाँच हैं। गजदन्ताकार (हाथी दाँत के सदृश आकार वाले) विद्युत्प्रभ और सौमनस नामक दो वर्षधर पर्वतों से देवकुरु परिवेष्टित हैं। इसी तरह उत्तरकुरु गन्धमादन और माल्यवान् नामक वर्षधर पर्वतों से घिरे हुए हैं। ये दोनों देवकुरु उत्तरकुरु अर्द्ध चन्द्राकार हैं और उत्तर दक्षिण में फैले हुए हैं। उनका प्रमाण यह है- ग्यारह हज़ार आठ सौ बयालीस योजन और दो कला $११८४२\frac{२}{१९}$ का विस्तार है और ५३००० योजन प्रमाण इन दोनों क्षेत्रों की जीवा (धनुष की डोरी) है।

दस महर्द्धिक देव - महान् वैभवशाली देव महर्द्धिक देव कहलाते हैं। उनके नाम - १. जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत देव २. सुदर्शन ३. प्रियदर्शन ४. पौण्डरीक ५. महापौण्डरीक और पाँच गरुड वेणुदेव कहे गये हैं।

अवसर्पिणी काल के सुषमसुषमा नामक प्रथम आरे में युगनिकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले दस प्रकार के वृक्ष होते हैं। ये वनस्पति जाति के होते हैं। थोकड़ा वाले इन वृक्षों को 'कल्पवृक्ष' कह देते हैं परन्तु ये कल्पवृक्ष नहीं हैं। किन्तु वनस्पतिकायिक वृक्ष हैं। शास्त्रकार ने यहाँ मूल में '**रुक्खा**' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ होता है 'वृक्ष'। अतः इनके कल्पवृक्ष कहना आगमानुकूल नहीं है।

कुलकर, वक्षस्कार पर्वत

जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा होत्था तंजहा -

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

सयंज्जले सयाऊ य, अणंतसेणे य अमियसेणे य । तक्कसेणे भीमसेणे महाभीमसेणे य सत्तमे ।। दढरहे दसरहे सयरहे ।

जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमीसाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति तंजहा - सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुई, पडिसुए, दढधणू, दसधणू, सयधणू ।

जंबूद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं सीयाए महाणईए उभओ कूले दस वक्खारपव्वया पण्णत्ता तंजहा - मालवंते चित्तकूडे विचित्तकूडे बंभकूडे जाव सोमणसे । जंबूमंदरपच्चत्थिमेणं सीओआए महाणईए उभओ कूले दस वक्खार पव्वया पण्णत्ता तंजहा - विज्जुप्पभे जाव गंधमायणे, एवं धायइसंड पुरच्छिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे ।

इन्द्राधिष्ठित कल्प और यान विमान

दस कप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता तंजहा - सोहम्मे जाव सहस्सारे पाणए अच्चुए एएसु णं कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता तंजहा - सक्के ईसाणे जाव अच्चुए । एएसु णं दसण्हं इंदाणं दस परिजाणिय विमाणा पण्णत्ता तंजहा - पालए पुप्फे जाव विमलवरे सव्वओ भद्दे॥ १३७॥

कठिन शब्दार्थ - इंदाहिट्ठिया - इन्द्राधिष्ठित, **परिजाणिय विमाणा** - परियान विमान ।

भावार्थ - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर हुए थे उनके नाम इस प्रकार हैं - शतञ्जल, शतायु, अनन्तसेन, अमितसेन, तक्रसेन, भीमसेन, महाभीमसेन, दृढरथ, दशरथ और शतरथ । इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर होंगे उनके नाम इस प्रकार हैं - सीमंकर, सीमंधर, क्षेमंकर, क्षेमंधर, विमलवाहन, सम्मुचि, प्रतिश्रुत, दृढधनुः, दसधनुः शतधनुः ।

इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में सीता महानदी के दोनों तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - माल्यवान्, चित्रकूट, विचित्रकूट, ब्रह्मकूट, यावत् सोमनस । जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में सीतोदा महानदी के दोनों तटों पर दस वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं यथा - विद्युत्प्रभ यावत् गन्धमादन । इसी तरह धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में तथा अर्द्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध में भी दस दस वक्षस्कार पर्वत हैं ।

दस देवलोक इन्द्राधिष्ठित कहे गये हैं यथा - सौधर्म से लेकर सहस्रार तक आठ देवलोक और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणत तथा अच्युत । इन देवलोकों में दस इन्द्र होते हैं यथा - शक्र ईशानेन्द्र यावत् अच्युतेन्द्र । इन दस इन्द्रों के दस परियान विमान कहे गये हैं यथा - पालक, पुष्पक यावत् विमलवर, सर्वतोभद्र ।

विवेचन - गत उत्सर्पिणी काल के दस कुलकर - जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गत उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर हुए थे। विशिष्ट बुद्धि वाले और लोक की व्यवस्था करने वाले पुरुष विशेष कुलकर कहलाते हैं। लोक व्यवस्था करने में ये हकार, मकार और धिक्कार आदि दण्ड नीति का प्रयोग करते हैं। अतीत उत्सर्पिणी के दस कुलकरों के नाम इस प्रकार हैं -

१. शतंजल २. शतायु ३. अनन्तसेन ४. अमितसेन ५. तर्कसेन ६. भीमसेन ७. महाभीमसेन ८. दृढरथ ९. दशरथ और १०. शतरथ।

आगामी उत्सर्पिणी काल के दस कुलकर - जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में दस कुलकर होंगे उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. सीमंकर २. सीमंधर ३. क्षेमंकर ४. क्षेमंधर ५. विमल वाहन ६. संमुचि ७. प्रतिश्रुत ८. दृढधनुः ९. दशधनुः और १०. शतधनुः।

दस वक्खार पर्वत - जम्बूद्वीप के अन्दर मेरु पर्वत के पूर्व में सीता महा नदी के दोनों तटों पर दस वक्खार (वक्षस्कार) पर्वत हैं। उनके नाम -

१. मालवंत २. चित्रकूट ३. पद्मकूट ४. नलिमकूट ५. एक शैल ६. त्रिकूट ७. वैश्रमण कूट ८. अञ्जन ९. मातञ्जन १०. सौमनस।

इनमें से मालवन्त, चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट और एकशैल ये पाँच पर्वत सीता महानदी के उत्तर तट पर हैं और शेष पाँच पर्वत दक्षिण तट पर हैं।

वक्खार पर्वत दस - जम्बूद्वीप के अन्दर मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में सीता महानदी के दोनों तटों पर दस वक्खार पर्वत हैं। उनके नाम -

१. विद्युत् प्रभ २. अंकावती ३. पद्मावती ४. आशीविष ५. सुखावह ६. चन्द्रपर्वत ७. सूर्य पर्वत ८. नाग पर्वत ९. देव पर्वत १०. गन्ध मादन पर्वत।

इनमें से प्रथम पाँच पर्वत सीता महानदी के दक्षिण तट पर हैं और शेष पाँच पर्वत उत्तर तट पर हैं।

कल्पोपपन्न इन्द्र दस - कल्पोपपन्न देवलोक बारह हैं। उनके दस इन्द्र ये हैं -

१. सुधर्म देवलोक का इन्द्र सौधर्मेन्द्र या शक्रेन्द्र कहलाता है।

२. ईशान देवलोक का इन्द्र ईशानेन्द्र कहलाता है। ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लान्तक ७. शुक्र ८. सहस्रार ९. आणत १०. प्राणत ११. आरण १२. अच्युत।

इन देवलोकों के इन्द्रों के नाम अपने अपने देवलोक के समान ही हैं। नवें और दसवें देवलोक का प्राणत नामक एक ही इन्द्र होता है। ग्यारहवें और बारहवें देवलोक का भी अच्युत नामक एक ही

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

इन्द्र होता है। इस प्रकार बारह देवलोकों के दस इन्द्र होते हैं। इन देवलोकों में छोटे बड़े का कल्प (व्यवहार) होता है और इनके इन्द्र भी होते हैं। इसलिए ये देवलोक कल्पोपपन्न कहलाते हैं।

दस विमान - बारह देवलोकों के दस इन्द्र होते हैं। यह पहले बताया जा चुका है। इन दस इन्द्रों के दस यान विमान होते हैं। जब इन्द्र तीर्थङ्कर भगवन्तों के जन्म कल्याणक आदि में मनुष्य लोक में आते हैं तब इन विमानों की रचना की जाती है इसलिये इनको यान विमान (यात्रा करने के काम में आने वाले विमान) कहते हैं।

१. प्रथम सुधर्म देवलोक के इन्द्र (शक्रेन्द्र) का पालक नामक यान विमान है।

२. दूसरे ईशान देवलोक के इन्द्र (ईशानेन्द्र) का पुष्पक नामक यान विमान है।

३. तीसरे सनत्कुमार देवलोक के इन्द्र का सौमनस नामक यान विमान है।

४. चौथे माहेन्द्र देवलोक के इन्द्र का श्रीवत्सनामक यान विमान है।

५. पाँचवें ब्रह्मलोक देवलोक के इन्द्र का नन्दिकावर्त्त नामक यान विमान है।

६. छठे लान्तक देवलोक के इन्द्र का कामकम नामक यान विमान है।

७. सातवें शुक्र देवलोक के इन्द्र का प्रीतिगम नामक यान विमान है।

८. आठवें सहस्रार देवलोक के इन्द्र का मनोरम नामक यान विमान है।

९. नववें आणत और दसवें प्राणत देवलोक का एक ही इन्द्र है और उस का विमलवर नामक यान विमान है।

१०. ग्यारहवें आरण और बारहवें अच्युत देवलोक का एक ही इन्द्र है। उसका सर्वतोभद्र नामक यान विमान है।

ये विमान नगर के आकार वाले होते हैं। ये शाश्वत नहीं है।

भिक्षु प्रतिमा, संसारी जीव, सर्वजीव

दस दसमिया णं भिक्खुपडिमा णं एगेणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं य भिक्खासएहिं अहासुत्ता जाव आराहिया वि भवइ। दसविहा संसार समावण्णगा जीवा पण्णत्ता तंजहा - पढमसमय एगिंदिया अपढमसमय एगिंदिया एवं जाव अपढमसमयपचिंदिया। दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया, बेइंदिया जाव पंचिंदिया, अणिंदिया। अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा - पढमसमय णेरइया अपढमसमय णेरइया जाव अपढमसमय देवा पढमसमय सिद्धा अपढमसमय सिद्धा।

दस दशाएँ

वाससयाउस्स णं पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाला किड्डा य मंदा य बला पण्णा य हायणी ।
पवंचा पब्भारा य, मुम्मुही सायणी तहा ।। १३८ ॥

कठिन शब्दार्थ - दस दसमिया - दश दशमिका, **दसाओ** - दशाएं, **किड्डा** - क्रीडा, **पवंचा** - प्रपञ्चा, **पब्भारा** - प्राग्भारा, **सायणी** - शायनी (स्वापिनी) ।

भावार्थ - दशदशमिका भिक्षुपडिमा एक सौ रात दिन में पूरी होती है और इस में पांच सौ पचास दत्तियाँ होती है । इस प्रकार सूत्रानुसार इस पडिमा का आराधन और पालन किया जाता है ।

दस प्रकार के संसारी जीव कहे गये हैं यथा - प्रथम समय एकेन्द्रिय, अप्रथम समय एकेन्द्रिय यावत् अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय। दस प्रकार के सर्व जीव कहे गये हैं यथा - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय - सयोगी केवली और सिद्ध भगवान्। अथवा दूसरे प्रकार से दस प्रकार के सर्वजीव कहे गये हैं यथा-प्रथमसमय नैरयिक अप्रथम समय नैरयिक यावत् अप्रथम समय देव, प्रथमसमय सिद्ध और अप्रथमसमय सिद्ध ।

सौ वर्ष की उम्र वाले पुरुष की दस दशाएं - अवस्थाएं कही गई हैं यथा - १. बाल अवस्था - उत्पन्न होने से लेकर दस वर्ष तक का प्राणी बाल कहलाता है । इसको सुख दुःखादि का तथा सांसारिक बातों का विशेष ज्ञान नहीं होता है अतः यह बाल अवस्था कहलाती है । २. क्रीड़ा - यह दूसरी अवस्था क्रीड़ा प्रधान है अर्थात् इस अवस्था को प्राप्त कर प्राणी अनेक प्रकार की क्रीडाएं करता है किन्तु कामभोगादि की तरफ उस की तीव्र बुद्धि नहीं होती है । ३. मन्द अवस्था - विशिष्ट बलबुद्धि के कार्यों में असमर्थ किन्तु भोगोपभोग की अनुभूति जिस अवस्था में होती है उसे मन्द अवस्था कहते हैं । इस अवस्था को प्राप्त होकर पुरुष अपने घर में विदयमान भोगोपभोग की सामग्री को भोगने में समर्थ होता है किन्तु नये भोगादि को उपार्जन करने में मन्द यानी असमर्थ होता है । इसलिए इसे मन्द अवस्था कहते हैं । ४. बला अवस्था - यह चौथी अवस्था है । इसे प्राप्त होकर पुरुष अपना बल पुरुषार्थ दिखाने में समर्थ होता है । ५. प्रज्ञा - पांचवीं अवस्था का नाम प्रज्ञा है । प्रज्ञा बुद्धि को कहते हैं । इस अवस्था को प्राप्त होने पर पुरुष में अपने इच्छितार्थ सम्पादन करने की तथा अपने कुटुम्ब की वृद्धि करने की बुद्धि उत्पन्न होती है । ६. हायणी या हापणी - इस अवस्था को प्राप्त होने पर पुरुष की इन्द्रियाँ अपने अपने विषय को ग्रहण करने में किञ्चित् हीनता को प्राप्त हो जाती है । इस कारण से इस अवस्था को प्राप्त पुरुष कामभोगादि के अन्दर किञ्चित् विरक्तिभाव को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए यह दशा हापणी या हायणी कहलाती है। ७. प्रपञ्चा - इस अवस्था में पुरुष की आरोग्यता गिरने लग जाती है और खांसी आदि रोग आकर घेर लेते हैं। ८. प्राग्भारा - इस अवस्था में पुरुष का शरीर कुछ झुक जाता है। इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती है। स्त्रियों का अप्रिय हो जाता है और बुढापा आकर घेर लेता है। ९. मुम्मुही - जरा रूपी राक्षसी से समाक्रान्त पुरुष इस नवमी दशा को प्राप्त होकर

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

अपने जीवन के प्रति भी उदासीन हो जाता है और निरन्तर मृत्यु की आकांक्षा करता रहता है तथा १०. स्वापिनी या शायनी - इस दसवीं अवस्था के प्राप्त होने पर पुरुष अधिक निद्रालु बन जाता है। उसकी आवाज हीन दीन और विकृत हो जाती है। इस अवस्था में पुरुष अति दुर्बल और अति दुःखित हो जाता है । यह पुरुष की अन्तिम अवस्था है। सौ वर्ष की आयु मान कर ये दस अवस्थाएं बतलाई गई हैं। दस दस वर्ष की एक एक अवस्था मानी गई है। इससे अधिक आयु वाले पुरुषों के भी उनकी आयु के परिमाण के दस विभागानुसार दस अवस्थाएं ही होती हैं।

तृणवनस्पतिकाय, विद्याधर श्रेणियाँ

दसविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता तंजहा - मूले, कंदे जाव पुप्फे, फले, बीए। सव्वाओ वि णं विज्जाहरसेढीओ दस दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । सव्वाओ वि अभिओगसेढीओ दस दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता । गेविज्जगविमाणा णं दसजोयण सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

तेज सहित भस्म करने की शक्ति

दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा तंजहा - केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे परिकुविए, तस्स तेयं णिसिरेज्जा, से तं परितावेइ, से तं परितावित्ता तमेव सह तेयसा भासं कुज्जा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा से तं परितावेइ, से तं परितावित्ता तमेव सह तेयसा भासं कुजजा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे परिकुविए देवे य परिकुविए दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरिज्जा ते तं परितावेंति, ते तं परितावित्ता तमेव सह तेयसा भासं कुज्जा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा, तत्थ फोडा सम्मुच्छंति ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तमेव सह तेयसा भासं कुज्जा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरिज्जा, तत्थ फोडा सम्मुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तमेव सह तेयसा भासं कुज्जा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे परिकुविए देवे वि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा ते तस्स तेयं णिसिरेज्जा, तत्थ फोडा सम्मुच्छंति सेसं तहेव जाव भासं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुज्जा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा, तत्थ फोडा सम्मुच्छंति ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला सम्मुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तमेव सह तेयसा भासं कुज्जा। एए तिण्णि आलावगा भाणियव्वा । केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासाएज्जा, से य अच्चासाइए समाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मइ णो पकम्मइ, अंचियं अंचियं करेइ करित्ता आयाहिण पयाहिणं करेइ करित्ता उड्ढं वेहासं उप्पयइ उप्पइत्ता से णं तओ पडिहए पडिणियत्तइ पडिणियतित्ता तमेव सरीरगमणुदहमाणे अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा जहा वा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवतेए॥ १३९ ॥

कठिन शब्दार्थ - विज्जाहरसेढीओ - विद्याधरों की श्रेणियां, **आभिओगसेढीओ** - आभियोगिक देवों की श्रेणियाँ, **सह तेयसा** - तेज सहित, **अच्चासाएज्जा** - आशातना करे, **परिकुविए** - कुपित बना हुआ, **पडिण्णा** - प्रतिज्ञा, **पुला** - फुन्सियाँ, **उप्पयइ** - उछलता है, **पडिहए** - प्रतिहत, **अणुदहमाणे** - दग्ध करती हुई।

भावार्थ - बादर तृण वनस्पतिकाय दस प्रकार की कही गई है यथा - मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, अङ्कुर, पत्र, पुष्प, फल और बीज ।

विद्याधरों की सब श्रेणियाँ दस दस योजन चौड़ी कही गई हैं । विद्याधरों की श्रेणियों से दस योजन ऊपर जाने पर आभियोगिक देवों की श्रेणियाँ आती हैं वे आभियोगिक देवों की सब श्रेणियाँ दस दस योजन चौड़ी कही गई है ।

ग्रैवेयक देवों के विमान दस सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं ।

कुपित हुआ श्रमण दस प्रकार से किसी अनार्य पुरुष को उसके तेज सहित भस्म कर देता है वे दस प्रकार ये हैं - १. कोई अनार्य पुरुष तथारूप वाले अर्थात् तेजो लब्धि वाले श्रमण माहण की अत्यन्त आशातना करे, तब आशातना से कुपित बना हुआ वह श्रमण उस आशातना करने वाले पर तेजो लेश्या फेंकता है और उसे परितापित करता है उसे परितापित करके तेजसहित उसे भस्म कर देता है । २. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की आशातना करे, तब आशातना करने से उस मुनि की सेवा करने वाला देव कुपित होकर उसके ऊपर तेजो लेश्या फेंकता है और उसे परितापित करता है परितापित करके तेजसहित उसे भस्म कर देता है । ३. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की आशातना करे, तब आशातना करने से कुपित बना हुआ वह मुनि और उस मुनि का सेवक देव दोनों प्रतिज्ञा करके यानी उसे लक्ष्य बना कर उसके ऊपर तेजो लेश्या फेंकते हैं और उसको परितापित करते हैं परितापित करके तेजसहित उस अनार्य पुरुष को भस्म कर देते हैं । ४. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

श्रमण माहन की अत्यन्त आशातना करे, तब आशातना करने से कुपित बना हुआ वह मुनि उसके ऊपर तेजोलेश्या फेंकता है, जिस से उसके शरीर में फोड़े हो जाते हैं, फिर वे फोड़े फूटते हैं, उन फोड़ों के फूटने पर वह मुनि उस अनार्य पुरुष को तेजसहित भस्म कर देता है ।५. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की अत्यन्त आशातना करे, तब आशातना करने से कुपित बना हुआ उस मुनि का सेवक देव उस पर तेजोलेश्या फेंकता है, जिससे उसके शरीर में फोड़े हो जाते हैं, फिर वे फोड़े फूटते हैं, उन फोड़ों के फूटने पर तेजसहित उस अनार्य पुरुष को भस्म कर देता है । ६. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की अत्यन्त आशातना करे, तब आशातना करने से कुपित बना हुआ वह मुनि और उसका सेवक देव दोनों प्रतिज्ञा करके अर्थात् उसे लक्ष्य करके उस पर तेजोलेश्या फेंकते हैं, जिससे उसके शरीर में फोड़े हो जाते हैं फिर वे फोड़े फूटते हैं, उन फोड़ों के फूटने पर तेजोलेश्या सहित उस अनार्य पुरुष को भस्म कर देते हैं । ७. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की अत्यन्त शातना करे, तब आशातना करने से कुपित बना हुआ वह श्रमण उसके ऊपर तेजोलेश्या फेंकता है, जिससे उसके शरीर में फोड़े हो जाते हैं, फिर वे फोड़े फूटते हैं, उनके फूटने से छोटी छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं, फिर वे फुन्सियाँ फूटती हैं, उन फुन्सियों के फूटने पर तेज सहित उस अनार्य पुरुष को भस्म कर देता है । इस प्रकार तीन आलापक कह देने चाहिए, जैसे कि 'कुपित बना हुआ वह मुनि उसको भस्म कर देता है' यह सातवाँ आलापक है । ८. 'कुपित बना हुआ उस मुनि की सेवा करने वाला देव उसको भस्म कर देता हैं' यह आठवाँ आलापक है । ९. 'कुपित बना हुआ वह मुनि और उसका सेवक देव दोनों उसको भस्म कर देते हैं' यह नववाँ आलापक है । १०. कोई अनार्य पुरुष तथारूप के श्रमण माहन की अत्यन्त आशातना करे और आशातना करता हुआ वह अनार्य पुरुष उस मुनि पर तेजोलेश्या फेंके किन्तु वह तेजोलेश्या उस मुनि पर थोड़ा या बहुत कुछ भी असर न कर सके किन्तु उसके पास में उछल कूद करे करके उस मुनि की प्रदक्षिणा करे और उछल कूद करके ऊपर आकाश में उछले उछल कर उस मुनि के तेज प्रताप से प्रतिहत होकर वहाँ से वापिस लौटती है लौट कर उसी अनार्य पुरुष के शरीर को दग्ध करती हुई तेजो लेश्या सहित उसको भस्म कर देती है जैसे कि मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर फेंकी हुई तेजोलेश्या ने वापिस लौट कर गोशालक के शरीर को ही दग्ध कर दिया ।

विवेचन - भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में मंखलिपुत्र गोशालक का वर्णन है। गोशालक ने अपनी तेजोलेश्या से सुनक्षित्र मुनि को भस्म कर दिया। फिर सर्वानुभति मुनि पर तेजोलेश्या फेंकी जिससे वह अर्ध दग्ध हो गया। फिर उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर तेजोलेश्या फेंकी परन्तु वह भगवान् का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकी प्रत्युत वहाँ से वापिस लौट कर गोशालक के शरीर को ही दग्ध कर दिया जिससे वह सात रात्रि के बाद काल धर्म को प्राप्त हो गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दस आश्चर्य

दस अच्छेरगा पण्णत्ता तंजहा -

उवसग्ग गब्भहरणं इत्थी तित्थं अभाविया परिसा ।
कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंदसूराणं ।। १॥
हरिवंसकुलुप्पत्ती चमरुप्पाओ य अट्ठसयसिद्धा ।
असंजएसु पूया, दस वि अणंतकालेण ।। २॥ १४०॥

कठिन शब्दार्थ - अच्छेरगा - अच्छेरे-आश्चर्यजनक बातें, **इत्थीतित्थं** - स्त्रीतीर्थ, **चंदसूराणं** - चन्द्र सूर्य का, **उत्तरणं** - अवतरण, **हरिवंसकुलुप्पत्ती** - हरिवंश कुलोत्पत्ति, **चमरुप्पाओ** - चमरोत्पात।

भावार्थ - इस अवसर्पिणी काल में दस अच्छेरे - आश्चर्यजनक बातें हुई हैं वे इस प्रकार हैं - १. उपसर्ग - तीर्थङ्कर भगवान् का यह अतिशय होता है कि वे जहाँ विराजते हैं उसके चारों तरफ सौ योजन के अन्दर किसी प्रकार वैरभाव, मरी आदि रोग, दुर्भिक्ष आदि किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता है किन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छद्मस्थ अवस्था में तथा केवली अवस्था में देव, मनुष्य और तिर्यञ्च कृत कई उपसर्ग हुए थे। यह एक आश्चर्यभूत बात है । अनन्त काल में कभी कभी ऐसी बातें होती हैं अतः यह अच्छेरा कहलाता है। २. गर्भहरण - जातिमद के कारण भगवान् महावीर स्वामी का जीव देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ। शक्रेन्द्र की आज्ञा से हरिणेगमेषी देव ने उस गर्भ का संहरण करके महारानी त्रिशला देवी की कुक्षि में रख दिया था । तीर्थङ्कर की अपेक्षा यह भी अच्छेरा है । ३. स्त्री तीर्थ-तीर्थङ्कर भगवान् पुरुष रूप में ही उत्पन्न होते हैं किन्तु इस अवसर्पिणी काल में उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लिनाथ स्त्री रूप में पैदा हुए थे । यह तीसरा अच्छेरा है । ४. अभव्या परिषद - त्याग प्रत्याख्यान के अयोग्य परिषद् - तीर्थङ्कर भगवान् को केवलज्ञान होने पर जब वे प्रथम धर्मोपदेश देते हैं उसमें कोई न कोई व्यक्ति अवश्य चारित्र ग्रहण करता है किन्तु भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम धर्मोपदेश में किसी ने चारित्र अङ्गीकार नहीं किया क्योंकि उसमें सिर्फ देवी और देव ही उपस्थित थे, देवी देव न तो संयम स्वीकार कर सकते हैं और न किसी प्रकार का त्याग प्रत्याख्यान ही कर सकते हैं । तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी खाली गई । इस लिए यह एक अच्छेरा है । ५. कृष्ण का अपरकंका गमन - दो वासुदेवों का मिलन नहीं होता है किन्तु द्रौपदी को लेने के लिए कृष्ण वासुदेव धातकीखण्ड में अपरकंका नगरी में गये थे । जब वे द्रौपदी को लेकर लवणसमुद्र में आ रहे थे तब उनसे मिलने के लिए धातकीखण्ड के कपिल वासुदेव ने शंख बजाया था । इसके जवाब में कृष्ण वासुदेव ने भी वापिस शंख बजाया । इस प्रकार दोनों वासुदेवों की शंखध्वनि का मिलान हुआ । यह भी एक अच्छेरा हुआ है । ६. चन्द्रसूर्यावतरण - उत्तर विक्रिया द्वारा बनाये हुए यान विमान में बैठ कर ही देव, तीर्थङ्कर भगवान् के दर्शन करने के लिए आते हैं किन्तु जब भगवान् महावीर स्वामी कौशाम्बी

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

नगरी में विराजते थे उस समय चन्द्र और सूर्य ये दोनों ज्योतिषी देव अपने अपने शाश्वत विमान में बैठ कर एक साथ भगवान् के दर्शन के लिए आये थे । यह भी एक अच्छेरा है । ७. हरिवंशकुलोत्पत्ति - युगलिये मर कर स्वर्ग में ही जाते हैं और उनके नाम से उनकी वंशपरम्परा नहीं चलती है किन्तु हरिवर्ष क्षेत्र के हरि और हरिणी युगलिए मर कर नरक में गये और उनके पीछे उनके नाम से हरिवंश परम्परा चली । इसलिए यह भी एक अच्छेरा है । ८. चमरोत्पात - भवनपति देव प्रथम देवलोक तक नहीं जाते हैं किन्तु चमरेन्द्र शक्रेन्द को पराजित करने के लिये प्रथम देवलोक की सुधर्मा सभा में गये । अतः यह भी एक अच्छेरा है । ९. अष्टशतसिद्ध - उत्कृष्ट अवगाहना वाले एक समय में १०८ सिद्ध नहीं होते हैं किन्तु भगवान् ऋषभदेव स्वामी के साथ उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ व्यक्ति एक समय में सिद्ध हुए थे । अतः यह भी एक अच्छेरा है । १०. असंयतपूजा - नवमें तीर्थङ्कर भगवान् सुविधिनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के कुछ समय बाद असंयतियों की पूजा हुई थी । सर्वदा काल संयतियों की ही पूजा होती है और वे ही पूजा सत्कार के योग्य हैं किन्तु इस अवसर्पिणी काल में असंयतियों की पूजा हुई थी । अतः यह भी एक अच्छेरा है । अनन्तकाल में इस अवसर्पिणी में ये दस अच्छेरे हुए थे । इसीलिए इस अवसर्पिणी को हुण्डावसर्पिणी कहते हैं ।

विवेचन - जो बात लोक में विस्मय एवं आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाती हो ऐसी बात को अच्छेरा (आश्चर्य) कहते हैं। इस अवसर्पिणी काल में दस बातें आश्चर्यजनक हुई हैं, वे इस प्रकार हैं-

१. उपसर्ग २. गर्भहरण ३. स्त्री तीर्थंकर ४. अभव्या परिषद् ५. कृष्ण का अपरकंका गमन ६. चन्द्र सूर्य अवतरण ७. हरिवंश कुलोत्पत्ति ८. चमरोत्पात ९. अष्टशतसिद्धा १०. असंयत पूजा। ये दस आश्चर्य हुए । इसका संक्षिप्त विवरण भावार्थ में दिया गया है।

छठा आश्चर्य चन्द्रसूर्य अवतरण है। इसका अर्थ कुछ आचार्य इस प्रकार करते हैं कि चन्द्र और सूर्य अपने मूल रूप से आ गये किन्तु यह अर्थ करना उचित नहीं है क्योंकि मूल रूप से तो देव और इन्द्र अनेक वक्त आते हैं जैसे कि तीर्थङ्करों के जन्म कल्याण के समय शक्रेन्द्र मूल रूप से अकेला आता है और तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाने के लिये वैक्रिय करके पांच रूप बनाता है। इसलिये 'मूल रूप से आना' ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए किन्तु मूल विमान लेकर आये ऐसा अर्थ करना चाहिए। इस विषय में टीकाकार ने भी लिखा है -

'भगवतो महावीरस्य वन्दनार्थमवतरणमाकाशात् समवसरणभूम्यां चन्द्रसूर्ययोः शाश्वत विमानोपेत्तयोर्बभूवेदमप्याश्चर्यमवैति।'

अर्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दर्शन करने के लिए चन्द्र और सूर्य अपने-अपने शाश्वत विमान लेकर आ गये, यह भी एक आश्चर्य हुआ।

रत्न काण्ड आदि की मोटाई

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणे कंडे दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमीसे मं रयणप्पभाए पुढवीए वइरे कंडे दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं वेरुलिए लोहियक्खे मसारगल्ले हंसगब्भे पुलए सोगंधिए जोइरसे अंजणे अंजलपुलए रयए जायरुवे अंके फलिहे रिट्ठे जहा रयणे तहा सोलसविहा भाणियव्वा ।

समुद्र द्रह आदि की गहराई

सव्वे वि णं दीवसमुद्दा दसजोयणसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता । सव्वे वि ण महादहा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता सव्वे वि णं सलिलकूडा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता ।

सीया सीओया णं महाणईओ मुहमूले दस दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ताओ । कत्तिया णक्खत्ते सव्व बाहिराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चारइ । अणुराहा णक्खत्ते सव्वब्भंतराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चरइ ।

ज्ञान वृद्धि के नक्षत्र

दस णक्खत्ता णाणस्स विद्धिकरा पण्णत्ता तंजहा -

मिगसिरमद्दा पुस्सो, तिण्णि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा ।
हत्थो चित्ता य तहा, दस विद्धिकराइं णाणस्स ।। १।। १४१ ।।

कठिन शब्दार्थ - **रयणेकंडे** - रत्न काण्ड, **विद्धिकरा-वुड्डिकरा** - वृद्धि करने वाले।

भावार्थ - इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नकाण्ड दस सौ अर्थात् एक हजार योजन का जाडा कहा गया है । इस रत्नप्रभा पृथ्वी का वज्रकाण्ड एक हजार योजन का जाड़ा कहा गया है । इसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी का वैडूर्य काण्ड, लोहिताक्ष काण्ड, मसारगल काण्ड, हंसगर्भ काण्ड, पुलक काण्ड, सौगन्धिक काण्ड, ज्योतिरस काण्ड, अञ्जन काण्ड, अञ्जनपुलक काण्ड, रजत काण्ड, जातरूप काण्ड, अंक काण्ड, स्फटिक काण्ड, रिष्ट काण्ड ये सब सोलह ही काण्ड रत्न काण्ड के समान एक एक हजार योजन के जाड़े कहे गये हैं ।

सभी द्वीप और समुद्र एक एक हजार योजन के ऊंडे कहे गये हैं । सभी महाद्रह दस योजन ऊंडे कहे गये हैं । सभी सलिलकूट दस योजन ऊंडे कहे गये हैं । सीता और सीतोदा ये दोनों महानदियाँ मुखमूल में अर्थात् प्रारम्भ में दस दस योजन की ऊंडी कही गई हैं । कृतिका नक्षत्र सब बाहरी मण्डलों से दसवें मण्डल में घूमता है । अनुराधा नक्षत्र सब आभ्यन्तर मण्डलों से दसवें मण्डल में घूमता है ।

दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये हैं अर्थात् इन नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ योग होने पर विद्या आरम्भ करना तथा विद्या सम्बन्धी कोई काम शुरू करने से ज्ञान की वृद्धि होती है । वे नक्षत्र ये हैं - मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, मूला, अश्लेषा, हस्त और चित्रा ये दस नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुलकोटियाँ, पापकर्म और पुद्गलों की अनंतता

चउप्पयथलयर पंचिंदियतिरिक्ख जोणियाणं दस जाइ कुलकोडि जोणी पमुह सयसहस्सा पण्णत्ता। उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं दस जाइकुल कोडि जोणी पमुह सयसहस्सा पण्णत्ता।

जीवाणं दस ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पाव कम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा तंजहा - पढमसमय एगिंदिय णिव्वत्तिए जाव पंचिंदिय णिव्वत्तिए। एवं चिण उवचिण बंध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव। दस पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। दस पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। दससमय ठिइया पोग्गला अणंता पण्णत्ता। दसगुण कालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। एवं वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं जाव दसगुण लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता॥ १४२॥

॥ सम्मत्तं च ठाणमिति। दसमं ठाणं समत्तं।

॥ दसमं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों की दस लाख कुलकोडी कही गई है। उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवों की दस लाख कुलकोडी कही गई है।

जीवों ने दस स्थान निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म रूप से सञ्चय किया था, सञ्चय करते हैं और सञ्चय करेंगे यथा - प्रथम समय एकेन्द्रिय निर्वर्तित यावत् अप्रथमसमय पञ्चेन्द्रिय निर्वर्तित अर्थात् एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय इन प्रत्येक के प्रथम समय और अप्रथम समय ये दो दो भेद करने से दस भेद हो जाते हैं। इन दस प्रकार से उत्पन्न होकर जीवों ने पाप कर्म रूप से पुद्गलों का सञ्चय किया था। इस समय वर्तमान काल में सञ्चय करते हैं और आगामी काल में भी सञ्चय करेंगे। इस प्रकार सञ्चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा इन प्रत्येक का भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों की अपेक्षा से कथन कर देना चाहिए। दस प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। दस प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। दस समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। दस गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं। इसी तरह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा भी कह देना चाहिए। यावत् दस गुणरूक्ष पुद्गल अनन्त कहे गये हैं।

॥ दसवाँ स्थान समाप्त। दसवां अध्ययन समाप्त॥

॥ इति श्री स्थानाङ्ग सूत्र समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं, तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org